CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र महाविज्ञान

प्रथम खण्ड

(तन्त्र के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक निरूपण)

*

लेखक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

तथा

डॉ० चमनलाल गौतम

*

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

फोन : २४०८५०
रत्न पुस्तक भण्डार
"ग्रीन हाउस"
२७१, माईतिघर
काठमाडौं, नेपाल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र-महाविज्ञान

[प्रथम खण्ड]

(तन्त्र के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक निरुपण)

□

लेखक :
वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ
★ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
तथा
★ डॉ० चमनलाल गौतम

□

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर), बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)
फोन नं० ४७४२४२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक :
☐ डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर)
बरेली—२४३००३ (उ०प्र०)
फोन-४७४२४२

●

लेखक :
☐ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
डॉ० चमनलाल गौतम

●

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन :

●

संशोधित संस्करण :
सन्–१९९४

●

मुद्रक :
☐ शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी
नव ज्योति प्रेस,
गली सेठ भीकचन्द,
मथुरा-(उ० प्र०)

●

: पचास रुपये मात्र ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राक्कथन

भारतीय आध्यात्म-साहित्य में 'तन्त्र' की एक विशिष्ट स्थिति है। सामान्यतया सभी तन्त्र,ग्रन्थ भगवान शिव के मुख से आविर्भूत बतलाये गये हैं और उनकी आप्त-वाक्य के समान पवित्र और प्रमाणिक माना गया है। पर इसी देश के विद्वानों में एक दल ऐसा भी है, जो उनको अनेक दूषित प्रवृत्तियों को स्रोत और इस कारण व्यक्ति एवं समाज के लिए अकल्याणकारी बतलाता है।

जब इस समस्या का निर्णय के लिए हम इसके गहन तल में दृष्टि-पात करते हैं, तो विदित होता है कि ये दोनों ही मत न्यूनाधिक परि-णाम में विचारशीलता से परे हैं। तन्त्र ग्रन्थों को शिव प्रणीत और आप्त-वाक्य मानना वैसा ही है, जैसा कि अधिकांश पुराणों को ब्रह्मा, विष्णु या किसी अन्य देवता के मुख से निःसृत बतलाना। भारतवर्ष के विद्वान समस्त ज्ञान का मूल स्रोत भगवान की चित्तशक्ति को ही मानते हैं, इसलिए धर्म और अध्याय के सम्बन्ध में उनकी जो स्फुरणा होती है और जिन तथ्यों तथा भावनाओं को वे ग्रन्थरूप से प्रकट करते हैं, उनको अपनी कृति न मानकर विश्व की चैतन्य-सत्ता को ही उनका उद्गम कहते हैं। तन्त्र शास्त्र के प्रणेताओं ने भी आरम्भ से इसी परिपाटी का अनु-सरण किया है और सभी प्रमुख तन्त्र-ग्रन्थ किसी व्यक्ति विशेष के नाम से प्रसिद्ध न होकर भगवान् शिव के नाम से प्रसारित किये गये।

पर जिस प्रकार प्रत्येक संस्था अथवा विचार-प्रवाह में क्रमशः अनाधिकारी और स्वार्थी व्यक्तियों का प्रवेश हो जाता है और वे मूल भावना को तोड़-मरोड़ कर उसे अपनी रुचि अथवा दुरभिसन्धियों की पूर्ति का साधन बना लेने की चेष्टा करते हैं, वही बात तन्त्र के सम्बन्ध में भी हुई। महापुरुषों ने यो योग और ज्ञान मार्ग की साधनाओं को जन साधारण के लिए दुर्गम समझ कर तन्त्र के अपेक्षाकृत सरल मार्ग का प्रादुर्भाव किया जिससे वे भी अध्यात्म-क्षेत्र में कुछ प्रगति कर सकें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और क्रमशः उच्च स्वरों तक पहुँचने का अवसर पा सकें। पर हीन मनोभूमि के व्यक्तियों ने उसमें मनमानी कल्पनायें और अनोखे विधि-विधान जोड़कर उसे जादू टोना जैसा बना दिया। इतना ही नहीं, भ्रष्ट आचरण वाले व्यक्तियों ने उसे अपनी गर्हित पाशविक वृत्तियों का साधन बनाने में भी कसर नहीं रखी।

पर जब हम इन पक्षतापूर्ण मान्यताओं को छोड़कर तान्त्रिक सिद्धातों पर निष्पक्ष रूप से विचार करते हैं, तो यही प्रतीत होता है कि उसकी प्रतिष्ठापना अन्धविश्वास के बजाय अध्यात्म-विज्ञान के सुनिश्चित तथ्यों के आधार पर हुई है। आरम्भ में इस देश के बहु संख्यक विचारकों तथा मनीषियों ने आत्मोत्थान और मोक्ष के लिए संसार के त्याग और कठिन तपश्चर्याओं का प्रतिपादन किया। उस समय देश कालानुसार अधिकांश लोगों को वन्य और अविकसित परिस्थियों में रहना भी पड़ता था। इसलिए उनको उस मार्ग में विशेष कठिनाई नहीं जान पड़ती थी। आगे चलकर कुछ विशिष्ट सम्प्रदाय वालों ने उस विचार धारा को और भी बढ़ाया तथा संसार त्याग तथा अधिकाधिक कष्ट सहन को मोक्ष-मार्ग बतलाता। यह उपदेश मावन-प्रकृति के अनुकूल तथा इसलिए सामान्य लोगों का ध्यान अध्यात्म और उच्च धार्मिक साधनाओं की तरफ से हटने लगा। होते-२ ऐसा समय आ पहुँचा जब गृह-त्यागी तपस्वियों और ग्रहस्थों के बीच में एक गहरी खाई खुद गई और सामान्य जनता अपने को अध्यात्म-मार्ग के लिए सर्वथा अनुपयुक्त समझने लग गई।

पर भारतीय मनीषी जानते थे कि किसी भी देश निवासियों का का अध्यात्म भावनाओं से शून्य हो जाना दुर्भाग्य का ही लक्षण है। ऐसे लोग भौतिकवादी दृष्टि को अपनाने लगते हैं और उनमें से परमार्थ की भावना क्षीण होने लगती है। परमार्थ ही त्याग, परोपकार, सेवा, जैसी समाज कल्याणकारी प्रवृत्तियों का जन्मदाता है, और उसके बिना मनुष्य निरन्तर स्वार्थसाधन को प्रधानता देता हुआ निम्न स्तर की ओर बढ़ता चला जाता है। इसी दृष्टिकोण से गीता के निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया गया था, जिससे मनुष्य लौकिक और पारलौकिक दोनों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पक्षों को संभाल सकें। पर यह सिद्धांत ऐसा सूक्ष्म और विचार प्रधान था कि साधारण विद्या बुद्धि का मनुष्य न तो उसे हृदयङ्गम कर सकता था और न उसे विश्वास होता था कि वह उस मार्ग पर सफलतापूर्वक चलकर सर्वोच्च गति का अधिकारी बन सकता है।

बस इन्ही परस्थियों में तन्त्र शास्त्र का आविर्भाव हुआ उसका मुख्य उद्देश्य यही था कि मनुष्य गृहस्थ में रहकर साँसारिक जीवन व्यतीत करता हुआ भी न्यूनाधिक परिणाम में अध्यात्म-तत्व को ग्रहण कर सके और इस मार्ग पर प्रगति कर सकने में समर्थ हो जाय। इस-लिए उसमें उपासना के कठोर अथवा अस्वाभाविक विधानों को त्याग कर ऐसी विधियों को प्रचलित किया गया जो गृहस्थ-जीवन के अनुकूल और जिनके कारण सांसारिक कार्यों में किसी प्रकार की बाधा न पड़ती हो।

बाद में अन्य विद्वानों ने तन्त्र-साधना में कुछ चमत्कारी शक्तियों और सिद्धियों के विचारों जैसे विषयों को सम्मिलित किया। सम्भवतः उनका उद्देश्य था कि ऐसा करने से सामान्य स्तर के व्यक्ति भी इस ओर आर्कपित होंगे और उनका विश्वास दृण हो सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य की मानसिक शक्ति और एकाग्रता के प्रभाव को देखते हुए वे विधान असम्भव अथवा अवैज्ञानिक न थे! आज भी हमारे देश में तथा अन्य देशों में कुछ लोग उनकी सच्चाई परीक्षकों के सामने सिद्ध कर देते हैं। पर हम जैसा जानते हैं कि 'सिद्धियों और चमत्कारों का मार्ग आगे चलकर प्रायः पतनोन्मुख बन जाता है। उसी के अनुसार मध्यकालीन तन्त्र-ग्रन्थों में सामान्य मन्त्र विधानों अथवा युक्तियों द्वारा इतनी विशाल और असम्भव सफलताओं की बातें लिख दीं कि सभी समझदार व्यक्तियों का उन पर से विश्वास हट गया।

इस ग्रन्थ में हमने उपर्युक्त तथ्यों का स्पष्टीकरण करते हुए यही बतलाने की चेष्टा की है कि तन्त्र का वास्तविक स्वरूप अन्धविश्वास या करोड़ों पर आधारित नहीं हैं, वरन् वह अध्यात्म-विज्ञान की एक ऐसी रेखा है जिसका अवलम्बन करके सर्वथा समान्य व्यक्ति भी साँसारिक रूप से ऊपर उठकर क्रमशः उच्च जीवन में प्रविष्ट हो सकता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय-सूची

१. तन्त्र की तथाकथित घृणित साधनायें व उनकी वास्तविकता का स्पष्टीकरण ९

स्वार्थपरता और मिलावट, पशुबलि का कलंक तन्त्र के भेद, बाहरी प्रभाव, सभी दोषी नहीं, अधिकार, प्रतीक, निन्दा मय दर्शन, दण्डविधान, उच्च उद्देश्य।

२. तन्त्र की असाधारण महत्ता और उद्देश्य ३०

३. तन्त्र की प्रमाणिकता ४४

४. तन्त्र की प्राचीनता ४८

शैव-सम्प्रदाय (नैपाल, कम्बोदिया वाली आलोस, थाईलैण्ड, वर्मा, हिन्द-चीन वियतनाम, जावा, मंगोलिया, तिब्बत में शैव तन्त्र का प्रभाव, शाक्त सम्प्रदाय चीन, जापान, इण्डोनेशिया, तिब्बत में देवी-उपासना), गाणपत्य सम्प्रदाय।

५. तन्त्र की गोपनीयता ७४

६. तन्त्र का अधिकार ८६

७. तन्त्र साधना में उदार भावना १०४

८. तन्त्र साहित्य की विशालता ११६

बौद्ध तन्त्र, भैरव-तन्त्र, विष्णुक्राँता वर्ग के तन्त्र, रथक्राँता वर्ग के तन्त्र, अश्वक्रांता वर्ग के तन्त्र, शाक्त साहित्य, शैव-तन्त्र वैष्णव-तन्त्र।

९. तन्त्र में योग का स्थान १३४

१०. तन्त्र साधना में गुरु की आवश्यकता १४२

११. तन्त्र के विभिन्न अर्थ और लक्षण १८१

१२. तन्त्र का सिद्धांत १८५

शक्ति तत्व की व्याख्या, शक्ति का वास्तविक रूप शिव शक्ति दोनों से सृष्टि रचना का सम्पादन, व्यवहारिक रूप।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१३. तान्त्रिक भाव १६३
वैज्ञानिक पद्धति, संकेत द्वारा, आत्म-कल्याण, नई सृष्टि-रचना, पशु-भाव, वीर भाव, दिव्य भाव ।

१४. तान्त्रिक आचार २१०
वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, समन्वयात्मक पद्धति, वामाचार, सिद्धान्ताचार, कुलाचार ।

१५. तांत्रिक पूजा का रहस्य २३१
परिभाषा, प्रकार, ६४ उपचार, १८ उपचार, १६, उपचार, १० उपचार, ५ उपचार, पूजा का रहस्य, मानस पूजन ।

१६. पंचमकार रहस्य २४५
मद्य, माँस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन की वास्तविकता पर प्रकाश ।

१७. दीक्षा की अनिवार्यता २७३
मानव विकास में गुरु की परम आवश्यकता, मनोभूमि का परिष्कार, दीक्षा की आवश्यकता, गुरु शिष्य की परस्पर परीक्षा, अधिकारी व अनधिकारी शिष्य के लक्षण, महिमा परिभाषा, प्रकार समय-दीक्षा, पुत्रक दीक्षा, निर्वाण दीक्षा वेध दीक्षा, शिवधर्मी और लोकधनी दीक्षा, अन्त-दीक्षा ।

१८. शक्तिपात की वैज्ञानिक प्रक्रिया ३०२
परिभाषा, गुरुकृपा, शक्तिपात के लाभ, लक्षण, घटनायें, प्रकार, अधिकार वैज्ञानिक प्रक्रिया ।

१९. कुण्डलिनी द्वारा शक्ति जागरण और प्रभाव ३१९

२०. नाद साधना ३३०
परिभाषा, विराट रूप, लाभ ।

२१. बिन्दु-साधना ३३९
महिमा, परिभाषा और व्याख्या, वैज्ञानिक स्पष्टीकरण, साधना ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२२. कला साधना ३५४
प्रकार, पाँच कलाओं द्वारा तात्विक साधना, पृथ्वी तत्व, जल-तत्व, अग्नि-तत्व, वायु तत्व, आकाशतत्व ।
२३. बलिदान का तात्विक स्पष्टीकरण ३६१
२४. यन्त्रों का प्रेरणात्मक अध्ययन ३७२
अर्थ, महिमा, उद्देश्य, श्रीयन्त्र, यंत्रराज यन्त्र, मुक्तियन्त्र, सर्वतोभद्र यन्त्र, स्मरहर यन्त्र ।
२५. वर्णों की रेखाकृतियां शक्ति के स्रोत हैं.... .... ३८५
शक्ति का रूप, ध्वनि की विशेषता, रेखाकृतियों का विज्ञान, स्वरूप ।
२६. मातृकाओं की बौद्धिक व्याख्या ४१५
महिमा, परिभाषा स्वरूप ।
२७. मन्त्रों की वैज्ञानिक रूपरेखा ४३०
परिभाषा, मन्त्रों द्वारा प्राण विजय, विभिन्न शक्तियों का विकास, इतिहास का साक्षी, एकविदुषी द्वारा मन्त्र शक्ति के चमत्कार, मन्त्रशक्ति का वैज्ञानिक रहस्य, मन्त्र का आविर्भाव, शब्द-शक्ति का चमत्कार, ध्वनि तरंगों में परीक्षण, स्वर-लहरों की अद्भुत प्रक्रिया, योगिक ग्रन्थियों का जागरण, मन्त्र सिद्धि में सफलता के साधन ।
२८. वीजाक्षरों की महान शक्तियाँ ४५५
२९. जप-विज्ञान ५५६
महत्व, लाभ, अर्थ, प्रकार, नित्य-जप, नैमित्तक-जप, काम्य-जप, निषिद्ध-जप, प्रायश्चित-जप, अचल-जप, चल-जप, वाचिक जप, उपाँशु-जप, भ्रमर-जप, मानसिक-जप, अखण्ड-जप, अजपा-जप, प्रदक्षिण-जप, जप की सहयोगी प्रक्रियायें, शब्द, साधना का महत्व, वैज्ञानिक प्रक्रिया ।
३०. षट्कर्म साधना ४६०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तंत्र-महाविज्ञान

तन्त्र की तथाकथित घृणित साधनायें व उनकी वास्तविकता का स्पष्टीकरण

तन्त्र-शास्त्र भारत की एक प्राचीन और गूढ़ विद्या है। विद्वानों का मत है कि यह शारीरिक कर्तव्यों का पालन करते हुए आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रगति कर सकने का एक उत्तम साधन माना गया था। परन्तु थोड़े ही समय पश्चात् लोग इस शक्ति का दुरुपयोग करने लग गये, जिसके परिणाम स्वरूप यह विधि बदनाम हो गई। आजकल तान्त्रिक योग के दो नाम 'कौल' तथा 'वाम-मार्ग' सुनने में आते हैं और सर्व साधारण में इनके समम्बन्ध में यही विश्वास फैला हुआ है कि इनका मन्तव्य माँस मदिरा, मैथुन आदि के सेवन में लिप्त रहकर पतित जीवन बिताना है। इन लोगों काभुकतापूर्ण क्रियाओं में कितने ही सच्चे-झूठे किस्से भी सुनने में आते हैं।

भारतीय और दिदेशी दोनों प्रकार के विद्वानों ने तन्त्र और विशेष रूप से शाक्त धर्म की आलोचना की है कि वह अनाचार और व्यभिचार के साधन बन गये हैं और काम-शास्त्र की शिक्षा के अतिरिक्त इनमें कुछ नहीं है। उन्होंने यह भी इच्छा व्यक्त की कि जनसाधारण को कुमार्ग की ओर प्रवृत्त करने वाले इस साहित्य का लोप होना ही जनहित में है। विद्वान इसके अध्ययन से दूर रहे, जनता का भी इधर ध्यान कम गया। परिणाम स्वरूप इनका धीरे-धीरे लोप होता गया।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जनसाधारण में इसके व्यापक प्रचार के न होने का एक कारण यह भी था कि तन्त्रों के कुछ अंश समझने में इतने कठिन और गहन थे कि योग्य गुरु के बिना समझे नहीं जा सकते थे। अतः जनता का उनके प्रति अन्धकार में रहना स्वाभाविक ही था। तन्त्र-ज्ञान का अभाव ही भ्रम और शंकाओं का कारण बना। यदि तन्त्रों का श्रद्धापूर्ण और सम्पूर्ण अध्ययन किया जाता तो ऐसी धारणायें शायद न बन पाती। इस प्रकार इस शास्त्र की कैसी दुर्गति हुई, इस सम्बन्ध में एक अंग्रेज विद्वान हर्वर्ट वी. गैन्थर की पुस्तक 'युग नाधा' में लिखा है—

'There is hardly any other kind of litrature that has met with so much abuse particularly by those who never read or seriously studied a single line of it, or that has so much fascinated those who on the testimony of misinformed and uninformed people thought the Tantras to be most powerful and hence strictly gaurded means for the gratification of purly biological urges. Only very few people tried to form an opinion of the Tantras by their own."

"संसार में शायद ही ऐसा कोई अन्य साहित्य होगा जिसकी इतनी अधिक निन्दा की गई हो, और वह भी ऐसे लोगों द्वारा जिन्होंने न तो उसकी एक भी पंक्ति पढ़ी हो या उस पर गम्भीरता पूर्वक मनन किया हो। एक दूसरी श्रेणी उन लोगों की भी है, जो कुछ अनजाने अथवा भ्रामक ज्ञान के आधार पर बातें करने वाले लोगों की सम्मतियों पर विश्वास करके तन्त्र-शास्त्र के अनुरागी बन जाते हैं और उसकी काम वासना की पूर्ति का एक बड़ा शक्तिशाली उपाय मानने लगते हैं। वे समझते हैं कि इसी कारण इस शास्त्र की बातों को इतना अधिक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोपनीय रखा जाता है। बहुत ही थोड़े लोग ऐसे हैं जिन्होंने तन्त्रों के सम्बन्ध में स्वयं विचार करके इस विषय में निर्णय लिया हो।'

आगे चलकर लेखक ने कहा है कि "तन्त्र उन निर्बल विचार के व्यक्तियों के लिए भी निरर्थक है कि जो अपनी 'शुद्धता' के लिए ही सदैव चिन्तित रहते हैं, पर जिनमें यह समझ सकने की शक्ति नहीं होती कि वास्तविक जीवन कुछ और चीज है और काल्पनिक तथा परस्पर सिद्धाँतों से उसमें काम नहीं चल सकता। न तन्त्र उन लोगों के लिए किसी प्रकार उपयोगी हो समता है जो जिन्दगी को लज्जा और कुत्सा का विषय मानते हैं। वास्तव में तन्त्र का आशय समझने के लिए न तो उसे निन्दनीय मान लेना ठीक है और न उसकी प्रशंसा में अतिशयोक्ति पूर्ण और काल्पनिक बातें करना। इन्हीं के कारण सर्व साधारण में इस विषय में गलतफहमी और अश्रद्धा की भावना उत्पन्न होती है।"

अन्त में लेखक ने तन्त्र के सच्चे स्वरूप पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से लिखा है।

"The fact is that the Tantras, contain a very sound and healthy view of life. But just as it is impossible to understand the fuction of the kindney, for instance, without regarding its place in the whole of the living organism so also the Tantras can not be understood without taking into account the rich display of human life. Thus, the Tantras are not at all speculative, but pre-eminently practical and up to the actual problems of the life."

'वास्तविक तथ्य यह है कि तन्त्रों में जीवन सम्बन्धी बड़े गम्भीर और स्वस्थ विचारों का समावेश है। पर जिस प्रकार हम अपने शरीर में स्थित गुर्दे की उपयोगिता को तब तक नहीं समझ सकते जब

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तक कि जीवित शरीर की संचालन क्रिया में अन्य भागों के साथ उसके सम्बन्ध को न जान ले, उसी प्रकार समस्त मानव जीवन की महत्वपूर्ण क्रियाओं पर विचार किये बिना हम तन्त्र की वास्तविकता को नहीं समझ सकते। इस प्रकार तन्त्र काल्पनिक बातें नहीं हैं वरन् पूर्ण व्यवहारिक और जीवन की समस्याओं पर यथार्थता का दिग्दर्शन कराने वाले हैं।

स्वार्थपरता और मिलावट—

तन्त्र साहित्य तो निःसन्देह रूप से उत्कृष्ट है ही परन्तु ऐसा लगता है कि कुछ स्वार्थी साधकों ने अपने स्वार्थ के लिए इसमें कुछ वीभत्स साधनाओं का समावेश किया जिससे जन साधारण में उनके प्रति घृणा के बीज अंकुरित होने लगे। अपने विचारों के समर्थन में ऐसे, साहित्य का भी विकास किया गया, प्राचीन साहित्य में मिलावट की गई, ऐसे श्लोक रच डाले गये जो उनकी भ्रष्ट साधनाओं का समर्थन करते थे। 'कुलार्णव तन्त्र' में इन तथ्यों को स्वीकार किया गया है—

वहवा कौलिकं धर्मं मिथ्याज्ञानं विडम्बकाः।
स्वबुद्धय कल्पयन्तीस्थं पारम्पर्यंविर्वजता॥

"पारस्परिक ज्ञान से शून्य और मिथ्या ज्ञान का ढोंग रचने वालों ने कोल धर्म में अपनी बुद्धि की कल्पनायें भी प्रविष्ट कर दी हैं।'

(यमुनाचार्य का आगम प्रमाण्य काशी संस्करण' पृष्ठ—४)

अद्यत्वेऽपि हि दृश्यते केचिदागमिकच्छलात्।
अरागमिकमेवार्थं व्याचक्षाणाः विचक्षणाः॥

आजकल भी कुछ लोग शास्त्रज्ञ होने का ढोंक कर कुशलता पूर्वक शास्त्र विपरीत अर्थ करते दिखाई देते हैं।

पं० कन्हैयालाल मिश्र ने यौगिक तंत्र' की भूमिका में लिखा है—

'बहुत से धूर्तों ने इधर उधर का कूड़ा कर्कट एकत्र करके जाली तन्त्र भी प्रकाशित किये। यही कारण है कि आज अनेक जाली तन्त्र प्रचलित दिखाई देते हैं।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐसे साहित्य के तन्त्र में प्रवेश होने पर कुछ ऐसे प्रयोग और विधि विधान उपलब्ध होते हैं जो नैतिक दृष्टि से त्याज्य और निन्दनीय हैं। पंच-मकारों से उनका सम्बन्ध तो है ही। इनसे भी अधिक निषिद्ध वस्तुओं का उनमें उल्लेख है। छः प्रकार के सबको हानिकारक और नृशंस अभिचार प्रयोग का कौन समर्थन कर सकता है ? शव के प्रयोग को कौन उचित ठहरा सकता है ? स्त्री-पुरुष के रज वीर्य के प्रयोगों को कौन नैतिकता की सीमा में बाँध सकता है ?

सौन्दर्य लहरी के प्रसिद्ध टीकाकार लक्ष्मीधर ने श्लोक ४१के 'तथा घोरे मूले सत सदाययालास्यपरया' की टीका में लिखा है कि कौलों के दो मत होते हैं—पूर्व कौल और उत्तर कौल । पूर्व कौल में श्री चक्र' में स्थित योनि की पूजा का विधान है परन्तु उत्तर कौल सुन्दर युवती की प्रत्यक्ष योनि की पूजा करते हैं तथा पंचमकारों का प्रतीकरूप में न करके प्रत्यक्ष रूप में उपयोग करते हैं। उत्तर कौलों के इसी वामा चार से जनता में तांत्रिक विधानों के प्रति विक्षोभ की भावनाएँ उद्दीप्त हुई। उच्छिष्ट गणपति के उपासक वाममार्ग पर चलने वाले हैं। इनके आचार विचार भी उत्तर कोलों की तरह से जान पड़ते है। वे गणपति की अश्लील रूप से ही उपासना करते हैं। मदिरा और मदिराक्षी उनके पूजा विधान में विशेष रूप से सम्मलित है। बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा में भी व्यभिचार ने प्रवेश किया। इस सम्प्रदाय में मन्दिरमें होने वाली दीक्षा में अन्य वस्तुओं के साथ मदिरा की सुगन्ध का भी विधान था। तंत्र की दीक्षा प्राप्त करने के लिए शिष्य को मुद्रा का प्रयोग करना पड़ता था।

वहाँ पर मुद्रा का अभिप्राय नवयुवती से लिया जाता था। इनके यहाँ तप की उपेक्षा है, विषय भोगों के प्रति रुचि रखने की ओर संकेत हैं।

तनुतरुचितांकुरको विषयरसैर्यदि न सिच्यते शुद्धैः ।
गगनव्यापी फलदः कल्पतरुत्वं कथं लभते ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"यदि शुद्ध विषय रसों से शरीर रूपी वृक्ष को न सींचा जाय तो आकाश में विस्तीर्ण, फल देने वाले कल्पतरु के गुण को कैसे पाया जा सकता है।"

इस सम्बन्ध में श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, सम्पादक 'कल्याण' गोरखपुर ने लिखा है—

यद्यपि तन्त्र शास्त्र समस्त श्रेष्ठ साधना शास्त्रों में एक उत्तम शास्त्र है, उसमें अधिकाँश बातें सर्वथा अभिवन्दनीय और साधक को परमसिद्धि मोक्ष प्रदान करने वाली है, तथापि सुन्दर बगीचे में भी जिस प्रकार असावधानी से कुछ जहरीले पौधे उत्पन्न हो जाया करते है और फूलने-फलने भी लगते हैं, उसी प्रकार तन्त्र में भी बहुत सी अवांछनीय गन्दगी आ गयी है। यह विषयी, कामान्ध मनुष्यों और मांसाहारी मद्यलोलुप अनाचारियों की ही काली करतूत मालूम होती है, नहीं तो श्रीशिव और ऋषि प्रणीत मोक्ष प्रदायक पवित्र तन्त्रशास्त्र में ऐसी बातें कहाँ से और क्यों आतीं? जिस शास्त्र में अमुक-अमुक जाति की स्त्रियों का नाम ले लेकर व्यभिचार की आज्ञा दी गई हो और उसे धर्म तथा साधन बताया गया हो, जिस शास्त्र में पूजा की पद्धति में बहुत ही गन्दी वस्तुएं पूजा सामग्री के रूप में आवश्यक बताई गई हो, जिस शास्त्र के मानने वाले साधक, हजार स्त्रियों के साथ व्यभिचार को, अष्टोत्तरशत नर बालकों वलि को, अनुष्ठान की सिद्धि में कारण मानते हों वह शास्त्र तो सर्वत्र अशास्त्र और शास्त्र के नाम को कलंकित करने वाला ही है। व्यभिचार की आज्ञा देने वाले तन्त्रों के अवतरण 'शिव' ने पढ़े है और तन्त्र के नाम पर व्यभिचार और नरबलि करने वाले मनुष्यों की घृणित गाथायें विश्वस्त सूत्र से सुनी है। ऐसे महान तामसिक कार्यों को शास्त्र समस्त मानकर भलाई की इच्छा से इन्हें करना सर्वथा भ्रम है, भारी भूल है और ऐसी भूल में कोई पड़े हुए हों तो उन्हें तुरन्त ही इससे निकल जाना चाहिए।"

धर्म और अर्थ की आड़ में कुछ भ्रष्ट तान्त्रिकों ने मारण, मोहन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उच्चाटन, स्वस्थ व्यक्ति को रोगी बनाना, शत्रु पक्ष की खड़ी लहलहाती फसल को नष्ट कर देना ही धार्मिक कृत्य, भौतिक उन्नति व साधन की सफलता मान रखा है। यह सर्वथा तांत्रिक दर्शन और विचारधारा के विपरीत हैं। कुछ तन्त्रों में जादू के चमत्कारों का वर्णन किया गया है। इन्हें ही वह तन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय मानते हैं। यह तो तन्त्र विद्या का उपहास है। यदि यही तन्त्र का मुख्य विषय होता तो प्राचीन ऋषि इस ओर कभी प्रवृत्त न होते और विद्वान इतने विशाल साहित्य के निर्माण की ओर ध्यान न देते। तन्त्र का उद्देश्य जादू के चमत्कार दिखाकर जन साधारण को आकर्षित करना ही नहीं है। एक विद्वान के अनुसार तन्त्रों के दार्शनिक विचार उतने ही उद्दात्त तथा प्राञ्जल हैं जितने षट् दर्शनों के। उनकी साधन पद्धति उतनी ही पवित्र तथा उपादेय है जितनी वेदों की।"

पशु बलि का कलंक—

अन्य दोषों के साथ हिंसा ने भी तांत्रिक उपासना में प्रवेश किया। देवी के नाम पर हजारों पशुओं की हत्या की जाने लगी। मध्य युग में यह प्रवृति इतनी बढ़ी कि पशुओं के अतिरिक्त मनुष्यों तक की बलि दी जाने लगी। अब नरबलि की प्रथा तो नहीं है परन्तु पशुबलि अब भी यत्र तत्र होती है। यह वैदिक, यौगिक और तांणिकों सभी शास्त्रों की नीति के विरुद्ध है। इस पर विस्तृत रूप से विचार करना होगा।

हिन्दू धर्म का मूलभूत तत्वज्ञान इतना महान है कि उसके प्रत्येक सिद्धांत एवं विधान में विश्व-कल्याण की मानवता के चरम उत्थान की संभावनायें ही सन्निहित हैं। देवताओं और ऋषियों ने इस महान् धर्म का ढाँचा इतने उच्चकोटि के आदर्शों द्वारा विनिर्मित किया है कि उसके व्यवहार का परिणाम स्वर्गीय वातावरण का निर्माण ही हो सकता है। परन्तु दुःख की बात है कि पिछले अज्ञानान्धकार युग में उसमें जहाँ तहाँ अनैतिक और अहितकर मान्यताओं और रूढ़ियों का भी समावेश होने लगा है और आज को रूप हिन्दू धर्म का हमारे सामने है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसमें कोई चीजें वहुत खटकने वाली ही नहीं, उन भावनाओं के सर्वथा प्रतिकूल भी हैं जिनको लेकर ऋषियों ने इस महान धर्म की रचना की थी।

ऐसी विकृतियों में पशुवलि की सर्वोपरि कलंकी प्रथा कहा जा सकता है। मूक पशु पक्षियों का देवी-देवताओं के नाम पर कत्ल किया जाना उन देवताओं की महिमा को समाप्त करके सारे सभ्य समाज के सामने उन्हें घृणित, नीच, क्रूर एवं हत्यारा सिद्ध करता है। जिस देवता को प्रसन्न करने के लिए वलि चढ़ाई जाती है, वस्तुतः इन्हें असीम कष्ट और लज्जा इस कृत्य में होती है क्योंकि देवता शब्द ही दिव्य तत्व, दया, करुणा, दान, उदारता, सेवा, सहायता आदि सत्प्रत्तियों का द्योतक है, जिससे यह गुण न हो—उल्टे नन्ने-मुन्ने वेबस और बेकस प्राणियों का खून पीने की इच्छा हो, उन्हें देवताओं के महान् गौरव को तो असुर एवं पिशाच ही गिने जायेंगे। देवताओं के महान गौरव को नष्ट कर उन्हें दुनियाँ के सभ्य समाज के सन्मुख इस बुरे रूप में उपस्थित करना वस्तुतः उनके साथ दुश्मनी करना है। उन्हें कलंकित करने का प्रयत्न करने वाले के प्रति वे प्रसन्न होंगे, इसकी आशा कदापि नहीं की जा सकती। परिणाम स्वरूप जो लोग पशुवलि करते हैं, उनके उल्टे रोग, शोक, अज्ञान आदि क्लेश, कलह, दुष्टता, दुर्बुद्धि आदि अनेक दुखों की ही वृद्धि होती है। पशुबलि करने वाले लोगों में फलते फूलते कोई विरला ही देखा जाता है अन्यथा उन्हें निर्दोष जीवों की हत्या तथा देवता को कलंकित करने उनके क्रोध एवं शाप के फल स्वरूप नाना प्रकार के कष्ट ही मिलते हैं।

पशुबलि प्रथा से देवताओं का भारी अपयश होता है। हत्या का नृशंस पाप लगता है वलि कराने वालों को पाप का निश्चित परिणाम भुगतने के लिए इस लोक में नाना प्रकार के दुःखों एवम् परलोक में नारकीय यंत्रणाओं का भागी बनना पड़ता है। यह कुप्रथा निश्चित रूप से हिन्दू धर्म पर कलंक है। जिस धर्म का मूल ही दया और अहिंसा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो, उनमें इस प्रकार के कुकृत्यों को किसी प्रकार धर्मानुकूल नहीं कहा जा सकता है।

धर्म का नाम पर आधार्मिक कृत्यों का प्रचलन प्रत्येक धर्म-प्रेमी को एक मासिक पीड़ा पहुँचाने वाली बात है। कोई खाने की दृष्टि से मांस खावे तो उसकी व्यक्तिगत स्वार्थपरता ही मानी जायेगी, इससे सारा समाज या सारा घर कलंकित नहीं होता पर पशुवलि सरीखे कृत्यों से तो हमारे अहिंसा, सत्य, प्रेम और दयामूलक धर्म की मूल मान्यताओं पर ही कुठाराघात होता है, इसे देखकर सच्चे धर्म प्रेमी आदि चिन्तित, खिन्न और विह्वल हों तो यह सर्वथा उचित ही है।

अनेक देव मन्दिरों में पशुबलि होते देखकर ऐसे किसी भी विचार शील व्यक्ति के मन पर भारी आघात लगता है, जिनसे हिन्दू धर्म के महान स्वरूप को समझने का प्रयत्न किया हो। हिन्दू धर्म दया, प्रेम, भ्रातृत्व, मानवता और प्राणिमात्र के प्रति स्नेह सद्व्यवहार सिखाने वाला धर्म है। इसके सभी देवता दयालु, सहृदय, उदार, करुणा और सहायता करने वाले हैं। फिर वे पशु पक्षियों का खून पीकर प्रसन्न हों, यह कैसे सम्भव है ? धर्म शास्त्रों को जितना ही गम्भीर दृष्टि से देखा जाय, उतना ही यह निश्चय हो जाता है कि हमारा धार्मिक तत्व-ज्ञान और आदर्श कभी भी इस बात से सहमत नहीं हो सकता है कि कोई देवता पशु पक्षियों का मास खाने या खून पीने का आकांक्षा करता हो या इस कार्य में उसे कुछ प्रसन्नता हो सकती है।

बहुधा देवी काली के मन्दिरों में भैरव आदि के मठों में एवं ग्राम देवता के चबूतरे पर बकरे भैंसों की मुर्गे कबूतरों की बलि चढ़ाई जाती हैं। काली के तो अनेक मन्दिर अभी भी ऐसे हैं जहाँ हर साल सहस्रों पशु पक्षियों का गला काट डाल जाता है। बंगाल, राजस्थान और हिमालय पहाड़ों प्रदेश इस कार्य में अग्रणी हैं। ये तो आये दिन यह हत्या कर्म होते ही रहते हैं पर नव रात्रि के दिनों में तो नृशंसता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। कई बड़े-बड़े मन्दिरों में उन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिनों जो बूचड़ खाने जैसा घृणित दृश्य उपस्थित होता है, उसे देखकर किसी भी सहृदय और धार्मिक भावना वाले व्यक्ति की अन्तरात्मा काँप उठती है। उस दृश्य को देखकर कोई विचारवान व्यक्ति यह स्वीकार नहीं रुक सकता है कि यहाँ कोई देव मन्दिर है अथवा यहाँ कोई धर्म कार्य किया जा रहा है।

हमारे धर्म ग्रन्थों में इस कुकर्म का कहीं समर्थन नहीं है, कहीं-कहीं अलंकारिक रूप में ऐसा वर्णन अवश्य मिलताहै कि अपने आंतरिक दोष दुर्गुणों को पशु मानकर उनका परित्याग, वलिदान देव-सान्निध्य में किया जाय। लगता है कि स्वार्थी लोगों ने उस वाहित्य पहेली की अलंकारिक भाषा को तोड़-मरोड़ कर अपनी जिह्वा-लोलुपता की पूर्ति का साधन बनाया है। माँसाहार मद्यपान और व्यभिचार यह तीनों पाप हमारे यहाँ बहुत बड़े माने गये है। लोग अपनी आसुरी वृत्तियों से प्रेरित होकर इन्हें करते हैं और अन्तरात्मा भी धिक्कारती हैं। इन दोनों ही विरोधों से बचने के लिए मांसाहार को पशुबलि के बहाने उचित ठहराने का किन्हीं ने निन्दनीय प्रयास किया होगा। खेद है कि उन्हें सफलता तो मिली और पिछले दिनों वह पाप प्रचण्ड रूप से पल्लवित हुआ। इस विचारशीलता के युग में वह घटाया तो जा रहा पर मिटता अब भी नहीं है।

साधारणतः भोले-भाले अज्ञानग्रस्त लोग ऐसा सोचते हैं कि काली माई हमारे द्वारा पशु पक्षियों का माँस खिलाने से प्रसन्न होगी और हमारी मनोकामनायें पूरी करेंगी। बाल-बच्चे पैदा नहीं होते होगे तो बच्चे पैदा कर देगी. मुकदमा जिता देगी, धन देगी, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करावेगी, हमारे हर कार्य में सफलता देगी। वे एक रिश्वत के रूप में देवी को मद्य, मांस खिला-पिला कर प्रसन्न करना चाहते हैं, उससे मनमाने वरदान प्राप्त करना चाहतें हैं, यह मान्यता सर्वथा असम्भव एवं भ्रमपूर्ण है। वास्तव में बात बिल्कुल उल्टी है। जो कुकर्मसेहत्या जैसे महान पाप से प्रसन्न हो' वह देवता नहीं माने जा सकते। देवता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोग कुकर्म करने वाले से रुष्ट रहते हैं और उसे कोई वरदान देना लाभ पहुँचाना तो दूर उल्टे हानि एवं दण्ड की व्यवस्था करते हैं।

देवी भगवान की दिव्य शक्ति का नाम है। यों दीनदयालु, दया-निधान, करुणासिन्धु भगवान अपने पुत्रों को, संसार के सभी प्राणियों को अपार प्रेम करते हैं पर माता भगवती की करुणा एवं वात्सल्यता का तो कहना ही क्या है? माता का हृदय पिता की अपेक्षा अनेक गुना अधिक करुणापूर्ण होता है। जब मनुष्य योनि की साधारण स्त्रियाँ अपने बच्चों को प्राण के समान प्यार करती हैं उन्हें तनिक सा कष्ट होने पर व्याकुल हो जाती हैं तो फिर उस दिव्य माता का ठिकाना ही क्या है जिसके अन्तःकरण में निरन्तर स्नेह और वात्सल्य की धारा बहती रहती है। वे मनुष्यों की ही नहीं पशु-पक्षियों की माता है।

उसी जगदम्बा माता भवानी के पवित्र नाम पर जब पशुबलि होती है तो देवत्व की आत्मा काँपने लगती है। बेचारे निरीह बकरे भैंसे माता के आगे निर्दयतापूर्वक कत्ल किये जाते हैं और इनका रक्त मांस माता को खाने के लिए उपस्थित किया जाता है, यह कितना नृशंसकार्य है। इससे स्वर्ग लोक निवासिनी की तो क्या इस लोक मृत्युलोक की साधारण नारी की भी अन्तरात्मा चीत्कार करने लगेगी। यदि कोई दुष्ट मनुष्य किसी माता की गोदी में उसका बच्चा छीनकर उनकी आँखों के ही सामने कत्ल करे और फिर उसके कलेजे के टुकड़े का खून माँस उस माता के मुँह में ठूसे तो उसे कितनी मार्मिक व्यथा होगी, इसकी कल्पना कोई बाल बच्चेदार सहृदय व्यक्ति ही कर सकते हैं। जिस दुष्ट व्यक्ति ने ऐसा नृशंस कार्य किया है, क्या उससे वह माता कभी प्रसन्न होगी। उपहार का वरदान देगी? निश्चय ही ऐसा नहीं हो सकता। वह कुकर्मी को शाप और दण्ड देने की बात ही सोच सकती है।

तन्त्र के भेद—

तन्त्रों के दो भेद माने जाते हैं—वैदिक और अवैदिक, वेदानुकूल और वेद बाह्य प्रमाणिक अथवा अप्रमाणिक। कुल्कूक भट्ट ने कहा है-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"श्रुतिश्च द्विविधा-वैदिकी तांत्रिकी च"

अर्थात्—श्रुति के भी दो भेद होते हैं–एक वैदिकी श्रुति है दूसरी तांत्रिक श्रुति होती है।

इससे उन्होंने वेदों के अनुकूल सिद्धातों का प्रतिपादन करने वाले तन्त्रों की ओर ध्यान आकृष्ट है और उन्हें वेद के अनुकूल स्त्रीकार किया है। पाञ्चरात्र और वैखानस जैसे तन्त्र और पशुपति, शैव सिद्धांत आदि जैसे शवतन्त्र वेद के अनुकूल माने जाते हैं, फिर भी इनमें कुछ अवैदिक विचार होने के कारण अवैदिक कहा जाता है। शक्ति तंत्रों पर तो विशेष प्रकार से अवैदिक होने के आक्षेप लगाये जाते हैं। क्योंसात प्रकार के अचारों में से एक वामाचार ही ऐसा है जो उन्हें अवैदिक ठहराता है। जैसे शक्ति तन्त्रों के गम्भीर अध्ययन के पश्चात् प्रतीत होता है कि उसमें बहुत से वेदानुकूल तन्त्र उपलब्ध है, परन्तु भ्रष्ट-आचार का निर्देशन करने वाले तन्त्रों की भी कमी नहीं है।

शाक्त मत में दो प्रकार के आचार होते हैं—

१—कौलिक और समयी। कौलिक पंचमकारों का प्रत्यक्ष प्रयोग करते हैं, परन्तु समयी उनके प्रतीकों की उपासना करते हैं और प्रत्यक्ष आराधना को शास्त्र विरुद्ध मानते हैं।

बाहरी प्रभाव—

जब वेदानुकूल मन्त्रों का बाहुल्य है तो इस अवैदिक और घृणित उपासना पद्धति का प्रचलन कैसे हो गया, इसके कारणों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि तन्त्र शास्त्र पर विदेशी अनार्य साहित्य का कुप्रभाव ही पड़ता हैं। कौल सम्प्रदायिक प्रतिष्ठित शक्ति पीठ कामख्या (आसाम) में स्थित हैं और वहीं से इसका प्रचार प्रसार हुआ है। भारत का यह पूर्वी प्रान्त तिब्बत की सीमाओं से लगा हुआ है। इतिहास से इनकी पुष्टि होती है कि तिब्बत में 'बोने' नाम का एक सम्प्रदाय थाजोकि कोलों की तरह पंचमकारों के प्रत्यक्ष प्रयोग में विश्वास करता था। दशम शताब्दी के लगभग उनकी इस उपासना पद्धति का प्रचार बंगाल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और आसाम के सीमान्त प्रान्तों में हुआ। रुद्रयामल तन्त्र में यहाँ तक लिखा हुआ मिलता है कि महर्षि वसिष्ठ महाचीन(भोट देश-तिब्बत)गये थे और वहाँ से इस उपासना पद्धति की शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने भारत में इसका प्रचार किया। विष्णुयामल (१-२ पटल) गान्धर्व तन्त्र रुद्रयामल (१७ पटल) तारा तन्त्र (१-२) से इस तथ्य की पुष्टि होती है, परन्तु ऐसा लगता है कि उच्चकोटि के प्रसिद्ध ऋषि का सहारा लेकर अपने मत का समर्थन करने का दुष्प्रयत्न किया गया है।

सभी दोषी नहीं—

कौल सम्प्रदाय के वामाचार के द्वारा सारे तन्त्रों और व अन्य तांत्रिक सम्प्रदायों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। दोष हर जाति और सम्प्रदाय में पनप सकते हैं और पनपे हैं। किन्हीं गिने चुने व्यक्तियों के दोषी होने के कारण सारे सम्प्रदायों और विशेषकर के उनके साहित्य पर आक्षेप करना उचित नहीं है। द्रोही व्यक्तियों का सुधार किया जा सकता है। यदि किसी कारण इन सिद्धांतों में स्वार्थी व्यक्तियों ने मिलावट कर दी तो उनका परिष्कार भी किया जा सकता है।

शाक्त मत में ही कौलों की इस पंचमकारों की प्रत्यक्ष प्रयोग विधि से दूर रहने के कड़े आदेश दिये गये। अनेकों तन्त्रों में कौल उपासना और कौल सिद्धांतों की आलोचना की गई है। उन तन्त्रों में जीवन निर्माण के उत्तम सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है जो सुमार्ग की ओर अग्रसर करते हैं। परानन्द सम्प्रदाय में पशुबलि को त्याज्य माना गया है।

परानन्दस्याष्ट विधिर्हिस नाभावान्मध्यमं परानन्दी वर्जयेत्।

—परमानन्द सूत्र (गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज) पृष्ठ १३

अर्थात् "परानन्द का अष्ट विधि हिंसनाभावामपरानन्द मध्यम को वर्जित कर देता है।"

इसके अतिरिक्त समय सम्प्रदाय के सिद्धांत भी आदर्श वादिता की ओर ले जाते हैं। उनके साहित्य में मानवता का प्रतिपादन किया गयाहै

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिकार—

अधिकार भी सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकार के होते हैं। तामसिक साधक ही वामाचार का अधिकारी है। कतिपय विद्वानों ने इसे तन्त्र की विशेषता ही बतलाया है। श्री स्वामी दयानन्द ने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखा है "कलिगतके प्रभाव से जिन साधकों की वासना निम्न श्रेणी की ओर मन्द है वे जो साधक भोगलोलुप हैं, उनके अर्थ उच्च प्रकार का आचार और उच्च प्रकार की शूद्र सिद्धियाँ उनको लोभ दिखाकर उपासना योग में अग्रसर करने के लिए सर्वदा हितकारी हैं, फलतः निरपेक्ष विचारधारा द्वारा यह निर्णय हुआ कि तन्त्र-शास्त्र में सर्वलोक हितकर अनेक उपयोगी और आध्यात्मिक उन्नतिकारी विषयों के साथ यदि ऐसे निम्न कोटि के विषय भी है तो उससे कुछ दूषण नहीं हैं, प्रत्युत उनके द्वारा तन्त्र शास्त्रों को सर्वजीव हितकारिता और पूर्णतः होती हैं।"

फिर भी इसके अधिकार को सीमित रखा गया है। कौल सम्प्रदाय में भी हर किसी को इसकी आज्ञा नहीं दी गई। पूर्वकौल भी प्रत्यक्ष उपासना न करके प्रतीक उपासना ही करते हैं—

श्री चक्रस्थितनवयोनिमध्यगतां योनि भूर्जहम वस्त्रपीठादौ लिखतां पूर्वकौलाः पूजयन्ति। तरुण्याः प्रत्यक्षयोनिमुत्तरकौलाः पूजयन्ति।

(आनन्द लहरी की लक्ष्मीधर टीका पृष्ठ १३)

अर्थात् "श्री चक्र में स्थित नवीन योनि के मध्य में रहने वाली योनि को भूर्ज-हेम-वस्त्र और पीठ आदि में लिखित को पूर्व कौल पूजते हैं। तरुणी स्त्री की प्रत्यक्ष योनि की उत्तर कौल पूजा करते हैं।

उच्चकोटि के साधकों और कौलों के अतिरिक्त अन्य उपासकों के लिए तो प्रतीक पूजा के स्पष्ट संकेत है।

क्षत्रियों के मद्य पान के अधिकार को सीमित रखा गया है। वह

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसका स्वयं प्रयोग नही कर सकते । देवता को समर्पित करने का उन्हें अधिकार हैं ।

तते क्षत्रियादीनां मुखस्य दानेऽधिकारः नपाने ।

अर्थात्—इससे क्षत्रीय आदि का मुख्य के दान कराने का अधिकार हैं, पान में नहीं है ।

कतिपय विद्वानों का मत है कि पंच-मकारों की प्रत्यक्ष प्रयोग विधि उन्हीं साधकों के लिए विहित है जो आत्म-विकास की उच्च स्थिति तक पहुँच चुके हं, जिनका संयम कड़ी परीक्षामें भी असमय नहीं हो सकता जिनका मन इतना पवित्र और सुदृढ़ हो गया कि क्षुद्र प्रवृत्तियों की उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता हो। कौल-शास्त्रों में भी ऐसे अधिकारी का वर्णन है । एक दृष्टि से साधकों की यह परीक्षा होती है । जो साधक साधन पथ की उच्च सीढ़ियों को पार करते हुए आगे बढ़ रहे हैं उनकी व्यवहारिक परीक्षा भी अवश्य होती है । कौलों के अनुसार जब वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं तो उन्हें वीर की पदवी दी जाती हैं । सच्चे कौल के लक्षणों में भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि इन घृणित वस्तुओं के प्रयोग करने पर भी विकार रहित रहे ।

अहो पीतं महद्द्रव्यं मोहयेन्त्रिदशानपि ।
तन्मद्य कौलिकः पीत्वा विकारं नानुयात्तु यः ।
मद्ध्यानैकपरो भूयात् स सक्तः स च कौलिकः ।।

—परानन्दमत (गायकवाड़ ओरियन्यटल सीरीज पृष्ठ १६)

अर्थात्-इसीलिए पीया हुआ महान् द्रव्य देवों को भी मोहित कर देता है अर्थात् उन्हें भी मोह पैदा हो जाता है । उस मद्य को कौलिक पीकर जो विकारों को प्राप्त नहीं होता है और मेरे ध्यान में ही परम परायण रहता है, वही कौलिक है ।

प्रतीक—

तन्त्रों में प्रतीक रूप में भी त्याज्य वस्तुओं के प्रयोग का आदेश है । यौगिक क्रियाओं के रूप से उनका स्पष्टीकरण किया गया है । कुछ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदाहरण प्रस्तुत हैं—

गङ्गायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा ।
द्वौ मत्स्यो भक्षयेद्यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः ।।

गङ्गा और यमुना के मध्य में दो मत्स्य सदा विचरण करते हैं । जो उन दोनों मत्स्यों को भक्षण कर जाता है, वही मत्स्य साधक होता है ।

माराब्दाद् रसना येथा तदंशान् रसना प्रियान् ।
सदा यो भक्षयेदेवि स एव मांस साधकः ।।

(आगम सार)

मराब्द से रसना को जानना चाहिए उनके अंशों को जो रसना के प्रिय होते हैं जो सदा भक्षण किया करता है, हे देवि ! वह ही मांस साधक होता है ।'

कुलकुण्डलिनीशक्तिर्देहिना देह धारिणी ।
तया शिवस्य संयोगी मैथुनं परिकीर्तितम् ।।

अर्थात् "कुल कुण्डलिनी शक्ति जी देहधारियों के देह का धारण करने वाली है, उसके साथ शिव का संयोग मैथुन में बतलाया गया हैं ।'

यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम् ।
तस्मिन प्रमदनं ज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्तितम् ।।

(विजयतन्त्र)

अर्थात् "जो परम ब्रह्म निर्विकार और निरंजन बताया गया है, उसमें प्रकट रूप से मदन स्वरूप ज्ञान ही मद्य कहा गया है ।'

निन्दा—

कौलों में माँस, मद्य आदि के प्रयोग का विधान है परन्तु नियंत्रित रूप में । कुलार्णव तन्त्र कोलों को प्रमुख तन्त्र है । उसी में ऐसे साधक की निन्दा की गई है कि यदि ऐसा भ्रष्ट आहार व्यवहार ही धर्म का अङ्ग माना जाता हो तो इन त्याज्य वस्तुओं को ग्रहण करने वाले ही सबसे बड़े धार्मिक कहलाये ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मद्यपानेन मनुजो यदि सिद्धि लभेत वै।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धि गच्छन्तु पामराः॥
मांस भक्षण मात्रेण यदि पुण्याः गतिर्भवेत्।
लोके मांसाशितः सर्वे पुण्यभाजो भवन्ति हि॥
(कुलार्ण व २।११७-८)

अर्थात् "मद्य पान से ही यदि मनुष्य सिद्धि की प्राप्ति कर लेवे तो सभी पामर मद्य के पान में रति रखने वाले सिद्धि को प्राप्त हो जावें। माँस के भक्षण मात्र से ही यदि पुण्य गति हो जाया करे तो लोक में सभी लोग मांस खाने वाले पुण्य-भागी हो जावें।

भय प्रदर्शन—

कौल पंचमकारों को आवश्यक मानते हैं, परन्तु वह इसे गिने-चुने व्यक्तियों के लिए ग्राह्य समझते हैं। जन साधारण को अत्यन्त भय दिखाया गया है कि यह मार्ग अत्यन्त कठिन है, इस पर चलने से पहले गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेना चाहिए। कलार्णव तन्त्र २।१२२ में कहा है—

कृपाणेधारागमनाद् व्याघ्रकण्ठावलम्बनात्।
भुजङ्गधारणान्नूनमशक्यं कुलवर्तनम्॥

"कृपाण की धार के ऊपर गमन करने से तथा व्याघ्र के कण्ठ के आलम्बन करने से एवं भुजंगों के धारण करने से भी निश्चय ही कुल वर्तन अशक्य है।"

नरक में जाने का भय भी दिखाया गया है—

अर्थात् वा कामते वापि सौख्यादपि च यो नरः
लिङ्गयोनिरतो मन्त्री गौरवे नरकं व्रजेत॥

अर्थात् "अर्थ से काम से अथवा सौख्या से भी जो मनुष्य लिंग-योनि में रत रहता है, वह मन्त्री रौरव नरक में जाता है।"

दण्ड विधान—

जो व्यक्ति साधना के लिए नहीं वरन् इन्द्रिय-तृप्ति के लिए ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, तन्त्रों में इनके लिए दण्ड का भी विधान है—

सुरापाने कामकृते ज्वलन्ती तां विनिक्षिपेत् ।
मुखे तया विनिर्दग्धे ततःशुद्धिमवाप्नुयात् ।।

(कुलार्णव २। २)

अर्थात् "इच्छापूर्वक सुरा के पान करने पर जलती हुई अर्थात् अत्यन्त गर्म उस सुरा को मुख में डाल देवे। उससे वह विशेष रूप से निर्दग्ध हो जावे तो फिर ऐसा होने पर सुरापान करने वाला शुद्धि को प्राप्त होता है।"

उच्च उद्देश्य—

तंत्र-शास्त्रों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि उनके उद्देश्य विकृत नहीं है। कार्यक्रम से जिस तरह अन्य शास्त्रों और जाति सम्प्रदायों में दोष उत्पन्न हो गये थे, उसी तरह तन्त्रों में स्वार्थी व्यक्तियों ने मिलावट करके अपने मतों का समर्थन करने के लिए ऐसे सिद्धान्तों का प्रचलन किया, जिन्हें घृणित समझा जाता है। तन्त्र का उद्देश्य साधक को निम्नगामी प्रवृत्तियों में उलझाना नहीं है वरन् उसे एक ऐसा सुव्यवस्थित मार्ग सुझाना है जिससे वह जीवन में कुछ आदर्श कार्य कर सके।

उदाहरणार्थ 'मेरु तन्त्र' में वाम-मार्ग का परिचय देते हुए कहा है—

पर द्रव्येयु वोऽन्धश्च परस्त्रीयु नपुंसकः ।
परापवादे यो मूकः सर्वदा विजितेन्द्रियः ।।
यस्यैव ब्राह्मणस्यात्र वामे स्यादधिकारिता ।

अर्थात्—"जो पर द्रव्य के लिए अन्धा है, पर-स्त्री के लिए नपुंसक है, जो पराई-निन्दा के लिए गूँगा है और जो इन्द्रियों को सदा वश में रखता है, ऐसा ब्राह्मण वाम-मार्ग का अधिकारी होता।"

इसी प्रकार "कौल" शब्द की व्याख्या करते हुए तन्त्र-शास्त्र में बताया हैं—

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते ।
कुलमाकुलस्य सम्बधं कौलमित्यभिधीयते ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात्—कुल शब्द शक्ति का वाचक है और 'अकुल' शब्द शिव का बोधक है। कुल और अकुल के सम्बन्ध को कौल कहते हैं।"

कोल शब्द का अर्थ ध्यान देने योग्य है। कौल उसे कहते हैं जो शक्ति को शिव के साथ मिलाने की योग्यता रखता है। 'कुल' का अर्थ शक्ति अथवा कुण्डलिनी है और 'अकुल' का अभिप्राय शिव से है। जो साधक योगिक साधनाओं से सहस्रार में निवास करने वाले शिव के साथ कुण्डलिनी शक्ति को मिलाने की सामर्थ्य रखता है, उसी को कौल कहते हैं। इससे कौल उच्चकोटि के योग साधक सिद्ध होते हैं। इसके सम्बन्ध में जो भ्रांत धारणायें लोक में व्याप्त हैं, उसका कारण कौलाचरण के सम्बन्ध में पूरी जानकारी का अभाव ही है।

शैववैष्णवसौर्रकिगाणपत्यादिकैं क्रमात्।
मन्त्रंविशुद्धाचित्तस्य कौलज्ञानं प्रकाशते ॥

अर्थात्—शैव, वैष्णव, शक्ति सौर, गाणपत्य आदि सिद्धान्तों के मन्त्रों द्वारा चित्त की शुद्धि हो लेने के पश्चात कौल ज्ञान (ब्रह्म ज्ञान) की प्राप्ति होती है।"

यह सत्य है कि जिस प्रकार प्रत्येक उच्च और उपयोगी सिद्धान्त में अथवा संप्रदाय में कालान्तर में अनेक विकार और दोष उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार तन्त्र-मार्ग का भी अधिकांश में रूपान्तर हो गया है और साधारण लोगों ने उसे मारण मोहन-वशीकरण जैसे निकृष्ट, दूषित कार्यों का ही साधन समझ लिया हैं। पर मूल रूप में यही उसका उद्देश्य ज्ञान पड़ता है कि जो लोग घर गृहस्थी को त्याग करके तप और वैराग्य द्वारा आत्म साक्षात्कार करने में असमर्थ हैं वे अपने साँसारिक जीवन का निर्वांह करते हुए भी आध्यामिक दृष्टि से उन्नति कर सकें।

इस बात को तन्त्र ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से कहा भी गया है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो।
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीसुन्दरी सेवन तत्पराणां ।
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

अर्थात्—'जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं है और जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं है। किन्तु जो मनुष्य भगवती त्रिपुरसुन्दरी की सेवा में संलग्न हैं, उनको भोग और मोक्ष दोनों ही सहज साध्य हैं।"

तन्त्र-योग में भी यद्यपि अन्य योग-मार्गों की तरह आठों अंगों का समावेश पाया जाता है, पर उनका मूल उद्देश्य कुण्डलिही शक्ति को जागृत और क्रियाशील करके आत्माशक्ति को प्राप्त करना है। इसका अभ्यास करने में आसन और प्राणायाम की आवश्यकता पड़ती है और ध्यान की शक्ति का भी प्रयोग आवश्यक होता है। फिर ब्राह्म और आन्तर शुद्धि, इन्द्रिय संयम, प्राणिधान, ब्रह्मचर्य, ईश्वर आदि यमनियम के साधन तो प्रत्येक आत्म विकास के मार्ग में करने ही पड़ते हैं।

'सम्यक्त' वाले बाह्य उपासना की उपेक्षा ही करते हैं और ध्यान व आत्मसाक्षात्कार पर ही विशेषवल देते हैं—

समियनां मन्त्रस्य पुरश्चरण नास्ति। जपो नास्ति: बाह्यहोमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव। हृत्कमल-मेव सर्वयावदनुष्ठेयम्।

(आनन्द लहरी पर लक्ष्मीधर टीका मैसूर संस्करण पृष्ठ १)

"मन्त्र युक्त-धर्म वालों का पुरश्चरण नहीं है। जप नहीं होता है बाह्य होम भी नहीं है। ब्राह्म पूजा की विधियाँ नहीं है। हृत्कमल ही सबका अनुष्ठान करे। अर्थात् हृदय में ही सब करना चाहिए।"

एक तन्त्र लेखक का भी यही कहना है कि "श्रद्धा और विवेक के साथ तन्त्र शास्त्र क अध्ययन किया जाए तो यह पता चलेगा कि तन्त्र और शास्त्र धर्म का ध्येय जीवात्मा की परमात्मा के साथ—व्यष्टि की समष्टि के साथ अभेद सिद्धि ही है और तान्त्रिक उपासना का भी यदि आलोचनात्मक अध्ययन किया जाय तो यह अवगत होगा कि इसके भिन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भिन्न साधनों की सृष्टि भी इसी उद्देश्य को क्रमशः सिद्ध करने के लिये, हुई है।"

अतः कुछ विद्वानों की यह धारणा कि तन्त्रों ने व्यभिचार को बढ़ावा दिया है, पूर्णतः सत्य नहीं है। इनके उद्देश्य उच्च हैं जो गन्दगी इसमें आ गई हैं, यदि उसे दूर कर दिया जाय तो यह उच्चकोटि के साधनात्मक शास्त्र के रूप में प्रतीत होंगे, इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है।

—o—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र की असाधारण महत्ता और उद्देश्य

शास्त्रों में तन्त्र की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

कृते श्रुत्युक्त आचारस्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः ।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्मतः ॥

अर्थात् "सतसुग में श्रुति में कथित आचार का, त्रेतायुग में स्मृति प्रतिपादित आचार माना तथा किया जाता था, द्वापर युग पुराणों में वर्णित आचार की ही मान्यता थी और कलियुग में आगम सम्मत तंत्रों का आचार प्रधान है।"

महा निर्वाण तन्त्र में शिव कहते हैं:—

कल्मिषदीनामां द्विजातीनां सुरेश्वरि ।
मेध्यामेध्यविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा ॥
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥
विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये ।
श्रुति स्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे ।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान्यजेत्सुधी ॥

अर्थात् 'हे सुरेश्वरि ! कलि के दोष से दीन हुए द्विजों को पवित्र अपवित्रता का विचार नहीं रहेगा, फिर श्रोत कार्यों के सम्पादन से वह कैसे सफलता प्राप्त कर सकेंगे ? तब संहिताओं और स्मृतियों के संयोग से भी अभीष्ट सिद्धि न हो सकेगी। हे प्रिये ! मैं सत्य और पुनः पुनः सत्य कहता हूँ कि कलिकाल में तन्त्र-मार्ग को छोड़कर दूसरी गति नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। हे शिवे ! श्रुति, स्मृति और पुराणों के द्वारा मैंने घोषणा की है कि कलियुग में उपासक आगम विधान निर्देशित देव-पूजन करेंगे।"

'योगिनी तन्त्र' के अनुसार—

निर्जीवाः श्रौतवातीयं विषयहीनौरगा इव।
सत्यादौ सफला आसन्कलौ ते मृतका इव॥
पांचालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रियसमन्विताः।
अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः॥
अन्यमन्त्रैः कृतं कर्म वन्ध्यास्त्रीसंगमो यथा।
न तत्र फलसिद्धिः स्याच्छ्रम एव हि केवलम्॥
कलावन्य दितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः।
तृषितो जन्हि वीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः॥
कलौ तन्त्रोदिता मंत्राः सिद्धास्तर्ण फलप्रदाः।
शस्ताः कर्मसु सर्वेसु जपयज्ञक्रियादिषु॥

अर्थात् 'विष रहित साँप की तरह अब वेद-मन्त्र निर्जीव हो गये हैं। सत्यादि युगों में यही मन्त्र सफलीभूत होते थे अब वह मृग प्रायः हो गये हैं। कलियुग में अन्य मंत्रों की वैसी ही स्थिति है जैसे कि भीत पर लिखी हुई पुतलियाँ इन्द्रियों से संयुक्त होने पर भी अपने कार्य में अयोग्य रहती हैं। जैसे वन्ध्या स्त्री के सहयोग से कोई सन्तान नहीं होती वैसे ही अन्य शास्त्रों के विधान अनुसार जो साधक सिद्धि प्राप्त करना चाहता है, वह ऐसा ही है जैसे प्यासा गंगा तट पर कुआँ खोदे। कलियुग में तो तन्त्रोक्त मंत्र ही शीघ्र फल दाता है। जप इत्यादि कर्मों में यही मंत्र उत्तम माने गये है।"

कलौवागममुल्लङ्घय योऽन्यमार्गे प्रवर्त्तते।
न तस्य गतिरस्न्थोडति सत्यं न संशयः॥

अर्थात् 'मैं सत्य-सत्य निःसन्देह रूप से घोषित करता हूँ कि कलियुग में तन्त्रों का उल्लंघन करके जो अन्य मार्गों को अपनाता है, उसकी सद्गति सम्भव नहीं।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मत्स्य में तन्त्र-महिमा का इस प्रकार वर्णत है—

विष्णुवरिष्टो देवानां हृदानामुदधिस्तथा ।
नदीनांच यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालयः ।।
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम् ।
सर्वकामप्रदं पुण्यां तन्त्र वै वेदसम्नतम् ।।

अर्थात् "जिस तरह देवताओं में विष्णु, हृद-समूह में समुद्र नदियों में गङ्गा, पर्वतों में हिमालय को श्रेष्ठ माना गया है, उसी तरह समस्त शास्त्रों में तन्त्र सर्वोत्तम माना गया है ।"

महानिर्वाण तन्त्र में एक और स्थान पर कहा है—

तप स्वाध्यायहीनानां नृणामल्पायुषामपि ।
क्लेशप्रयासाशक्तनां कुतो दे हपरिश्रमः ।।
गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा आगमभोक्ताः कलौशिवे ।
नान्यमार्गें क्रियासिद्धि कदापिगृह्मेधिनाम् ।।

अर्थात् 'कलियुग में लोग तप, स्वाध्याय से हीन और अल्पायु के होंगे । अतः अशक्तता के कारण वे क्लेशदायक और परिश्रम वाले कार्यों के सम्पादन में अयोग्य रहेंगे । हे शिवे ! कलि गृहस्थ केवल आगम योग का ही अनुसरण करेंगे । अन्य मार्गों का सहारा लेने पर क्रियानुष्ठान करने से वह कभी भी सिद्धि लाभ न कर सकेंगे ।

भारतीय संस्कृति के गौरवशाली साहित्य को दो शाखाओं में विभक्त किया गया—आगम और नियम । साधारणतः आगम तन्त्र के लिए और निगम वेदों के लिए प्रयुक्त होता है । वेदों की महत्ता तो सर्व विदित है ही, तन्त्र भी अत्यन्त महत्वपूर्व उच्चकोटि के साहित्य मे गिने जाते हैं । इसका प्रमाण इसी तथ्य से मिलता है कि आगम शब्द पहिले वेदों के लिए प्रयुक्त किया जाता था, परन्तु जब तन्त्रों का आविर्भाव हुआ तो वेद नियम और तन्त्र आगम के अन्तर्गत आ गये । पतंजलि के योग सूत्रों में वह शब्द वैदिक ज्ञान के अर्थ में आया है । उन्होंने ज्ञान के तीन प्रमाणों—(प्रत्यक्ष,अनुमान और आगम) में भी इसे सम्मिलित किया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्रों के आविर्भाव के कारणों का स्पष्टीकरण करते हुए श्री माधव पुण्डलीक ने लिखा है--"धर्म ग्रन्थों के सूक्ष्म अध्ययन से यह सत्य निभ्रान्त रूप से सामने आता है कि जिस तरह से उपनिषद् वेदों के ज्ञान काण्ड के पुनरुज्जीवन और अभिन्न परायण के प्रतीक हैं, और ब्राह्मणों ने वैदिक धर्म की कर्म-काण्डीय पद्धति की सुरक्षा तथा उसे आगे बढ़ाने की इच्छा की थी, उसी तरह से आगमों ने वैदिकवादियों की गूढ़ शिक्षाओं तथा साधना को अपने हाथ में लिया और वे परिवर्ती युग की बदलती हुई अवस्थाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप रूपों और साधनाओं के द्वारा उसका विकास तथा उसी के आधार पर नवीन निर्माण करते गये।"

कुल्लूक भट्ट के अनुसार आगम भी ईश्वर-प्रसूत शब्द स्वीकार किये जाते हैं। जिस तरह वेद ईश्वर की वाणी माने जाते हैं, उसी तरह तन्त्र भी भगवान शिव विष्णु, हरि, देवी की वाणी है। उन्हीं देवताओं के नाम से वे जाने भी जाते हैं, जैसे वैष्णावागम, शाक्तागम, शैवागम।

वेदों के कर्म, उपासना और ज्ञान के तीन विषय प्रसिद्ध हैं, वेद में यह विषय संक्षिप्त और गुँथे हुये रूप में वर्णित हैं। इनका सरल रूप में युगानुसार विस्तार तन्त्रों में किया गया है ताकि यह सर्व साधारण की समझ में आयें यहीं कारण है कि वेदों की अपेक्षा तन्त्रों का प्रचलन अधिक हो गया। तन्त्रों ने वेदों के रहस्य को खोलने का ही कार्य किया है। वेदों के समस्त विषय तन्त्रों में पाये जाते हैं। तन्त्रों की महत्ता प्रकट करते हुए मत्स्य सूक्त में लिखा है कि जिस तरह वर्णों में ब्राह्मण, देवियों में दुर्गा, देवताओं में इन्द्र वृक्षों में पीपल पर्वतों में हिमालय, नदियों में गंगा, और अवतारों में विष्णु है, उसी तरह शास्त्रों में तन्त्र श्रेष्ठ है।"

जब तन्त्र-साधना का प्रचार उच्च शिखर पर था साधक इससे अनेक प्रकार की असाधारण सिद्धियाँ प्राप्त करते थे, जो आज सर्वथा असम्भव दृष्टिगोचर होती हैं। प्राचीनकाल के साधक इससे बड़े-बड़े लाभ उठाते थे। रावण और अहिरावण हजारों मीलकी दूरीसे बिना वैज्ञानिक यन्त्रों के आपस में वार्तालाप करते थे। नलनील ने पानी पर तैरने वाले

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0: In Public Domain. Digitization by eGangotri

पत्थरों से पुल बनाया था। हनुमान मच्छर की तरह अपने शरीर को छोटा बना सकते थे और वृहदाकार पर्वत खण्डों को उठाने की सामर्थ्य भी रखते थे। सुरसा अपने शरीर को विशालतम बना सकती थी। मारीच मनुष्य शरीर को पशु शरीर से परिवर्तित कर लेता था। बिना पैट्रोल के आकाश में उड़ने वाले वायुयान उपलब्ध थे। वरुण अस्त्र से जल की वर्षा कराई जाती थी, आग्नेयास्त्र से चारों ओर अग्नि की लपटें उठने लगती थीं, नागपाश की जकड़ लोहे की मोटी रस्सियों से भी अधिक सुदृढ़ थी, सम्मोहनशास्त्र से व्यक्ति को मूर्छित कर दिया जा सकता था। परन्तु खेद है कि आज यह विद्या लुप्त हो गई और हम केवल इनका विवरण पढ़-सुनकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

तन्त्र साधना द्वारा दूसरों के मन को प्रभावित किया जा सकता है और उसकी गति विधियों को अपनी इच्छानुसार मोड़ा जा सकता है। निर्बल मन व शरीर वाले व्यक्ति को स्वस्थ बनाया जा सकता है। बिच्छू सर्प के काटे व विषैले फोड़ों का समाधान भी तन्त्र द्वारा मिलता है। अनिष्ठ ग्रह, भूतोन्माद, नजर लगने आदि के उपचार तन्त्र द्वारा होते हैं। मानसिक उद्वेग, असहनीय वेदना व अन्य शारीरिक अव्यवस्थाओं में तन्त्र सहायक सिद्ध होता। मैस्मरेजम और हिप्नोटिज्म द्वारा भी कुछ ऐसे ही कार्य कर लिये जाते हैं। इन पद्धतियों से दूसरे व्यक्तियों के मन को सम्मोहित करके उन्हें अपनी इच्छानुसार आदेश दिये जाते हैं और वह वैसा ही कार्य करते हैं। तन्त्रों द्वारा इनकी अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति उपार्जित की जा सकती हैं।

तन्त्र साधनाओं का लक्ष्य बड़ा विस्तृत है, वशीकरण, मारण, उच्चाटन, सम्मोहन, दृष्टिबन्ध, परकाया प्रवेश, सर्व विद्या, प्रेतविद्या, अदृश्य वस्तुओं को देखना, भविष्य ज्ञान, सन्तान सुयोग, आकर्षण, मोहन मन्त्र, घात-प्रतिघात आदि की क्रियायें इससे संचालित की जा सकती हैं।

किसी समय तन्त्रों के इतने विशाल साहित्य का निर्माण किया गया था, जिसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। तन्त्रों में ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्णन है कि प्राचीनकाल में चौदह हजार तन्त्र ग्रन्थ प्रचलित थे। इसमें सभी विद्याओं का समावेश था। अत्म-कल्याण के सिद्धान्त, मानव शास्त्र व्यावहारिक ज्ञान, जप, तप, उपासना, ध्यान, मन्त्र योग, राज योग हठयोग, लययोग, दर्शन रहस्य, अध्यात्म का स्पष्टीकरण, सृष्टि रचना प्रलय, ग्रह नक्षत्र, प्रेत, विद्या, पितृ तत्व, आयुर्वेद, रसायन शास्त्र, परलोक विद्या, नरक, स्वर्ग, १४ लोक, राज धर्म, दान धर्म, युगधर्म, शल्य चिकित्सा, भैषज्य चिकित्सा, रस चिकित्सा, वनौषधि चिकित्सा, धातु और उपधातु से औषधि निर्माण, गणित ज्योतिष, संगीत विद्या आदि विषय तन्त्रों के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। इन विषयों का विस्तार से विवेचन मिलता है। यह गुण और किसी शास्त्र में नहीं है।

तन्त्रों के लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए एक विद्वान ने लिखा है "ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति का जागरण इन शक्तियों को खोजकर कार्य में लाना, अपने देवत्व को पहचानना और अपने चारों ओर की सृष्टि में विशालतर देवत्व का आलिंगन करना वह आदेश है जिसे समस्त आगम उद्घोषित करते हैं। यही एक लक्ष्य हैं जिसकी ओर उनके आत्म-निर्माण और अनुशासन अर्थात् उपासना के समस्त मार्ग खुल जाते हैं। इनके बताये मार्ग कर्म से भागने के नहीं, कर्म के मार्ग हैं। भगवान् के द्वारा नियोजित नियमों और ढंग से भगवान की महिमा और अभिव्यक्ति के लिये चेष्टा करना यही उनकी साधना का प्रधान सत्य है।"

तन्त्र अभ्यास और व्यवहारिक ज्ञान के शास्त्र हैं। यह जीव की परतन्त्रता को समाप्त करके स्वतन्त्रता का द्वार खोलते हैं, वह जिन सुदृढ़ बन्धनों में जकड़ा हुआ है, उनको ढीला करते हैं और ईश्वरीय सत्ता के सर्वोच्च स्थान पर लाकर खड़ा कर देते हैं। वह साधक को आत्मसाक्षात्कार की भूमिका में अवस्थित करते है। वह इस शरीर के रहते हुये भी अपने को जीवनमुक्त समझने लगता है, सब ओर अपनेपन के विस्तार का अनुभव करता है। आत्मिक विज्ञान के सिद्धान्तों को क्रिया रूप देना ही तन्त्र शास्त्र का कार्य है। विभिन्न प्रकार की साध-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाओं के विधि-विधान का मोर्गदर्शन ही इनका प्रमुख कार्य है ।

तन्त्र-साधना पंचकोषों को पार करने की उच्चतम प्रक्रिया का मार्ग प्रशस्त करती है । अन्नमय कोष से आनन्दमय कोप की ओर बढ़ाते चलना इनका उद्देश्य है । तन्त्र साधनायें शक्ति के स्रोत हैं । ये हमारे सूक्ष्म शरीर में स्थित चक्रों और योगिक ग्रन्थियों को जमा कर साधक को एक शक्तिशाली चुम्बक बना देती हैं । साधक के अंग-अंग से शक्ति का प्रादुर्भाव होता है और वह हर क्षेत्र में सफलता के पग पढ़ाता चलता है, क्योंकि सफलता की मूल शक्ति के रहस्य को वह पहिचान गया है ।

तन्त्र शक्तियों ने खोजकर पता लगाया है कि ईश्वर की विभिन शक्तियों को, जिन्हें देवता कहते हैं, अपने अनुकूल बना कर उनकी शक्तियों को आकर्पित किया जा सकता है और मनोबांछित सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं । सूक्ष्म देवताओं के लिये सूक्ष्म साधना की आवश्यकता रहती है, इस कार्य के मन्त्र सर्वोपरि साधन स्वीकार किये गये हैं । तन्त्रों ने मन्त्रों के साथ बीजाक्षरो का प्रयोग भी बताया है । इन मन्त्रों की सूक्ष्म तरंगें सूक्ष्म प्रकृति में हलचल उत्पन्न करती हैं और ईथर तत्व में व्याप्त अपने अनुकूल तरंगों के साथ मिलकर एक शक्ति पुंज के रूप में परिणित हो जाती है । साधक एक चुम्बक की तरह इन शक्तियों को आर्कषित करता रहता है और अपने शक्ति के भण्डार को भरता रहता है । इस तरह से मन्त्र उसका दिव्य शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं ।

तन्त्रों में पंचमकार की साधना को देखकर कुछ लोग इन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे हैं । तंत्र साधनाओं मे मद्य, माँस, मत्यस्य, मुद्रा और मैथुन के प्रयोग का निर्देश किया गया है । अलंकारिक भाषा में प्रयुक्त इन शब्दों को साधारण कोटि के साधक न समझ सके और इनका प्रत्यक्ष प्रयोग करके इस क्षेत्र को भ्रष्ट कर दिया, जिससे बौद्धिक क्षेत्र में इनके प्रति घृणा के बीज उत्पन्न हो गये । परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है । जहाँ मद्य के प्रयोग का आदेश है वहाँ नशा उत्पन्न करने वाले पेय से अभिप्राय नहीं है वरन् वह दिव्य ज्ञान है जिससे साधक बाहरी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जगत से नाता तोड़कर आन्तरिक क्षेत्र में प्रवेश करता है। प्रभू को सर्वस्व समर्पित करना ही तो माँस का सेवन कहलाता है। मत्स्य का अभिप्राय उस स्थिति से है जब सभी तरह के सुख-दुख एक समान हो जाते हैं। दुर्गुणों के त्याग की मुद्रा कहते हैं। सहस्रार में शिव शक्ति का कुण्डलिनी के साथ मिलन मैथुन कहलाता है। उच्चकोटि के साधक इन्हीं भावनाओं से ओत-प्रोत होकर साधना करते हैं। विपयी प्रकृति के व्यक्ति अपनी वासनाओं को तृप्त करने के लिये एक प्रकार का षडयंत्र करते हैं और तंत्र शास्त्र को बदनाम करते हैं। जिससे यह व्यवहारिक रूप में जन-साधारण से दूर चला गया है। इसकी वास्तविकता को समझना और तदनुसार आचरण करना ही अभीष्ट है, जिससे जीवन के विकास में इस प्राचीन भारतीय विज्ञान का लाभ उठाया जा सके।

वेदों में प्राणी मात्र को समान दृष्टि से देखने और व्यवहार करने के आदेश तो दिये ही गये हैं इसके साथ कर्मकाण्ड, साधना और शिक्षा में समानाधिकार भी प्रदान किये हैं। तंत्र-शास्त्रियों की प्रशंसा ही करनी चाहिये कि सिद्धान्त की समानता को उन्होंने व्यवहार में भी ला दिया और मनुष्य मात्र के लिये तंत्र साधना के द्वार खोल दिये। स्त्री और पुरुष, किसी भी हीन वर्ण का व्यक्ति इसे अपना सकता है। तन्त्र में किसी तरह के प्रतिबन्ध नहीं लगाये हैं। तन्त्र सभी वर्गों के विकास का आकांक्षी है और सभी को समान अधिकार प्रदान करता है। इस नीति ने ही इनके प्रचार और प्रचार को व्यापक बनाने में सहायता दी।

तन्त्र एक स्वतन्त्र विज्ञान है। परमाणुमयी प्रकृति के आकर्षण-विकर्षण से जगत के पदार्थों में परिवर्तन होता रहता है, उत्पत्ति, स्थिति और लय के परिणाम उपस्थिति होते हैं। विज्ञान द्वारा परमाणुओं की इस स्वाभाविक प्रक्रियाओं को बदल कर अपने अनुकूल बना लिया जाता है। बिजली, रेडियो, तार, रेल आदि इसके उदाहरण हैं। यह विज्ञान की यंत्रीय शाखा है। दूसरी तंत्रीय शाखा है, जिससे अपने अन्तर की विद्युत शक्ति को इतना विकसित कर लिया जाता है कि प्रकृति के सूक्ष्म

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमाणुओं को अपनी इच्छानुसार ढाल सकते हैं। इसी को सिद्धि कहते हैं। तन्त्र-विज्ञान के अनुसार सूक्ष्म जगत में चेतना ग्रन्थियाँ विचरण करती रहती है। जिस उद्देश्य से साधना की जा रही है, उसके अनुसार उन्हीं प्रकार की चेतना ग्रन्थियों को जाग्रत किया जाता है ताकि वह क्रियाशील होकर अनुकूल परिणाम प्रस्तुत करने में समर्थ हों। जैसे कोई नौकर प्रत्यक्ष शरीर में स्वामी की सभी आज्ञाओं का पालन करता है, वैसे ही अप्रत्यक्ष शरीर से वह चेतना ग्रन्थियाँ सदैव उसके साथ रहती हैं और अपनी शक्ति के अनुसार साधक की आज्ञाओं को पूर्ण करती हैं। जैसे कहा जाता है कि उस तान्त्रिक को भैरव, छाँया-पुरुष ब्रह्म-राक्षस, मसान पिशाच आदि सिद्ध हैं।

अदृश्य लोक की चेतना ग्रन्थियों की प्रक्रिया इस प्रकार से होती है कि तन्त्र साधनाओं द्वारा उन्हें पकड़ा जाता है, उनको प्राणवान बनाया जाता है, जाग्रत, क्रियाशील और चैतन्य बनाया जाता है। चैतन्य होने पर वह साधक पर आक्रमण करती हैं। यदि साधक इस आक्रमण से भयभीत न हुआ तो वह ग्रन्थियाँ उस साधक के वश में हो जाती हैं और अप्रत्यक्ष शरीर से उसके सभी कार्य सिद्ध करती है। यदि वह भयभीत हो जाय तो उसे हानि की सम्भावना होती है।

प्राचीन काल में अदृश्य लोक की चेतना ग्रन्थियों को जाग्रत करके वह सभी कार्य कर लिये जाते थे जो आजकल भौतिक विज्ञान की शोधों से यन्त्रों द्वारा किये जा रहे हैं। आज उस विज्ञान का लोप हो गया है फिर भी कहीं-कहीं ऐसे तान्त्रिक मिल जाते हैं जो प्रत्यक्ष रूप से इनकी सिद्धियों का प्रदर्शन करते हैं। यदि भारत के इस प्राचीन विज्ञान पर शोध की जाये तो अनेकों अद्भुत रहस्य प्रकट हो सकते हैं और इस विद्या का उत्थान हो सकता है।

एक विद्वान ने सशक्त शब्दों में घोषणा की है—

"अधिकांश में आगमों का ही यह योगदान है कि जिससे देश की आध्यात्मिक वृत्ति को मायावाद के मरुस्थल में जाने से रोका और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संतुलन बनाये रखते में वास्तविक भाग लिया था। तान्त्रिक विचारों और उपासना के मुख्य सत्यों से ही आज के हिन्दू धर्म का मेरुदण्ड बना है।

हिन्दू विश्व देवतागण तन्त्र से ही ग्रहीत हैं और अभी तक अपने मूल स्वरूप को सुरक्षित रखे हुए हैं। उपासनायें, विशेपरूप में सामूहिक पद्धति की उपासनायें खुले रूप में अपनी प्रकृति में तान्त्रिक है। व्यक्तिगत साधना मार्ग में भी तान्त्रिक रहस्यवादियों के ज्ञान का बड़ा भाग आ गया है। चेतना शक्ति का सिद्धान्त क्षुद्रन्मानव प्रयत्न को साक्षात्कार के स्तर में उठाते हुए परमशक्ति के रूप में सर्वसिद्धिप्रद शक्ति का एक अंगबना देना हमारा प्राचीन सिद्धान्त है जिसके चारों ओर वर्तमान युग की साधना किसी न किसी रूप में केन्द्रित है।

तन्त्र पद्धति में छिपे हुए अर्थों को बताते हुए श्री अरविन्द संकेत करते हैं कि 'भारत भूमि की आत्मा के क्रमशः विस्तारशील राज्य में यह एक महत्वपूर्ण विकास-शिखर था। वैदिक ऋषियों ने एक आन्तरिक अनुशासन और धर्म विकसित किया और इसे पूर्ण बनाया, जो मूलगत रूप में सहज वोधि पर आश्रित और प्रतीकात्मक था और उस युग की अकृत्रिम विशुद्ध मानवता के अनुरूप था। उपनिषद् में इस प्रारम्भ के प्रयास का उल्लेख है, जिसमें मानव अपने विभिन्न स्तरों को-अलौकिक बुद्धि के उच्च स्तर से लेकर नीचे तक के स्तर को—ऊँचा उठा ले जाता है जो कि स्मृतियों के युग से होते हुए आगे बढ़ी और दर्शन में अपनी पूर्णता को पहुँची। तान्त्रिक साधना भगवान के विषय में और भी गम्भीर दावा करती है। यह मानव के संवेदन शील और सक्रिय भागों, हृदय संकल्प और जीवन सत्ता को भी लेती है और उन्हें आत्मा के ढाँचे के अनुरूप विकसित करने का यत्न करती है। इसलिये तंत्र देश के प्रगतिशील तथा आत्म-विस्तारशील आध्यात्मिक आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण और यहां तक कि अनिवार्य सोपान रहा है।"

प्रकृति की शक्तियों पर काबू पाकर उन्हें अपनी इच्छानुसार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वशवर्ती बनाना तन्त्र विद्या का प्रधान कार्य है। इस विद्या द्वारा आनन्द-दायक स्थितियाँ उत्पन्न और उपलब्ध की जा सकती है और उनका उपभोग किया जा सकता है। साथ ही अपने तथा अन्यों के ऊपर आई हुई आपत्ति का निवारण किया जा सकता है। उतना ही नहीं दुष्ट और दुराचारियों के ऊपर आपत्ति का प्रहार किया जा सकता है। तन्त्र तुरन्त फल दाता है और वह फल आश्चर्यजनक होते हैं।

एक तान्त्रिक व्याख्याता के शब्दों में विशेष रूप से गुह्य-ज्ञान के संघातों का दुरुपयोग, आधिभौतिक स्तरों की शक्ति को खींचना और मानव के भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास के बजाय बुरे कार्यों के लिये उन्हें प्रेरित करना रहस्य पूजा के अतिगम्भीर तात्विक आधार का अश्लीलीकरण आवेगमयी प्रकृति की चूड़ा पर स्थित रहते हुए आत्मा के शिखरों पर आरोहण करने के हेतु मानव द्वारा किया गया एक अत्यन्त निर्भय प्रयोग—ये शोचनीय पतन हैं। पर किसी प्रकार से भी ये इसकी विशालता इसकी सहज बुद्धि व्यावहारिकता, और इस पद्धति की सहजता प्रमाणिकता को कम नहीं कर सके हैं।

तन्त्र एक महान् और शक्तिशाली प्रणाली थी। यह कुछ ऐसे विचारों पर आधारित थी जिसमें कम से कम सत्य का कुछ अंश अवश्य वर्तमान था दक्षिण और वाम मार्ग में इसका दुहरा विभाजन भी एक गहन अनुभव से ही शुरू हुआ था। दक्षिण और वाम शब्दों के प्राचीन प्रतीकात्मक अर्थ के अनुसार यह विभाजन ज्ञान' और आनन्द के मार्गों में था। एक में प्रकृति मनुष्य के अन्दर अपनी शक्तियों तत्वों शक्यताओं के यथार्थ सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विवेक द्वारा अपने आपको शुद्ध करती है जब कि दूसरे में वह यह कार्य उसके अन्दर अपनी वक्तियाँ तत्वों और शाक्यताओं की हर्षपूर्ण सैद्धान्तिक और व्यवहारिक स्वीकृति के द्वारा करती है। किन्तु अन्त में इन दोनों मार्गों में सिद्धान्त सम्बन्धी एक अस्पष्टता प्रतीकों की विकृत तथा ह्रास की अवस्था पैदा हो गयी थी।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

म० म० पं० गोपीनाथ कविराज ने कहा है—

"वेद की भाँति तन्त्र क्रम भी बोधात्मक और वागात्मक है। शिव में समावेश शक्ति के दो रूप है—ज्ञान एवं क्रिया। ज्ञानरुपिणी शक्ति, पर और अपर भेद से द्विविध है। पर-ज्ञान बोधात्मक और अपर ज्ञान वागात्मक हैं। वागात्मक ज्ञान शास्त्र-रूप में प्रतिष्ठित है बोधात्मक पर-ज्ञान, वागात्मक अपर-ज्ञान किंवा शब्द पर आरूढ़ होकर अर्थ प्रकांशन में प्रवृत्त होता है। सात्वत संहिता में परज्ञान को शिव की साक्षात् शक्ति और अपर ज्ञान को तन्त्र कहा है। विश्वसृष्टि के उन्मेषकाल में भगवान परात्पर मुक्ति और मुक्ति-सम्पादन के लिए ज्ञान को प्रकाशित करते हैं। सबसे पहले परम-कारण निष्फल शिव में अवबोध रूप का ज्ञान का नादात्मक प्रसार होता है। अतः नादात्मक ज्ञान सदाशिव रूप में तन्त्र किंवा शास्त्र का रूप ग्रहण करता है। इसीलिए पोष्कर आगम ने शास्त्र को नादरूप कहा है। नादरूप प्रसूत इस अवबोधात्मक विमल ज्ञान की पाँच धारायें हैं, अर्थात् पूर्व दक्षिण, पश्चिम, उत्तर एवं ऊर्ध्व। निष्फल परमशिव में वागादि इन्द्रियों की सम्भावना न होने पर भी नाँद सम्भूत होता है। अयस्कांत के लोहाकर्षण-सामर्थ्य सदृश इसे समझना चाहिए। शास्त्र शुद्ध आत्मवर्य का भय के समुद्र से उद्धार करता है।

तन्त्र के एक प्रसिद्ध व्याख्याता विमलानन्द स्वामी ने अपनी एक पुस्तक की भूमिका में वेदों और तन्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए अतिशयोक्ति शैली से कहा है कि "वेद अज्ञानके क्षेत्र में ही चक्कर लगाते रहते हैं परन्तु तन्त्र कहीं आगे निकल जाता है। तन्त्र ही मोक्ष तक पहुँचने के लिये एक व्यावहारिक आचार-पद्धति प्रदान करता है परन्तु प्राचीन परम्परा में ऐसा नहीं है।"

तन्त्र के बारे में लेखक की धारणा सत्य है, परन्तु वेदों की निन्दा करके तन्त्र को श्रेष्ठ करने की पद्धति विद्वानों के अनुकूल नहीं है। तन्त्रों में जो ज्ञान और योग का वर्णन है, वह वैदिक सिद्धान्तों से भिन्न नहीं है, उनका विकास मात्र है। वेदों को अज्ञान-मूलक बता कर तन्त्रों को श्रेष्ठ सिद्ध करने का तर्क तो स्वीकार नहीं किया जा सकता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परन्तु यह निसन्देह कहा जा सकता है कि तन्त्र स्वयं में उत्तमोत्तम श्रेणी में आते हैं। वेद शास्त्रों को नया रूप देकर तन्त्र का अंग बनाने का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

अन्तर्जगत का विस्तृत विज्ञान है। वह दस विद्याओं के रूप में दस भागों में बँटा हुआ है। वैदिक वाङ्मय में विस्तार पूर्वक वर्णन है। (१) उद्गीथ विद्या (२) संवर्ण विद्या (३) मधु (४) पंचाग्नि-विद्या (५) उपकौशल विद्या (६) शाँडिल्य विद्या (७) दहर विद्या (८) भूमा विद्या (९) गंध विद्या (१०) दीर्घायुष्म विद्या। यह विद्यायें ही ऋषियों की सम्पत्ति थी। इन सम्पत्तियों के द्वारा ही वे अपरिग्रहीं एवं निर्धन रहते हुए भी इस भूलोक में कुवेर भंडारी बने हुए थे। जो कुछ देवताओं के पास है उसे वे इसी मानव शरीर में इसी लोक में करतलगत कर लेते थे।

तन्त्र मार्ग में भी यही दस विद्यायें अन्य नामों से उपलब्ध हैं। यद्यपि आसुरी वाम मार्गी तन्त्रोक्त विधान, देव, सम्प्रदाय के दक्षिण मार्गी वैदिक विधान से भिन्न है फिर भी उनके द्वारा भी उन्हीं सिद्धियों का प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। तन्त्र मार्ग में (१) इन्द्राणी (२) वैष्णवी (३) ब्रह्माणी (४) कौमारी (५) नरसिंही (६) बाराही (७) माहेश्वरी (८) भैरवी (९) चण्डी (१०) आग्नेयी—इन दस नामों से इस महाविद्याओं की साधना की जाती है।

तन्त्र साधना परम शास्त्र है। वेदों में जिस ज्ञान की भूमिका का प्रतिपादन किया गया है, उसे क्रिया रूप देने के लिये तन्त्र शास्त्र का आविर्भाव हुआ था। इसीलिये तन्त्रों को हिन्दू धर्म की साधना प्रणाली का सिरमौर घोषित किया गया है। साधना क्रम के गुह्य रहस्यों पर भी ताले लगे हुए हैं क्योंकि साधना विधियों का स्पष्टीकरण ही तन्त्र की विशेषता है।

तन्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय शक्ति उपासना समझा जाता है और यह धारणा बन गई है कि केवल शक्ति साम्प्रदाय वाले ही तन्त्र मार्गी हैं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वास्तविकता ऐसी नहीं हैं। तन्त्र में शक्ति के अतिरिक्त वैष्णव, गाणपत्य, सौर, शैव सम्प्रदाय भी है। उनकी उपासना का मूल भी शक्तित है। अतः सिद्ध हुआ कि सभी सम्प्रदाय वाले तन्त्र साधना करते हैं और सभी का मत श्रेष्ठ आलम्बनः माना जाता है।

तन्त्र-विज्ञान का भंडार है। मन्त्रों का इसे आगार ही समझना चाहिये। मन्त्र शास्त्र के विकाश का बहुत श्रेय तन्त्रों को प्राप्त है। मन्त्र विज्ञान का जितना प्रचार प्रसार तन्त्र ने किया था, शायद ही किन्हीं शास्त्र नें किया हो। घर-घर में मंत्र साधना की क्रिया रूप देने का क्रम भी तन्त्र के माध्यम से हुआ है। मन्त्रों के गुप्त रहस्यों को खोलने का कार्य भी तन्त्रों ने ही किया है, उनके चमत्कारी लाभों और रिद्धियों का वर्णन भी उन्हीं में है। यदि यूँ कहें कि मन्त्र विज्ञान को व्यस्थित रूप देने वाले तन्त्र है तो उससे कुछ भी अतिशयोक्त न होगी।

तन्त्रों में दार्शनिक तत्व भी हैं परन्तु अन्य दर्शन शास्त्रों की भाँति जटिल नहीं, उन्हें सुबोध और सरल शैली में व्यक्त किया गया है।

सरल से सरल और कठिन से कठिन साधना प्रणाली का विधान तन्त्रों में है। हर स्तर के साधक के लिए तन्त्र उचित निर्देश देता है। साधन का इच्छुक कोई भी व्यक्ति इससे निराश नहीं हो सकता। यह हर आयु के हर प्रकार की मानसिक स्थिति वाले साधक के लिये उपयुक्त है।

इतना होते हुए भी जनसाधारण में अनेकों प्रकार के भ्रम फैले हुए हैं जिनके कारण से तन्त्र घृणा के पात्र हो गये हैं। कुछ ऐसी साधना प्रणालियों का वर्णन बताया जाता है जो निन्दनीय है। इसका समाधान यह है कि तन्त्र सांकेतिक भाषा में लिखे गये हैं अतः उनके वास्तविक अर्थों को समझना होगा। इस ज्ञान के अभाव से ही वह निम्न कोटि के लग सकते हैं। परन्तु जब तन्त्र ज्ञान का प्रकाश हो जायेगा तो इन्हें साधन पथ के सर्वोत्तम शास्त्र स्वीकार करने में भी संकोच न होगा। अतः निरपेक्ष बुद्धि से इनका अध्ययन और विश्लेषण आवश्यक है तभी कुछ निश्चित मत स्थिर किया जा सकता है। वास्तव में तन्त्र का जितना भी अध्ययन करते हैं, उतना ही यह लोक-मंडल के सूत्रधार सिद्ध होते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र की प्रामाणिकता

हिन्दुओं के शास्त्रों में तन्त्र का उच्च स्थान है कुछ विद्वान तो इसे वेद की तरह ही प्रामाण्य कहते हैं। यदि वेद तन्त्रों के कुछ विरुद्ध भी होते हों, तो भी उन्हें अप्रमाण नहीं समझा जा सकता। उसी तरह वैदिक सिद्धान्तों के कुछ विरुद्ध होने पर भी तन्त्रों को अप्रमाण नहीं माना जाता। दोनों अपने-अपने स्थान पर प्रतिष्ठित माने जाते हैं। श्रीकण्ठ के शैव भाष्य में वेद और तन्त्रों के प्रमाणों में कोई अन्तर नहीं पाया गया। उन्होंने वेदों का निर्माणकर्त्ता शिव को ही घोषित किया है और वेद को ही शिवागम कहा है। उन्होंने दोनों में केवल इतना भेद माना है कि वेद मार्ग केवल तीन वर्णों के लिये विहित हैं परन्तु तन्त्र में किसी के लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उनके अनुसार—

वयं ते वेदशिवागमयोर्भेदे न वश्यामः वेदोऽपि शिवागम इति व्यवहारो युक्त तस्य तत्कर्तृकत्वात्। अत, शिवागामो शैवर्णिक विषयः सर्वाविषयश्चेति उभयोरेक एवं शिवः कर्ता ....उभावपि प्रमाण भूतौ वेदागमो।

(श्रीकण्ठ भाष्य ८।२।३८)

अर्थात्—हम वेद और शिवागम के भेद को नहीं देखते है। भेद भी शिवागम ही है। ऐसा ही व्यवहार उचित है क्योंकि वह उसी कर्ता का है। इसीलिये शिवागम दो प्रकार का है—त्रैवर्णिक विषय वाला और सर्व विषय वाला। दोनों का एक-एक ही शिव कर्ता है। दोनों ही प्रमाण भूत हैं—वेद और आगम।"

कुल्लूकभट्ट—मनुस्मृति के एक प्रसिद्ध टीकाकार हुए हैं। उन्होंने अपनी टीका (३।१) में हरित ऋषि का एक वाक्य प्रस्तुत किया है जो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नवीन पुस्तकों में तो उपलब्ध नहीं होता, परन्तु विद्वानों का मत है कि कुल्लूल भट्ट प्रमाणिक टीकाकार है। प्राचीन प्रतियों में वह अवश्य होगा। वाक्य यह है—

श्रुतिश्च द्विविधा, वैदिकी तान्त्रिकी।

इस वचन के अनुसार हरित मुनि ने श्रुति को दो प्रकार का माना है—वैदिक और तान्त्रिक। इसके अनुसार तन्त्रों को भी श्रुति ही मानना चाहिये। जिस तरह वेदों को अपोरुषेय माना जाता है, उनके प्रमाण के लिये किसी सहारे की अपेक्षा नहीं रहती उसी तरह तन्त्र भी स्वयं प्रमाण हैं। उनकी प्रमाणिकता सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि तन्त्र और वेद में कुछ मतभेद भी है तो वह अलग-अलग प्रमाण हैं। दोनों में कोई बड़ा-छोटा नहीं है।

कुछ प्राचीन आचार्य तन्त्रों को स्मृति शास्त्र के अन्तर्गत मानते हैं। शारदा तिलक तन्त्र के प्रख्यात टीकाकार राघव भट्ट की भी यही सम्मत्ति है। वह तन्त्रों को वेद का उपासना काण्ड मानते हैं। वह तन्त्रों को प्रमाण स्वीकार नहीं करते। उनका मत है कि स्मृतियों का आधार वेद है। अतः तन्त्र को कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं माना जा सकता। प्रसिद्ध तन्त्र दार्शनिक भास्करराय का भी यही मत है। उन्होंने अपने मत का समर्थन करते हुए कहा हैं कि चूँकि ऋषि 'जैमिनी के पूर्व मीमांसा' (१।३।५) के सूत्रांश पर कुमारिलभट्ट की तन्त्र वार्तिक के अनुसार 'पुराण न्याय, मीमांसा, धर्म शास्त्र, वेद के छः अङ्ग और चारों वेद "ही धर्म के विषय में प्रमाण माने जाते हैं जिसमें तन्त्र को स्वतन्त्र रूप से शास्त्र की संज्ञा नहीं दी गई है। इसलिए इसे स्मृति शास्त्र मानना चाहिये। महर्षि याज्ञवल्क्य की भी यही सम्मति है।

पुराण न्याय मींमांसा धर्म शास्त्राङ्ग मिश्रितः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

(याज्ञवल्क्य स्मृति १।३)

अर्थात्—पुराण—न्याय—मीमांसा—धर्मशास्त्र के अंग मिश्रित-वेद-ये धर्म की चौदह विद्याओं के स्थान होते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्म-शास्त्र के साथ सम्बन्ध होने पर भी कुछ आचार्य अन्य स्मृतियों की अपेक्षा तन्त्र को विशिष्ट बताते हैं। उनका यह कहना है कि मनु और याज्ञवल्क्य जैसी स्मृतियाँ वेद के कर्मकाण्ड की व्याख्या हैं तो तन्त्र वेद के ब्रह्म-काण्ड की व्याख्या है:—

"तन्त्राणां धर्म शास्त्रेऽतर्भावः"

(वरिवस्था रहस्य प्रकाश)

"तन्त्रों का धर्म-शासन में अन्तर्भाव है।"

"परमार्थ तन्मो तन्त्राणाँ स्मृतित्वाविशेषेऽपि मन्त्रा दिस्मृतिनामां कर्मकाण्डशेषत्वं तन्त्राणां ब्रह्मकाण्ड शेषतामिति सिद्धान्तात्"

(भास्करराय प्रणीत सौभाग्यभास्वर)

"परमार्थ रूप से तन्तों का स्मृति के अविशेष होने पर भी मन्वादिस्मृतियों का कर्मकाण्ड शेषत्व और तन्त्रों का ब्रह्मकाण्ड शेषत्व होता है, यही सिद्धान्त हैं।"

पाश्चात्य विचारों से प्रभावित कुछ विद्वान तन्त्रों को प्रमाण नहीं मानते। उनकी दलील यह है कि तन्त्रों की भाषा अपेक्षाकृत सरल है, अतः वह प्राचीन आर्षग्रन्थ नहीं। वास्तव में यह कोई विशेष प्रमाण नहीं है। व्यास का ही उदाहरण ले लें। उन्होंने वेदों को चार भागों में विभक्त किया है। इससे उनकी उत्कृष्ट विद्वता प्रकट होती है। उन्होंने वेदान्त सूत्रों का निर्माण किया। महाभारत और भागवत भी उनकी रचनायें मानी जाती हैं। उनकी भाषा में अन्तर प्रतीत होता है। इसी अन्तर से यह शंका उभरने लगती है कि इन ग्रन्थों के प्रणेता अलग-अलग व्यास हुए हैं। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। उद्देश्यों के अनुकूल भाषा का परिवर्तन किया जा सकता है। विषयों के अनुसार भी भाषा सरल व गम्भीर हो सकती है। अतः भाषा की सरलता को देखकर तन्त्रों को अप्रमाण कहना निराधार कल्पना है। यह तो तन्त्र में ही अनेकों स्थानों पर कहा गया है कि कलियुग में जब वेदों को समझना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कठिन हो गया तो वेदों के रहस्य समझने के लिये ही तन्त्रों का आविर्भाव हुआ है।

तन्त्र साहित्य को आर्ष मानने में स्वामी दयानन्द ने "सत्यार्थ-विवेक" में लिखा "जिस प्रकार परमात्मा द्वारा वेद कथन सम्भव हो सकता है, उसी प्रकार उनके अंश-रूप शिवभाव द्वारा तन्त्रों का होना भी सम्भव है। अपौरुषेय, अनादि, अभ्रान्त और ज्ञान ज्योतिपूर्ण वेद समूह जिस प्रकार जगदीश्वर परमात्मा की इच्छा से ऋचाओं के रूप में ऋषियों द्वारा प्रकाशित हुए थे, उसी प्रकार से शिव की इच्छा से उनके भक्त सिद्ध मुनिगण द्वारा तन्त्र ग्रन्थों का भी प्रकाश होना पूर्ण-रूपेण युक्तियुक्त है।

इस तरह से तन्त्र की प्रामाणिकता में कोई संदेह नहीं रह जाता।

————

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र की प्राचीनता

तन्त्र का आभिर्भाव और प्रचार प्राचीन काल से होता आया है। कई विद्वान तो उन्हें वेदों जितना प्राचीन स्वीकार करते हैं। जिस तरह वेदों को ईश्वर कृत माना जाता है, उसी तरह मन्त्रों को भगवान शिव की रचना बताई जाती हैं। इससे इनकी प्राचीनता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

डा० भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव के अनुसार "प्राचीनता और व्यापकता की दृष्टि से वेदों के बाद तन्त्रों का ही स्थान है। यह कहना अनुचित अथवा अप्रासंगिक नहीं होगा कि बौद्ध धर्म के वहुत पहले इस देश में तन्त्रों का प्रभाव जम चुका था। भगवान शंकराचार्य ने जहाँ-जहाँ मठ स्थापित किये, वहाँ-वहाँ स्थापना के मूलाधार के रूप में तन्त्रों की प्रमुखता अक्षुण्ण है और कहना चाहें तो कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृत की आध्यात्मिक साधनाओं के मूल प्राण-रूप में तन्त्र अनादि काल से किसी न किसी रूप में चले आ रहे हैं।

तन्त्र के भिन्न-भिन्न सम्पदाओं के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार करना होगा।

वैष्णव सम्प्रदाय--

वैष्णव तन्त्रों में पांचरात्र प्रसिद्ध है। इसका दूसरा नाम 'भागवत धर्म' और 'सांत्वत धर्म' भी है। महाभारत में विधि का वर्णन आता है--

सात्वतं विधि मास्थाया गीता; संकर्षण यः।
द्वायरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च ।।

अर्थात् "सात्वत विधि में समास्थित होकर जो गति प्राण से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होती है, वह द्वापर युग के अन्त में और कलियुग के आदि में होती है।'

महाभारत के शान्ति पर्व अध्याय ३३५—३४६ मैं 'नारायणोपाख्यान' का उल्लेख आता है जिसमें पांचरात्र सिद्धान्त का स्पष्टीकरण दिया गया है। इसके अनुसार नारद श्वेत द्वीप में जाकर नारायण ऋषि से इसकी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण (८।३।१४) में 'सात्वत' शब्द आता है—

'एतस्थां दक्षिणस्यां दिशिये खे च सात्वतां राजा नो भोज्वायैव ते अभिषिच्यन्ते, भोजेति एनान् अभिषिच्यन आचक्षते।"

अर्थात् 'इस दक्षिण दिशा में जो कोई सात्वत राजा थे, वे केवल भोज्य के ही लिये अभिषिक्त किये जाते हैं। इन अभिषिक्तों को भोजहो, ऐसा कहा जाता है।'

इससे स्पष्ट है कि पांचरात्र महाभारत और ऐतरेय ब्राह्मणसे पहले के ही हैं।

उत्पल ने अपनी पुस्तक 'स्पन्दकारिका' में 'पांचरात्र उपनिषद्' और 'पांचरात्र श्रुति' का उल्लेख किया है। वह दशम शताब्दी के हैं। अतः यह उससे पहिले के तो हैं ही। यमुनाचार्य ने अपनी कृति 'आगम-प्रमाण्य' में पांचरात्र संहिताओं के उदाहरण दिये हैं। वह ११ वीं शताब्दी के हैं। अतः इससे पहले के होने में कोई सन्देह ही नहीं हैं।

इण्डियन एन्टीक्वेरी १६११ पृष्ठ१३के अनुसार यूनानी हेलिओडोरस' ने भागवत उपाधि ग्रहण की थी। इसका पता विक्रम पूर्व दूसरी शती में बेस नगर के शिलालेख से चलता है।

विदेशों में भी प्राचीन काल से वैष्णव धर्म का प्रचार रहा है। कोई समय था जब सारे दक्षिण पूर्व एशिया में यह धर्म छा गया था। वाली में इस धर्म का व्यापक प्रचार था। 'विष्णु पंजर' और 'विष्णु स्तव' नाम के स्तोत्र वहाँ के पण्डितों में काफी प्रसिद्ध थे। रामायण और महाभारत का घर घर में प्रचार है और तत्सम्बन्धी नाटकों का अभिनय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है। कम्बोडिया में वैष्णव धर्म व्यापक रूप से फैला हुआ था। इसका प्रमाण वहाँ के मन्दिरों में आज भी देखा जा सकता है। मन्दिरों में समुद्र-मंथन का दृश्य और विष्णु लोक की स्थापना वहाँ वैष्णव धर्म के प्रसार का प्रतीक है। राँची में विष्णु का मन्दिर था। पीकुक में विष्णु की मूर्तियाँ मिली हैं। वहां के राजा उदयादित्य द्वितीय ने विष्णु के मन्दिर बनवाये थे। अंकोरवाट विश्व का सबसे बड़ा मन्दिर माना है। वह विशुद्ध रूप से वैष्णव मन्दिर ही था। वैष्णव काव्यों की रचना से वहाँ वैष्णव धर्म का विशेष प्रचार हुआ।

थाईलैंड में बोद्ध मत की स्थापना होने पर भी वैष्णव धर्म का प्रचार रहा है। चौथी शती के संस्कृत शिलालेख तथा विष्णु की मूर्तियाँ मिली हैं। लवपुरी के मन्दिर में विष्णु की मूर्तियाँ स्थापित हैं। श्याम का राजा 'राम' बोद्ध था परन्तु फिर भी उसने विष्णु की मूर्तियों की स्थापना कराई थी। वहाँ के राज-सिंहासन पर भगवान विष्णु की गरुडरूढ़ मूर्ति है। बैंकाक के मन्दिर के बाहर विष्णु की मूर्तियाँ हैं।

जावा में विष्णु के अवतार 'राम' के प्रति इतनी श्रद्धा थी कि उन्हें वह विदेशी नहीं मानते थे, वरन् राम की जन्म भूमि जावा ही मानते थे। राम कथा का प्रचार वहाँ घर-घर में था। पाँचवीं शती के राजा 'पूर्ण वर्मन' के वैष्णव होने का पता चलता है। एक अन्य अभिलेख में विष्णु के चक्र, शंख, गदा पद्म का वर्णन है। श्री विजय साम्राज्य के शैलेन्द्र राजाओं ने एक विशाल मन्दिर का निर्माण कराया था जिसमें विष्णु की मूर्ति स्थापित थी।

इण्डोनेशिया में रामायण और महाभारत का अच्छा प्रचार था। वहाँ की नृत्य नाटिकाओं में इनकी कथाओं को ही आधार बनाया जाता था।

चम्पा में भी वैष्णव धर्म का प्रचार था। विष्णु पत्नी लक्ष्मी वहाँ की मान्य देवी हैं। विष्णु वाहन गरुण की भी वहाँ अच्छी मान्यता हैं। विष्णु को वहाँ गोविन्द, नारायण, हरि और पुरुषोत्तम नामों से स्मरण किया जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मालया में विष्णु मंदिरों की स्थापना हुई थी। वहाँ के साहित्य में विष्णु कथायें प्रचुरता से उपलब्ध होती हैं। वहाँ विष्णु की मूर्तियों के चार हाथों में शंख चक्र, गदा और पद्म है।

वर्मा में भी विष्णु की मूर्तियाँ उपलब्ध हुई है। वैशाली के चन्द्र वंश में राजा आनन्द चंद्र की मुद्राओं पर भगवान विष्णु के चित्र खुदे हुये है। पंजाब में विष्णु की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

विष्णु ने कच्छप के रूप में अवतार धारण किया था। जापान में ब्रह्मा का रूप, कच्छप जैसा माना जाता है। चीन में कच्छप को ईश्वर का चित्र माना जाता है (Myths of Cheina & Japan) के अनुसार वहाँ कच्छप-अस्थि राजकीय चिह्नों के प्रयोग में आती थी।

विष्णु का मत्स्य अवतार भी है। मिस्र में इसे पवित्रता व पुरुष की जननेन्द्रिय का प्रतीक माना जाता था। वहाँ की माता 'आइसिस' की मूर्तियों के सिर पर विश्व की जनन-शक्ति के प्रतीक में मत्स्य की स्थापना की जाती थी। सुमेर की यूफ्रट्स नदी के किनारे पर बसे 'ए' रिद्' नगर के 'या' देवता की आकृति' मत्स्य' जैसी थी।

विष्णु के वाहन गरुड हैं। सुमेरु में गरुड़ की तरह ही 'जू' पक्षी की उपासना की जाती थी। भारतीय पुराणों में कथा आती है कि गरुड़ पेड़ों को लेकर उड़ जाता था वैसे ही 'जू' पक्षी सृष्टि के प्रस्तर लेख (टेबलेट्स आफ क्रिएशन) लेकर उड़ गया था। महाभारत में इन्द्र और गरुड़ के युद्ध की कथा आती है। इन्द्र विद्युत के देवता माने जाते है। सुमेरु में विद्युत के देवता 'रम्मन' और 'जू' पक्षी के युद्ध का वर्णन आता है।

उपरोक्त उदाहरणों से वैष्णव धर्म की प्राचीनता सिद्ध होती है।

शैव सम्प्रदाय—

शिव या रुद्र की आराधना यहाँ वैदिक काल से ही चली आ रही हैं वामन पुराण (६।८६।९१) में चार शैव सम्प्रदायों— शैव, पाशुपत काल दमन, तथा कापालिक का वर्णन है। पाशुपत के ऐतिहासिक संस्थापक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का नाम नकुलीश बताया जाता है। ऐतिहासिकों ने नकुलीश का समय १०५ ई० के लगभग सिद्ध किया है। इसी समय कुषाण नरेश हुविष्क राज्य करते थे। उनके सिक्कों पर मुकुटधारी शिव के चित्र उत्कीर्ण उपलब्ध होते हैं। शैव सिद्धान्त मत का दक्षिण में बहुत प्रचार है। इसके व्यापक प्रचार का श्रेय चार सन्तों—सन्त अल्वरार, सन्त ज्ञान सम्बन्ध सन्त सुन्दर मूर्ति और सन्त माणिक्य वाचक को है। प्रचारक सन्तों में ८४ का नाम आता है। इनमेंसे प्रथम सन्त नक्कड़ पहली शती के, दूसरे सन्त कण्णप्य दूसरी शती के बतलाये जाते है। कश्मीर में प्रचलित शैव दर्शन को 'प्रत्यभिज्ञातंत्र' कहा जाता है। इसके मूल प्रवर्तक वसुगुप्त का समय ८०० ई० लगभग बताया जाता हैं। वसुगुप्त के एक शिष्य कल्लट नवम शती के उतरार्द्ध के हैं। इस मत के प्रसिद्ध दार्शनिक अभिनवगुप्त ९५०-१००० ई के बताये जाते हैं।

भारतीय संस्कृति के मूल ग्रन्थों वेद, आरण्यक और उपनिषद् आदि में तो प्राचीन काल से ही शिव का वर्णन आता है। यजुर्वेद के १६ वें अध्याय के ६६ मन्त्रों में शिव के विभिन्न प्रचलित रूपों का विशद वर्णन मिलता है। तैत्तिरीय आरण्यक (१०।१६) में रुद्र दर्शन का स्पष्टीकरण हैं–

"सर्वो वै रुद्र स्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु"

अर्थात् "सभी रुद्र हैं, अतः उस रुद्र के लिये नमस्कार है।"

रुद्राक्षजाबालोपनिषद् में रुद्र के प्रिय आभूषण रुद्राक्ष की उत्पत्ति आदि का वर्णन है। दक्षिणोमूर्त्युपनिषद् से महर्षि मार्कण्डेय ने शौन-कादि ऋषियों को चिरञ्जीवी होने के लिये शिव तत्व का उपदेश दिया है। शरभोपनिषद् में शिव को सब का प्रभु, श्रेष्ठ, पिता, परमेश्वर, ब्रह्मा का भी धारण कर्ता, वेदों का निर्णायक और देवताओं का पिता कहा है—

प्रभुं वरेण्यं पितरं महेशं यो ब्राह्माण विदधातिततस्मै। वेदाश्च सर्वान्प्रहिणोति चाण्यं तं वै प्रभुं पितरं देवतानाम् ।२।

रुद्रोपनिषद् में ब्राह्मण की कसौटी यह बताई है कि जो शिव की पूजा में लगा रहे।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"ब्राह्मण: शिव पूजारता"

कालाग्नि रुद्रोपनिषद् में त्रिपुण्ड का विधि विधान लिखा गया है। नील रुद्रोपनिषद् से नीलकन्ठ भगवान का वर्णन है। रुद्र हृदयोपनिषद् में शुकदेव के पूछने पर व्यासजी ने कहा कि भगवान रुद्र में सब देवता निवास करते हैं—

सर्वदेवात्मको रुद्र: सर्वे देवा: शिवात्मका:।

अथर्व उपनिषद में शिव-दर्शन का उल्लेख करते हुये स्वयं शिव ने कहा कि 'मैं एक हूँ। मैं भूत वर्तमान और भविष्य काल में हूँ मेरे अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है—

सोऽब्रवीदहमेकं प्रथममासं वर्तापि च भविष्यामि च मान्य: कश्चित्मत्ता व्यतिरिक्त इति।

श्वेताश्वतरोपनिषद् (३।२) में कहा है कि जो अपनी शक्तियों से सब लोकों पर प्रभुत्व रहता है, वह रुद्र एक ही है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्तु
ये इमांल्लौकानीशत ईशनोभि:।

अर्थात् 'रुद्र एक ही है उसका कोई दूसरा रूप नहीं है। वही ही इन लोकों का ईश होता है और ईश ही शक्तियों से शासन किया करता है।

पांच मुख वाले सद्योजात–शिव की भावना की जाती है। बौद्धों ने वज्र सत्व, रत्नसम्भव, अणभिताम, अमोघसिद्ध तथा वैराचन पाँच ध्यानी बुद्धो और मंजुश्री, अवलोकतेश्वर, वज्रपाणि, आकाशगर्भ' अतिगर्भ, मैत्रेय, सामन्तभद्र आदि बोधि सत्वों की कल्पना की है। देवताओं की कल्पना के साथ उनकी पूजा के विधि विधान और यन्त्र भी बनाये। तन्त्र की तरह मन्त्र जप, मण्डल रचना उपचार, अभिषेक, वीज मन्त्र, मुद्रा प्रदर्शन, ध्यान आदि का विस्तृत विधि विधान उपलब्ध होता है। बौद्धों के मन्त्र भी संस्कृत के होते है।

विदेशों में भी शिवोपासना प्राचीनकाल में फैली हुई थी। रुद्र की यजुर्वेद ३५।८ में त्र्यम्बक कहा गया है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अव रुद्रमदोमह्यवं देवं त्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यसंस्कारद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नोव्यवसाययात् ।।

'पापियों को संतप्त करने वाले, तीन नेत्र वाले अथवा जिनके नेत्र से तीन लोक प्रकाशित होते हैं, शत्रु जेता प्राणियों में आत्मा के रूप में विद्यमान एवं स्तुत रुद्र को अन्य देवताओं से प्रथक अथवा उत्कृष्ट जानकर उन्हें यज्ञ भाग देते हैं। वे हमें निवास से युक्त करें और हमें समान मनुष्यों में अच्छे बनावें और हमें श्रेष्ठ कर्मों में लगावें। इसलिये हम इनको जपते हैं।'

मिश्र के देवता 'असरआ' अथवा 'आसाइरिस' को भी 'त्र्यम्बक' की संज्ञा दी गई थी।

पुराणों में रुद्र की पहली दक्ष पुत्री सती का नाम आता है। मिश्र के प्राचीन देवता, 'एनुमु' की पत्नी का नाम भी 'सती' था जो आकाशकी देवी मानी जाती थी। सर्प शिवका प्रसिद्ध आभूषण है। अथर्व वेद में पृथ्वी को दिव्य सर्पों से घिरा हुआ बताया गया है। चीनी धार्मिक कथाओं में भी ऐसा ही वर्णन आता है।

काठमाँडू का पशुपतिनाथ का मन्दिर नेपालियों के लिये वाराणसी है। यहाँ साड़े तीन फिट ऊँचा शिवलिंग स्थापित है। इससे अनेकों कथायें सम्बद्ध हैं। एक कथा के अनुसार कहा जाता है कि ब्रह्मा ने महादेव को कैलाश पर काफी संख्या में गाये दी थी, तभी से उनका नाम पशुपतिनाथ पड़ा। यहीं पर ही वागमती का प्रवाह दिखलाई देता है, जो दो पहाड़ियों के बीच बहती है। एक का नाम मृगस्थली है और दूसरी का कैलाश है, पशुपतिनाथ के प्रति नेपाल में अपार श्रद्धा है। लाखों की संख्या में यात्री हर वर्ष उनके दर्शन के लिये आते हैं, जिसमें भारत के यात्री भी सम्मिलित होतें हैं। यहाँ जगह-जगह पर शिव-मन्दिर है। पर्वत का नामकरण भी शिव के आधार पर है जैसे, कैलाश पर्वत, शिवपुरी पर्वतमाला आदि। शिव की जटाओं से निकलने वाली गंगा के प्रति वहाँ गहरी आस्था है। यह भूमि सती पार्वती की क्रीड़ा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थली और शिव का तपोस्थल रही है। इसलिये इसके वातावरण में शिव-ही गूँजते हैं।

प्राचीन काल में काम्बुज हिन्दू राष्ट्र था। भारतीयों ने वहाँ अपना उपनिवेश स्थापित किया था। वहाँ के आकाश में हिन्दूत्व की ध्वनि गूँजती थी। वहाँ के निवासी तो हिन्दुत्व की सजीव मूर्ति थे ही, उनकी भावनायें मन व बुद्धि भी हिन्दुत्व के रङ्ग में रंगे हुये थे। उनके रीति, रिवाज, विश्वास व परम्परायें भी हिन्दुत्व से ओत प्रोत थीं। वहाँ के प्राचीन इतिहास से हमारा सिर ऊँचा उठता है, एक अद्भुत गौरव की अनुभूति होती है।

काम्बुज की राजधानी श्रेष्ठपुर में श्रुत वर्मा ने भद्रेश्वर शिव का मन्दिर बनवाया था। स्याम की सीमा पर त्र्यम्बकेश्वर महादेव की स्थापना का श्रेय भववर्मा को है। यह नासिक के त्र्यम्बकेश्वर महादेव से मिलता है। हर्ष वर्मा द्वितीय ने मेवन में शंकर और पार्वतीके मंदिर बनवाये थे। सूर्य वर्मा प्रथमने शिवकपिलेश्वर का विशाल मंदिरनिर्मित कराया था। बेथोन में भगवान शिव के विषपानादि की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। वहाँ के नगर भी शिव के नाम पर हैं—जैसे शम्भुपुरी। हरि-हरालय तो वहाँ की राजधानियो में ही है।

कम्बुज की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में एक गाथा है कि प्राचीन काल में एक आर्य राजा स्वम्भू यहाँ आया। वह शिव का अनन्य उपासक था। शिव की कृपा से उसे मीरा नाम की स्त्री प्राप्त हुई। उसकी मृत्यु पर उसे बहुत दुःख हुआ। एक भयंकर स्थान में उसने चारों ओर अपने को नागों से घिरा हुआ देखा। उन्हें मारने के लिये उसने तलवार उठाई तो नागराज ने कहा कि हम और तुम तो एक देव के उपासक है। हम तुम्हें नहीं काट सकते। तुम प्रसन्नता पूर्वक यहाँ निवास करो। कम्बुज का विवाह नागराज की कन्या से हुआ था। उसने अनेकों शिव मन्दिर बनवाये थे।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सोम वर्मा न विधि-विधान सहित त्रिभुवनेश्वर की प्रतिष्ठापना कराई थीं। राजा महेन्द्र वर्मा शैव था। एक शिखालेख में शिव-पद के दान का वर्णन है।

वाली में शिव और बुद्ध दोनों की पूजा होती है। इसलिये वहाँ के ब्राह्मण-वर्ग दो भागों में विभक्त हैं। शैव धर्म वहाँ व्यापक रूप से फैला हुआ हैं। यहाँ बुद्ध को शिव का छोटा भाई मानते हैं। जब कोई धार्मिक आयोजन होता हैं तो वहाँ ४ शैव पुरोहित और एक बुद्ध पुरोहित बुलाया जाता है। उमा की वहाँ अच्छी मान्यता है। सूर्य-सेवन वहाँ की प्रधान पूजा मानी जाती है। वह शिव की ही पूजा है। न कि सूर्य की। यहाँ शैव व तान्त्रिक क्रियाओं का प्रचलन है। उनका इष्ट मन्त्र है–'ॐ महादेवा नमः' तथा 'ॐ शिवाय नमः'। शरीर शुद्धि का मन्त्र है–'ॐ प्रसाद स्थित शरीर शिव-शुचि-निमालय नमः। वह प्रत्येक अंग पर भस्म धारण करते है। जिस प्रकार यहाँ पर गणेश आदि की मूर्तियाँ व चित्र द्वारों पर देखे जाते हैं, उसी प्रकार से वहाँ के द्वारों पर शिव आदि देवताओं के दर्शन होते हैं। वहाँ के ग्राम ग्राम में ब्रह्मा और विष्णु के साथ शिव की मूर्तियों की प्रतिष्ठापना है। प्रत्येक घर में वह चित्र रूप में विद्यमान है। शिव की जटाओं से निकलने वाली पवित्रतम नदी गङ्गा के प्रतीक रूप में वहाँ तीर्थ गङ्गा नाम एक तालाब है जिसके जल को वह पवित्र मानते है। गङ्गा के प्रति गहरी आस्था का प्रतीक वहाँ का भूतपिशाच नृत्य है। इसमें देवी-नृत्य करने वाला अपने शरीर में भाला मार देता है जिसे शक्तिशाली व्यक्ति भी निकालने में असमर्थ रहता है परन्तु मन्दिर का पुजारी 'हे गङ्गा-हे गङ्गा' कहता हुआ आता हैं और कुछ मन्त्रों के उच्चारण से, गङ्गा जल से उसे छींटा देता है। भाला निकल जाता है और गङ्गा जल का ही लेप कर देने से वह घाव अच्छा हो जाता है। यह भावुकता नहीं है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक भारतीय यात्री श्री के० के० आलमेल की आँखों देखी घटना है। इस सम्बन्ध में एक लेख 'धर्मयुग' में छपा था।

लाओस की वन्य जातियाँ और आदिवासी शिव को अपना आराध्य देव मानते हैं। वहाँ के किसान भी उन्हें अपना इष्टदेव मानते हैं। हर वर्ष जब वर्षा का आरम्भ होता है और खेतोंमें हल चलाने की आवश्यकता अनुभव होती हैं तों वह लोग लिंग-पूजाके रूप में एक महान्‌उत्सव मनाते हैं। जिस तरह से भारत में प्रत्येक शुभ कार्य को ईश्वर की आराधना से आरम्भ किया जाता है ताकि उसमें सफलता प्राप्त हो लाओस के किसान लिंग-पूजा करके अपने कार्य का शुभारम्भ करते हैं ताकि कल्याण के देवता शिव उनको अच्छी खेती करने में सहायक सिद्ध हों। उनकी धारणा शक्ति फल लाती है, तभी हजारों वर्षों से वह इस प्रथा को चलाते आ रहे है। आज भी यह प्रथा वहाँ जीवित-जाग्रत है। वह लोग इसे अपना जीवन साथी बनाये हुये हैं।

थाईलैंण्ड और भारत में प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्ध है। शिवोपासना का वहाँ व्यापक प्रचार था, चौथी शती के एक संस्कृत शिलालेख से शिव की शूर्ति उपलब्ध हुई है। लवपुरी के मन्दिर में शिव को मूर्ति स्थापित है। थाई का राजा राम बोद्ध धर्मावलम्वी था परन्तु फिर भी उसने शिव की मूर्तियों की स्थापना कराई थी। बैंकाक के बाद (मन्दिर) के बारह शिव लिंग और नदी की मूर्तियाँ है। आज भी भगवान शिव की मूर्ति उच्च न्यायालय के सामने स्थापित है जिनकी जटाओं से गङ्गा की विमल धारा प्रवाहित हो रही हैं। श्याम की सीमा पर एक शिव लिंग मिला है जिसकी पीठिका पर खेत के देखने से पता लगता है कि भव वर्मा ने त्र्यम्बकेश्वर शिवलिंग को प्रतिष्टापित किया था। 'आयुध्या' में खड़ी एक शिव की मूर्ति मिली है।

संजय वंश का यहाँ राज्य रहा है, जो शैव मतावलम्बी थे। वहाँ के मन्दिरों में विष्णु और ब्रह्मा की मूर्तियों के साथ शिव की मूर्तियों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी उपलब्ध होती है। वहाँ के साहित्य में देवताओं के साथ शिव व नन्दी की कथायें प्रचुरता से मिलती है। गङ्गा पर वहाँ के निवासियों की अपार श्रद्धा है। वहाँ के शिव त्रिशूलधारी हैं। गणेश हाथी की सूँड से सुसज्जित हैं। ७३ ई० के एक संस्कृत के शिलालेख से स्पष्ट हैं कि मतरम के राजा संजय के कुँजर कुंज में एक शिवलिंग की स्थापना की थी।

शिव की उपासना का अन्त मलाया में कैसे हुआ, इसका उल्लेख करते हुये रघुनाथसिंह ने लिखा है कि शिव को कुरान वर्णित हजरत सुलेमान के समकक्ष लाया गया। अल्लाह और कुरान का अस्तित्व पृथ्वी की रचना के पहले माना गया। कालान्तर में शिव को एक मूर्तिपूजक जिन का रूप दिया गया, अर्थात् शिव से अल्लाह नाराज है क्योंकि वह प्रतिमा-पूजक हैं। मूढ़ जनता ने इसे ही सत्य समझा। सुलेमान तथा शिव दोनों को समकक्ष समझने के स्थान पर सुलेमान को अल्लाह का प्रेमी और शिव को द्रोही बना दिया। द्रोही की कौन पूजा करेगा ? शिव को जनता भूल गई।'

वर्मा में शिव के कैलाश को भी ग्रहण किया गया है। वैशाली के चन्द्र वंश के राजा आन्दचन्द्र की मुद्राओं पर शिव की प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। वर्मा निवासी बौद्ध और हिन्दू मत दोनों को मानते थे। शैव मत भी वहाँ प्रचलित था।

हिन्द चीन पर १५०० वर्ष तक हिन्दुओं का राज्य रहा है। यहाँ के कुछ उपलब्ध शिला लेखों से पता चलता है कि उपनिषद् की हेमवती उमा और महेश्वर की पूजा प्रचार यहाँ काफी था। शिव यहाँ महादेव, शिव, देव लिंगेश्वर, पशुपति आदि नामों से पुजते थे। इन दिनों भी वहाँ के साहित्य में शिव-पुराण और लिंग-पुराण की कथायें पायी जाती हैं।

जापानी विद्वान 'तकाकसू' ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है, कि जापान के आईस नगर में लिंग-पूजन होता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राचीन काल में लंका भारत का एक अङ्ग रहा है। वहाँ भी शिवलिंग की उपासना प्रचलित है।

जावा के कुंजर कुंज भाग में शैव मन्दिर स्थापित है। एक अभिलेख में त्रिनेत्रधारी शिव के सामने देवता खड़े प्रार्थना कर रहे हैं, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा शोभायमान है। उन्हें चमत्कारों के केन्द्र, श्रेष्ठता के प्रतीक, सृष्टि के रचयिता, स्वर्ण शरीर वाले, पापों का नाश करने वाले, संसार के नियम बनाने वाले, धर्म के उद्गम केन्द्र, भौतिक सुख, शान्ति व इच्छाओं की पूर्ति करने वाला, बताया गया है। इससे स्पष्ट है कि जावा में शैव धर्म का प्रचार था और भगवान शिव के प्रति उनकी दृढ़ आस्था थी।

मंगोलिया के मन्दिरों की छतों पर नागों के चित्र अङ्कित है। मन्दिरों पर भारतीयता की स्पष्ट छाप है। शिव की जटाओं से निकलने वाली गङ्गा के प्रति यह लोग अटूट आस्था रखते हैं। इसे दिव्य नदी मानते हैं और उसके जल को साक्षात् अमृत। उनके कोई पूर्वज भारत आकर गङ्गाजल ले गये और उसकी एक-एक बूँद को उन्होंने अपनी चाय में मिला लिया। उस गङ्गाजल मिश्रित चाय का कुछ अंश वह नित्य बचाकर रख देते हैं और चाय बनाकर उसमें मिलाकर पीते हैं। इस तरह से सैकड़ों वर्षों से वह गङ्गाजल मिश्रित चाय पीते हैं। डा० रघुवीर जब मंगोलिया गये तो यह जानने पर कि वह भारत से आये हैं, लोग झुककर उनके चरण छूते थे और कहते थे 'आप गङ्गा के देश के पूज्य ब्राह्मण हैं। हमारे बड़े भाग्य हैं जो हमारी भूमि में आपके चरण पड़े हैं।'

तिब्बत भारत का पड़ौसी देश है। इसकी भाषा, संस्कृत भारत से प्रभावित थी। जब बौद्ध धर्म भारत में तीव्र गति से फैला और बौद्ध प्रचारक एशिया के अन्य देशों में भी प्राचारार्थ गये तो सारे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देश ने इनका स्वागत किया। इससे पहले 'वोन' धर्म था जो वैदिक-शैव सम्प्रदाय का बिगड़ा हुआ रूप था, जिसमें जादू-टोने आदि का बाहुल्य था। तिब्बत-सम्राट ने नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य शांत रहित को बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये बुलबाया, परन्तु प्रकृति ने उनका साथ न दिया। प्राकृतिक उपद्रवों के कारण उनका आगमन संदेहास्पद प्रतीत होने लगा। अतः आचार्य पद्मसम्भव को निमन्त्रित किया गया जो एक योग्य भारतीय तांत्रिक थे। तिब्बत में इनका ऊँचा स्थान है और वहाँ के लोग उन्हें सदेह अमर मानते हैं। लामा धर्म के चलाने वाले यही थे।

ऐसा भी कहा जाता है कि विक्रम विश्वविद्यालय में अवलोवितेश्वर का मन्दिर था जहाँ और तांत्रिक देवी-देवताओं के मन्दिर थे, जिनकी संख्या ५३ बताई जाती है तिब्बत में वज्रयान का प्रवेश यही से हुआ।

तन्त्र का प्रवेश तिब्बत में कब हुआ ? इसके बारे में अनेकों मत हैं। ऐतिहासिकों का कहना है कि श्री चक्रसम्मार नाम गुरुओं की परम्परा का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि अनुमानतः ई० ६३२ के समय वहाँ शाक्य सम्पदस्य की स्थापनी हुई होगी।

विक्रम शिला के तान्त्रिक आचार्य दीपकर श्रीज्ञान ने तिब्बत में आकर अनेक भारतीय पुस्तकों का तिब्वत की भाषा में अनुवाद किया था। तिब्वत में तन्त्र को ऋज् युद कहा जाता है। इसके ८७ भाग बताये जाते हैं, जिनमें उपासना, पद्धति, मन्त्र, कवच, स्तोत्र आदि का विस्तृत विवेचन है।

यहाँ की शिव-शक्ति का प्रतिनिधित्व करने वाली अर्धनारीश्वर जैसी मूर्तियाँ तिब्वत में उपलब्ध होती हैं, जिन्हें यव-युम् कहते हैं।

तांत्रिक बौद्धों के प्रमुख मन्त्र 'ओ३म् मणि पद्मे हुम्' की वहाँ विशेष प्रकार से उपासना होती है। मन्त्र जप का माध्यम वहाँ एक चरखी होती है जिस पर हजारों की संख्या में मन्त्र लिखे रहते हैं। उसको लामा घुमाते

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहते है। लामाओं द्वारा चरखी के इस प्रकार घुमाने को ही मन्त्र जप माना जाता है ८

स्वयं तिब्बत में भी योग्य तान्त्रिक सिद्ध हो गए हैं। वे प्रकाश हीन गुफाओं में एकान्तवास करके घोर तपश्चर्यायें करते थे। इनके एकान्त वास की अवधि २०-४० वर्ष की होती थी। तिब्बत में एक सिद्ध तांत्रिक जे-चुन्-रे-पा के एकान्त वास का वर्णन डा० स्वेन हैडिन ने अपनी पुस्तक 'ट्रॉस हिमालय' में किया है। उन्होंने यह भी लिखा था कि १७०-६-७ ई० में वहाँ तीन चार सौ एकान्तवासी तपस्वी थे, जिनके गुफाओं में प्रविष्ट होने पर सदैव के लिये द्वार बन्द कर लिये गये। केवल एक छिद्र से उसको भोजन दिया जाता था।

जब से चीन का साम्राज्य तिब्बत में हुआ, ऐसे केन्द्रों का विध्वंस होना स्वाभाविक ही है।

काबुल के तीर्थों के नाम से पता चलता है कि वहाँ कभी शिव के उपासक काफी संख्या में अवश्य रहते होंगे। दर्रा शक्कर या शंकर में में स्थित मानसरोवर है। लोगर के पास बाण-गंगा हैं। ताशकुर्गान और एवक के बीच 'चक्र आव' नाम से शिवजी का बग्मा हैं। सराय ख्वाजा के पास कमाल नगर में जटाशंकर है।

अरब मे काफी संख्या में शिवलिंग मिले हैं। यह शिवलिंग इतने वृहताकार होते थे कि उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना भी एक समस्या होती थी। यही कारण है कि शिवोपासना के प्रति आस्था न रहने पर भी वे शिवलिंग आज भी उपस्थित है और उन्हें दूसरे नाम से पूजा जाता हैं और ऐसा कहा जाता है कि मक्का शरीफ में 'सग ए-असबद' नामक शिवलिंग को हज पर जाने वाले यात्री बड़ी श्रद्धा से चूमते है।

दक्षिण अमेरिका के पेरु राज्य में शिवलिंग मिले है। ब्राजील में खण्डहरों से शिव की प्रतिमायें मिली हैं। प्रेञ्बू की नगर में गोल, दो मुझे शिवलिंग उपलब्ध हुये हैं।
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिश्र में 'असिरिस और 'आईसिस' नामक शिवलिंग की पूजा प्रथा है। शिव की तरह 'असिरस' व्याघ्रचर्म ओढ़े हुये हैं, गले व मस्तक पर सर्प लिपटे हुए हैं। उनका वाहन एपिस नाम का बैल है। उनके पूजन में विल्व पत्र की तरह के ही एक पेड़ के पत्ते काम मे आते हैं।

यूनान में 'बेकस' और 'प्रियसस' नामक लिंग की उपासना होती है।

पं० राधवाचार्य शास्त्री के अनुसार उतरी अफ्रीका की अरब जातियों में, इटली की राजधानी रोम, स्काटलैण्ड के ग्लासगी नगर में नार्वे, स्वीडन, आस्ट्रिया, हंगरी, रूस, असिरिया के विलन में भी शिव-लिंग की पूजा होती है।

इस तरह से कल्याण के प्रतीक शिव की सारे विश्व में व्यापक रूप से उपासना होती हैं, जो उनकी प्राचीनता का प्रतीक है।

शाक्त तन्त्रों का विशाल साहित्य है। इनकी संख्या हजार से ऊपर बताई जाती है, परन्तु बहुत कम ही अभी प्रकाश में आ पाये हैं। शक्ति उपासना वैदिक काल से ही चली आ रही है। वेद में शक्ति-उपासना का निर्देश है। 'अदिति' को मातृभाव का प्रतीक माना गया है (ऋग्वेद १।१२।१२३) में। उसे गन्धर्व, मनुष्यं, पितार, असुर और सम्पूर्ण भूतों की माता घोषित किया गया है। ब्राह्मण और आरण्यक काल में भी यह विद्यमान थी। उपनिषद् काल में-इसकी उपासना स्पष्ट रूपसे दृष्टि-गोचर होती है। काली, तारा, सविता, देवी, त्रिपुरा-तापिनी, बहवृच, सौभाग्य लक्ष्मी, कौल, अरुणा, अद्वैतभाव, सरस्वती हृदय, भावना आदि उपनिषदों में शक्ति-उपासना का उद्घोष मिलता है। पौराणिक साहित्य में तो प्रखर रूप में इसका प्रदर्शन किया गया है। देवी-भागवत, मार्कण्डेय पुराण, कालिका पुराण व कूर्म पुराण में तत्सम्बन्धी विपुल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामग्री उपलब्ध होती है। देवी पुराण नामक उप पुराण में शक्ति तत्व का स्वतन्त्र निरूपण किया गया है। महाभारत में भी अनेकों ऐसे प्रसङ्ग आते हैं।

शक्ति-उपासना का प्रभाव प्राचीन काल से ही हमें विदेशों में भी दिखाई देता है। Myths of China & Japan में लिखा है कि चीन देवताओं की माता 'चुनी' थी, जो आदिम जलराशि 'अपस' की देवी मानी जाती है। इस 'अपस' से सृष्टि की रचना बताई जाती हैं। Egyptian Myth and Legend में लिखा है कि मिश्र में आकाश देवी का नाम 'नटु' जो अपने शरीर से ही समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करती थी। यह देवताओं की माता थी। योरोप की आदिम जातियों में 'दानु' को दानवों की माता कहा गया हैं। 'Island of Bali' नामक पुस्तक के अनुसार बाली में देवी दानु, देवी गङ्गा, गिरि पुत्री, दुर्गा और उमा को शिव की पत्नियां बताया गया है। जिनकी वहाँ उपासना होती थी। Myths of Babyloniaके अनुसार मिस्र में तारा रूपिणी देवी का नाम 'सोरिवन' था, जिसने सूर्यदेवता 'रा' के विरोधियों का वध किया था। दुर्गा ने भी देव-विरोधी तत्वों का नाश किया था। दुर्गा का वाहन सिंह था परन्तु मिश्र की 'सोरिवन' देवी का सिर सिंह का-सा था और उनके हाथ में खेग का आयुध था। मिस्र की ही एक और मातृदेवो—'तेपनुतने' का पूरा रूप ही सिंहनी जैसा था।

चीनी 'कन्फ्यूगिअस' धर्म में शिव-शक्ति का प्रतिपादन इन शब्दों में किया है—'खिप्रन आकाश है, पिता है, शीत, हिम, मणि, मार्ग वृत्ताकार है और 'ख्यान' पृथ्वी है, माता है, धन, जो, वस्त्र, तडिका, कृष्ण वर्ण और धरती की काली उपजाऊ मिट्टी है। इसमें 'खअन' का अभिप्राय आकाश और 'ख्यान' को पृथ्वी कहा गया है। यह विवरण 'Myths of China and Japan' नामक पुस्तक में दिया गया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिब्बत में तन्त्र-साधन का पहला दीक्षा ग्रन्थ 'वर्दीथस्थल' है, जिनके निर्देशन में साधना की पहली आदि क्रियायें होती है। इसमें ध्यानी वृद्धों की साधना, उनकी मूर्तियों, रूपों और ध्यानों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इन ध्यानी बुद्धों का सम्बन्ध भगवती जननी के साथ है। केन्द्रीय बुद्ध वैरोचन का भगवती जननी से सम्वध है। पूर्व की ओर स्थित 'वंजसत्य अक्षोभ्य' भगवती जननी लोचन से आवद्ध है जिनका तिब्वती नाम है—'संसर्गियासस्पियनमा' अर्थात् बुद्धोलोचन सम्पन्न। दक्षिण की ओर अवस्थित रत्नसम्भव वृद्ध भगवती जननी मापकि के साथ एकात्म है। पश्चिम की ओर स्थित अनन्त आलोक के ध्यन्ती बुद्ध अभिताम (तिव्वत भाषा में—रशन वामया-ईमास) भगवती जननी श्वेताम्वरा पाण्डुरवासिनी के आश्लेप में आबद्ध हैं। अन्तिम बुद्ध आमोघ सिद्धि का सम्वध भगवती जननी तारा से है, जिन्हें तिव्बती भाषा में 'डमला' कहते हैं। वे वहाँ प्रेम, श्रद्धा और भक्ति की प्रतीक है और तिव्वती भाषा में उनकी उपासना 'दामत्शिग डमला' के नाम से होती है। उनके प्रति जनता में इतनी अगाध श्रद्धा है कि ऐसा लगता है जैसे वह वहाँ के धर्म-जीवन पर व्यापक रूप से छाई हुई हैं और भक्तों ने उन्हें अपने हृदय के सबसे ऊँचे आसन पर बैठा रखा है।

इस तरह से शक्ति-उपासना विभिन्न ध्यानी बुद्धों की शक्ति के रूप बौद्ध तन्त्रों में प्रचलित है।

बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सेक्कोद् देंशटीका' में वाराही, परमेश्वरी, लक्ष्मी, नारायणी, ब्राह्मी, रौद्री, ईश्वरी का वर्णन आता है। वज्रलक्ष्मी का भी प्रयोग उपलब्ध होता है, 'साधना-माला' में चतुर्भुजी, कृष्ण, शूकरमुखी आदि देवियों की उपासना का विधि-विधान मिलता है। महायान की 'तारादेवी' और हीनयान की 'मणिमेखला' देवी प्रसिद्ध हैं। बौद्धों में 'बज्रवाराही' देवी की उपासना होती है, जो ब्राह्मणों की 'दण्डिनी और 'वाराही' की तरह ही है। इन सबसे 'तारा' का विशेष महत्व है। तन्त्रों के शिव-शक्ति की तरह बौद्धों में तार-तारा की जोड़

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रसिद्ध है। प्रणव को ब्राह्मण और बौद्ध दोनों 'तार' कहते हैं। 'तार देवता की पत्नी का नाम 'तारा' रखा गया।

हिन्दू धर्म तथा बौद्ध धर्म में शक्ति उपासना का जैसा विशाल साहित्य भण्डार उपलब्ध होता है वैसा निर्माण जैन धर्म में तो नहीं हो पाया परन्तु उपासना-पद्धति में अवश्य अनुकरण किया गया है। देवी-उपासना, मूर्तियों की उपासना और तदनुसार मन्दिरों की प्रतिष्ठा प्रचलित है। जैन शास्त्रों का ऐसा विश्वास है कि पृथ्वी के नीचे और ऊपर देवी-देवताओं का निवास है और उनकी उपासना करने से हर प्रकार की भौतिक इच्छाओं की पूर्ति होना सम्भव है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस उपासना की मान्यता है।

श्वेताम्बर मत के २४ देवता निम्न प्रकार हैं, हर तीर्थंकर के अलग शासन देवता हैं—

१—चक्रेश्वरी २—अजितबला ३—दुरितारी ४—कालिका ५—महाकाली ६—श्यामा ७—शांता ८—ज्वाला ९—सुताखा १०—अशोका ११—श्रीवत्सा १२—चण्डा १३—विजया १४—अंकुशा १५—पन्नगा १६—निर्वाणी १७—बला १८—धारिणी १९—धरण-प्रिया २०—नरदत्ता २१—गांधारी २२—अम्बिका २३—पद्मावती २४—सिद्धायका।

जैनों में शक्ति सम्प्रदाय के सरस्वती कल्प की मान्यता है। सरस्वती में १६ विद्याव्यूह का वर्णन आता है—

१—रोहिणी २—प्रज्ञप्ति ३—वज्रश्रृंखला ४—कुलिशांकुशा ५—चक्रेश्वरी ६—नरदात्ता ७—काली ८—महाकाली ९—गौरी १० गांधारी ११—सर्वास्त्रमहाज्वाला १२—मानवी १३—वैरोट्या १४—अछुप्ता (अच्युता) १५—मानसी और १६—महामानसिका।

सिद्ध सारस्वताचार्य श्री बालचन्द्र सूरि का प्रसिद्ध 'वसन्त-विलास' महाकाव्य है। इसके आरम्भ में कवि ने तन्त्र पद्धति का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुकरण किया है और सरस्वती-उपासना से कवित्व के विकास को माना हैं।

जैन धर्म में भी शाक्तों की तरह मन्त्रों का बाहुल्य है। हेमचन्द्र सूरि के योगशास्त्र से यह मत स्पष्ट प्रतीत होता है। मन्त्रों ॐह्रीं आदि बीजाक्षरों को ज्यों का त्यों लिया गया है। जैन-शास्त्रों ने स्वयं माना है कि उनके यह मन्त्र प्राचीन परम्परा से अपनाये हुए हैं, अपने नहीं है। तन्त्रोक्त मन्त्र शास्त्र की सम्पूर्ण पद्धति को मान्यता दी गई है।

जैन धर्म में दो प्रकार के ध्यान हैं—धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान। धर्म ध्यान के चार भाग हैं-१. पिन्डस्थ, २. पदस्थ, ३. रूपस्थ, ४. रूप वर्जित। पहले दो ध्यानों में तन्त्र-पद्धति को अपनाया गया है। ध्यान का केन्द्र, जहाँ केवल पिण्ड हो, उसे पिण्डस्थ ध्यान कहते हैं। पदस्थ ध्यान में शब्द शक्ति के खण्ड, पद, वाक्य पर भावना को प्रविष्ट करना होता है। तन्त्रोंने देवी देवताओं के आकार और बाह्य लक्षणों पर विशेष बल दिया है। शब्द ब्रह्म के वर्ण पद वाक्य पर तो तन्त्र का अधिकार है। जैन धर्म में मातृका ध्यान प्रसिद्ध, है जिसके मूल पंकज में 'अ क च ट तप य श' वर्णाण्टक बनाना पड़ता हैं। हृदय स्थान में चौबीस दल में, मध्य कर्णिका के साथ में २५ अक्षर और नाभि स्थान में षोडश दल में सोलह स्वर मात्राओं का ध्यान करना होता है। इस ध्यान की सफलता से अनेकों प्रकार की सिद्धियों का वर्णन किया गया है।

जैन धर्म ईश्वरवादी न होने पर भी शक्ति उपासना की मान्यता देता है, इसमें तन्त्र का ही गौरव निहित है।

जैसे काली माँ की उपासना भारत में होती है, वैसे ही कुमारी मेरी की ईसाई धर्म में, मिश्र में आइसि की और ग्रीक धर्म में पैल्लस अथीनी की पूजा की जाती है।

इतिहासकारों और पुरातत्ववेत्ताओं ने तन्त्र और शक्ति उपासना की प्राचीनता पर खोजें की हैं। कुछ ने शक्ति उपासना को काव्यों के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आधार पर, ईसा से ३०० वर्ष माना है। उस समय के सिक्कों पर दुर्गा के चित्र उपलब्ध होते हैं। ईसा पूर्व पहली शती में विदेशी शक शासक 'अयस' के सिक्कों पर 'गजलक्ष्मी, का चित्र अंकित है। छठी शती की लिपि में वज्रान्तप की एक मुहर पर भी यही मूर्ति देखी गईहै।

गुप्तकाल में भी शक्ति साधना के चित्र मिलते है। चन्द्रगुप्त प्रथम का काल ३०५ से ३२५ ई० स्वीकार किया जाता है। उनकों सिक्कों पर सिंहवाहिनी दुर्गा के चित्र हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) की उदय गिरि गुफाओं में महिषासुर मर्दिनी की प्रतिमायें उपलब्ध हुई है। कुषाण राजाओं का काल १०० से २०० ई०के लगभग है उनकी मुद्राओं पर भी सिंह के साथ देवी का चित्र मिला है। दक्षिण में चोल राजाओं के समय की प्रतिमायें प्राप्त होती हैं। एलोरा की गुफाओं में सप्तमातृका, पार्वती और महिषासुर मर्दिनी की प्रतिमायें देखी जा सकती हैं। उदय-गिरि की गुफा में सप्तमातृका की प्रतिमा उपलब्ध हुई है।

यह खोज यहीं तक सीमित नहीं है, पुरातत्ववेत्ताओं ने मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई का भी अध्ययन किया है। वहाँ सिन्ध के निकटवर्ती क्षेत्र में योनि के आकार की मूर्तियाँ मिली है जिससे यह सहज परिणाम निकलता है कि ताम्र युग में वहाँ शक्ति उपासना के प्रति आस्था थी। सर जान मार्शल ने भारत में शक्ति-उपासना को प्राचीनकाल से चली आती हुई माना है। श्री बी० सी० मजूमदार ने यह सिद्ध किया है कि दुर्गा पूजन ईसा के पूर्व ब्राह्मण ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है।

वास्तविकता यह है कि शक्ति-उपासना का प्रारम्भ ऋग्वेद काल से ही होता आ रहा है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का १२५ वाँ सूक्त, जिसका नाम देवी सूक्त है, इसकी साक्षी है—जिसके अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऋग्वेद-काल में मातृ-उपासना प्रचलित थी। अतः मातृ-उपासना वैदिक काल से चली आ रही, है यह निश्चित है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सौरसम्प्रदाय–

तन्त्र के सौर सम्प्रदाय में सूर्य की उपासना का विधान है। इसकी प्राचीनता भी वेद से सम्बन्ध हैं। वेद में स्पष्ट रूप से सूर्य को चराचर विश्व का स्रष्टा कहा गया है–

"नूनं जनां सूर्येण प्रसूतः"

इसको "प्राः प्रजानाम्" भी कहा गया है। ऋग्वे (२।३।१) में प्रार्थना की गई है कि सूर्य के प्रकाश से हम कभी न बिछड़ें–

"न सूर्यस्त्व संद्यशे मा युथोथाः"

अथर्ववेद में भी सूर्य की महिमा का वर्णन है–

अन्तकाय मुत्येव नमः प्राणा अपाना इत ते रतन्ताय।
इहायमस्तु पुरूषः सहासुनः सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके।।
(८।१।१)

"मृत्युरूप देवता (परमात्मा) को नमस्कार है। तेरे प्राण और अपान इसकी कृपा से शरीर में विस्तार करें (अर्थात् वह सुख से जीवित रहें)। यह मनुष्य, प्राण और प्रजा अन्य लोगों सहित सूर्य प्रकाश युक्त पृथ्वी पर निवास करता रहे।"

सूर्य को इन्द्र नाम से भी विहित किया गया है। इस नाम से इस प्रकार स्तुति की गई है—

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरणं सगरस्य बुध्नात्।

"इन्द्र के लिये वाणियाँ अनिशित सर्ग वाली होती हैं और सगर बुधन से जप (जल) प्रेरण होता है।"

सूर्य सम्बन्धी अन्य अनेकों मन्त्र उपलब्ध होते हैं, जिनमें विभिन्न विषयों का प्रतिपादन किया है।

सूर्योपनिषद् में अथर्ववेदादि के मन्त्रों की व्याख्या की गई है। कहा है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते । सूर्याद्यत: पर्जन्योऽन्नमात्मा ।। (३)

"सूर्य सम्पूर्ण स्थावर जंगम के आत्मा हैं । इन्हीं से इन भूतों की उत्पत्ति होती है । इन्हीं से यज्ञ, मेघ और आत्मा आदिभूति होते है । और भी कहा है–

नमस्ते आदित्य । त्वमेव प्रत्यक्षं कर्मकर्ताऽसि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्माऽसि । त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि । त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रऽसि । त्वमेव प्रत्यक्षमृथसि । त्वमेव प्रत्यक्षं यजुरसि यजुरसि । त्वमेव प्रत्यक्षं सामासि । त्वमेव प्रत्यक्षमथर्वाऽसि । त्वमेव सर्वं छन्दोऽसि । (४)

"आदित्य ! हम तुम्हें नमस्कार करते हैं । तुम्हीं कर्म और कर्त्ताहो तुम्हीं ब्रह्मा और विष्णु हो । तुम्हीं रुद्र एवं ऋक्, यजु, साम और अथर्व ही । तुम सम्पूर्ण छन्दरूप हो ।"

इससे सिद्ध होता है उपनिषद् काल में भी यह उपासना विद्यमान थी । अब भी हिंदू धर्म की प्रत्येक उपासना-विधि में सूर्य को अर्घ्य देना सम्मिलित है । द्विज संध्या करके सूर्य-दर्शन करना नहीं भूलता

ऐसा लगता है कि विदेशों में भी प्राचीन काल में सूर्योपासना विद्यमान थी । रोम, यूनान, मिश्र, जर्मनी देशों के प्राचीन ग्रन्थों में भी सूर्यदेव की स्तुति पाई जाती है । विदेशों में अभी तक विद्यमान कुछ सूर्य-मन्दिर प्राचीन काल से सूर्य भगवान की महिमा को गा रहे हैं ।श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में लिखा है कि दक्षिण अमेरिका के पुरु नामक राज्य में एक सूर्य मन्दिर है। इसकी मूर्ति का आकार उन्नाव के सूर्य मन्दिर से मिलता है । काश्मीर में ललितादित्य द्वारा निर्मित 'मार्त्तण्ड' मन्दिर वालूवक (मसोपोटामिया) का सूर्य मन्दिर सूर्योपासना की प्राचीनता को सिद्ध कर रहे हैं ।

कनाडा में १९५४ के मई में टोरन्टो विश्वविद्यालय के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक वैज्ञानिक को श्वेत पहाड़ी पर घूमते हुए एक चित्र मिला। यह मूर्ति श्वेत पत्थर से बनी हुई थी और 'चार्लीफिप्स' नाम के वनस्पति वैज्ञानिक के शरीर के बराबर थी। वह सूर्यदेव की मूर्ति थी। इसके सम्बन्ध में अनुमान लगाया गया था कि इसका निर्माण मिश्री पिरामिडों, ग्रीक सभ्यता, जूलियस सीजर और ईसा के जन्म से पहले हुआ था। इसमें स्पष्ट है कि वहाँ सूर्य मन्दिर होगा और अवश्य सूर्योपासना होती होगी। निश्चय ही सारे विश्व में सूर्योपासना किसी न किसी रूप में, प्राचीनकाल में प्रचलित थी।

गाणपत्य सम्प्रदाय--

गणपति उपासना भारत में प्राचीन काल से चली आ रही है। ऋग्वेद (१०।११२।६) में कहा है—

निषुसोद गणपते गणेशु त्वामाहुर्विप्रतम कवीनाम्।
न ऋते त्वत्क्रियते किञ्जनारे महामक मघवञ्चिवयर्च ।।

अर्थात्—हे गणपते ! तुम सब प्राणियों के स्वामी हो। तुम स्तोताओं के मध्य सुशोभित होओ। कार्यकुशल व्यक्तियों में तुम सबसे अधिक बुद्धिमान हो। पास या दूर कहीं कोई तुमसे अधिक अनुष्ठित नहीं होता हमारी ऋचाओं को वढ़ाकर विभिन्न फल वाली करो।'

उपनिषद् काल में भी गणपति-पूजा विद्यमान थी। गणपत्युपनिषद् इसका प्रमाण है। वहाँ कहा है—

ॐ लं नमस्ते गणपतये ।।१।।

त्वमेव प्रत्यक्षं तत्वमसि। त्वमेव केवलं कर्ताऽसि। वमेव काल धर्तासि। त्वसेव केवलं हर्ताऽसि। त्वमेव सव खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्माऽसि ।।२।।

नित्यमृतं वच्मि। सत्यं वाच्म ।।३।।

अर्थात् "भगवान गणपति को नमस्कार।१।

तुम्हीं कर्ता-धर्ता हो एवं प्रत्यक्ष तत्व हो। तुम्हीं इन रूपों में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विराजमान साक्षात् ब्रह्म हो। तुम ही नित्य एवं आत्मस्वरूप हो।२।

मैं सप्यपूर्वक एवं न्यायपूर्वक कहता हूँ।३।

स्मृति युग भी गणपति-पूजा का उद्घोष करता है।

एवं विनायकं पूज्यं ग्रहांश्चैव विधानतः।
कर्मणां फलमाप्नोति श्रियश्च चाप्नोत्यमाम्॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय २६२)

इसमें कहा गया है कि गणेशजी की पूजा करके नवग्रहों का पूजन करना चाहिए जिससे सब कामों के फल की प्राप्ति होती है। और लक्ष्मी की उपलब्धि होती है।

पुराण युग में तो इस पूजा का उज्ज्वल रूप में उदय हुआ। एक अलग गणेश पुराण की रचना की गई। यह तन्त्र के पाँचों सम्प्रदायों-वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य और सौर के लौकिक और वैदिक, शुभ और अशुभ सभी तरह के कार्यों में प्रथम पूज्य हैं—

शैवेस्त्वदीयैरुत वैष्णवैश्च, शाक्तैश्च सौरैरपि सर्वकार्ये।
शुभाशुभे लौकिक वैदिके च, त्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात्॥

उपासना का यह क्रम आज तक चला आ रहा है, प्राचीन काल में विदेशों में भी गणेश पूजन होता था। इसके निम्न प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी द्वारा प्रकाशित श्रीमती ए० गेट्टी द्वारा लिखित पुस्तक में इस सम्बन्ध में यथार्थ सामग्री उपस्थित की गई है। विद्वान लेखिका अपनी पुस्तक में लिखती है कि जापान में गणेश का नाम 'काङ्गनेन', चीनी में 'कुआन-शी-तियेन' मङ्गोलियने भाषा में 'त्वोत खारुन खागान' कम्बोडियन भाषा में 'प्राहकेनीज', बर्मी में 'महापिरेन्न', भोट भाषा में 'सोडसदाग' पाया जाता है और इसी नाम से उनकी वहाँ पूजा होती हैं।

दक्षिण अमेरिका में ब्राजील में जो पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुई थी, उसमें से गणेश की मूर्ति निकली थी। विशेषज्ञों का कहना है कि यह मूर्ति चार पाँच हजार वर्ष पुरानी ही प्रतीत होती है। अमेरिका में गणेश की प्रतिमा उपलब्ध होने की पुष्टि 'हिन्दू अमेरिका' के लेखक ने भी की है। इसका यह स्पष्ट अर्थ होता है ईसा से पूर्व ही अमेरिका में गणेश पूजा का प्रचार था और वहाँ आर्यों ने अपने उपनिवेश बनाये थे। पाश्चात्य इतिहास कोलम्बस को पता लगाने वाला, अविष्कारक मानते हैं। इस तरह से उनकी धारणा निराधार प्रतीत होती है।

जर्मनी में तो गणेश का सम्मान असामान्य रूप से है। उन्होंने तो इसे अपना राष्ट्रीय चिन्ह ही बना डाला। उनके राष्ट्रीय ध्वज पर इस चिन्ह को देखा जा सकता हैं। अन्वेपकों का कहना है कि ईसाइयों का पवित्र चिन्ह गणेश के चिन्ह का अपभ्रंश है। मुसलमान लोग माथे पर चाँद तारे के चिन्ह भिन्न-भिन्न रूपों में ग्रहण करते हैं। यह उनकी संस्कृति का मुख्य चिन्ह माना जाता है। गणेश के अनेक नामों में एक भालचन्द्र भी है, जिसका अभिप्राय है—मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने वाला। अनुमान लगाया जाता हैं कि हजरत मुहम्मदसे पहले मुसलमान लोग वहाँ के गाणपत्य सम्प्रदाय के मानने वाले होंगे, तभी भालचन्द्र का उन्होंने अनुकरण किया।

चीन और जापान में गणेश की त्रिमूर्ति को 'फो' नाम से सम्बोधित करते हैं। इतिहास साक्षी हैं कि 'कोबो दाइशी' नाम के विद्वान ने "विनायक-पूजन" आरम्भ करवाया था, क्योंकि चीन में 'विनायक' 'कांगीनेन' नामों से गणेश की उपासना होती है। यूनान में 'ओरेनस' नाम से गणेश पूजन किया जाता है। उनके धर्म-ग्रन्थों में इसका काफी महत्व बताया गया है। जावा में शिव के मन्दिरों में ही गणेश की प्रतिमायें स्थापित हैं। तिब्बत में प्रत्येक मठ में गणेश-पूजा की प्रथा है। बोर्नियो और बाली द्वीप में भी गणेश पूजन प्रचलित है। नेपाल में 'विनायक' और 'हेरम्ब' नाम से गणेश-पूजन होता है। बौद्ध सम्प्रदाय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में महायानों में मूर्ति-पूजा प्रचलित होने पर 'विनायक' के रूप में गणेश पूजन होता है। वर्मा और श्याम में कांस्य धातु की गणेश-मूर्तियों का पूजन श्रेष्ठ माना जाता है। मिश्र के 'एक्टोन' नाम से गणेश पूजन होता है, जो गणेश के एक नाम 'एकदन्त' का अपभ्रंश दिखाई देता है।

उपलब्ध जानकारी से विदित है कि तन्त्र के पाँचों सम्प्रदायों पर प्राचीनता की छाप दृष्टिगोचर होती है।

———

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र की गोपनीयता

तन्त्र ने जहाँ सभी वर्णों को साधना का अधिकार दिया है तथा जाति-भेद और स्त्री-पुरुष का कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया है, वहाँ साधन-विधियों को भी गुप्त रखने का आदेश दिया है, जो अधिकारी गुरु से ही प्राप्त की जा सकती है। गुरु भी अधिकारी की परीक्षा करके रहस्यमयी विद्या की दीक्षा देता है। गोपनीयता का कारण साधना-विधियों को उसके दुरुपयोग से बचाना है, क्योंकि तन्त्र, शक्ति विकास का विज्ञान है। इससे अपना व समाज का हित भी किया जा सकता है और अहित भी। ऐसे भी विधान है, जिनसे आतंक और भय का वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है। ऐसी स्थिति न आने पाये, इसलिए साधना-विज्ञान हर किसी को नहीं बताया जाता, उसे गुप्त रखा जाता है।

उपनिषदों की पराविद्या को 'गुह्य' को घोषित किया गया है और उस रहस्यमयी को दूसरों को न बताने का आदेश दिया गया है। गीताकार 'राजयोग' को भी 'गुह्य' की सजा देते हैं। तन्त्रों में अपनी साधना को 'योनि' की तरह गुप्त रखने की बात कही गई है। जिस तरह स्त्री अपने गुह्य अंगों को पति के अतिरिक्त सबसे छिपाती है, उसी तरह अपने पति—भगवान के अतिरिक्त इसे सबसे छिपाना चाहिए। प्राचीन यूनान में दीक्षा-विधि का एक अंग यह शपथ लेना भी था कि वह अपनी साधना के सम्बन्ध में किसी अनधिकारी को नही बतायेगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ईसाई धर्म के आरम्म नियम बहुत कड़े थे—यदि कोई विशिष्ट प्रकार की दीक्षा को जनसाधारण पर प्रकट कर देता था, तो उसे मृत्युदण्ड दिया जाता था।

सर फ्रांसिस वर्नार्ड ने प्रेरणा दी है—

Hold fast in silence all that is your own. Lest icy fingers be laid upon your lips to seal them forever.

"जो कुछ तुम्हें मिल चुका है, उसे अपने ही पास सुरक्षित रखो, ऐसा न हो कि वर्फ की तरह ठण्डी उँगलियाँ तुम्हारे ओठों को सदैव के लिए बन्द कर दें।

ईसा ने कहा है—

"Let not thy left hand know what thy right hand gives."

"अपने वाम हस्त को यह ज्ञान न होने दो कि तुम्हारा दक्षिण हस्त क्या देता है।"

To you it is given to know the mysteries of God, but to them it is not.'

(संतपक्षी)

'तुम्हें भगवान के रहस्यों को जानने की आज्ञा दी जाती है, किन्तु उनको नहीं जो इसके अधिकारी नहीं हैं।"

"It is the fatal law of the certain Sanctuaries that the revelatiou of their secrets entails death to those who are unable to preserve them."

"ईसाई धर्म की कई आदिम संस्थाओं का एक घातक नियम यह था कि जो उनके रहस्यों की रक्षा नहीं कर सकता था ऐसे सदस्य को वे मृत्यु दण्ड देते थे।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इससे स्पष्ट है कि रहस्यमय विद्या की प्रथा केवल भारत में ही नहीं है, ईसाई धर्म और पांश्चात्य संस्कृति में भी इसके अंकुर मिलते हैं। वे भी अधिकारी व्यक्ति को ही देने के पक्ष में हैं—

गीता भी गोपनीयता की नीति का समर्थन करती है—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मा योऽभ्यसूयति ॥

"तपस्या-विहीन, अभक्त या जिसको अभी तक इन बातों के सुनने की तीव्र इच्छा न हुई हो और जो गुरु-सेवा परायण न हो या जो मुझसे (ईश्वर) से असूया रखता हों, ऐसे व्यक्ति से ये बातें न कहनी चाहिए-"

तन्त्र-शास्त्रों में तो इस आशय के स्पष्ट आदेश दिये गये है—

स्वमन्त्रा नोपदेष्टव्यो वक्तव्यश्चं न संसदि।
गोपनीयं तथा शास्त्रं रक्षणीयं शरीरवत् ॥

(नारद पंचरात्र)

"अपने मन्त्र का किसी को उपदेश न दे, सभा में उसे न कहे। पूजा-विधि को गुप्त रखे और तद्विषयक शास्त्र की शरीर की तरह रक्षा करे।"

इति मे सम्यगाख्याताः शान्ति शुद्धायादि कल्पना।
रहस्यादि रहस्याश्च गोपनीयास्त्वया सदा ॥

अर्थात् हे नारदजी ! यह हमने आप से शान्ति-शुद्धादि कल्पना रहस्य कहा है। यह पहस्य का भी रहस्य है। यह आपको सर्वदा गुप्त योग्य है।"

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः।
त्वयापि गोपितव्यं हि न देयं यस्य कस्यचित् ॥

"इन साधन-विधियों को यत्नपूर्वक गुह्य रखो—गुप्त रखो। इनको अपने तक ही सीमित रखो, किसी ऐसे-वैसे को मत बताओ।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न देयं पर शिष्येभ्योऽहकेभ्योनिविशेषतः ।
शिष्येभ्यो भक्ति युक्तेभ्योह्यन्मथामृत्युमाप्नुयात् ।।

"दूसरे शिष्य के लिये विशेषकर भक्ति रहित के लिए यह मन्त्र कभी न देना चाहिए । इसकी दीक्षा भक्तियुक्त शिष्य को ही देनी चाहिए अन्यथा मृत्यु की प्राप्ति होती है ।"

कथितं सारभूत ते खेलत्खञ्जनलोचने ।
ब्रह्मज्ञानं मया देवि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।
नातः परतरं किञ्चिद्विद्यते मम मानसे ।
गोपनीयं सदा भद्रे पशुपमार सन्निधौ ।।

(योगिनी तन्त्र)

अथात् "हे देवदेवेशि ! यह अत्यन्त सारभूत ब्रह्मज्ञान मैंने तुम्हारे प्रति कहा हैं अब अधिक क्या सुनने की इच्छा रखती हो ? इससे बढ़-कर अन्य कुछ मेरे अन्तर में नहीं है। इस ज्ञान को पशु और पामर व्यक्ति से सदा गुप्त रखना चाहिए ।"

अति गुह्यमिदं पृष्टं त्वयां ब्रह्मतनूद्भव ।
न कस्यापि वक्तव्यं दुष्टाय पिशुनाय च ।।

(गायत्री तन्त्र)

"यह सुनकर श्री नारायण ने कहा कि हे नारद ! आपने अत्यन्त गुप्त बात पूछी है, परन्तु यह किसी दुष्ट या पिशुन (छलिया) से नहीं कहनी चाहिए ।"

रहस्याति रहस्यानां रहस्योऽयं महेश्वरि ।
ऊर्ध्वाम्नायः समाख्याताः समासेन न विस्तरात् ।।
कुलार्णवमिदं शास्त्रं योगिनीनां हृदि स्थितम् ।
प्रकाशितं मया चाद्य गोपनीयं हृदि प्रयत्नतः ।।

(कुलार्णव तन्त्र)

अर्थात् "हे महेश्वरि ! यह जो परम गूढ़ एवं अत्यन्त ही रहस्य है, उसका भी यह सबसे प्रबल रहस्य है जो कि ऊर्ध्वाम्नाय मैंने तुम्हारे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामने वतला दिया है। इसका विशेष विशद् वर्णन नहीं किया है, यह कुलार्णव शास्त्र है, जो योगनियों के हृदय में स्थित रहा करता है। यह कभी किसी के सामने प्रकाशित नहीं किया जाता है। तुम्हारे अत्यन्त प्रेमानुरोध होने के कारण मैंने आज प्रकाशित कर दिया है। किन्तु मेरा आदेश है कि इसको प्रयत्न पूर्वक अत्यन्त गुप्त रखा जाय।"

कुलार्णव तन्त्र में हीं एक और स्थान पर आया है कि अपना धन, स्त्री और प्राण तक अर्पण कर दे परन्तु गुह्य शास्त्र को अनाधिकारी व्यक्ति को न वताए।

उपरोक्त प्रमाणों में यह वताया गया है कि तन्त्र एक गुप्त विज्ञान हैं। उसकी सव बातें सव लोगों के सामने प्रकट करने योग्य नहीं होतीं। कारण यह है कि तान्त्रिक साधनाएँ बड़ी क्लिष्ट होती हैं। वे उतनी ही कठिन हैं जितना कि समुद्र की तली में घुसकर मोती निकालना। गोताखोर लोग जान को जोखिम में डालकर पानी में बड़ी गहराई तक नीचे उतरते हैं, तब बहुत प्रयत्न के बाद उन्हें कुछ मोती हाथ लगते हैं। परन्तु इस क्रिया में अनेक बार उन्हें जल-जन्तुओं का सामना करना पड़ता है। नट अपनी कला दिखाकर लोगो को मुग्ध कर देता है और प्रशंसा भी प्राप्त करता है, परन्तु यदि एक वार भी चूक जाये तो खैर नहीं।

तन्त्र प्रकृति से संग्राम करके उसकी रहस्यमयी शक्तियों का विजय लाभ करना है। इसके लिये असाधारण प्रयत्न करने पड़ते है और उनकी असाधारण प्रतिक्रिया होती है। पानी में जोर से ढेला फेंकने पर वहाँ का पानी जोर से उछाल खाता है और एक छोटे विस्फोट जैसी स्थिति दृष्टिगोचर होती है। तांत्रिक साधक भी एक रहस्यमयी साधना द्वारा प्रकृति के अन्तराल में छिपी हुई शक्ति को प्राप्त करने के लिए अपनी साधना पर आक्रमण करता है, उसकी एक प्रतिक्रिया होतीं है। उस प्रतिक्रिया से कभी-कभी साधक के अहित हो जाने का भी भय रहता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जब बन्दूक चलाई जाती है तो जिस समय नली में से गोली बाहर निकलती है, उस समय वह पीछे की ओर एक झटका मारती है और भयंकर शब्द करती है। यदि बन्दूक चलाने वाला कमजोर प्रकृति का हो, तो उस झटके से पीछे की ओर गिर सकता है, धड़ाके की आवाजसे डर या घबरा सकता है। चन्दन के वृक्षों के निकट सर्पों का निवास रहता है, गुलाब के फूलों में काँटे होते है, शहद प्राप्त करने के लिये मक्खियों के डंकों का सामना करना पड़ता है सर्प की मणी पाने के लिये भयंकर सर्प से और गजमुक्ता पाने के लिये मदोन्मत्त हाथी से जूझना पड़ता है। तांत्रिक पुरुषार्थ ऐसे हीं विकट पुरुषार्थ हैं, जिनके पीछे खतरों की शृंखला जुड़ी रहती है। यदि ऐसा न होता, तो उन लाभों को हर कोई आसानी से प्राप्त कर लिया करता।

तलवार की धार पर चलने के समान तन्त्र विद्या के कठिन साधन हैं। उसके लिये साधक में पुरुषार्थ, साहस, दृढ़ता, निर्भयता और धैर्य पर्याप्त होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति सुयोग्य-अनुभवी गुरु की अध्यक्षता में यदि स्थिर चित्त से श्रद्धापूर्वक साधना करें, तो वे अभीष्ट साधना में सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु यदि निर्बल मनोभूमि के—डरपोक, सन्देही स्वभाव वाले, अश्रद्धालु अस्थिर मति किसी साधन को करें और थोड़ा-सा सङ्कट उपस्थित होते ही उसे छोड़ भागें, तो वैसा ही परिणाम होता है जैसा किसी सिंह या सर्प को पहले तो छेड़ा जाय पर जब वह क्रुद्ध होकर अपनी ओर लपके तो लाठी-डण्डा फेंककर बेतहाशा भागा जाय। इस प्रकार छोड़कर भागने वाले मनुष्य के पीछे वह सिंह या सर्प अधिक क्रोधपूर्वक अधिक साहस के साथ दौड़ेगा और उसे पछाड़ देगा। देखा गया है कि मनुष्य किसी भूत-पिशाच को वश में करने के लिए तांत्रिक साधना करते है, जब उनकी साधना आगे बढ़ चलती है तो ऐसे भय सामने आते हैं, जिनसे डर कर वह मनुष्य अपनी साधना छोड़ बैठे। यदि उस साधक में साहस नहीं होता और किसी भयंकर दृश्य को देखकर डर जाता है तो डराने वाली शक्तियाँ उस पर हमला बोल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देती हैं। फलस्वरूप उनको भयंकर क्षति का सामना करना पड़ता है। कई व्यक्ति भयंकर बीमार पड़ते हैं, कई पागल हो जाते हैं, अनेकों तो प्राणों तक से हाथ धो बैठते हैं।

तन्त्र एक उत्तेजनात्मक उग्र प्रणाली है। इस प्रक्रिया के अनुसार जो साधना की जाती है, उससे प्रकृति के अन्तराल में बड़े प्रबल कम्पन उत्पन्न होते हैं, जिनके कारण ताप और विक्षोभ की मात्रा बढ़ती है, गर्मी के दिनों में सूर्य की प्रचण्ड किरणों के कारण जब वायुमण्डल का और तूफान के दौर बढ़ते हैं। उस उग्र उत्तेजना में खतरे बढ़ जाते हैं, किसी को लू सता जाती है, किसी की आँख में धूल भर जाती है, अनेकों के शरीर फोड़े-फुन्सियों से भर जाते हैं। आँधी से छप्पर उड़ जाते हैं, पेड़ उखड़ जाते है। कई बार हवा के भँवर पड़ जाते हैं, जो एक छोठे दायरे में बड़ी तेजी से नाचते हुये डरावने शक्ल में दिखाई पड़ते हैं। तन्त्र की साधनाओं से ग्रीष्म-काल का-सा उत्पात पैदा होता है और मनुष्य के बाह्य एवं आंतरिक वातावरण में एक प्रकार की सूक्ष्म लू एवं आंधी चलने लगती है, जिसकी प्रचण्डता के भयंकर झकझोरे लगते हैं। यह झकझोरे मस्तिष्क के कल्पना-तन्तुओं से जब संघर्ष करते हैं, तो अनेकों प्रकार की भयंकर प्रतिमूर्तियाँ दृष्टिगोचर होने लगती है। ऐसे अवसर पर डरावने, भूत, पिशाच, देव दानव जैसी आकृतियाँ दीख सकती हैं, दृष्टि-दोष उत्पन्न होने से कुछ-का कुछ दिखाई दे सकता है। अनेकों प्रकार के शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्शों का अनुभव हो सकता है। यदि साधक निर्भयता पूर्वक इन स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं को देखकर मुस्कुराता न रहे, तो उसका साहस नष्ट हो सकता है और उन भयंकरताओं से यदि वह भयभीत हो जाय तो वह भय उसके लिये संकट बन सकता है।

इस प्रकार की कठिनाई का हर कोई मुकाबिला नहीं कर सकता, इसके लिये एक विशेष प्रकार की साहसपूर्ण मनोभूमि होनी चाहिये।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनुष्य दूसरों के विषय में तो परीक्षा-बुद्धि रखता है। पर अपनी स्थिति का ठीक परीक्षण कोई विरले ही कर सकते हैं। 'मैं तन्त्र-साधनायें कर सकता हूँ या नहीं" इसका निर्णय अपने लिए कोई मनुष्य स्वयं नहीं कर सकता। इसके लिए उसे किसी दूसरे अनुभवी व्यक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। जैसे रोगी अपनी चिकित्सा स्वयं नहीं कर सकता, विद्यार्थी अपने आप अपनी शिक्षा नहीं बढ़ा सकता, वैसे ही तांत्रिक साधनायें भी अपने आप नहीं की जा सकती, इसके लिए किसी विज्ञ पुरुप को गुरु नियुक्त करना होता है। वह गुरु सबसे पहले अपने शिष्यकी मनोभूमि का परीक्षण करता है और तब उस परीक्षण के आधार पर यह निश्चित करता है कि उस व्यक्ति के लिए कौन सी साधना उपयोगी होगी और उसकी विधि में अन्यों की अपेक्षा क्या हेर फेर करना ठीक होगा। साधना काल में जो विक्षेप आते हैं, उनका तात्कालिक उपचार और भविष्य के लिए सुरक्षा व्यवस्था बताना भी गुरु के द्वारा ही सम्भव है। इसलिए तन्त्र की साधनाएँ गुरु-परम्परा से चलती हैं। सिद्धि के लोभ से अनधिकारी साधक स्वयं, अपने आप, उन्हें ऊँट पटाँग,ढंग से न करने लग जायें, इसलिये उन्हें गुप्त रखा जाता है। रोगी के निकट मिठाइयाँ नहीं रखी जाती क्योंकि पचाने की शक्ति न रखते हुए भी यदि लोभवश उसने उन्हें खाना शुरू कर दिया तो अन्ततः उसी का अहित होगा।

तन्त्र की साधनायें सिद्ध कर लेने के बाद जो शक्ति आती है उसका यदि दुरुपयोग होने लगे तो उससे संसार में बड़ी अव्यवस्था फैल सकती है, दूसरों का अहित हो सकता है, अनधिकारी लोगों को अनावश्यक रीति से लाभ या हानि पहुँचाने से उनका अनिष्ट ही होता है। बिना परिश्रम के जो लाभ प्राप्त होता है, वह अनेक प्रकार के दुर्गुण पैदा करता है। जिसने जुआ खेलकर दस हजार रुपया कमाया है, वह उन रुपयों का सदुपयोग नहीं कर सकता और न उसके द्वारा वास्तविक सुख प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार ईश्वरीय या राजकीय विधि से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिलने वाले स्वाभाविक दण्ड-विधान को छोड़कर किसी को मन्त्र-बल से हानि पहुँचाई जाती है, वह गर्भपात के समान अहितकार ही होती है। तन्त्र में सफल हुआ व्यक्ति ऐसी गड़बड़ी पैदा कर सकता है। इसलिये हर किसी को उसकी साधना करने का अधिकार नहीं दिया गया है। वह तो एक विशेष मनोभूमि के व्यक्तियों के लिए सीमित क्षेत्र में उपयोग होने वाली वस्तु है, इसलिए उसका सार्वजनिक प्रकाशन नहीं किया जाता। हमारे घर केवल उन्हीं व्यक्तियों के प्रयोग के लिए खुले होते हैं, जो उनमें अधिकारपूर्वक रहते हैं। निजी घरों का उपयोग धर्मशाला की तरह नहीं हो सकता और न हर कोई मनुष्य किसी के घर में प्रवेश कर सकता है। तन्त्र भी अधिकार-सम्पन्न मनोभूमि वाले विशेष व्यक्तियों का घर है, उसमें हर व्यक्ति का प्रवेश नहीं है। इसलिए उसे नियत सीमा तक रखने के लिए गुप्त ही रखा है।

हम देखते हैं कि तन्त्र ग्रन्थों में जो साधन-विधियाँ लिखी गई है, वे बड़ी अधूरी है। उनमें दो ही बातें मिलती हैं—एक साधन का फल, दूसरे साधन-विधि का कोई छोटा सा अङ्ग। जैसे एक स्थान पर आया है कि छोंकर की लकड़ी से हवन करने से पुत्र की उत्पत्ति होती है।" केवल इतने मात्र उल्लेख को पूर्ण समझकर जो छोंकर की लकड़ियों के गठ्ठे भट्टी में झोंकेगा, उसकी मनोकामना पूर्ण नहीं होगी। मूर्ख लोग समझेंगे कि साधना विधि झूठी है। परन्तु इस शैलीं से वर्णन करने में तन्त्रकारों का मन्तव्य यह है कि साधना विधि का संकेत कायम रहे, जिससे इस विद्या का लोप न हो, वह विस्मृत न हो जाय। यह सूत्र-प्रणाली है। व्याकरण आदि के सूत्र बहुत छोटे-छोटे होते हैं, उनमें अक्षर दस-दस या पाँच-पाँच ही होते हैं, पर अर्थ बहुत भारी छिपा होता है। यह सूत्र, उस विस्तृत अर्थ के लघु संकेत मात्र होते हैं, जिससे यदि कम करना पड़े और समय पड़ने पर पूरी बात याद हो जावे। डाकू, षड्यन्त्रकारी या खुफिया पुलिस आदि के व्यक्ति भी कुछ ऐसे ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संकेत बना लेते हैं जिनके द्वारा दो चार शब्द कह देने मात्र से एक बड़ा अर्थ समझ लिया जाता है।

"छोंकर के हवन से पुत्र-प्राप्ति"—इस संकेत-सूत्र में एक भारी विधान छिपा हुआ है। किस मनोभूमि का मनुष्य, किस समय, किन उपकरणों के द्वारा, किन मन्त्रों से कितना हवन करे तब पुत्र प्राप्ति हो—यह सब विधान उस सूत्र में छिपाकर रखा गया है। छिपाया इसलिए कि अनाधिकारी लोग उसका प्रयोग न कर सकें। संकेत रूप में कहा गया है इसलिए कि कालान्तर में उस तथ्य का विस्मरण न हो जाय, आधार मालूम रहने से आगे की बात का स्मरण हो आना सुगम होता है। तन्त्र ग्रन्थों में साधना विधियों को गुप्त रखने पर बार-बार जोर दिया गया है साथ ही कहीं-कहीं ऐसी विधियाँ भी बताई गई हैं, जो देखने में बड़ी सुगम मालूम पड़ती हैं पर उनका फल बड़ा भारी पाया गया है। इस दिशा के अनजान लोगों के लिए यह गोरखा धंधा बड़ा उलझन भरा है। वे भी उसे अत्यन्त सरल समझते हैं और उसे असत्य मानते हैं। पर वस्तुस्थिति दूसरी ही है। संकेत सूत्रों की विधि से उन साधनाओं का थोड़ा सा वर्णन करके तन्त्रकारों ने अपनी रहस्यवादी मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

तन्त्र का विषय गोपनीय है, इसलिए तन्त्र ग्रन्थों में ऐसी अनेक साधनायें प्राप्त होती हैं, जिनमें धन, सन्तान, स्त्री, यश, आरोग्य, पद प्राप्ति, रोग-निवारण, शत्रु-नाश, पाप नाश, वशीकरण आदि लाभों का वर्णन है और संकेत रूप से उन साधनाओं का एक अंश बताया गया है। परन्तु यह भली प्रकार स्मरण रखना चाहिए कि इन संक्षिप्त संकेतों के पीछे एक भारी कर्मकाण्ड एवं विधि विधान है। वह पुस्तकों में नहीं वरन् अनुभवी, साधना-सम्पन्न व्यक्तियों से प्राप्त होता है।

अपनी साधना को गुप्त रखने का एक आध्यात्मिक कारण भी है। साधना की प्रसिद्धि जब दूसरों में फैलती हैं, तो साधक का यश

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

फैलना स्वाभाविक है। इस सम्मान से साधक के मन:क्षेत्र में अहंकार की प्रवृत्ति होती है, जो साधक के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होती है। यदि साधक इस स्तर पर पहुँच चुका हो, कि वह अपने तप की पूँजी से दूसरों को भी लाभान्वित कर सकें, तब तो उसकी आत्मिक गिरावट के सभी चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगते हैं। कारण स्पष्ट है—उसकी प्रसिद्धि सुनकर जनसाधारण उसके पास अपनी ईच्छाओं और कामनाओं को पूरा कराने के लिए पहुँचने लगते हैं। यदि किसी को किसी प्रकार का लाभ हुआ, तब तो वह सिद्ध पुरुष घोषित कर दिए जाते हैं और जनता भेड़ चाल से उसे घेर लेती है। साधक को भी अपनी सफलता पर प्रसन्नता होती है। तब वे उलझन में फँस जाते हैं। यदि किसी को निराश लौटना पड़ा, तो उनके सम्मान को धक्का लगेगा। सबकी आशाओं की पूर्ति करने लगें तो अपनी आत्मिक सम्पत्ति समाप्त हो जायगी, जिसे पूरा करने के लिए काफी तपस्या करनी होगी। साधन-काल में दूसरों के अन्न पर शरीर का पालन पोषण होने लगा तो साधना भ्रष्ट होने की सम्भावना रहेगी, क्योंकि जो अन्न ग्रहण कर रहे हैं, न जाने वह कैसा है? मानसिक निर्माण उस अन्न पर निर्भर करता है। इसीलिये कुलार्णव तन्त्र में स्पष्ट है—

यस्यान्ने तु पुष्टांगो जपं होमं समाचरेत।
अन्नदातु फलस्यार्घं चार्धं कतुर्न संशय: ॥

—कुलार्णव तन्त्र

"दूसरे व्यक्ति के अन्न से अङ्ग पुष्ट करके जप, हवन करने वाले साधक को उसका आधा फल ही मिल पाता है। उसका आधा तो अन्न देने वाले को मिलता है।"

साधना को प्रकट करने में हानि ही हानि परिलक्षित होती है, क्योंकि उससे अहंकार का पोषण होता है। इसे आध्यात्मिक मार्जन का महान् शत्रु माना जाता है। जब तक अहंकार मन में निवास करता है, तब तक साधना में प्रगति रुकी रहती है। निरंहकारी साधक हो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधना में सफलता प्राप्त कर सकता है। अतः यह पुष्ट न होने पाये, इसके लिए तन्त्र-शास्त्रों में कड़े नियम निर्धारित किये हैं। उनमें प्रमुख है—अपनी साधना को किसी पर प्रकट न करना। तन्त्रों की आज्ञा है कि "जब जनसाधारण को यह पता चल जाता है कि यह व्यक्ति तांत्रिक साधक है, तो उसी दिन उस साधक की मृत्यु मान लेनी चाहिए।" इसलिए साधक की भलाई इसी में है कि वह अपनी साधना का ढोल न पीटे, वरन् उसे छिपाकर रखे तभी वह अन्त तक उसके निर्विघ्न संचालन में सफल हो पाएगा। प्रसिद्ध का लोभ, उसके लिये सदैव फिसलने के अवसर उपस्थित करता रहेगा यह निश्चित है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र का अधिकार

तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत,
शिरोव्रतं विधि वद्‌यैस्तु चीर्णम् ।।
(मुण्डक ३।२।१०)

"यह ब्रह्मविद्या उन्हीं से कहें, जिन्होंने विधिपूर्वक शिरोव्रत यज्ञ सम्पन्न किया हो।"

विद्या हं वै ब्राह्मण माजगाम गोपाय मां शेवधिष्ठेऽहमस्मि ।
(वशिष्ठ स्मृति)

"ब्रह्माविद्या ब्राह्मण के पास पहुंची और बोली कि मैं ही तेरा खजाना हूँ।"

ब्राह्मण को भौतिक जीवन में भले ही निर्धन या अभावग्रस्त रहना पड़ता हो, पर उसके पास आत्मिक सम्पन्नता इतनी प्रचुर मात्रा में होती है कि वह अपना ही नहीं, दूसरे असंख्यों का भी कल्याण कर सकता है। अपने ही नहीं, दूसरों के जीवनों को भी आनन्द एवं उल्लास से पूर्ण कर कता है। स्वयं तो रोग-शोक रहित होता ही है, दूसरों को भी निरामय, निंशंक, निर्भय एवं निर्मल बना सकता है। जिनके निज के पास विभूतियों का भाण्डागार भरा हो, उसके लिये दूसरों की छुट पुट सहायता कर सकना कुछ विशेष कठिन नहीं होता।

तपकल्प सत्वदर्शी ऋषियों के सम्पर्क एवं आर्शीवाद से अनेकों का भला होते नित्य ही देखा जाता है। यह अजस्र अनुदान करने को क्षमता उस ब्राह्मण को कहाँ से आती है, इसका रहस्योद्‌घाटन उपरोक्त कंडिका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में किया गया है। ब्रह्मविद्या ब्राह्मण के पास पहुँची और उसे उद्बोधन करते हुए कहा—"मैं ही तेरा खजाना हूं। ऐसा खजाना, जिसमें प्रत्येक स्तर की समृद्धि और सफलता प्रचुर परिणाम में भरी पड़ी है। ऐसे खजाने का पता जिसे लग जाय अथवा जो उसके उपयोग का अधिकारी बन जाये, उसे भला कमी रहेगी भी किस बात की? उसकी शक्ति एवं सामर्थ्य की सीमा भी क्या रहेगी? ब्राह्मण द्वारा अपना और दूसरों का असीम उपकार इसी आधार पर होता है। परा और अपरा महा-शक्तियों का बीज रहस्य जिसके हाथ लग गया हो, उसे इस संसार की कौन सी विभूति उपलब्ध होने से बच सकती है।

महाशक्ति का यह महान भाण्डागार सबके लिये खुला नहीं है। खजाने की ताली विश्वस्त खजाञ्ची के हाथ में ही रहती है, हर कोई उसे अपने पास रखने का अधिकारी नहीं होता। उसी प्रकार शक्ति का वास्तविक एवं परिपक्व लाभ प्राप्त करने के लिए साधक को अपना ब्राह्मणत्व परिपक्व एवं परिपुष्ट करना होता है। उस महती अनुकम्पा को करत लगत करने से पूर्व इस बात की परीक्षा देती होनी है कि वह ब्राह्मण है या नहीं? जो इस कसौटी पर खरा उतरता है, उसे महा-शक्ति का साक्षात्कार होता है और उसे सब कुछ मिल जाता है, जो भगवती के पास है।

शक्ति-उपासना का छुट-पुट लाभ कोई भी उठा सकता है। सकाम उपासनायें बीज मन्त्रों का प्रभाव, अनुष्ठान एवं पुरश्चरणों की शृंखला अपने ढंग के लाभ प्रदान करती रहती है। उनके द्वारा साधक के छुट-पुट कष्ट दूर होते एवं अभीष्ट सफलतायें प्राप्त होने का क्रम चलता रहता है। ऐसे लाभ चमत्कार आये दिन देखने को मिलते रहते हैं, पर यह सब हैं छोटे स्तर की वस्तुएँ। अमुक कष्ट को दूर कर लेना या अमुक सफलता को प्राप्त कर लेना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। ऐसा लाभ तो भौतिक प्रयत्नों से भी प्राप्त किया जा सकता है। उपासना का लाभ तो अन्तरात्मा को अनन्त सामर्थ्य से भर देना और चन्दन वृक्ष की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तरह स्वयं ही सुगन्धित होने के साथ-साथ समीपवर्ती झाड़ झंखाड़ों को भीं अपने ही समान सुरक्षित कर देना है। ऐसा उच्चस्तरीय लाभ प्राप्त करने के लिए मनुष्य को ब्राह्मणत्व के अनुरूप गुण-कर्म स्वभाव अपने में उत्पन्न करने पड़ते हैं। तभी वह खज़ाना मिलता है, जिसके लिये ब्रह्म-विद्या में ब्राह्मण का उद्‌बोधन करते हुए उसे उस महान् भांडागार को हस्तगत कर लेने की प्रेरणा की है।

भगवती की शक्तियाँ सत्पात्र पर ही अवतरित होती है। स्वर्ग से उतरकर गंगा पृथ्वी पर आई, तो उनके धारण करने के लिये शिवजी को अपनी जटायें फैलाकर अवतरण की पृष्ठभूमि तैयार करनी पड़ी थी। भागीरथ के तप से प्रसन्न होकर गंगा ने पृथ्वी पर उतरने का वरदान तो दिया था, पर साथ ही यह भी कह दिया था कि मेरी धारा को सँभालने वाली भूमिका न बनी तो धारा पृथ्वी में छेद करती हुई पाताल को चली जायेगी, उसका लाभ भूलोकवासियों को नहीं मिल सकेगा। इस आवश्यकता की पूर्ति जब शंकर भगवान ने कर दी तब ही गंगावतरण सम्भव हो सका। महाशक्ति की भी ठीक यही स्थिति है, उसे धारण करने के लिये समर्थ पृष्ट भूमि की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है और आवश्यकता की पूर्ति ब्राह्मणत्व के गुण-कर्म स्वभाव से सम्पन्न साधक ही कर सकता है। ऐसा ब्राह्मण मन्त्र की महाशक्ति को अपने में धारण कर सकता है और उससे व्यक्ति एवं समाज का महान् उपकार साध सकता है। कहा भी है—

दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवता:।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तत्स्याद् विप्रोपि देवता ॥

—मत्स्य पुराण

"देवताओं के आधीन सब संसार है। वे देवता मन्त्रों के आधीन है। वे मन्त्र ब्राह्मण द्वारा प्रयुक्त होते हैं। इसलिए ब्राह्मण ही देवता है।

महर्षि वशिष्ठ इसी प्रकार के ब्राह्मण—पृथ्वी के देवता थे। उनके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पास नन्दिनी कामधेनु—अर्थात् भगवती की महाशक्ति थी। राजा विश्वामित्र के साथ जब वशिष्ठ का युद्ध हुआ और राजा की विशाल सेना परास्त हो गई तो विश्वामित्र के मुख से यही निकला—"धिग् बलं क्षत्रिय बलं–ब्रह्म तेजो बलमहाम्-बलम्' अर्थात् भौतिक बल धिक्कारने योग्य, तुच्छ एवं नागण्य है। वास्तविक बल तो ब्रह्मबल ही है। वही मन्त्र-बल है वही सच्चा बल है—यह कहते हुए विश्वामित्र ने राजपाट का परित्याग कर दिया और ब्रह्मबल प्राप्त करने के लिए तप करने लगे।

यहाँ किसी बिरादरी की चर्चा नहीं की जा रही है। हर बिरादरी में हर स्तर के लोग पाये जाते हैं। यहाँ गुण-कर्म स्वभाव से ब्राह्मणत्व अपने भीतर विकसित कर सकें, उन्हीं साधकों की चर्चा की जा रही है। और उन्हीं के लिए ब्राह्मण शब्द प्रयुक्त किया जा रहा है। वे ही मन्त्र-शक्ति के अधिकारी हो सकते हैं।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ब्राह्मण बिरादरी के अतिरिक्त दूसरी बिरादरी वाले उसकी पूजा नहीं कर सकते। वरन् यह है कि—जो इस महाशक्ति का परिपूर्ण लाभ उठाना चाहें उसे जप-तप नहीं, ब्राह्मणत्व का अवतरण भीं अपने व्यवहारिक जीवन में करना चाहिए। जितना शुद्ध चरित्र होगा, उतनी साधना प्रखर होगी। सच्चरित्र को थोड़ी-सी भी उपासना भी इतना अद्भुत लाभ दिखाती है, जितनी कि दुश्चरित्र एवं अस्थिरमति व्यक्ति के आजीवन क्रिया-कृत भी नहीं कर सकते। ब्राह्मणत्व यदि अपने भीतर पैदा कर लिया जाय, तो शक्ति-उपासना के जो लाभ शास्त्रकारों ने बताये हैं उनकी सत्यता अक्षरश: प्रत्यक्ष की जा सकती है।

यह किसी जाति विशेष की महत्ता का प्रतिपादन नहीं है और न किसी जाति को उपासना के अधिकार से वंचित करना है। इन शास्त्र-वचनों से इस तथ्य का प्रकटीकरण किया गया है, जो अपनी मानसिक, बौद्धिक एवं भावात्मक स्तर को निर्मल बनाकर जितना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मवर्चस प्राप्त कर लेगा, उतनी ही अधिक—उतनी ही शीघ्र, उसे उच्चस्तर की सिद्धि-सफलता मिलेगी। शक्ति-उपासना का आलम्बन ग्रहण करने वाले को जप-अनुष्ठानों की भाँति ही अपनी मनोभूमि के परिष्कृत करने की साधना में संलग्न होना चाहिए।

ब्राह्मणेतर वर्ण भी शक्ति-उपासना का लाभ उठा सकते हैं, उनकी चर्चा शास्त्रों में जगह-जगह उपलब्ध होतीं है।

जातिगत बन्धन लगाने का शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं हैं। केवल इतना ही कहा गया है कि जो इस महाशक्ति का वास्तविक लाभ उठाना चाहें वे अपने आंतरिक एवं, व्यवहारिक जीवन में ब्राह्मणत्व की विशेषतायें उत्पन्न करें। जो इस दिशा में प्रयत्नशील रहे हैं, उन्होंने इतना कुछ पाया है कि स्वयं धान्य हुए हैं और दूसरों को धन्य बनाया है। जिन्होंने जप ध्यान तक ही अपने को सीमित रखा वे लौकिक जीवन की छुटपुट समृद्धियाँ प्राप्त कर सकने के स्वल्प लाभों से आगे बढ़कर कोई अधिक महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त न सके। कारण स्पष्ट है—शारीरिक और मानसिक अनाचार बरतने से आत्मशक्ति का इतना क्षरण हो जाता है कि फिर साधक मटियाले सर्प की तरह निस्तेज ही रहता है। किसी मन्त्र-तन्त्र के सहारे भी अपना आंतरिक वर्चस्य बढ़ाने का अवसर नहीं मिलता। आज के अगणित पूजा-भजन में संलग्न व्यक्ति इसी प्रकार तेज-रहित जीवन बिता रहे हैं। उन्होंने उपासना को सरल जानकर उसे तो अपनाया, पर जीवन-शोधन की कठिन प्रक्रिया से बचते-कतराते रहे। ऐसे लोगों को आत्मबल और उसके आधार पर मिलने वाली महान् उपलब्धियाँ भला मिलें भी तो कैसे? और वे अपने आशीर्वाद से किसी का भला कर सकेंगे तो कैसे?

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यात् अन्न दोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति॥

—मनु०—४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"वेदों का अभ्यास न करने से आचार छोड़ देने से, आलस्य से, कुधान्य खान से ब्राह्मण की मृत्यु हो जाती है।"

जिह्वा दग्धा परान्नेव करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
मनोदग्धं परस्त्रीभिः कथं सिद्धिर्वरानने॥

पराया अन्न खाने से जिह्वा की शक्ति नष्ट हो गई, दान-दक्षिणा लेते रहने से हाथों की शक्ति चली गई, पर नारी की ओर मन डुलाने से मन नष्ट हो गया। हे पार्वती! इन ब्राह्मणों को शक्ति कैसे मिले?"

"वादार्थं पठ्यते विद्या परार्थं क्रियते जपः॥
ख्यात्यर्थं दीयते दानं कथं सिद्धिर्वरानने॥

"वाद-विवाद के लिये विद्या पढ़ी दूसरों से दक्षिणा लेकर जप किया, कीर्ति के लिए दान दिया। ऐसे लोगों को हे पार्वती, सिद्धि कैसे मिले?"

अनध्यापनं शीलं च सदाचार विलंघनम्।
सालसं च दुरन्नावं ब्राह्मणं बाधते यमः॥

"स्वाध्याय न करने से, आलस्य से सदाचार का उल्लंघन करने से और कुधान्य खाने से ब्राह्मण यम को बुलाता है।"

देखा, जाता है कि अभी भी कितने व्यक्ति शक्ति-उपासना करते हैं और उनके फलस्वरूप ज्ञान एवं विज्ञान की उपलब्धि चाहते हैं किन्तु कुछ कहने लायक सफलता नहीं मिलती। इसका कारण उनके उपासना-क्रम का अधूरापन ही है। साधारण साधना का विधि-विधान शास्त्रों में सार-रूप लिखा गया है, उसमें कोई बड़ी पेचीदगी नहीं है। विधि-विधानों की मामूली जानकारी प्रमाणित ग्रन्थों के आधार पर की जा सकती है। उन्हें कर सकना भी कुछ विशेष कठिन नहीं है। लोग करते भी हैं, कर भी रहे हैं पर साधारण कठिनाइयों या मामूली सी कामनाओं की पूर्ति के अतिरिक्त वस्तुतः कोई इतना बड़ा प्रभाव उन्हें नहीं दिखता, जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि तन्त्रों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में वर्णित आत्म-विद्या के असंख्य चमत्कारी लाभों में से–ऋषि सिद्धियों में से—कुछ की उपलब्धि वे कर सकेंगे।

इस असफलता से निराश होने की आवश्यकता नहीं वरन् यह देखना है कि यह अवरोध उत्पन्न क्यों होता है। इसका एक मात्र कारण साधक का शरीर और मन उस उच्च स्तर का न होना ही है, जिसमें कि आध्यात्मिक साधनायें फलित होती हैं। गन्ने की, गुलाब की या दूसरी कीमती फसलें पैदा करने के लिए वाटिका की जमीन की आवश्यकता पड़ती है। उसमें खाद पानी का समुचित प्रबन्ध करना होता है। यदि ऐसा न हो सके, ऊपर, बंजर में बिना जोते-बोए बीज बो दिया जायें, वहाँ खाद-पानी तथा सुरक्षा का प्रबन्ध न हो, तो अच्छी फसल की आशा किस प्रकार से की जा सकेगी ? आध्यात्मिक साधनायें—जिनमें शक्ति उपासना प्रमुख है, एक प्रकार की वैज्ञानिक कृषि है। उसके लिये उपयुक्त साधन आवश्यक है। इस सन्दर्भ में सबसे अधिक आवश्यकता साधक के उत्कृष्ट व्यक्तित्व की है। उसकी मनोभूमि उत्कृष्ट कोटि की होनी चाहिए। यह बढ़ियापन जितना बढ़ा-चढ़ा होगा, उतनी ही साधना की सफलता सुनिश्चित रहेगी।

बढ़िया बन्दूक में रखकर चलाये जाने पर कारतूस जैसा ठीक काम करता है, वैसा घटिया नकली बन्दूक में रखकर चलाने पर काम नहीं कर सकता है। कारतूस वही है पर बन्दूक के घटिया-बढ़िया होने पर अपना काम भी वैसा ही करता है। मन्त्र एक प्रकार का कारतूस है। व्यक्तित्व को बन्दूक कहना चाहिए। यदि साधक चरित्र, स्वभाव आचार, व्यवहार, दृष्टिकोण निकृष्ट स्तर का है, तो शक्ति-उपासना का प्रतिफल भी सन्तोषजनक न होगा। यदि कोई चरित्रवान्, इन्द्रिय-संयमी, तपस्वी, उदारमना एवं देव स्वभाव का मनुष्य उसी मन्त्र को जपेगा, उपासना को करेगा, तो निकृष्ट स्तर के व्यक्ति की तुलना में उसका परिणाम सैकड़ों गुना अधिक होगा। मन्त्र वही, विधान वही, फिर भी सफलता में इतना अन्तर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस विषय में किसी को शंकाशील नहीं होना चाहिए। शक्ति-उपासना जादू नहीं, एक सर्वांगपूर्ण विधान है। घटिया रेड़ियो खड़खड़ करती हुई जरा-सी आवाज में बोलते हैं, जबकि बड़िया-कीमती रेडियो बहुत साफ और बुलन्द आवाज़ में बोलता है। दिल्ली में एक ही तरह की आवाज बोली जाती है, आकाश में भी कम्पन एक-से हैं, पर पास-पास रखे हुए दो रेडियो, जिसकी सुई उसी स्टेशन पर है, यदि आवाज की दृष्टि से बहुत बड़ा अन्तर प्रकट करते हैं, तो उस में दोष किसी का नहीं, उन सस्ते और कीमती यन्त्रों का है। मीरा, सूर, तुलसी कबीर आदि ने जो हरि-नाम लिया था, उसी को हम रोज लेते हैं। पर हमारे लिये वही हरिनाम कुछ भी प्रतिफल उत्पन्न नहीं करता, तो उसका दोष बाहर किसी को न देकर अपनी आंतरिक दुर्बलताओं को ही देना चाहिए।

दशरथ को जब सन्तान-कामना की पूर्ति के लिये 'पुत्रेष्टि यज्ञ' कराने की आवश्यकता हुई, तो उसका विधि-विधान भली प्रकार जानने हुए भी महर्षि वशिष्ट ने उसे पूरा करा सकने में अपनी असमर्थता प्रकट की। इस पर दशरथ जी ने आश्चर्य के साथ इसका कारण पूछा। वशिष्ठ जी ने कहा—पुत्रेष्टि यज्ञ का विधान तो मैं जानता हूँ पर व्यक्तित्व की दृष्टि से पूर्ण ब्रह्मचारी न होने के कारण उस विधान को सफलता-पूर्वक करने की सामर्थता से सम्पन्न नहीं। वर्तमान ऋषियों में यह कार्य शृंगी ऋषि ही ठीक तरह पूरा कर सकते हैं, क्योंकि वयस्क हो जाने पर भी वनवास में रहने के कारण उन्होंने रमणी को न तो देखा है और न उसकी कल्पना की है। ऐसे ब्रह्मचारी की आत्मा ही इतनी बलिष्ठ हो सकती है कि उसके द्वारा सफल पुत्रेष्टि यज्ञ कराया जा सके।' अन्ततः शृंगी ऋषि को ही बुलाया गया और उन्हीं के पौरोहित्य में दशरथ का वह पुत्रेष्टि यज्ञ सफल हुआ जिसके प्रभाव से राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसी आत्माओं को अवतरित होना पड़ा। यदि शृंगी ऋषि जैसे तपस्वी का पौरोहित्य न मिला होता, तो विधि-विधान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के पूर्ण ज्ञाता आचार्य द्वारा कराये जाने पर भी पुत्रेष्टि-यज्ञ सफल न होता।

मन्त्र वही है, विधि-विधान भी वही है, उसकी जानकारी वही है। उनकी जानकारी ग्रन्थों से तथा दूसरे विद्वानों से प्राप्त की जा सकती है। इतने पर भी उनकी वैसी महिमा, जैसी कि गाई गई है, अक्सर दृष्टिगोचर नहीं होती। इसका कारण उस विद्या का मिथ्या होना या विधि-विधान में फर्क रह जाना नहीं होता वरन् यह होता है कि उसे करने वाले का व्यक्तित्व एवं चरित्र उस स्तर का उत्कृष्ट नहीं होता, जैसा कि आत्म-विद्या के सच्चे पथिक का होना चाहिए। साधक के लिए मन्त्र-विद्या का सच्चा पथिक होना चाहिए। साधक के लिए मन्त्र-विद्या का विधि-विधान जान लेना ही पर्याप्त नहीं वरन् यह भी आवश्यक है कि वह अपने चरित्र एवं मानसिक स्तर को पवित्र एवं उत्कृष्ट बनाने में संलग्न रहे।

शक्ति-उपासना के छुट-पुट लाभ साधारण रीति से जप, अनुष्ठान करने वालों को भी मिल सकते हैं। गमलों में छोटा-छोटा पौधे लगाये जा सकते हैं। पर यदि कोई विशाल वृक्ष लगाना हो, तो यह आवश्यक है कि उसके लिए ऐसी जमीन ढूँढ़ी जाय, जिसमें होकर जड़ें नीचे गहराई तक प्रवेश कर सकें। बरगद और पीपल के वृक्ष गमलों में उग तो सकते हैं पर फलने-फूलने की स्थिति तक नहीं पहुँच सकते। भगवती की सामर्थ्य की कोई तुलना नहीं पर वह पूरी तरह अपना प्रभाव तभी प्रकट कर सकती है, जब साधक की मनोभूमि काफी परिष्कृत एवं सुसंस्कृत बनाई गई हो। उपासना की विधि-विधान ठीक तरह जानना और उसका कर्मकांड उचित तरीके से पूरा करना, अभीष्ट सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है पर इससे भी ज्यादा यह आवश्यक है कि साधक अपने भावना-स्तर को अधिकाधिक ज्योतिर्मय बनाने के लिये हर सम्भव प्रयत्न करे।

उपासना भजन-पूजन के विधि-विधान को—जप, तप, धारणा, ध्यान करने को कहते हैं। साधना अपने गुण कर्म स्वभाव का व्यवस्थित,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुसंस्कृत एवं परिष्कृत बनाने को कहते हैं। उपासना को बीज और साधना को भूमि कहते हैं। यदि भूमि अच्छी न होगी, तो बीज के फलित होने की आशा नहीं की जा सकती। यदि किसी साधक ने अपने आहार-विहार, विचाराव्यवहार, क्रिया-कलाप, उद्देश्य-दृष्टिकोण को परिष्कृत बनाने के लिए श्रम नहीं किया है और केवल मन्त्र विद्या के क्रिया-कलापों को ही पूरा करता है, तो समझना चाहिए—उसका श्रम ऊसर में गुलाब का बगीचा उगाने के प्रयास जैसा है। मन्त्रों की शक्ति बेशक बहुत बडी है पर उसका लाभ हर व्यक्ति नहीं उठा सकता। जिन्हें उपासना का चमत्कार देखना हो, उन्हें अपने आपको उसी तरह तपाना चाहिए जैसे अग्नि से सोने को तपाकर उसे विकार रहित किया जाता है। शुद्ध सोने का ही उचित मूल्य मिलता है।

कच्ची मिट्टी के बने घड़े खिलौने एवं ईंटें कमजोर रहते हैं, पर जब उन्हें आग में पका लिया जाता है, तो वे मजबूत हो जाते हैं और देर तक ठहरते हैं। अभ्रक एक सस्ती वस्तु है, पर जब उसका सौ बार अग्नि-संस्कार किया जाता है, तो वह बहुमूल्य अभ्रब-रसायन बन जाती है। साधक का चरित्र और व्यक्तित्व जितना निर्मल होगा, उपासना उतनी ही जल्दी, उतनी अधिक प्रतिफलित होगी। दुष्ट, दुराचारी, स्वार्थी और संकीर्ण, गन्दे और निकम्मे आदमी मन्त्र-शक्ति का चमत्कारी परिणाम प्राप्त कर सकने से वंचित रह जाते हैं।

महाभारत में सावित्री द्वारा सत्यवान के वरण की कथा आती है। सावित्री किसी को अपना साथी बनाना चाहती थी, किसी के साथ अपने को घुला देना चाहती थी। ऐसे साथी की खोज में वह देश-देशान्तरों में घूमती रही। अनन्ततः उसे उपयुक्त व्यक्ति मिल गया—वह था सत्यवान। लकड़हारे, निर्धन, असहाय सत्यवान को राजकन्या सावित्री ने इसलिये वरण किया कि वह आन्तरिक सम्पदाओं का धनी था। उसके गुण-कर्म-स्वभाव का स्तर ऊँचा था। वरण कृत्य हो गया सत्यवान का आयुष्य एक वर्ष में ही पूरा हो चला, यम उसका प्राण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ले जाने आये। पर सावित्री ने यम के हाथों से अपने सहचर को छुड़ा लिया। अपनी शक्ति द्वारा उसे अजर-अमर बना दिया।

यह अलंकारिक कथा उपासना की सफलता का रहस्य भली प्रकार समझा देती है। शक्ति अपनी सारपूर्ण कृपा प्रदान करने के लिये उपयुक्त व्यक्ति को खोजती है। ऐसा सहचर सत्यवान सत्यनिष्ठ-सदाचारी, उत्कृष्ट आंतरिक स्तर का व्यक्ति ही हो सकता। जब दोनों का साथ हो जाता है, तो भगवती अपना चमत्कार दिखाती है। उसे यम के पास से छुड़ाकर-अजर-अमर बना देती है। शक्ति के पास जितना कुछ विभूति-भण्डार है, वह सुसंस्कृत साधक–सत्यवान–को मिल जाता है। यदि किसी को इस महाशक्ति की सिद्धियों का साक्षात्कार करना हो, तो उसे उपरोक्त कथानक में समाये हुए रहस्यपूर्ण तत्वज्ञान को हृदयंगम करना चाहिए।

ब्राह्मणत्व का अभिवर्धन शक्ति-उपासना की सफलता का मूल-भूत आधार है। छुटपुट लाभ मामूली साधना से सामान्य स्तर के साधक भी पा सकते हैं, पर यदि इस शक्ति का सच्चा स्वरूप और वास्तविक चमत्कार देखना हो, तो अपने गुण-कर्म स्वरूप में ब्राह्मणत्व की मात्रा निरन्तर बढ़ाते चलने के लिये साधकों को सच्चे मन से कटिबद्ध होना चाहिए। माता इसी आधार पर अपने अक्षय कोष का अधिकार किसी को प्रदान करती है।

शक्ति-साधना का लाभ और चमत्कार देखने के इच्छुकों की केवल साधन-विधान के कर्मकाण्ड की बारीकियों को नहीं ढूँढ़ते रहना चाहिए, वरन् अपनी शारीरिक एवं मानसिक भूमिका का भी परिष्कार करने के लिये सचेष्ट रहना चाहिए। ठीक है–विधि-विधानों का भी अपना महत्व है। ठीक—बीज-मन्त्र तथा दक्षिणामार्गी, वाममार्गी साधना-विधान अपना विशिष्ट प्रतिफल पैदा करते हैं पर इसके लिये उनकी समुचित जानकारी इस महाविद्या के प्रयोगकर्त्ताओं को ठीक तरह अनुभव और अभ्यास में लानी चाहिए। इसके लिये अनुभवी मार्गदर्शक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और ऋषि परम्परा की शास्त्रीय पद्धति का अवलम्बन ग्रहण करना चाहिये। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आध्यात्मिक उपासनाओं के पथ पर गतिशील होने के आकांक्षी साधक को अपने व्यक्तित्व की उत्कृष्टता बढ़ना स्थिर रखना नितान्त आवश्यक है। आत्मिक प्रगति की यह एक अनिवार्य शत है।

बढ़िया किस्म का बाण भले ही हो, पर उसे ठीक निशाने तक पहुँचाने के लिये बढ़िया मजबूत धनुष भी तो चाहिये। सड़ी घुनी लकड़ी के धनुष का तीर के लिये निशाने तक फेंक सकना तो कठिन है ही— इस खींच-तान में वह अपनी भी दुर्गति करा लेगा। ओछे आदमी घृणित और निकृष्ट दृष्टिकोण अपनाकर जीवन यात्रा कर रहे हैं। ऐसे कुसंस्कारी भले ही जप का वाह्य आचरण पूरा करते रहें, वह कर्मकाण्ड उनकी आंतरिक प्रगति में कुछ विशेष सहायता न कर सकेगा।

प्राचीन काल में ऐसे अनेक साधक हुये हैं, जिनका साधन-विधान कोई बड़ी शास्त्रीय परम्परा पर आधारित न था फिर भी उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति में आशाजनक सफलता मिली। कबीर की शिक्षा स्वल्प थी, उन्हें मार्गदर्शक भी अनुभवी नहीं मिला। सत्ता रामानन्द उनके ऐसे ही गुरु थे, जैसे एकलव्य के द्रोणाचार्य। वे प्रत्यक्ष में कबीर के गुरु होने की वात से इन्कार करते रहे। रैदास की वंश परम्परा ने उन्हें शास्त्रीय साधना पद्धति का लाभ लेने से वंचित रखा। मीरा केवल भजन, कीर्तन, नृत्य एवं भावोन्माद तक अपना साधक विधान सीमित रख सकी। शवरी किस प्रकार की उपासना पद्धति अपनाए रही, कुछ पता नहीं चलता। वाल्मीकि तो सीधा राम नाम भी न ले सके, उन्हें 'मरा मरा' का उल्टा नाम जपकर ही आगे बढ़ना पड़ा। ऐसे उदाहरण साधना इतिहास के पन्ने पर भरे पड़े हैं। और आज भी ऐसे अनेक साधक मिलते हैं, जिनकी शिक्षा और साधना पद्धति उपहासास्पद है। फिर भी उन्होंने काफी आत्मिक प्रगति कर ली। इसका एक मात्र कारण व्यक्तित्व की उत्कृष्टता ही थी। मानवीय सद्भावों का बाहुल्य ही उनकी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वह विशेषता थी, जिसने उच्चस्तरीय सफलता का अधिकारी उन्हें बना दिया।

दूसरी ओर ऐसे भी उदाहरण मिलते है, जिनमें उपासना का शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक प्रकरण भली प्रकार जानते हुए भी साधक कुछ आशाजनक लाभ प्राप्त न कर सकें। रावण, कुम्भकरण, मारीच, भस्मासुर, वृत्रासुर, हिरण्यकशिपु, मधुकैटभ आदि अगणित व्यक्ति उच्च कोटि में उत्पन्न हुए थे, उनके गुरु भी शुक्राचार्य जैसे पारंगत थे। उन्होंने कठिन तपश्चर्यायें भी की और वरदान भी पाये, फिर भी इन सुविधाओं का कोई विशेष लाभ उन्हें नहीं मिला। उनकी आत्मिक प्रगति नगण्य रहीं। जो साधना-तपश्चर्या उन्होंने की वह उनकी आत्मा का, उनके परिवार का, सारे समाज का कुछ भी हित साधन न कर सकीं। अतएव हमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि जिन्हें वस्तुतः आध्यामिकता लाभ लेना हो, इस मार्ग पर चिरस्थायी आशाजनक प्रगति करनी हो, उन्हें सबसे पहले—सबसे अधिक—ध्यान इस बात पर देना चाहिए कि उनका व्यक्तित्व, दृष्टिकोण, गुण, कर्म, स्वभाव, संस्थान—अन्तःकरण-चतुष्टय उत्कृष्ट स्तर का बने। यही ब्राह्मणत्व है ब्रह्म वर्चस की सारी शक्ति, चेतना एवं क्षमता इसी आधार पर उपलब्ध होती और बढ़ती हैं।

ब्राह्मणत्व के आधार पर तन्त्रों में तीन प्रकार की शक्ति-उपासना का विधान प्राप्त होता हैं। सकल, निष्फल और मिश्र। सकल उपासना निकृष्ट कोटि की, मिश्र उपासना मध्यम कोटि की और निष्कल उपासना उत्तम कोटि की मानी जाती है।

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्म रूपं कल्पना॥

"अर्थात् चिन्मय, अद्वितीय, अशरीर उपासक के लिये ब्रह्म के रूप की कल्पना की गई है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अग्नौ तिष्ठति विप्राणां हृदि देवो मनीषिणाम् ।
प्रतिमास्वप्रबुद्धानां सर्वत्र विदितात्मनाम् ।

—कुलार्णव तन्त्र

अर्थात् "ब्राह्मणों के उपास्य देवता अग्नि में मनीषी व्यक्तियों के हृदय में, अप्रबुद्धों के प्रतिमा में रहते हैं और आत्मज्ञानी को सर्वत्र ही ब्रह्म के दर्शन होते हैं।"

प्रारम्भिक उपासकों के लिये साकार उपासना का ही अधिकार है। सगुण मूर्ति का ध्यान करते हुए वह निर्गुण अथवा निष्कल ध्यान का अधिकारी बनता है।

"विश्वसार तन्त्र" में उपासना के सात अधिकारों का वर्णन किया गया है—

भावत्रयगतान् देवि सप्ताचारांश्च वेत्तियः ।
स जनः सकलं वेत्ति जीवन्मुक्त स एव हि ॥

अर्थात् "जो उपासक भावत्रय के अन्तर्गत सप्ताचार का ज्ञान रखते हैं, वे सर्वज्ञ और जीवन्मुक्त हैं।"

तन्त्र में अन्यत्र भी कहा है—

आचारस्त्रिविधः प्रोक्तः साधकानां मनीषिभिः ।
दिव्यदक्षिणवामाश्चाऽधिकाराः सप्त कीर्त्तिताः ॥
सप्ताऽधिकारा विदुषः साधकस्य मता इमे ।
दीक्षा ततो महादीक्षा पुरश्चरणमेव च ॥
ततो महापुरश्चर्य्याऽभिषेकस्तदनन्तरम् ।
षष्ठो महाभिषेकश्च तद्भवोऽन्तिम ईरितः ॥
साधकोऽनेन लभते मोक्षं नाऽस्तीह संशयः ।
एषां सप्ताऽधिकाराणां नामानि विविधानि वै ॥
तन्त्राऽऽदिशास्त्रे कथितात्याचारस्याऽनुसारतः ।
परस्परं विप्रतीयावाचारौ वामदक्षिणौ ॥
द्वयोरभिन्नलक्ष्यत्वेऽप्येकः प्रवृत्तिनिष्ठितः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निवृत्तिनिष्टो ह्यपरः प्रवत्तिर्हि निसर्गजा ॥
महाफला निवृत्तिस्तु विजेया वेदवादिभिः ।
अतो ह्युपासनायां वै आचारो द्विविधो मतः ॥
उपासनाऽन्तर्भावा वे त्रिविधाश्चापि शुद्धयः ।
आचारै परिचीयन्ते प्रोत्कमेतत्मनीषिभिः ॥
स्वाऽऽचारभेदा विज्ञेया गुरुदेवोपदेशतः ।
निवृत्तिमार्गपथिका रता यत्र निसर्गतः ॥
दिव्याऽऽचार, स भवति यस्मृतियतया मतः ॥
द्वौ बामदक्षिणाऽऽचारौ विरुद्धौ हि परस्परम् ॥
दिव्याऽऽचारो ना विरुद्धः सर्वजीवहितप्रदः ।
वामः प्रवृत्तिपरको दक्षिणस्तु निवृत्तिकः ॥
दिव्याचार उभाभ्यां वै परः श्रेयस्करो मतः ।
द्विविधस्तु भवत्येष वामदक्षिणभेदतः ॥
आचारः शक्ति पूजाया सर्वतन्त्रानुसारतः ।
शक्तिप्रधान्य तत्वारिमेञ्छक्ति पूजाविधौ नृणाम् ॥
साधनानी सुविस्तारः क्रियते तत्वदर्शिभिः ।
अधिकारोऽत्र पूजायां द्विवियो दृश्यते तथा ॥
तन्त्रेषु, बहुविस्तोरः शक्तिपूजाविधेरभुत् ।
दक्षिणाऽऽवारती योऽयं विपरीतो भवेदिह ॥
वामाऽऽचार स विज्ञेयस्तन्त्रशास्त्रविशारदैः ।
जने सत्वप्रधाने तु दिव्याचारप्रेशस्यते ॥
पश्वाऽऽचरौ रजोमुख्ये वामऽऽत्तरोश्च तामसे ।
बामाचारश्क योऽयं वै वीराऽऽचारः स कथ्यतेः ।
लोककल्याणसिद्धयर्थे निर्णीतऽसौ कलौयुगे ।
स्वां स्वां प्रकृति माश्रित्य जीवा पर वशाः कलौ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वामाऽऽचार मनुष्याय लप्स्यन्ते शुभमव्ययम् ।
एवं प्रवृत्तिकयिषु निवृत्तेर्लक्ष्यतावशात् ॥
नूनं प्रवृत्ति चेष्टासु घोरास्वपि च साधकः ।
प्रभत्वेसाधितु सिद्धि मात्यनश्चोन्नति सदा ॥
वामोऽऽचाररहस्यं वै ह्येतन्मुनिसमाहृतम् ।
वामाऽऽचारक्रियामुख्यं लतासाधनवर्णनम् ॥
विहितं तन्त्रमर्मज्ञैः प्रायशः शक्त्युपासने ।
अन्येषु सम्प्रदायेषु युग्मोपासनवर्णना ॥
विहिता यत्र तत्रैव क्रियेयमुपवर्णिता ।
यथा द्वैविध्यजापन्नो दक्षिणाऽऽचार उच्यते ॥
वामाऽऽचारे तथा चाष्टौ भेदा प्रोक्ता हि तान्त्रिकैः ।
वामाऽऽचारेऽधिकाराः स्युः सदा वै परिकीर्त्तिताः
प्राप्यन्ते साधकस्तं हि गुरुदेवकृपावशात् ॥

साधकों के लिए आचार्यों ने तीन तरह के आचार बताये है—दिव्य, दक्षिण और वाम। उपासक के सात अधिकार है—दीक्षा, महादीक्षा, पुरश्चरण, महापुरश्चरण अभिषेक, महाभिषेक और तद्भाव। निस्सन्देह इन अधिकारों के माध्यम से उपासक मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। उपासक के इन सप्त अधिकारों के नाम तन्त्र-शास्त्रों में दिव्य, दक्षिण और वाम आचारों के अनुसार बहुत तरह के हैं, जिनका अपने-अपने सम्प्रदायों में व्यवहार होता है। वाम और दक्षिण दोनों में परस्पर विरोध है। दोनों का उद्देश्य निवृत्तिमूलक होने पर भी एक झुकाव प्रवृत्ति की ओर और दूसरों का निवृत्ति की ओर है। प्रवृत्ति की ओर झुकाव स्वाभाविक होता है। निवृत्ति महाफल प्रदायिनी है। इसलिए उपासना में दोनों प्रकार के आचारों का वर्णन आता है। विद्वानों का कहना है कि आचार उपासना के अन्तर्भावों का परिचायक है। अपने-अपने आचार के भेद से गुरु जानने चाहिये। जिस आचार में निवृत्ति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मार्ग के पूर्ण अधिकारीगण संलग्न रहते हैं, वह पूर्ववर्णित दोनों आचारों से भिन्न है। वाम और दक्षिण दोनों आचारों का आपस में विरोध है। परन्तु दिव्याचार की दोनों में अनुकूलता है और वह समस्त प्राणियों के कल्याण के लिये है।

वामाचार प्रवृत्ति पर और दक्षिण निवृत्ति पर आधारित हैं। दिव्याचार दोनों से अपर है और द्वंद्वातीत होने से परमानन्दप्रद स्वीकार किया गया है। तन्त्र के मत से शक्ति-उपासना में आचार—वाम और दक्षिण दो प्रकार का वर्णित किया गया है। इसमें शक्ति की प्रधानता है। तांत्रिकों का कहना है कि दक्षिणचार के विरुद्ध आचार वाम कहा गया है। उपासक जब सात्विक प्रवृत्तियों को अपनाता है, तो दिव्याचार लाभदायक सिद्ध होता है। रजो गुण की ओर झुकाव वाले साधक के लिये पश्वाचार कल्याणकारी होता है। तमोगुणी उपासक को वामाचार का अधिकार दिया गया है। कलियुग में लोक-कल्याण के लिए निश्चित किया गया है। कलियुग में साधक अपनी मनोभूमि के अनुसार इसका उपभोग कर सकेंगे। चूँकि इन प्रवृत्ति की क्रियाओं में निवृत्ति का लक्ष्य रहता है, इसलिए प्रवृत्ति मार्ग में संलग्न रहते हुए भी आत्मोन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है। मुनियों ने वामचार का यही रहस्य बताया है। तन्त्रों की शक्ति साधना में लता साधना का उल्लेख आता है, जो वामाचार क्रिया प्रधान है। युगल उपासना विधि प्रधान वैष्णव सम्प्रदायों में भी है। किसी-किसी तन्त्र में इस क्रिया का वर्णन आता है। दक्षिणाचार जिस तरह दो प्रकार का बताया जाता है, उसी प्रकार वामाचार के आठ भेद तांत्रिकों ने बताये हैं। इस आचार में साधक के सात अधिकार स्वीकार किये गये हैं, जो धीरे-धीरे प्रगतिपथ पर आरूढ़ साधक गुरु कृपा से प्राप्त करता है। इसीलिये तन्त्र में वर्णन करते हुए कहा गया है—

पर द्रव्येषु योऽअन्वश्च परस्त्री नपुंसकः।
परापवादे योः मूकः सर्वदा विजितेन्द्रियः॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्यैव ब्राह्मणापात्र वामे स्यादधिकारिता ।।

(मेरुतन्त्र)

"जो पर द्रव्य के लिये अन्धा है पर स्त्री के लिये नपुंसक है, पर-निन्दा के लिये मूक है और जो इन्द्रियों को सदा अपने वश में रखता है, ऐसा ब्राह्मण ही वाम मार्ग का अधिकारी होता है ।"

तन्त्राणमतिमुगूढ़ात्वात्तद्भावोऽप्यतिगोपितः ।
ब्राह्मणो वेद शास्त्रं तत्वज्ञो बुद्धिमान वशी ।।
गूढ़ तन्त्रार्थ भावस्य निर्मथ्योद्धरणे क्षमः ।
वाम मार्गाधिकारी स्यादितरो दुखभाग भवेत् ।।

(भावचूड़ामणि)

"तन्त्रों के अति गूढ़ होने के कारण उनका भाव भी अत्यन्त गुह्य है । इसलिये वेद-शास्त्रों के अर्थ तत्व को जानने वाला जो बुद्धिमान और जितेन्द्रिय पुरुष उनके गूढ़ अर्थ का मन्थन करके उद्धार करने में समर्थ हो वही वाममार्ग का अधिकारी हो सकता है । उसके सिवा दूसरा दुःख का ही भागी होता है ।"

तांत्रिक आचार्यों का कहना है कि तन्त्र की उच्चतम उपासना उसे प्राप्त होती है, जिनका गुरु-कृपा से सुषुम्ना में प्रवेश हो जाता है और जिसकी कुण्डलिनी शक्ति का उद्‌बोधन हो जाता है । तन्त्र का मत है कि जो उपासक इन्द्रियों और प्राणों को रोककर कुल मार्ग में सक्रिय नहीं हो जाता यह शक्ति की निकृष्ट उपासना का भी अधिकारी नहीं हैं । तन्त्र के अनुसार जब तक षट्चक्र मन्थन न कर लिया जाये तब तक द्वैत की परममाप्ति असम्भव है । अद्वैत सिद्धि ही देवी की उत्तम उपासना हैं और इसी साधना का अधिकारी श्रेष्ठ माना जाता है । यह अधिकार प्राप्त करने के लिये तांत्रिक सिद्धान्तों का गम्भीर अनुशीलन और साधन मार्ग का निष्ठापूर्वक अनुगमन आवश्यक हैं । तभी देवी का वरद् हस्त प्राप्त हो सकता है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र साधना में उदार भावना

वेद में कहीं भी जाति-भेद और स्त्री पुरुष में असमानता के प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। यदि वेदों के विचार इतने संकुचित होते तो इन्हें विश्वव्यापी ख्याति कैसे प्राप्त होती? यदि प्राचीन भारतीयों में असमानता की भावना जाग्रत होती, तो वह सारे विश्व में भारतीय संस्कृति का डंका बजाने अपने देश से बाहर न जाते, अपने सिद्धान्तों व उपासना पद्धति को केवल अपने तक ही सीमित रखते। परन्तु व्यवहारिक रूप में ऐसा नहीं हुआ। भारतीय धर्म सारे विश्व में फैला आज भी जिसके चिन्ह यदा कदा मिल जाते हैं।

ऐसा लगता है कि मध्यकालीन अन्धकार युग में आचार्यों ने शास्त्रों में अपनी विचारधारा के अनुकूल श्लोक बनाकर मिला दिये, जो कहीं-कहीं तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। सम्भव है, उस समय कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हुई हों, जिनके कारण उन्हें ऐसा करना पड़ा हो, परन्तु आज यह किसी तरह भी उपयुक्त नहीं है कि जाति भेद को जाग्रत करके और स्त्री पुरुष में असमानता के निम्न विचारों को उभार कर उपासना में प्रतिबन्ध लगायें। इससे राष्ट्र का सांस्कृतिक विकास कुण्ठित होने की सम्भावना है।

आज भी कुछ ऐसे लोग हैं, जो मध्यकालीन आचार्यों के प्रक्षिप्त श्लोकों को आधार मानकर स्त्रियों व निम्न वर्णों पर वेदाध्ययन व उपासना सम्बन्धी प्रतिबन्ध के पक्ष में है और कहीं कहीं तो दोनों ओर से कड़े संघर्ष भी देखे गये हैं। यह भारतीय और वैदिक विचारधारा के बिल्कुल प्रतिकूल है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संकुचित विचार धारा के विद्वान् शंकराचार्य के 'द्वारा किमेकं नरकस्य नारी' से लेकर 'ढोल गँवार, शूद्र, पशु, नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी," तक के प्रमाण उद्घृत करते हैं। कुछ अन्य मुख्य प्रमाण वे इस प्रकार देते हैं—

स्त्री शूद्रौ नाधीयताम् इति श्रुतिः।

अर्थात् स्त्री और शूद्रों को अध्ययन विशेषतः वेद का, न करना चाहिए, ऐसा श्रुति करती है।"

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामदशेषतः
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकाल यथाक्रमम् ॥२।६६
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरोवासः गृहार्थोऽग्निपरिष्क्रिया ॥

—मनु० २।७

अर्थात् "स्त्रियों के जातकर्मादि समस्त संस्कार बिना मन्त्रों के करने चाहिये ' स्त्रियों का विवाह-संस्कार ही उपनयन स्थानीय वैदिक संस्कार है, ऐसा मनु आदि स्मृतिकारों ने बताया है। पति-सेवा ही गुरुकुल में वास और वेदाध्ययन रूप है। घर का काम-काज ही उनके लिए हवन है। इसलिए विवाह के विधान से उपनयन, वेदाध्ययन और अग्निहोत्र की पूर्ति की जाती है।"

स्त्री शूद्र द्विजबन्धूनां त्रयो न श्रुति गोचरा।

—भागवत

अर्थात् स्त्रियों, शूद्रों और नीच ब्राह्मणों को वेद सुनने का अधिकार नहीं है।"

यह स्पष्ट रूप से शास्त्रों के प्रक्षिप्त श्लोक है, क्योंकि यह प्राचीन वैदिक भावना के विरुद्ध हैं।

स्त्रियों को वेदाधिकारी न होने का प्रतिबन्ध वेदों में नहीं है। वेदों में तो ऐसे कितने ही मंत्र हैं, जो स्त्रियों द्वारा उच्चारण होते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उन मन्त्रों में स्त्रीलिंग की क्रियायें हैं, जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि वे स्त्रियों द्वारा ही प्रयोग होने के लिए हैं। देखिए—

उदसौ सूर्यो अगाद् उदयं मामको भग अह,
तद्विद् वला पतिमम्य साक्षि विषा सहि।
अहं केतु रह मूर्धाहमुग्रा विवाचनी,
ममेदनु कृतुं पतिः सेहा नाया उपाचरेत्ः।
मम पुत्रा शत्रुहणऽथे में दुहिता विराट।
उताहमस्मि स जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ।।

— ऋग्वेद १०।१५९।२-३

अर्थात्—"सूर्योदय के साथ मेरा सौभाग्य बढ़े। मैं पतिदेव को प्राप्त करूँ। विरोधियों को पराजत करने वाली और सहनशीला बनूँ मैं वेद से तेजस्विनी प्रभावशाली वक्ता बनूँ। पतिदेव मेरी इच्छा, ज्ञान व कर्म के अनुकूल कार्य करें। मेरे पुत्र भीतरी व बाहरी शत्रुओं को नष्ट करें। मेरी पुत्री अपने सद्गुणों के कारण प्रकाशवान् हो। मैं अपने कार्यों से पतिदेव के उज्ज्वल यश को बढ़ाऊँ।"

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पति वेदनाम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय, मामुतः ।।

—यजु० ३।६०

अर्थात् "हम कुमारियाँ उत्तम पतियों को प्राप्त कराने वाले परमात्मा का स्मरण करती हुई यज्ञ करती है, जो हमें इस पितृकुल से छुड़ा दे, किन्तु पतिकुल से कभी वियोग न करायें।"

नीचे कुछ मन्त्रों में वधू को वेद परायण होने के लिये कितना अच्छा आदेश दिया हुआ है—

ब्रह्म परं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्ययो
ब्रह्म सर्वतः अनव्याधां वेद पुरां प्रपद्य शिवा·
स्योना पतिलोके विराज।

—अथर्व० १३।१।४६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् "हे वधु ! तेरे आगे, पीछे, मध्य तथा अन्त में सर्वत्र वेद विषयक ज्ञान रहे। वेद-भाव को प्राप्त करके तदनुसार तू अपना जीवन बना। मंगलमयी सुखदायिनी एवं स्वस्थ होकर पति के घर में विराज और अपने सद्गुणों से प्रकाशवान् हो।"

यां दाम्पत्ति समनसा सुनतु आ व घावतः
देवासो नित्ययाऽशिरा।

ऋग्वेद ८।३१।५१

"हे विद्वानो ! जो पति-पत्नी एक-मन होकर यज्ञ करते हैं और ईश्वर की उपासना करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं।"

वित्वा ततस्त्रे मिथुना अवस्यवः यद
गव्यन्ता द्वाजना समूहसि।

—ऋग्वेद २।१६।६

"हे परमात्मन् ! तेरे निमित्त यजमान पत्नी सहित यज्ञ करते हैं। तू उन लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति कराता है, अतएव वे मिलकार यज्ञ करते हैं।"

शूद्रों के अधिकार की समस्या भी निराधार है, क्योंकि यहाँ वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म नहीं, गुण कर्म स्वभाव रहे हैं।

महाभारत के शान्ति पर्व अध्याय १८८ श्लोक १, ३, ८, में भारद्वाज ने पूछा—

"यदि रङ्ग-भेद से वर्णो का विभाजन किया जाय, तो सभी वर्णों में सभी रङ्ग के लोग पाये जाते हैं।"

"यदि काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा, श्रम आदि मानसिक स्थिति के आधार पर वर्ण-विभाजन किया जाय, तो यह बात भी सब वर्णों में मौजूद है।

"मल, मूत्र, पसीना, कफ, पित्त, खून भी सब शरीरों में समान है, फिर वर्ण-भेद कैसे हो ?"

इस पर भृगु ने श्लोक १० से १५ तक में इस प्रकार उत्तर दिया—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्णों की कोई विशेषता नहीं। इस समस्त संसार को ब्रह्माजी ने ब्राह्मणमय ही बनाया है। तत्पश्चात कर्मों के अनुसार वर्ण बने।',

जो काम-भोग में रुचि रखने वाले, तीखे स्वभाव के, क्रोधी, दुस्साहसी प्रकृति के लाल रंग के थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय हो गये।

"ब्राह्म कर्म जिन्होंने छोड़ दिये और कृषक-गोपालक बने, पीले रंग के थे, वे वैश्य कहलाये।"

जो हिंसा, झूठ, लोभ सभी कर्मों से आजीविका कमाने वाले, गंदे और काले रङ्ग के थे, वे शूद्र बन गये।"

"इस प्रकार इस कार्य-भेद के कारण ब्राह्मण ही पृथक्-पृथक् वर्णों के हो। इसलिये धर्म, कर्म और यज्ञ क्रिया उनके लिये निहित है—निषिद्ध नहीं।"

"इन चारों वर्णों का वेद, विचार तथा धर्म-कर्मों के समान अधिकार है। ब्रह्माजी का यही पूर्ण विधान है। लोभ के कारण ही लोग अज्ञान को प्राप्त होकर इसका विरोध करते हैं।"

कर्म से वर्ण परिवर्तन

वज्रसूचिका उपनिषद् में अनेकों ऐसे उदाहरण दिए गये हैं, जिनमें अन्य वर्णों के घरों में जन्मे बालक अन्य वर्ण को प्राप्त हुए हैं।

"तो क्या जन्म जात को ब्राह्मण मानें ? नहीं, यदि ऐसा होता है, तो मनुष्यों की भाँति ही अन्य जीव जन्तुओं में भी ऐसा ही जाति-भेद होता बहुत से ऋषियों का जन्म अन्य जातियों में भी हुआ है। मृगी से ऋषि शृंङ्गी कुश से कौशिक, जाम्बुक, से जाम्बुक, बल्मीक से बाल्मीक, कैवत कन्या से व्यास, शशपृष्ठ से गौतम, उर्वशी से वशिष्ठ, कुम्भ से अगस्त्य उत्पन्न हुये। हीन जातियों से भी बहुत ज्ञान सम्पन्न ऋषि हुये हैं, इसलिएं जाति ब्राह्मण नहीं है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुत्रो गृत्सदमस्यापि शुनकौ यस्य शौनकाः
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच ॥

—हरिवंश पुराण १५।१६-२०

अर्थात् गृत्समद के पुत्र शुनक हुए। शुनक से शौनक नाम से विख्यात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र पुत्र उत्पन्न हुये।"

वर्ण-व्यवस्था का इतिहास बताते हुये भागवतकार ने कहा है कि प्राचीनकाल में सभी मनुष्यों का एक ही वर्ण था महाभारतकार का कथन है कि यह एक ही वर्ण पीछे गुण-कर्ण-स्वभाव से चार प्रकार का बन गया।

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निवर्ण एव च।

—श्रीमद्भागवत स्कंध ६।१४

"सर्व प्रथम एक ही वेद, एक ही सर्ववाङ्गमय प्रणव, एक ही अद्वैत नारायण, एक ही अग्नि और एक ही वर्ण था।"

एकवर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद् युधिष्ठिरः।
कर्म क्रिया विभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम् ॥
सर्वे वै योनिजा मर्त्याः सर्वे मूत्रपुरीषजाः।
एकेन्द्रियेन्द्रियार्थश्च तस्माच्लील गुणैद्विजः ॥
शूद्रोऽपि शील सम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत्।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेद् ॥

—महाभारत वन पर्व अ० १०८

'इस संसार में पहले एक ही वर्ण था। पीछे गुण और कर्म के भेद के कारण चार वर्ण बने। सब मनुष्य-योनि से ही पैदा होते हैं, मल-मूत्र के स्थान से ही जन्मते हैं, सब में एक-सी इन्द्रिय वासनायें हैं। इसलिये जन्म से जाति मानना ठीक नहीं। कर्म की प्रधानता से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य माने जाते हैं। यदि शूद्र उत्तम कर्म वाला हो, तो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसे ब्राह्मण मानना चाहिये । और जो कर्तव्यहीन ब्राह्मण हो, तो उसे शूद्र से नीचा मानो ।

गीता में भगवान् कृष्ण ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है—

चतुर्वर्ण्यमया सृष्टं गुण कर्म विभागश:

—गीता ४।१३

अर्थात् "मैंने गुण-कर्म के विभाग के अनुसार ही चार वर्ण उत्पन्न किये हैं ।"

वर्ण व्यवस्था सनातन नहीं है । इसे तो सामाजिक सुविधा की दृष्टि से शौनक ने प्रचलित किया—

गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्यं प्रवर्तयिताभूत ।

—विष्णु-पुराण आ० ४।८—१

अर्थात् "गृत्समद के पुत्र शौनक ने चातुर्वर्ण्यं-व्यवस्था प्रवर्तित की ।"

इसी प्रकार के और भी अनेक प्रमाण शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं । महाभारत अनु० १४३ में कहा है—

"सदाचरण से सभी कोई ब्राह्मण हो सकते हैं । शूद्र भी यदि कर्तव्यच्युत है, तो शूद्र हो जाता है ।"

न शूद्रा, भगवद् भक्ता: विप्रा: भागमता: स्मृता: । —भारत

अर्थात् "भगवान् के भक्तों को शूद्र नहीं कहा जा सकता । उन्हें तो ब्राह्मण ही करना चाहिए ।

चत्वार एकस्य पितु, सुताश्च तेषा सुतानां खलु जातिरेका ।
एवं प्रजानां हिषि एकं पित्रकस् वान्न चं जातिभेद ॥

मा० पु०

अर्थात् "जिस प्रकार एक ही पिता के चार पुत्रों की जाति एक ही होती हैं, उसी प्रकार एक ही पिता की सन्तान यह चारों वर्ण भी एक ही जाति के हैं ।"

वेद ने भी चारो वर्णो को समान अधिकार दिये हैं । यजुर्वेद २६।२ में लिखा है—"कल्याण करने वाली इस वाणी को ब्राह्मण, राजा, शूद्र, वैश्य अपने जनों और समस्त जनों के लिए कहता हूँ । यजुर्वेद

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३०।७ से २० तक निम्न वर्ण के व्यक्तियों के नाम गिनाए गए हैं और उनकी अपने कार्यों के लिए नियुक्ति की गई हैं। कभीं भी उनके लिये निषेध का वर्णन नहीं है। अथर्ववेद ६२।१६ में भी घोषणा की है। हे अग्ने ! मुझे देवताओं का प्रिय बताओ और मुझे राजा का भी प्रिय करो। मैं सब शूद्रों का, आर्यों का और सब देखने वालों का भी स्नेह-भाजन होऊँ।" अन्य अनेक स्थानों पर आदेश दिया गया है कि हमें सब में मिलकर बैठकर चाहिए एक-संगठन-सूत्र में अपने को पिरोना चाहिए हमारी सभायें एक साथ हों हम मिलकर खायें पियें मिलकर अपनी सामाजिक समस्याओं का समाधान करें। वेद में कहीं एक दूसरे के प्रति घृणा के बीज बोने की प्रेरणा नहीं दी है। यह सम्भव भी कैसे हो सकता है जब भारतीय संस्कृति ने समानता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। भारतीय सच्चे अर्थों में आस्तिक थे। आस्तिकता का अभिप्राय वह यह समझते थे कि ईश्वर की बनाई समस्त वस्तुओं में प्रेम-भाव होना चाहिए। सभी प्राणी उसके प्रिय पुत्र हैं। किसी के प्रति भी भेद-भाव वर्ताव करना ईश्वर के प्रति अपमान करना है और यही नास्तिकता है। जब हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि ईश्वर का बनाया सूर्य अपनी स्वास्थ्यप्रद किरणों को देखने के लिये धनवान और निर्धन काले और ब्राह्मण और शूद्र पुरुष स्त्री का पक्षपात नहीं करता चन्द्रमा की शीतल किरणें सभी को एक समान प्रकाश व शान्ति प्रदान करती हैं। बाघ और बकरी दोनों सरिता में जलपान के लिए स्वतन्त्र हैं, वायु प्राणीमात्र को बिना मूल्य उपलब्ध हैं, और परमात्मा यदि स्वयं जातियों का निर्माण करते तो इन वस्तुओं की उपलब्धि में भेद-भाव रखते। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। वह अपनी सन्तान को एक समान बढ़ता देखना चाहते हैं।

प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था का यह विभाजन स्थिर नहीं माना जाता था। ब्राह्मण के पुत्र को ब्राह्मण स्वीकार नहीं किया जाता था, जब तक उसमें ब्राह्मणत्व के भाव न हों। नीच कर्म करने वाला

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्राह्मण पतित होकर शूद्र के समान समझा जाता था। श्रेष्ठ कर्म करने वाला शूद्र, ब्राह्मणत्व तक पहुँच सकता था। इतिहास साक्षी है कि छोटे जाति में जन्म लेने वालों ने परम स.। पद पाए और समाज ने उन्हें यथेष्ट मान दिया। शूद्र कहे जाने वाले अनेकों ऋषि-मुनि हुये हैं, जिनको मंत्र दृष्टा तक माना गया है जिस जाति के मनुष्य मन्त्रदृष्टा तक हो सकते हैं, उन्हें वेदों के अध्ययन से वंचित रखा जाता होगा, इसमें संदेह ही है। महर्षि अत्रि और वशिष्ठ के उदाहरण हमारे सामने हैं, जो परम भागवत थे। उन्होंने समाज को बहुत कुछ दिया। समाज उनका चिरऋणी रहेगा कबीर रामानंद रामनुज आदि की सेवाओं को कौन भूल सकता है। देवर्षि नारद देश-विदेश में धर्म का प्रचार करते थे, परन्तु वह दासी-पुत्र थे। बाल्मीकि ब्राह्मण थे, परन्तु प्रायः उन्हें शूद्र समझा जाता है। क्योंकि उन्होंने जीविकोपार्जन के लिए निम्न कोटि के कार्य करना आरम्भ कर दिया था। यद्यपि विश्वामित्र ने अपने गुणों के आधार पर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था, स्मरण रहे कि वह क्षत्रिय राजा थे।

जब हर वर्ण अपनी योग्यता के अनुसार अपना विकास करने के लिये स्वतन्त्र था, तो भक्ति के क्षेत्र में किसी पर कोई बाधा उपस्थित होने का प्रश्न ही नही उठता। सभी को समान अधिकार प्राप्त थे। 'नारद भक्ति-सूत्र' के सूत्र ७८ में स्पष्ट कहा है 'भक्ति साधना के लिए ऊँच-नीच, स्त्री पुरुष, जाति विद्या, रूप, कुल, धन और क्रिया का कोई भेद नहीं है। पद्म-पुराण में भी भक्ति-साधना के लिए समानता का व्यवहार बरता गया है और कहा है कि भगवान की भवति का अधिकार सभी देशों, युगों, जातियों और स्थितियों के मनुष्य को है।' —अ० ४२।१०। सत्य भी है, भक्ति का अर्थ है प्रेम, घृणा नहीं। सभी प्राणी ईश्वर के बनाये हुए हैं, उनके पुत्र हैं। उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित करना; उनके विकास के साधन जुटाना ही सच्चीं भक्ति है, महर्षि पाणिनि ने भक्ति का भावार्थ करते हुए लिखा है 'भज सेवाय में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसमें उन्होंने 'भज' धातु का अर्थ सेवा ही स्थिर किया है। प्राणीमात्र की निःस्वार्थ सेवा ही ईश्वर की सच्ची भक्ति है। भेद भाव का वर्ताव तो अभक्ति को प्रदर्शित करता है। भगवान ने गीता में कहा कि मेरा प्रिय भक्त वह है "जिसका किसी से द्वेष नहीं है, जो सब भूतों के साथ मित्रता का वर्ताव करता हैं और कृपादृष्टि से देखता है"—१२-१३। जो प्राणीमात्र में समानता का अनुभव करता हुआ मेरी परम भक्ति को पाता है"—१८-५४

जिस धर्म की यह उदार विचारधारा हो। वह अनुदान विचारधारा का प्रचार कैसे कर सकता है—यह समझ में नहीं आता।

स्त्रियों पर लगाये प्रतिबंध भी निराधार हैं क्योंकि वैदिक साहित्य में काफी संख्या में ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों के साथ कोई भेद भाव नहीं बरता जाता था।

वेदों ने चारों वर्णों और स्त्रियों को उच्चतम उपासना के लिये खुली छूट दे रखी है, परन्तु फिर भी आज व्यवहार में केवल तीन वर्णों—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तक ही सीमित हैं। लेकिन तन्त्रों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। तन्त्र की शिक्षायें और उपासनायें चारों वर्ण और स्त्रियाँ स्वतन्त्रापूर्वक कर सकती हैं। महानिर्वाण तन्त्र १४।१८४ का उद्घोष है—

विप्राद्यन्त्यजपर्यन्तादियता येऽत्र भूतले।
ते सर्वेस्मिन् कुलाचारे भवेयुराधिकांरस्मि॥

ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज पर्यन्त—इस पृथ्वी के जितने भी निवासी हैं, उनका इस कुलाचार में अधिकार है।'

शाक्ता: शैव: वैष्णवाश्च सोरगाणपतास्तथा।
विप्रा विप्रेतराश्चैव सर्वेऽप्यत्राधिकारिण:॥

—महानिर्वाण तन्त्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् "शक्ति; शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य किसी भी मत का अनुयायी क्यों न हो, ब्राह्मण या ब्राह्मणेतर वर्ण का हो, सभी को तन्त्र में दीक्षित होने का अधिकार है।

त्रिपुरायाश्च वे मंत्राः ये मंत्रावटुकादयः।
सर्ववर्णेषु दातव्या पुरन्ध्रीणां विशेषत ॥
हृदादिहु फटकारादि संकराणां प्रशस्यते।
—नित्योत्सव

'त्रिपुरादेवी और वटुकादि के जो मन्त्र हैं, वे समस्त वर्णों को देवे, स्त्रियों को विशेष रूप से देवे हुं, फट् आदि मन्त्र संकर वर्ण के लोगों के लिये प्रशस्त होते हैं।'

छिन्नमस्ताच मातंगी त्रिपुरा कालिका शिवः ॥
लघु श्यामा कालिरात्रिगोपालो जानकीपतिः।
उग्रताराभैरवश्च देवा वर्णँचतुष्टय।
मृगीदृशां विशेषेण मन्त्राएते सुसिद्धिदाः।
ब्राह्मणः शत्रियो वैश्याः शूद्रानार्योधिकारणः ॥

'छिन्नमस्ता, मातंगी, त्रिपुरा, कालिका, शिव, लघु, श्यामा, कालरात्रि, गोपाल, राम उग्रतारा, भैरव के मन्त्र को जपने का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी को है।'

यह गर्व तन्त्र को ही प्राप्त है कि वैदिक पद्धति पर तो मध्यकालीन आचार्यो को प्रनिबन्ध लगाने की सूझी। परन्तु तन्त्रों पर उनको ऐसा आघात करने का साहस न हुआ। तन्त्र के अनुसार ईश्वर ने तन्त्र-उपासना कुछ सीमित वर्गों के लिये ही सुरक्षित नहीं रखी है वरन् हर वर्ण और जाति का सदस्य बिना किसी भेद भाव के इसके सिद्धान्तों के अनुसार अपने जीवन का विकास कर सकता है। यह मार्ग उन सभी के लिये प्रशस्त, है, जिनमें इस ज्ञान के अर्जुन के लिये जिज्ञासा है। जिज्ञासु के लिये स्तर की जाँच की कोई आवश्यकता नहीं है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरुषों की भाँति ही स्त्रियाँ भी त्रांत्रिक उपासना कर सकती हैं। केवल उपासिका ही नहीं, वह गुरु होने की भी अधिकारिणी हो सकती हैं। कुछ तन्त्रों का तो ऐसा मत है कि स्त्री गुरु से दीक्षा लेने वाला साधक पथ पर प्रगति से बढ़ता है।

भेद भाव रहित उपासना में स्वतन्त्रता प्रदान करना ही तन्त्रों की उल्लेखनीय विशेषता है, जिसका अन्य पद्धतियों में अभाव है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र-साहित्य की विशालता

कोई समय था जब तन्त्रों का विशाल साहित्य उपलब्ध था। आज उसमें से बहुत कम देखने में आता है। तन्त्र-ज्ञान के अभाव के कारण जनसाधारण में इस साहित्य के प्रति जो उपेक्षा भाव वरता गया। उसके अध्ययन और विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया, अतः उसका विलुप्त होना स्वाभाविक ही था।

कहा जाता है कि बौद्धों के नालंदा विश्वविद्यालय में अन्य विषयों के साथ तन्त्र भी अध्यापन का एक विषय था क्योंकि बौद्धों का अपना भी तन्त्र साहित्य है। परन्तु मुस्लिम राज्य के समय यह साहित्य नष्ट हो गया। पुस्तकालय के-पुस्तकालय जला डाले गये। श्री रसिक मोहना चट्टोपाध्याय ने कुछ तन्त्र ग्रन्थों को बचाया। सर जान वुडरफ ने अनेकों तन्त्रों का उद्धार किया।

वेदों की तरह तन्त्र साहित्य का बहुत विस्तार था। जो संकेत मिलते है, उनसे उनकी विशालता अनुमान लगाया जा सकता हैं। तन्त्र ग्रन्थों कहा गया हैं।

सप्त सप्त सहस्राणि संख्यातानि मनीषिभिः।

इस उद्धरण के अनुसार तो १४००० तन्त्र ग्रन्थों के प्रचलन की सूचना मिलती है। इसमें से बहुत कम साहित्य उपलब्ध है।

तन्त्र के मानने वालों के अनेक सम्प्रदाय थे। उनका अपना अपना अलग साहित्य था। वैष्णव आगम १०८, शैव आगम २८ और शक्ति आगामों में ६४ कौल ग्रन्थ. ८ मिश्र और ५ समय आगम माने जाते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्ति सम्प्रदाय में तीन विभाग हैं—१. कौल आगम. २ मिश्र आगम और ३. समय आगम। शक्ति विपयक तन्त्र शास्त्र व्यूहों में विभक्त है। सत्वादि. तीन गुणों के अनुसार इन तीन व्यूहों को तन्त्र. यामल और डामर कहा जाता है। प्रत्येक को ६४ ग्रन्थों का समास कर सारा साहित्य १९२ ग्रन्थों का स्वीकार किया जाता है।

'वाराही तन्त्र' में ५५ शिवोक्त तन्त्रों का नाम आता है, जिनकी श्लोक संख्या ९,६७,९४९ है। 'आगम तत्व विलास' ग्रन्थ के लेखक का विश्वास है कि २०८ तन्त्र ग्रंथ आज भी उपलब्ध हैं। बौद्धों के विशाल तन्त्र साहित्य में से आज संस्कृत माषा के ७२ ग्रन्थ प्राप्त है। तिब्बत में तन्त्र साहित्य को ७८ भागों में बाँटा गया है। इसमें से २६४० ग्रन्थों का प्राप्त होना बताया जाता है।

जिस तरह से हिन्दू धर्म के तन्त्रों के निर्माण का श्रेय महादेव जी को दिया जाता है, उसी तरह बौद्ध धर्म के तन्त्रों को वज्रसत्वशुद्ध ने बनाया है, ऐसी मान्यता है। यह तन्त्र भी संस्कृत भापा में हैं और इनकी संख्या काफी है। कुछ प्रधान बौद्ध तन्त्रों के नाम उद्घृत करते हैं—

१—परमार्थ सेवा २—श्यामयमारि ३—साधन-परीक्षा ४—ज्ञान-सिद्धि ५—पीठावतार ६—प्रमोद महायुग ७—बुद्धकपाल ८—क्रिया समुच्चय ९—वज्रसत्व १०—उडायर ११—हयग्रीव १२—मायाजाल १३—मंजुश्री मूल कल्प १४—योगिनी संसार १५—मणिक कर्णिका १६—साधन संग्रह १७—साधन कल्पलता १८—साधनरत्न १९—योगेश्वर २०—डाकिनी जाल २१—कालवीर तन्त्र का चण्डरोषण २२—तारा २३—वज्र धातु २४—त्रैलोक्य विजय २५—यमान्तक २६—संकीर्ण २७—ज्ञानोदय २८—गुह्य समाज २९—साधन माला ३०—श्रीचक्र संवर ३१—सद्धर्म पुण्डरीक ३२—सुखावत व्यूहचक्र ३३—वाराही तन्त्र ३४—पिंडीक्रम ३५—बोगाम्बर पीठ ३६—कालचक्र ३७—योगिनी ३८—तन्त्र समुच्चय ३९—नाम संगीति ४०—बसन्त तिलक ४१—पीत यमारि ४२—कृष्ण यमारि ४३—शुक्ल यमारि ४४—रक्त यमारि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४५—सम्पुटोद्भव ४६—हे वज्र ४७—सम्वरतन्त्र वा सम्वरोदय ४८—क्रियासंग्रह ४९—क्रिया कंद ५०—क्रिया सागर ५१—क्रिया कल्पद्रुम ५२—क्रियार्णव ५३—अभिधानोत्तर ५४—साधन समुच्चय ५५—तत्व ज्ञान सिद्धि ५६—गुह्य सिद्धि ५७—उड्डान ५८—नागार्जुन ५९—योग-पीठ ६०—वज्र वीर ६१—मरीचि ६२—विमल प्रभा ६३—सम्पुट ६४—मर्मकालिका ६५—कुरु कुल ६६—भूतगम ६७—योगिनी जाल ६८—योगाम्बर पीठ ६९—वसुन्धरा साधन ७०—नौरात्म ७१—डाक्रार्णव ७२—क्रिया सागर ७३—क्रियावसन्त ७४—गूढोत्पादनाम सगीत ७५—निष्पन्न योगाम्बर तन्त्र आदि। अनेकों बौद्ध तन्त्र का चीनी और तिब्बती भाषा में अनुवाद हो चुका है।

बौद्धों का शावत साहित्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। अनेकों संस्कृत ग्रन्थ इस सम्बन्ध में उपलब्ध है। कुछ के नाम इस प्रकार हैं—

१—तारा कल्प २—तारा तन्त्र ३—तारा प्रदीप ४—तारा रहस्य ५—तारा विकल्प ६—तारा सूत्र ७—तारा स्तोत्र ८—तारा मलबोध ९—तारा कल्पलता १०—तारा कवच ११—तारातत्व १२—तारा पंजिका १३—तारा पद्धति १४—तारा पंचांग १५—तारा पाँराजिता १६—तारा पूजा प्रयोग १७—तारार्चन चंद्रिका १८—तारा रहस्य वृत्तिका १९—तारा पूजन न्यास विधि २०—तारा पूजन बल्लरी २१—तारा पूजन रसायन २२—तारा भक्त तरंगिणी नाटक २३—तारा भक्ति सुधार्णव २४—तारार्णव २५—तारार्चनत तरंगिणी २६—तारा विलासोदय २७—तारा षट्पदी २८—तारा सहस्रनाम २९—तारा अष्टोतर शतनाम स्तोत्र आदि।

सौन्दर्य लहरी के ३१ वें श्लोक की लक्ष्मीधर कृत टीका के अनुसार शुभागम पंचक के नाम इस प्रकार हैं—

१. वसिष्ठ संहिता २. सनक संहिता ३. शुक संहिता ४. सनन्दन संहिता ५. सनत्कुमार संहिता।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ललिता सतस्त्रनाम के ८८ वें श्लोक पर सौभाग्य भास्कर की टीका के अनुसार २८ आगम इस प्रकार हैं।

कामिक, योगज, कारण, प्रसृतागम, आजितागम, दीप्तगत, अंशुमानगम, सुप्रभेदागम, विजयागम, निश्वाःसागम, स्वायम्भुवागम, अनलागम, वीरागम, रौरवागम, मुकुटागम, विमलागम, चन्द्रज्ञानागम, विम्बागम, प्रोद्गीत, ललितागम, सिद्धागम, सन्तानागम, किरणागम, वातुलागम, सूक्ष्म, सहस्र, सर्वोत्तर, परमेश्वर।

प्रसिद्ध तान्त्रिकाचार्य अभिनव गुप्त ने अपने विख्यात ग्रन्थ ,तन्त्रालोक' में इसकी चर्चा की है।

दशाष्टादशवस्वष्टंभिन्न यच्छाशनं विभोः।
तत्सारं त्रिकशास्त्रं हि तत्सारं मालिनीमतम् ॥

अर्थात् "दश शिवागम १८ रुद्रागम और ६४ भैरव तन्त्रों में विभक्त ईश्वर के शासन के सार को त्रिकशास्त्र कहते है। मालिनी तन्त्र उसका सार है।"

राजानुक जयरथ ने भी इस श्लोक की व्याख्या ,की है। इसमें उन्होंने 'श्रीकण्ठी' नामक ग्रन्थ की चर्चा करते हुए आठ द्वैतावादी आठ द्वैताद्वैतवादी और ६४ अद्वैतवादी तन्त्रों को गिनाया है। नाम इस प्रकार हैं।

(१) भैरव तन्त्र

१. स्वच्छन्द २. भैरव ३. चण्ड ४. क्रोध ५. उन्मत्त भैरव ६. असिताँग ७. ग्रहोच्छुष्म ८. कपालीशा।

(२) यामल तन्त्र

९. ब्रह्मयामल १०, विष्णुयामल ११. स्वच्छन्द १२. रुरु १३— १४. आथर्वण १५. रुद्र १६. वैताल।

(३) मत

१७. रक्त १८. लम्पट १९. लक्ष्मीपत, २० मत २१ चालिका २२. पिंगला २३. उत्फुल्लक २४. विश्वाद्य।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) मंगल तन्त्र

२५. पिचु भैरवी २६. तन्त्र भैरवी २७. ब्राह्मी २८. कला २९, विजया ३०, चन्द्रा ३१. मंगला ३२. सर्व मंगला।

(५) चक्राष्टक–

३३. मंत्रचक्र ३४. वर्णचक्र ३५. शक्तिचक्र ३६. कलाचक्र ३७. बिन्दुचक्र ३८. नादचक्र ३९. गुह्यचक्र ४०. खेचक्र।

(६) बहुरूप–

४१. अन्धक ४२. रुरुभेद ४३. अज ४४. मूल ४५, वर्णभण्ठ ४६. विडंग ४७, ज्वालिन ४८. मातृरोदन।

(७) वागीश–

४९. भैरवी ५०. चित्रिका ५१. हंसा ५२. कदम्बिका ५३. हृल्लेखा ५४. चन्द्रलेखा ५५. विद्युमान।

(८) शिखाष्टक–

५६. भैरवी ५७. वीणा ५८. वीणामणि ५९. सम्मोह ६९. डामर ६१. अथर्वक ६२. कवन्ध ६३. शिरच्छेद।

आर्थर अवलेन ने 'तन्त्र विज्ञान' की भूमिका में 'महा सिद्धिसार तन्त्र' की चर्चा करते हुए तत्र को तीन भागों में विभक्त किया है–

१. विष्णुक्रांता २. रथक्रांता ३. अश्वकांता। इन वर्गों के तन्त्र इस प्रकार हैं––

विष्णुक्रांता वर्ग के तन्त्र ग्रन्थ–

सिद्धाश्वर, कालीतन्त्र, कुलार्णव, ज्ञानार्णव, नानीलतन्त्र, फेत्कारी-देव्यागम, उत्तर, श्रीक्रम, सिद्धियामल मत्स्यसूक्त, सिद्धिसार, सिद्धि सारस्वत, वाराही, योगिनी, गणेश विमर्शिनी, नित्यतन्त्र, शिवागम, चामुण्डा, मुण्डमाला, हंसमहेश्वर, निरुत्तर, कुलप्रकाश, देवीकल्प, गंधर्व, क्रियासार, निबंध, स्वतन्त्र, सम्मोहन, तन्त्रराज, ललिता राधा, मालिनी, रुद्रयामल, वृहद्श्रीक्रम, गवाक्ष, सुकुमुदनी, विशुद्धेश्वर, मालिनी विजय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समयाचार, भैरवी, योगिनीहृदय, भैरव, सनत्कुमार, योनि, तत्रान्तर नवरत्नेश्वर, कुलचूड़ामणि, भावचूड़ामणि, दैवप्रकाश, कामाख्या, कामधेनु, कुमारी, भूत, डामर, यामल, ब्रह्मपामल, विश्वसार, महाकाल, कुलोड्डीश, कुलामृत, कुब्जिका, यन्त्रचिन्तामणि, काली विलास, और मायातन्त्र=६४

रथक्राँता वर्ग के तन्त्र-ग्रन्थ—

जिन्मय, मत्स्यसूक्त, महिषमर्दिनी. मातृकोदय, हंसमहेश्वर, मेरु, महानील, महानिर्वाण, भूत, डामर, देव पामर, बीज चिन्तामणि, एक जटा, वासुदेव, रहस्य, वृहद, नौतमीय, वर्णीद घृति, छायानील, वृहद, योनि, ब्रह्मज्ञान गरुड़, वर्णविलास, वाला विलास, पुरश्चरणचन्द्रिका, पुरश्चरणरसोल्लास, पंचदशी, पिच्छिला, प्रपंचसार, परमेश्वर, नवरत्नेश्वर, नारदीय, नागार्जुन, योगसार, दक्षिणामूर्ति, योगस्वरोदय, यक्षिणीतन्त्र, स्वरोदय, ज्ञान भैरव, आकाश, भैरव, राजराजेश्वरी, रेवती, सारस, इन्द्रजाल, कुकलास, दीपिका, कंकाल, मालिनी, कालोत्तम, यक्ष डामर, सरस्वती, शारदा, शक्ति-संगम, शक्ति कागमसर्वस्व, सम्मोहिनी, इन्द्रजाल योनाचार, षडाम्नाय, कराल भैरव, पाढ़ा, महालक्ष्मी, कैवल्य, कुलसद् भाव, सिद्धितद्धरि, कृतिसार, काल भैरव, उड्डामेश्वर, महाकाल भूतभैरव=६४

अश्वक्राँता वर्ग के तन्त्र-ग्रन्थ—

भूतशुद्धि, गुप्तदीक्षा, वृहत्सार, सत्वसार, वर्णसार क्रियासार, गुप्ततन्त्र, गुप्तसार, वृहत्तीडल, हेंहन्निर्वाण, बृहत्ककालिनी, सिद्धातन्त्र, कालतन्त्र, शिवतन्त्र,सारात्सारु, गौरीतन्त्र, योगतन्त्र, धर्मकतन्त्र, तत्वचिन्तामणि, विदुत्वत्व, महायोगिनी, वृहद्योगिनी, शिवार्चन, सम्बर, शूलिनी, महामालिनी, मोक्ष, वृहन्मालिनी, महामोक्ष, वृहन्मोक्ष, गोपीतन्त्र, भूतलिपि, कामिनी, मोहिनी, मोहन, समीकरण, कामकेशर, महावीर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चूड़ामणि, गुर्वर्चन गोंप्य, तीक्ष्ण, मंगला, क.मरत्न, गोपलीलामृत, ब्रह्माण्ड, चीन, महानिरुत्तर, भुवनेश्वरी, गायत्री, विशुद्धेश्वर, योगार्णव, भेरुण्डा, मन्त्रचिन्तामणि, यन्त्रचिन्तामणि, विद्युल्लता, भुवनेश्वरी लीलावती, वृहच्चीन, कुरंज, जप राधा माधव, उज्जासक, धूमावती. शिवा=६४

शक्ति-साहित्य–

बामकेश्वर तन्त्र के एक टीकाकार श्री लक्ष्मीधर के मतानुसार ६४ तन्त्रों के नाम ये हैं–

१—महामायाशम्बर परिवुद्धिभ्रम–(प्रकार साधन) २–योगिनी बालशम्वर (योगिनीसिद्ध श्मशान सेवन) ३—तत्व-शम्वर (रूप बदलना) ४-११ सिद्धि भैरव बटुकभैरव,कंकालभैरव, कालभैरव, कालाग्नि भैरव, योगिनी भैरव, महा भैरव, शक्ति भैरव, (गढ़ा हुआ द्रव्यादि खोजना) १२-१६-बाह्यी तन्त्र, माहेश्वर तन्त्र, कौमारी तन्त्र वैष्णवी तन्त्र, वाराही तन्त्र, महि तन्त्र चामुण्डा तन्त्र शिवदूती (श्रीविद्या का वर्णन है, परन्तु आचार वैदिकाचार विरुद्ध हैं) २०—२०—ब्रह्मयामल विष्णुयामल, रुद्रयामल, लक्ष्मीयामल, उभयामल, स्कन्दयामल, गणेशयामल, जयद्रथयामल, (कामना सिद्धि प्रवार) २८—चन्द्रज्ञान २६—मालिनी विद्या, ३०—महासम्मोहन, ३१–वाजुस्त (कापालिका जीवन) ३२—महादेव त्याग, (अघोरसिद्धि) ३३—वातुल ३४—वातु रोत्तर ३५—कामिका, ३६—हृदयभेद, ३७—तन्त्रभेद (परविद्याहरण) ३८—गुह्य (परपुण्यहरण प्रकार) ३६—कलावाद ४०—कलासार (रंग निर्णय सत्वरङ्गादि वामाचार) ४१—कुण्डिकामत) औषधि आदि जड़ी बूटी जादू) ४२—मतोत्तर पारद गुण (पारादादिशोधन ४३—बीजाख्य तन्त्र ४४—वोटल ४५—वोटलोत्तर (यक्षिणी ६४००० दर्शन) ४६–पंचामृत ४७—रूपभेद ४८—भूतोड्डामर ४६—कुलचूडामणि ५०—कुलोड्डसि ५१—कुलचूड़ामणि ५२—सर्वज्ञानोत्तर ५३—महाकाली ६४–अरुणेश

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५५—मोदनीश ५६—विकुण्ठेश्वर ५७–पूर्वाम्नाय ५८—पश्चिमाम्नाय ५९—दक्षिणाम्नाय ६०—उत्तराम्नाय ६१—निरुत्तराम्नाय ६२–विमल ६३—विमलोत्तर ६४—देवीमत तन्त्र।

वामकेश्वर तन्त्र के द्वितीय टीकाकार श्री देवव्रत का मत उक्त तन्त्रों के सम्बन्ध में इस प्रकार है–

४ से ११ तक अष्टभैरव तन्त्र, १२ से १९ तक बहुरूपाष्टक तन्त्र अष्टशक्ति), २० रे २७ तक अष्ट यामल, २८ में १६ नित्ताओ की उपासना, २९, समुद्रोल्लंघिनी विद्या, ३० सम्मोहिनी विद्यासिद्धि प्रकार व मूर्छाकार निद्राकर प्रयोग ११-३२ वामाचार विधान ३३-३५ मदिरादि निर्माण-प्रकार शक्तिवर्द्धन प्रयोग ३६—पट्चक्र भेद विधान ३७–३८ पराविद्या निर्धन (क्षयकर) विधान ३९–यात्स्यायन कोकशास्त्र वशीकरणादि दशक ४०—वर्णकला विद्या ४१—स्तम्भन शक्ति गुटिका औपधि आदि ४१—पारदसिद्धि विधान (पारद-संहिता). ४३–यक्षिणी विद्या ४४—औषधि जादू अन्तदृष्टि-सिद्धि-प्रकार. ४५—यक्षिणी-दर्शन ४६—कायाकल्प विधानादि ४७–५१ षट्कर्म ५२–५६ दिगम्वर कला-विधान पट्कर्म ५७–६४ क्षपणक मत।

आठ मिश्र आगम के नाम यह हैं—

१—चन्द्रकला २—ज्योत्स्नावती ३—कलानिधि ४—कुलार्णव ५—कुलेश्वरी ६—भुवनेश्वरीं ७—बाहस्पत्य ८—दुर्वासा मत।

तीसरे समय मत वालों का 'शुभागम पंचक' ग्रंथ प्रसिद्ध है, जिसमें सनक सनंदन, सनत्कुमार, वशिष्ठ, शुक द्वारा लिखी 'संहिता पंचक' को माना जाता है।

'आगमतत्व विलास' में निम्नोक्त तन्त्रों के नाम लिखे हैं यथा—

स्वतन्त्र, फेत्कारिणी, उत्तर, नील, वीर, कुमारी, काली, नारायणी, तारिणी, वाला समयाचार, भैरव, भैरवी, त्रिपुरा, वामकेश्वर, कुटकुटेश्वर, मातृका, सनत्कुमार, विशुद्धेश्वर, सम्मोहन, गीतमीय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृहन्‌गीतमीय, भूत भैरव, चामुण्डा, पिंगला, बाराही, मुण्डमाला, योगिनी, मालिनीविजय, स्वच्छन्दभैरव, महा शक्ति चिन्तामणि, उन्मत्त-भैरव, त्रैलोक्यसार, तन्त्र मृत, यहाफेत्कारिणी, बारवीर, तोडल, मालिनी, ललिता, त्रिशक्ति, राजराजेश्वरी, महामाहेशरोत्तर, गवाक्ष, गान्धर्व त्रैलोक्यमोहन, हंसापारमेश्वर, हंसामाहेश्वर, कामधेनु, वर्णविलास, माया, मन्त्रराज, कुब्जिका, विज्ञानलतिका, लिंगागम, कालोत्तर, ब्रह्मयामल, आदियामल, रुद्रयामल, कल्पसूत्र ।

इस ग्रन्थों के अतिरिक्त तन्त्र और भी ८३ नाम उपलब्ध होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

मत्स्यसूक्त, कुलसूक्त, कामराज, शिवागम, उड्डीश, कुलोड्डीश, वीरभद्रोड्डीश, भूतडामर, डामर, यक्षडामर, कुलसर्वस्व, कालिका, कुलसर्वस्व, कुलचूड़ामणि, दिव्य, कुलसार, कुलार्णव, कुलामृत, कुलावली, काली कुलार्णव, कुलप्रकाश, वशिष्ठ, सिद्धसाररुवत, योगिनी हृदय कालीहृदय, मातृकार्णव, योगिनीजालकुकर, लक्ष्मीकुलार्णव, तारार्णव चन्द्रपीठ, मेरुतन्त्र चतुःशती, तत्वबोध, महोग्र, स्वच्छन्द सार संग्रह, ताराप्रदीप, संकेत-चन्द्रोदय, षट्‌त्रिंशतत्वत्व, यक्ष्यनिर्णय, त्रिपुरार्णव विष्णुधर्मोत्तर, मन्त्रापणि, वैष्णामृत, मानसोल्लास, पूजाप्रदीप, भक्ति-मंजरी, भुवनेश्वरी, पारिजात, प्रयोगसार, कामरत्न क्रियासार, आगम दीपिका, भावचूड़ामणि, तन्त्रचूड़ामणि, वृहत्, श्रीक्रम, श्रीक्रमसिद्धिशेखर, गणेशधिमाशिना, मंत्रमुक्तावली, तत्वकोमुदी, तंत्रकोमुदी, मंत्रतंत्रप्रकाश, रामार्चनचन्द्रिका, शारदातिलक, ज्ञानार्णव, सारसमुच्चय' कल्पद्रुम, ज्ञानमाला, पुरश्चरणचन्द्रिका, आगमोत्तर तत्वसार, सारसंग्रह, देव-प्रकाशिनी, तंत्रार्णव, क्रमदीपिका, तारारहस्य, श्यामारहस्य, तंत्ररत्न, तन्त्र प्रदीप, ताराविलास, विश्व मातृका, प्रपंचसार, तंत्रसार, और रत्नावली=८३ ।

उनके अतिरिक्त 'महासिद्धि सारस्वन्त में सिद्धीश्वर नित्यतन्त्र, देव्यागम, निवन्ध तन्त्र, राधा तन्त्र, कामाख्या तन्त्र, महाकाल तन्त्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यन्त्रचिन्तामणि, कालीविलास और महाचीनतन्त्र का वर्णन भी पाया जाता हैं।

ऊपर लिखे तन्त्रों के अतिरिक्त कुछ और भी तन्त्रों के नाम उपलब्ध हैं, जैसे—

आचारसार आगमन्द्रिका, ब्राह्मणोल्लास, जपरहस्य, महानिर्वाण, आचारसार, प्रकार आगमसार, चिंतामणी, ग्राह्यमक, वरदा, मातृका भेद पीठमाला, शिवसंहिता, श्यामा प्रदीप, ताराप्रदीप, वर्ण भैरव,योगिनी हृदय, दीपिकायामल सरस्वती, श्रीतत्वबोधिनी, निगमतत्त्वसार, अनन्दकल्पा प्रह्मज्ञान, गायत्री, ज्ञान, कुमारीकवचोल्लास, गौरी-चिलिका कौलिकार्चनदीपिका, क्रमचन्द्रिका, शक्तिसंगम, श्यामाकल्पलता, तत्वनदतरङ्गिणी, बीजचिंतामणी, ब्रह्मज्ञानमहातन्त्र, ब्रह्मांड, दक्षिणाकल्प, ईशानसंहिता, ज्ञानानन्दरंगिणी, कैवल्य, ज्ञानसंकलिनी, लिंगार्चन, निर्वाण, वृहन्निर्वाण, निगमकल्पद्रुम, परश्चरणविवेक पुरश्चरणरसोल्लास, स्वरोदय, शक्तां नन्द, तरंगिणी, त्रिपुरासारमुच्चय, वर्णोद्धार, निरुत्तर, श्यामार्चनचन्द्रिका आदि।

वाराही तन्त्र के अनुसार तन्त्रों के नाम और श्लोक-संख्या इस प्रकार है—

शारदा १६०५ कपिल ६०८०, प्रपंच (१) १२३००, प्रपंच (२) ८२७० प्रपंच (३) ५३१०, सिद्धसंवरण ५००६ आदियामल ३५२००, गणेशयामल १०३०३, रुद्रयामल, ६४६५, ब्रह्मयामल२२१००, आदित्यामल २२०००, विष्णुयामल २४०२०, दक्षिणामूर्ति ५५५०, तंत्रराज ६०६ कुब्जिकातंत्र (१) १०००७, कुब्जिकातन्त्र (२) ६०००, कुब्जिकातन्त्र (३) ३०००, महालक्ष्मीतन्त्र ५१०५,सरस्वतीतंत्र २२०५, देवीतन्त्र १३०००, योगिनी (१) २२५३२, योगिनी (२) ६३०२, नारायण, ५०२०२,कपिल २८०१२०,सारस्वत ६६०३, शिवडामर ११००७, ब्रह्मडामर ७१०८२,दुर्गाडामर ११५०३, योग १३३११, मुक्तक ६०५० वीरागम ६६०६, योगडामर ३३५३३, अमृतशुद्धि ५००५, गंधर्वडामर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६०६७०. मायातन्त्र ११०००. नीलपताका ५०००. कालिका ११०१३. योगावर्ण ८३०१. कल्प ५०६०. कामेश्वरी ३०००. हरगोरी (१ २२०२०. हरगौरी (२) १२०००, कत्यायानी २४२००. वाराही ३१०३, मृत्युञ्जय १६२२०. तन्त्रनिर्णय २८. प्रत्यङ्गिरा ८८००. वामकेश्वर २५. त्रिपुरार्ण ८८५६- आद्या २२६१५. मृडानी (१) ४४८०. मृडानी (२) ३०००. मृडानी (३) १३०० गवाक्ष ६५२५।

शाक्त-साहित्य वेद के अतिरिक्त आरण्यक उपनिषद, ब्राह्मण—श्रौय-साहित्य में उपलब्ध होता है। सायणाचार्य. उपनिषद् ब्रह्म-अप्पय्य दीक्षित के इन पर भाष्य प्राप्य हैं। पुराणों पर भी शक्तिवाद का काफी प्रभाव पड़ा है। कालिका-पुराण शक्ति-तत्व का स्वतन्त्र ग्रन्थ है। देवीगीता देवी भागवत का अंश है। दुर्गा सप्तशती मार्कण्डेय पुराण का एक भाग है। ब्रह्माण्ड पुराण के द्वितीय भाग में ३२० श्लोकों का ललिता सहत्र स्तोत्र आता है। कूर्म-पुराण में देवी की ८०० नामों से स्तुति की गई है। अर्द्धनारीश्वर तथा शिव सम्वन्धी प्रकरण भी है। उपपुराणों में देवी-पुराण शक्तिवाद का स्वतन्श पुराण है।

'काश्मीर संस्कृत सीरिज' में छपे काश्मीरियों के शाक्त-तन्त्रों के कुछ नाम इस प्रकार है—

स्पन्दकारिका, स्पन्दसन्दोह. सवित्सिद्धि. तन्त्रसार. तन्त्रलोक. तन्त्रसुधा, प्रत्यभिज्ञासूत्र, महार्थमंजरी, तन्त्रवटधानिका, अजडप्रभातृ-परात्रिशिका, मालिनीविजय, कामकला-विलास।

शाक्तो की प्रयोग-विधियाँ जिन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

लक्ष्मीतन्त्र, योगिनीतन्त्र- मरीचितन्त्र वाराहीतन्त्र, हरगोरीतन्त्र, डामरतन्त्र, शक्तिसंगमतन्त्र, कात्यायनीतन्त्र।

रहस्य स्तोत्रों में यह ग्रन्ह प्रसिद्ध है—

शंकराचार्य की सौंदर्यलहरी, आनन्दलहरी गड़पाढ़ का सुभगोदय लघुंचस्तवी, ललितात्रिशती—जिस पर शंकराचार्य ने भाष्य

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया है. आर्यापंचाशत्. दुर्वासा का त्रिपुरामहिम्न स्तोत्र, अप्यय्य दीक्षित की आनन्दलहरी ।

भास्कराग तन्त्र-साहित्य के एक प्रसिद्ध दार्शनिक हुए हैं । उनका 'वीरवस्य 'रहस्य' ग्रन्थ तन्त्र शास्त्र की अपूर्व कृति हैं । उन्होंने सप्तशती ललिता सहस्रनाम, श्रीसूत्र, कौल उपनिषद् त्रैपुर महोनिषद् पर उच्च-कोटि के भाष्य लिखे और योगिनी हृदय-तन्त्र पर सेतुवन्धन टीका लिखी है । यह कृतियाँ उनके नाम को अमर करने वाली है ! भास्कर-राय के शिष्य उमानन्दनाथा ने 'नित्योत्सवं' नाम का ग्रन्थ लिखा है उनके शिष्य रामेश्वर ने परशुराम के कल्पसूत्रों पर वृत्ति लिखी है ।

रहस्य ग्रन्थों में तारा रहस्य त्रिपुरा रहस्य और श्यामा-रहस्य के नाम आते हैं ।

पूर्णानन्द स्वामी रचित ग्रन्थ योगसार. श्याम-रहस्य. शक्ति क्रम. तत्वानन्द तरंगिणी श्रीतत्वचितामणी. कालिका कारकूट हैं ।

गौड़पाद के श्री विद्यासूत्र पर शंकराचार्य ने टीका की थी । शंकराचार्य ने 'प्रपञ्चसार' नामक शक्ति-तन्त्र को लिखा था, जिनकी टीका उनके शिष्य पद्मपादाचार्य ने की ।

दत्तात्रेय का वनाया हुआ 'अष्टदश साहस्री दत्तसंहिता' ग्रन्थ है । परशुराम ने ५० खण्डों और ६ हजार सूत्रों में इसका संक्षेप किया है । हरितायन ने दशखण्डों में इसका भी संक्षेप किया । महर्षि अगस्त्य के शक्तिसूत्र प्रसिद्ध हैं ।

लक्ष्मण देशिका का 'शारदातिलक' प्रसिद्ध तन्त्रों में माना जाता है इस पर रावभट्ट ने विशेष टिप्पणियों सहित टीका लिखी है, जिसे अपूर्व वी संज्ञा दी जा सकती है । पुण्यानन्दनण ने कामकला विलास की रचना की जिस पर नटनानन्द ने चिद्वल्ली व्याख्या की नटनान्द के शिष्य अमृतनान्दनाथ ने 'योगिनी हृदय दीपिका' की, रचना की, जो वामकेश्वर तन्त्र के एक अंश की व्याख्या है । शंकराचार्य की 'सौन्दर्य-लहरी' पर ३५ टीकायें लिखी गई हैं ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदों में शक्ति की विचारधारा का प्रवाह बहता है। वेद में मातृ-शक्ति का प्रतिनिधित्य अदिति देवी करती है। स्वतन्त्ररूप से कोई अलग सूक्त तो नहीं. परन्तु ऋग्वेद में अन्य देवों साथ इनका नाम प्रायः ८० बार आया है। उसे 'देवतामयी' कहा गया है। इसे मनुष्य पितर, असुर, गन्धर्व और सम्पूर्ण भूतों की माता घोषित किया गया है। गायत्री, सावित्री, पृथ्वी, अथवा मही इसके नाम है। ऋग्वेद में इसके अनेकों विशेषण हैं। वह और वरुण की माता है (८।२५।३।१०।३६।३, १०। ३१।६), वह राजाओं की माता २।२७।७) शक्तिशाली पुत्रों वाली हैं ८।५६।११), उन्हे शूद्रों की माता की संज्ञा दी गई है। विवस्वत, सूर्य और वामन अवतार (विष्णु) की माता कहा गया है। वह विपत्तियों से रक्षा करने वाली हैं (१०।१०,१।१४-१५) वन्धनों को खोलने की उससे प्रार्थना की गई है (८।६३।८) पापरहित होने के लिये स्तुति की गई है (१।१६२।२२)।

अथर्वदेव के देवी सूक्त में तो देवी का अधिक स्पष्टीकरण किया गया है वहाँ देवी स्वयं कहती है—

अहं रुद्रेभिर्सुभिश्चराभ्यह मादित्यंरुतं विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोमा विभर्म्यहुमित्द्राग्नी अहमविनोभा ॥

"मैं रुद्रो, वसुओं, आदित्यों—पुत्र सूर्यादि देवताओं के साथ तथा विश्वामित्र के साथ चलती हूँ अर्थात् समस्त साकार देवता, उनके ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्माण्डगत समस्त जड़ और चेतना के साथ में हूँ। प्रत्येक साकार देवता के साथ साकार स्त्री-रूप में है। जड़ के साथ भी स्वातंत्रय, कार्यशक्ति, सूक्ष्म और स्तम्मित ज्ञानशक्ति मैं ही हूँ। उस सम्पूर्ण देवी सूक्त में शक्ति का सुन्दर निरूपण किया गया है।

उपनिषदों का शक्ति-साहित्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। देवी काली, तारा, वह्वृच, भावना त्रिपुरी, सरस्वती हृदय, सीता, सौभाग्यलक्ष्मी. अरुण. त्रिपुरातापिनी. अद्वैतभाव. कोल. श्रीविद्यातारक आदि प्रसिद्ध शक्ति-उपनिषद् है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देव्युपनिषद में वाक्सूक्त, श्रीसूक्त के मन्त्र और श्रीविद्या की पंचदशी सम्मिलित हैं। इसे अथर्ववेद का सौभाग्यकांड स्वीकार किया जाता है। श्रीविद्यातारक कौल, अद्वैतभाव और काली उपनिषद् आधुनिक ही लगते हैं। ऐसा लगता है कि इनका आविर्भाव वाममार्ग के प्रचार के बाद हुआ है। वहृच् उपनिषद् में ललिता रूप से ईश्वर का चिन्तन किया गया है। भावनोपनिषद् में देवी के परस्वरूप का वर्णन है। सरस्वती हृदय में ऋग्वेद के सरस्वती सूक्त के मन्त्र दिये गए है और तान्त्रिक विनियोग भी है। सीता उपनिषद् में सीता को शक्ति रूपिणी मूलप्रकृति और योगमाया कहा है। सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद् में नवचक्र में देवी की उपासना का विधान, श्रीसूक्त और उसका तांत्रिक विनियोग है। अरुणोपनिषद् तैत्तरीय आरण्यक के अन्तर्गत आता है। त्रिपुरातापिनी में देवी से स्थूल और सूक्ष्म विग्रह के पूजन का विधान दिया गया है। अद्वैतभाव, कौल और श्रीविद्यातारक उपनिषदों का विषय उनके नामों से ही विदित हो रहा है।

ब्राह्मण और आरण्यक साहित्य में भी शक्ति का स्पष्ट उपास्य रूप वर्णित किया गया है।

शक्तिवाद का भी पर्याप्त सूत्र साहित्य हैं। श्री गौड़पादाचार्य के श्री विद्यारत्न सूत्र है, जिस पर शंकराचार्य की टीका है। दत्त संहिता के १८००० श्लोकों को परशुराम ने ६०० सूत्रों में संक्षेप किया जिसमें ५० कांड थे। हारीत गोत्र के सुमेधा ने इनका भी संक्षेप किया जिसे दसखण्डी कहा जाता है। अगस्त्य के शक्ति सूत्र हैं, जिसका पहला सूत्र है—

अथातो शक्ति जिज्ञासा।

महर्षि भारद्वाज के शक्ति धर्म के सूत्र है। महर्षि अंगिरा के देवी-मीमांसा दर्शन के सूत्र हैं। भास्करराय की सप्तशती टीका से नागानन्द शक्तिसूत्रों का परिचय मिलता है। क्षेमराज रचित प्रत्यभिज्ञामत के शक्तिसूत्र है। नित्योत्सव नामक सूत्र पर उमानन्दनाथ का लिखा हुआ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निबन्ध है। उमानन्दनाथ के शिष्य रामेश्वर की सूत्र वृत्ति है।

शैव-तन्त्र

यजुर्वेद में शातरुद्रीय अध्याय की ख्याति है। तैत्तरीय आरण्यक में सारे विश्व को रुद्रमय कहा गया है (१०।१६)श्वेताश्वरोपनिषत् (३।११) में शिव को सर्वव्यापी की संज्ञा दी गई है।

शिवागम साहित्य प्रामाणिक माना जाता है। शैव सिद्धान्त का दक्षिण के तमिल प्रान्त में अधिक प्रचार है। ऐसा विश्वास है कि शिव ने अपने पाँच मुखों से २८ तन्त्रों की रचना की।

सद्योजात नामक मुख से उत्पन्न तन्त्र — कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण, सुप्तभेद।

वामदेव नामक मुख से उत्पन्न—दीप्ति, सूक्ष्म, सहस्र अंशुमान, अजित।

अघोरमुख से उत्पन्न तन्त्र—विजय, निःश्वास, स्वायम्भुव, अनल, वीर।

सत्पुरुष मुख से उत्पन्न तन्त्र—रौरव, मुकुट, विमल चन्द्रज्ञान, बिम्ब।

ईशान मुख से उत्पन्न तन्त्र—प्रोद्गीत, ललितं, सिद्ध, सन्तान, सर्वोत्तर, परमेश्वर, किरण, वातुल।

यह नाम जयद्रथ की 'तन्त्र लोक' की टीका में प्राप्त है।

अप्पय्य दीक्षित की 'शिवकर्मणिका' सुन्दर कृति है। पाशुपत का सूत्र ग्रन्थ 'महेश्वर रचित पाशुपत सूत्र' है। शैवाचार्य सद्योज्योति के मोक्षकारिका, योगकारिका तत्वसंग्रह, सत्वत्रय, नरेश्वरं परीक्षा, परमोक्षनिरासकारिका, रौरवागम, की वृत्ति, स्वयम्भुव आगम पर उद्योतदि ग्रन्थ उच्चकोटि के माने जाते हैं।

नारायणकन्ठ के पुत्र रामकंठ ने सद्योज्योति की कृतियों पर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुन्दर व्याख्यायें लिखी है, जिनमें परमोक्षनिरासकारिका वृत्ति मातंग-वृत्ति, नादकारिका, मोक्षकारिका वृत्ति और प्रकाश नरेश्वर परीक्षा टीका) छप चुकी है। हरदत्त शिवाचार्य की 'श्रुति सूक्तमाला' और 'चतुर्वेद तात्पर्य संग्रह है। भोजराज को 'तत्वप्रकाशिका' पर अघोर शिवाचार्य ने वृत्ति लिखी है। नादकारिका पर इनकी वृत्ति लिखी है। श्रीकंठ सूरि का 'रत्नत्रय का शैव साहित्य में अपना विशेष स्थान है।

बीर शैव मत का 'सिद्धान्त शिलामणि' उत्तम ग्रन्थ माना जाता है।

काश्मीर में प्रचलित शैव तन्त्रों को प्रत्यभिज्ञा की संज्ञा दी गई है। इनमें शैवों के अद्वैत सिद्धान्त को व्याख्या की गई हैं। साहित्य और दर्शन का समन्वय करने वाले प्रसिद्ध तन्त्राचार्य अभिनवगुप्त की माननीय कृतियाँ इसी मत से सम्बन्ध रखती ह। तन्त्रालोक, परमार्थसार ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा विमर्शिणी, मालिनी विजयवार्तिक परात्रिंशिका-विवृत्ति, अभिनव भारती तथा ध्वन्यालोक 'लोचन' की रचना ने अभिनवगुप्त को तन्त्र दर्शन और साहित्य जगत में अमर बना दिया। अभिनव गुप्त के शिष्य क्षेमराज ने भी श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना की है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

प्रत्यभिज्ञा हृदय, शिवस्तोत्रावली, स्वच्छन्द तन्त्र, विज्ञान भैरव, नेत्रतन्त्र, स्पन्दसन्देह, शिवसूत्र विमर्शिणी।

इस मत के अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ यह हैं—

गौरक्ष की 'परिमल' और 'मंत्रार्थमन्जरी' रामकण्ठ की 'स्पन्दकारिकाविप्रत्ति' उपल वैष्णव की 'स्पन्दप्रदीपिका' योगराज की 'परमार्थ सारवृत्ति' भास्कर तथा वरदराज का शिवसूत्र वार्तिक' जयरथ की 'तन्त्रालोक टीका'।

वैष्णव-तन्त्र—

वैष्णव तन्त्रों में 'पांचरात्र' और 'वैखानस' दोनों आतेहैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोई समय था जब वैशानस साहित्य भी काफी संख्या में उपलब्ध था, परन्तु अब तो उसका लोप सा ही हो गया है। पाञ्चरात्रों को वेद के समान प्रमाण्य माना जाता है। रामानुज ने अपने श्रीभाष्य(२।१०।०२) में सिद्ध किया है—

सांख्य योगः पाञ्चरात्र वेदाः पाशुपतै तथा।
आत्मप्रमाणान्येतानि न हन्त-यानि हेतुभिः ॥

अर्थात् साँख्य-योग पांचरात्र वेद तथा पाशुपात ये सब आत्म प्रमाण हैं। अतएव इनको हेतुओं से हनन नहीं करना चाहिए।

शतपथ ब्राह्मण (१३।६।१) में 'पांचरात्र सूत्र' का उल्लेख आता है। यामुनाचार्य ने 'आगमप्राभपय' वेदांतदेशिका ने 'पांचरात्र रक्षा' में और भट्टारक वेदोत्तम ने 'तन्त्रशुद्ध' में अनेकों प्रमाण देकर पांचरात्रों के मूल सिद्धान्तों को वेद से मिलाने का प्रयत्न किया है। प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि पांचरात्र साहित्य तीन भागों में विमुक्त था—

१—पांचरात्र श्रुति, २—पांचरात्र उपनिषद ३—पांचरात्र संहिता।

उत्पल ने 'स्पन्दकारिका' में पहले दो के उदाहरण दिए हैं—

पाञ्चरात्र श्रुतावपि—यद्वत् सोपानेन प्रसादमावहेत् प्लवनेन व नदी तरेत्, तद्वत् शास्त्रेण हि भगवान् शास्त अवद्गन्तव्याः।

अर्थात् पांचरात्र से श्रुत की अवधि तक जिस भाँति सीढ़ियों के द्वारा प्रसाद का समारोहण किया जाता है तथा प्लवन के द्वारा नदी के संतरण किया जाता है, उसी भाँति शास्त्र के शासन करने वाले भगवान् को जानना चाहिए।

ईश्वर-संहिता के अनुसार—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक एकायतो वेदः प्रख्यातोः सर्वतो भुवि।

अर्थात् एक अयन वाला वेद सर्वत्र भूमण्डल में प्रधान है।

पांचरात्र का सम्बन्ध वेद की एकायन शाखा से है, जिसका उल्लेख छांदोग्योपनिषद् (७।१।२) में भी आता है। महाभारत के नारायणंपोपाख्यान (शान्तिपर्व अध्याय ३३५, २४६) में पांचरात्रों का उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार नारद श्वेत द्वीप में गए थे और नारायण ऋषि से उसकी शिक्षा प्राप्त करके लाये थे। इसलिए नारायण ऋषि को इस मत का प्रवर्तक माना जाता है और इसके प्रचारकों में कौशिक, शांडिल्य, औपगायन और मौञ्जायन का नाम आता है। पाँचरात्र का दूसरा नाम भागवत धर्म या सात्वत धर्म भी था।

डा० थ्रादर ने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टू दी पांचरात्र' में पांचरात्र संहिताओं की संख्या २१५ बताई है, जिनमें विश्वामित्र संहिता, अगस्त्य संहिता वासुदेव संहिता, नारदीय संहिता काश्यप संहिता, विष्णुरहस्य संहिता, महासनत्कुमार संहिता आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस विशाल पांचरात्र साहित्य में से अभी १३ ही प्रकाश में आई हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं लक्ष्मीतन्त्र विष्णु तिलक, अहिर्बुन्ध्य संहिता, श्री संहिता, सात्वत संहिता, प्राद्यतन्त्र बृहद् ब्रह्म संहिता, भारद्वाज संहिता, कपिञ्जल संहिता, जयाख्य संहिता, पराशर संहिता, ईश्वरी संहिता।

वैखानस कृष्ण यजुर्वेद की एक अलग शाखा थी। पहले तो इनकी स्थिरता पांचरात्रों के समान ही थी, परन्तु उनके साहित्य के लोप होने में वह अपनी लोकप्रियता खो बैठे हैं। वैखानस श्रौत-सूत्रों की गिनती उच्च साहित्य में होती रही है। वैखानसों श्रोष-सूत्र, धर्म-सूत्र गृह-सूत्र और मन्त्र-तन्त्र-संहिता चार प्रकार के ग्रंथ मिलते हैं।

तन्त्र साहित्य की इस विशालता से अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीनकाल में तन्त्र-साधना और साहित्य का कितना प्रचार था।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तंत्र में योग का स्थान

पातंजलि ने चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा हैं। तन्त्र के अपने मापदण्ड हैं। शारदा तिलक (५।२) [६] में लिखा है कि वेदान्त के अनुसार जीव और आत्मा का मिलन योग है। शैवों के अनुसार शिव और आत्मा की एकता को योग कहते हैं। वैष्णव पुराण पुरुष के ज्ञान को योग कहते हैं। तन्त्र में शिव और शक्ति के ऐक्य को योग कहा गया है। यहाँ चेतन रूप से किए गये शक्ति और ज्योति के किसी भी प्रयत्न को योग कहा जाता है। एक तांत्रिक विद्वान के अनुसार योग के दो अर्थ होते हैं—प्रथम तो विश्व में व्याप्त दिव्य जीवन से एकात्म लाभ करना जो कि मानव जीवन का उद्देश्य है। दूसरा अर्थ बुद्धिपूर्वक नियोजित आत्मानुशासन के साधन-क्रम और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया जाने वाला स्वाध्याय और अभ्यास है।

तन्त्र में योग का पर्याप्त अंश सम्मिलित है। षट्चक्र निरूपण, त्रिपुरासार समुच्चय, गन्धर्व तन्त्र जैसे ग्रन्थों में इडा, पिंगला, सुषुम्ना कुण्डलिनी व अन्य यौगिक विषयों का वर्णन है। महाकालीक्त पादुका-पंचकम्' स्तोत्र में द्वादश दल पद्म का विशेष विवेचन है। शारदा तिलक में तो अध्याय के अध्याय भरे पड़े हैं। अन्य तन्त्रों में भी योग विषय को उचित स्थान दिया गया है। योग की महिमा का इस प्रकार वर्णन है—

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीश्वरि।

—योगबीज०

"हे परमेश्वरि ! योग रहित ज्ञान किस तरह मोक्ष दायक हो सकता है ?"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञाननिष्टो विरक्तोऽपि धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः ।
बिना योगेन देवोऽपि त मुक्ति लभते प्रिये ।।

(योग बीज ३१)

"हे प्रिये ! ज्ञाननिष्ठ, विरक्त, धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय और देवता भी योग के बिना मोक्ष लाभ नहीं कर सकते ।"

मथित्वा चतुरो वेदान् सर्वशास्त्राणि चैव हि ।
सारस्तुत् योगिभिः पीतस्तक्रं पिवन्ति पण्डिताः ।।

(ज्ञानसंकालिनी तन्त्र ५१)

"चारों वेद और समस्त शास्त्रों को मथ कर सार मक्खन तो योगी चाट गये हैं और असार भाग पण्डित पी रहे है ।"

ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु सदेवो न तु मानुष्यः तन्त्र

"ऊर्द्ध रेता योगी मनुष्य नहीं ईश्वर ही होता है ।"

अनेक शत संख्याभिस्तर्क व्याकरणादिभिः ।
पतितः शास्त्र जालेषु प्रज्ञया ते विमोहितः ।।

(योग बीज ८)

सैकड़ों तर्कशास्त्र तथा व्याकरण आदि पढ़कर मनुष्य शास्त्र जाल में फँस कर विमोहित हो जाते हैं । वास्तविक ज्ञान तो योग से ही होता है ।"

देहेस्मिन् वर्तते मेरुः सप्त द्वीप समन्वितः ।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ।।
ऋषयो मुनयेः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
पुण्यतीर्थानि पाणेनि वर्तन्ते पीठ देवताः ।।
सृष्टि संहार कर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ ।
नभो वायुश्च वानिश्च जलं पृथ्वी तथैवच ।।
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेरु तवेष्ठयं सर्वत्र व्यावहारा प्रवर्तते ।।
जानाति वः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयम् ।
ब्रह्माण्ड संज्ञके देहे यथा देश व्यवस्थितः ।।

(शिव संहिता पृ० २)

"इस मानव-देह में मेरु पर्वतों सातों द्वीप समस्त नदियाँ और समुद्र पर्वत समस्त प्रदेश, ऋषि, मुनि, नक्षत्र, ग्रह, पुण्यतीर्थ, सिद्धपीठ और उनके देवता सृष्टि का संहार करने वाले, सूर्य चन्द्रमा, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पाँचों तत्व सब कुछ पाया जाता है। तीनों लोक में जो कुछ है वह सब इस देह में भी मौजूद है। जो इस रहस्य को पूर्ण रूप से जानता है वही सच्चा योगी हैं। जो कुछ ब्राह्मण्ड में है वह इस मानव देह रूप पिण्ड में भी पाया जाता है।"

योग महिमा के ऐसे सैकड़ों श्लोकों का वर्णन तन्त्रों में पाया जाता है। डा० राधा कमल मुकर्जी के अनुसार 'बास्तव में इस उपासना का आरम्भ कामना तथा मनोभावों से होता है और इसका पर्यवसान यौगिक समाधि में होता हैं। योग सम्बन्धी अनुकूल 'नाड़ियों, चक्रों तथा चक्रों के अन्दर रहने वाली शिराओं को ध्यान के द्वारा जागृत कर उपासक अपने शरीर और मन पर अधिकार कर लेता हैं और अन्त में जाकर निराकार के ध्यान से स्थिरता प्राप्त करने में समर्थ होता है।

यमनियमगुणौश्च स्वात्मशुद्धि विधाय ।
स्ववशविविधपीठैरेव भूत्वा स्थिरात्मा ।
असुनियमजलेन स्नापयेधिांद्व्यलिङ्ग
प्रकटितचतुरङ्ग बाह्यमेतदविधानम् ।।
शम्भोरतेन्द्रियनिवर्तनमेव गन्धो
ध्यान प्रासूननिचयो दृढ़धारणा सा ।।
धूपः समाधिरथशुद्धमहोपरारै
अन्यन्ताराख्यचतुरङ्गविधानमेतत् ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवमष्टांगयोगेन सदान्तः पद्मसद्मनि ।
पूज्येत्परम देवं किं बाह्यैर्देवपूजनैः ॥

"यम-नियमों से सम्बन्धित २५ गुणों से आत्म-शुद्धि करना, आसनों से शरीर की स्थिरता करना, प्राणायाम रूपी जल से दिव्यलिंग का अभिषेक करना ही बाह्य चतुरङ्ग कहा जाता हैं। शम्भु की इन्द्रियों को विषय निवृत्त रूप प्रत्याहार को गन्ध कहते हैं। पुष्प की संज्ञा इन्द्रिय निवृत्त से अर्न्तमुख हुए मन में शिव-ध्यान जमाना है, उन्हें दृढ़तापूर्वक धारण करने को धारणा कहा गया है और ज्ञाताज्ञाता रूप-समाधि ही नैवेद्य है। इसे अभ्यन्तर चतुरङ्ग कहते है। शिवयोगी को इस तरह अष्टांग योग की साधना करते हुए अपने हृदय में शिव का पूजना करना चाहिए।"

तन्त्रों में अष्टाङ्ग योग के सभी अङ्गों का विस्तृत विवेचन है। शारदातिलक (२५।७) में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, मिताहार व शौच का वर्णन है जिन्हें यम कहा जाता है - अगले श्लोक (८) में तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, देव-पूजन, सिद्धान्तश्रवण, ह्री, मति, जप व होम दस नियम बताये गये है। आसनों का वर्णन श्लोक ६।१५ में है। प्राणायाम का वर्णन १६।२२ में है। पाँच प्राणों-प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान और उप-प्राण—नाग, कूर्म कृकल देवदत्त धनंजय, का वर्णन १।४४ में है। (२।२३) में प्रत्याहार की व्याख्या है।२४,२५ में धारणा का विवेचन हैं। २६ वें श्लोक में ध्यान की परिभाषा की गई है।

साधना के लिये ध्यान के विधि-विधान भी दिये गये है। यथा—

ब्रह्मरन्ध्र सरंसीरुहोदरे नित्यलग्नमवदात्मद्भुतम् ।
कुण्डली विवरकाण्ड मंडित द्वादशीर्ण सरसीरुह भजे ॥

—पादुका पंचक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"सब मनुष्यों के मस्तक में जो अधोमुखी सहस्र दल कमल हैं। उनके उदर में कुलकुण्डलिनी के जानने के लिए जो नित्य लग्न और अद्‍भुत रूपी नाड़ी है, उससे संलग्न द्वादश वर्ण पद्‍म का मैं ध्यान करता हूँ।"

वं-वीज जारुषं ध्यायेदर्धचन्द्रं शशिप्रभम् ।
क्षुत्पिपासा सहिष्णुत्वं जलमध्येष मज्जनम् ।।

"वं वीज वाले अर्द्ध चन्द्राकार चन्द्रमा की तरह कांति वाले जल-तत्व का स्वाधिष्ठान में ध्यान करे। इससे भूख-प्यास मिटकर सहन-शक्ति पैदा होगी और जल में अव्याहृत गति हो जायेगी।"

यं-वीजं पवनं ध्यायेद् वर्तुलं श्यामला प्रभाम् ।
आकाश गमनाद्यञ्च पक्षिवतगमनं तथा ।।

"यं बीज वाले गोलाकार तथा हरी प्रभा वाले वायु तत्व का अनाहत चक्र में ध्यान करे। इससे आकाश गमन तथा पक्षियों की तरह उड़ने की सिद्धि प्राप्त होती है।"

रं-बीजं शिखिनं ध्यायेत् त्रिकोणमरुण प्रभम् ।
वह्वन्न पान भोक्तृत्वमातपाग्नि सहिष्णुता ।।

'रं बीज वाले त्रिकोण और अग्नि के समान लाल प्रभा वाले अग्नि का मणिपूर चक्र में ध्यान करे। सिद्धि होने, पर बहुत अन्न ग्रहण करने की पीने की शक्ति तथा धूप और अग्नि संहन करने की शक्ति आ जाती है।"

लं-वीजां धरणीं ध्याये चतुरस्रां सुपीतभाम् ।
सुगन्ध स्वर्ण वर्णत्वमारोग्यं देहलाघवम् ।।

"लं बीज वाली चौकोण, पीली पृथ्वी का ध्यान करे। इस प्रकार करने से नासिका सुगन्ध से भर जायगी, शरीर स्वर्ण के समान कान्ति वाला स्वस्थ और हलका हो जायगा।"

हं बीज गगनं ध्यायन्निराकारं बहुप्रभम् ।
ज्ञानं त्रिकालविषयं मैश्वर्यमणिदमादिकम् ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"हं' बीज का विशुद्ध चक्र में जप करते हुए निराकर चित्र-विचित्र रङ्ग वाले आकाश का ध्यान करे। इससे तीनों कालों का ज्ञान, ऐश्वर्य तथा अर्थ मणि आदि अष्ट सिद्धियाँ होती हैं।"

सहस्रदलपद् मस्थमन्तरात्मात् उज्ज्वलम् ।
तस्योपरि नादबिन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्वले ।
तत्र निजगुरुं नित्यं रजताचलसन्निभम् ।
वीरासनसमासीनं सर्वाभरणभूषितम् ।।
शुक्लमाल्याम्बरधरं वरदाभयमाणिकम् ।
वामोरुशक्तिसहितं कारुण्येनावलोकितम् ।।
प्रियया सव्यहस्तेन धृतचारुकलेवरम् ।
वामैनोत्पलधारिण्या रक्ताभरणभूषया ।।
ज्ञानानदसमायुक्तं स्मरेतन्नामपूर्वकम् ।।

"योगी को ऐसा ध्यान करना चाहिये कि जिस सहस्र दल कमल में उज्ज्वल अन्तरात्मा विद्यमान है, उसके ऊपर के नाद बिन्दु के बीच में एक प्रदीप्त सिंहासन स्थित है। उसी पर अपने इष्टदेवता अधिष्ठित हैं, उनकी स्थिति वीरासन की-सी है। चाँदी के पहाड़ की तरह उनके शरीर सफेद हैं अनेकों प्रकार के आभूषण धारण किए हुए हैं, माला, फूल और वस्त्रों से विभूषित है, हाथों में वर और अभय मुद्रायें हैं। उनके, बाँये ओर शक्ति का स्थान है, गुरु करुणा दृष्टि से चारों ओर निहार रहे हैं, शक्ति दाहिने हाथ से उनको छू रही है। शक्ति के बायें हाथ में लाल पद्म है और लाल रङ्ग के आभूषण धारण किये है। इस तरह से उन ज्ञान समायुक्त गुरु का नाम स्मरण करते हुए ध्यान करना चाहिए।'

शारदा तिलक (२५।२७) में जीवात्मा और परमात्मा के निरन्तर अभेद में अनुभूति को समाधि कहा गया है। गौड़पाद स्वामी ने कहा है:—

सर्वाभिलापविगतः सर्वचिन्तासमुत्थिताः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुप्रशान्त: सकृज्ज्योति: समाधिरचलोऽभय: ।।

(प्र० ३। ७)

"सारे बाह्य शब्दादि व्यवहार के बिना, सारे सूक्ष्म प्रपंच रूप चिंता के बिना, सारे अविद्यादि क्लेशों के बिना, सदा स्वयं प्रकाशमान ज्योति-स्वरूप अचल भयादि, द्वैव रहित, स्व-स्वरूप का नाम ही समाधि है।"

समाधि से पूर्णता का आश्वासन देते हुए शिवसंहिता में कहा गया है:—

निरालम्बं मन: कृत्वा न किञ्चिद्वापि चिन्तयेत् ।
वृत्तिहींन मन: कृत्वा पूर्णरूपं स्वयं भवेत् ।।

"जिस काल में सविकल्प समाकल्प के साधन से निर्विकल्प समाधि सिद्ध हो जाती है, मन दृश्य का चिंतन छोड़कर वृत्ति रहित हो जाता है, उस समय साधक स्वयं पूर्ण बन जाता है।"

तन्त्र में कुण्डलिनी का विस्तृत वर्णन हैं। शारदा तिलक (५१-५७) में कुण्डलिनी-शक्ति को चैतन्यरूप, सर्वव्यापी, विद्युत, सब तत्वों और देवों में व्याप्त और शब्द-ब्रह्म कहा है। (५८-१०७) में कहा हैं कि वह किस तरह मन्त्रों; यन्त्रों और हर वस्तु में है। ३०८-३०६ में कहा है कि कुण्डलिनी से, जो कि शब्द ब्रह्म है पर सर्वव्यापी है, स्त्री शक्ति ध्वनि, नाद, निरोधिका, आदर्धेन्दु, बिन्दु पैदा होती है। बिन्दु से परावाणी, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी वाणी पैदा होती हैं। २६ वें अध्याय में परा से पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी तक पहुंचने के साधन भी दिए गए है। १५।६४ में कहा गया है कि जब कुण्डलिनी जाग्रत होती है और बिजली की तरह मूलाधार चक्र से ऊपर सुषुम्ना के मार्ग से चढ़ती है, वह षट्चक्रों को भेदन करती चलती है। जब वह सहस्रार में पहुँचती है, तो वह इष्ट पर शिव से मिल जाती हैं। २५।७७-८२ में कुण्डलिनी का ध्यान दिया गया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाद योग का वर्णन शिव-संहिता में इस प्रकार है—

नासनं सिद्धसदृशं न कुम्भकसमं बलम् ।
न खेचरीसमा मुद्रा न नादसदृशो लयः ॥

"सिद्धासन के समान कोई आसन नहीं, कुम्भक के समान कोई बल नहीं, केचरी के समान कोई मुद्रा नहीं और मनोलय के लिए अनहद नाद के समान कोई अन्य साधन नहीं है।"

स्वे महिम्नि स्वयं स्थित्वा स्वयमेव प्रकाशते ।

"नाद और बिन्दु का बाधक अपनी महिमा में स्वयं स्थित होकर स्वयं प्रकाशता है।"

शारदा तिलक १।३०-४३ में यौगिक नाड़ियों का वर्णन है और उनकी संख्या अनगिनत बताई है। षट्चक्र निरूपण नाड़ियों का वृहद विवेचन है। षट्चकों की भी पूरी जानकारी दी गई है।

यौगिक नाड़ियों का अलंकारिक भाषा में इस प्रकार वर्णन है—

इड़ा योगवती गंगा, पिंगला यमुना नदी ।
इड़ा पिंगल योर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती ॥

"इडा नांड़ी गङ्गा है, पिंगला यमुना, इन दोनों के बीच सुषुम्ना है, वही सरस्वती है।"

इस तरह से तान्त्रिक साधनाओं और योग में इतनी घनिष्ठता उत्पन्न हो गई है कि उसको अलग करना भी कठिन हो गया है। तन्त्र में यौगिक साधनाओं को प्रमुखता दी गई है। इनसे इनका महत्व बढ़ा ही है, अतः तांत्रिक साधनाओं में यौगिक क्रियायें उच्चासन पर स्थिर हैं।

—०—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र साधना में गुरु की आवश्यकता

अनेक महत्वपूर्ण विद्यायें गुरु के माध्यम से प्राप्त की जाती हैं और तन्त्र विद्या का प्रवेश द्वार तो अनुभवी मार्गदर्शक के द्वारा ही खुलता है। अक्षारम्भ यद्यपि हमारी दृष्टि से पूर्ण सामान्य सी बात है पर छोटा बालक उस कार्य को अध्यापक के बिना अकेला ही पूर्ण करना चाहे तो नहीं कर सकता, भले ही वह कितना ही मेधावी क्यों न हो। गणित, शिल्प, सर्जरी, साइन्स, यन्त्र निर्माण आदि सभी महत्वपूर्व कार्य अनुभवी अध्यापक ही सिखाते हैं। कोई छात्र शिक्षक की आवश्यकता न समझे और स्वयं ही यह सब सीखना चाहे तो उसे कदाचित ही सफलता मिले। रोगी को अपनी चिकित्सा कराने के लिये किसी अनुभवी चिकित्सक की शरण लेनी पड़ती है, यदि वह अपने आप ही इलाज करने लगे तो उसमें भूल होने की सम्भावना रहेगी, क्योंकि अपने सम्बन्ध में निर्णय करना हर व्यक्ति के लिए कठिन होता है।

अपनी निज की त्रुटि, अपूर्णता बुराई, स्थिति एवं प्रगति के बारे में कोई बिरला ही सही अनुमान लगा सकता है। जिस प्रकार अपना मुँह अपनी आँखों से नहीं देखा, जा सकता, उसके लिए दर्पण की या किसी दूसरे से पूछने की सहायता लेनी पड़ती है तभी कुछ जान सकना सम्भव होता है. उसी प्रकार अपने दोष दुर्गुणों का, मनोभूमि का, आत्मिक स्तर का एवं प्रगति का भी पता अपने आप नहीं चलता, कोई अनुभवी ही इस सम्बन्ध में विशेषण कर सकता है और उसी के द्वारा उद्धार एवं कल्याण का मार्ग दर्शन किया जा सकता है। जिसने कोई रास्ता स्वयं देखा है, कोई मंजिल स्वयं देखी है, कोई मंजिल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वयं पार की है, वही, उस रास्ते की सुविधा-असुविधाओं को जानता है, नये पथिक के लिये उसी की सलाह उपयोगी हो सकती है। बिना किसी से पूछे स्वयं ही अपना रास्ता आप बनाने वाले सम्भव है मंजिल पार करलें, निश्चित रूप से उन्हें कठिनाई उठानी पड़ेगी और देर भी बहुत लगेगी। इसलिये जब तक सर्वथा असम्भव ही न हो जाय, तब तक मार्ग दर्शक की तलाश करना ही उचित है। उसी के सहारे आध्यात्मिक यात्रा सुविधा पूर्वक पूर्ण होती है।

प्राकृतिक नियमों का अध्ययन करने पर भी यही प्रतीत होता है कि जीव-शक्ति, ज्ञान और भाव के सम्बन्ध में स्वावलम्बी नहीं है, परावलम्बी है। उसे ब्राह्य शक्तियों के सहयोग की अपेक्षा रहती है। इसके बिना वह पंगु ही बना रहता है। जब उसकी आन्तरिक शक्ति और बौद्धिक विकास में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है, तब उसे बाह्य शक्तियों की अपेक्षा भले ही न हो परन्तु फिर भी उसे अन्तर की अचिंत्य शक्ति का आलम्बन स्वीकार करना ही होगा तभी वह पूर्ण विकास के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

भौतिक शिक्षाओं के शिक्षक अपने विषय की जानकारी देकर अपना कर्तव्य पूरा कर लेते हैं, आध्यात्म मार्ग में इतने से ही काम नहीं चल सकता। वहाँ शिक्षा ही पर्याप्त नहीं वरन् गुरु द्वारा दिया हुआ आत्मबल भी दान या प्रसाद रूप में उपलब्ध करना पड़ता है। जिस प्रकार कि कोई रोगी चिकित्सक की शिक्षा मात्र से अच्छा नहीं हो सकता, उसे चिकित्सक से औषधि भी प्राप्त करनी पड़ती है, उसी प्रकार सच्चे गुरु न केवल-आत्म-कल्याण मार्ग बताते हैं, वरन् उस पर चल सकने योग्य साहस बल और उत्साह भी देते हैं। यह देन तभी सम्भव है जब गुरु के पास अपनी संचित आत्म-सम्पदा पर्याप्त मात्रा में हो। इसलिये गुरु का चयन और वरण करते समय उसकी विद्या ही नहीं, आत्मिक स्तर और तप की संग्रहीत पूँजी को भी देखना पड़ता है। यदि वह सभी गुण न हों, तो कोई व्यक्ति अध्यात्म मार्ग का उपदेश

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भले ही कहा जा सके, पर गुरु नहीं बन सकता । गुरु के पास साधना, तपस्या, विद्या एवं आत्मबल की पूँजी पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए । साधक को ऐसा ही गुरु तलाश करना पड़ता है ।

गुरु वरण करने का तात्पर्य उस व्यक्ति की आत्मा के साथ अपनी आत्मा को जोड़ देना है । जिस प्रकार किसी बड़े तालाब के साथ छोटे तालाब को एक नली के द्वारा जोड़ दिया जाए, तो बड़े तालाब का पानी छोटे में भी आने लगता है और वह तब तक नहीं सूखता, जब तक कि बड़ा तालाब सूख न जाय ।

तस्मात्स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्
प्रशान्त चित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षरं पुरुष वेद सत्यं
प्रोवाच्च तां तत्वतो ब्रह्म विद्याम् ॥

—मुण्डक १।२।१३

"वह ज्ञानी गुरु उस श्रद्धापूर्ण, शान्तचित्त एवं तितिक्षा और साधनानिष्ठ शिष्य को ब्रह्म विद्या का उपदेश करे, जिससे वह अविनाशी सत्स्वरूप आत्म को जान ले ।"

गुरु की महत्ता एवं योग्यता शिष्य की पवित्रता, एवं सुपात्रता, गुरु के प्रति भक्ति-भावना रखना, उनके आदर्श का अनुसरण करना आदि आवश्यक तथ्यों पर शास्त्रों में अनेक प्रसङ्ग मिलते हैं । वे सभी मानवीय एवं विचारणीय है । देखिए—

"वेद सम्पन्न आचार्य, ईश्वर-भक्त, मत्सरता रहित, योग ज्ञाता, योग-निष्ठा वाला, योगात्मा, पवित्रातायुक्त, गुरुभक्त, परमात्मा के विशेष रूप में लीन इन लक्षणों से युक्त गुरु कहा जाता है । 'गु' शब्द का अर्थ है—अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है—रोकने वाला । अन्धकार को दूर करने वाला गुरु होता है ।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरु ही परब्रह्म है। गुरु ही परम गति हैं गुरु ही पर विद्या हैं। गुरु ही परायण योग्य हैं। गुरु ही पराकाष्ठा है। गुरु ही परम धन है। वह उपदेष्टा होने के कारण श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है।"

—अद्वयतारक उपनिषद्

"गुरु ही परम धर्म है। गुरु ही परम गति हैं। जो उसका सम्मान नहीं करता, उसकी विद्या, तपस्या सभी धीरे-धीरे ऐसे क्षीण हो जाती है, जैसे कच्चे घड़े में से जल। जैसी भक्ति देव में, वैसी ही गुरु में होने से ब्रह्मज्ञानी परम पद को प्राप्त करता है, ऐसा वेदानुशासन है, वेद-विधान है।"

शाठ्यायनोपनिषद्

"गुरु जो आदेश दे, उसका पालन शिष्य को बिना विचारे, सन्तोष युक्त भाव से करना चाहिये। इस विद्या को गुरु से प्राप्त करें। गुरु की सदा सुश्रुषा करें, इसी से मनुष्य का सच्चा कल्याण होता है। श्रुति में कहा गया है कि गुरु ही साक्षात् हरिं हैं, कोई अन्य नहीं।"

—ब्रह्मविद्या उपनिषद्

अन्य ग्रन्थों में भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है। वह भी महत्वपूर्ण है। गुरु की महत्ता को प्रायः सभी धर्म ग्रन्थों ने एक स्वर में स्वीकार किया है।

उत्तिष्ठित ! जाग्रत ! प्राप्यवरान निरोधक।

—ऋग्वेद

"उठो, जागो ! सद् गुरुओं द्वारा ज्ञान को प्राप्त करो"

गुरोपोदेशयोज्ञेय न च शास्त्रार्थ कोटिभिः।

"केवल शास्त्रों के आधार पर नहीं, इस विद्या को गुरु द्वारा सीखो।"

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित् पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम्॥

—श्रीमद्भागवत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"उस ज्ञान की प्राप्ति करने के लिये वेदज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास में साधना लेकर जावे।"

निमज्यां मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शांता नौर्द्दढेवाप्सु मज्जताम्॥

—श्रीमद्भागवत

जैसे जल में डूबते हुओं को नाव ही एक मात्र सहारा है, वैसे ही इस भव सागर में डूबने से वचने के लिये ब्रह्मवेत्ता सन्तों का ही सबसे बड़ा सहारा है।"

दुर्लभो विषयेत्यागो दुर्लभं तत्व दर्शनः।
दुर्लभो सहजावस्थां सद्गुरोः करुणांविना॥

'बिना गुरु कृपा के विषयों का त्याग दुर्लभ है, तत्व दर्शन दुर्लभ है तथा सहजावस्था का प्राप्त होना भी दुर्लभ है।"

आत्मज्ञान की उपलब्धि. पापपूर्ण मनोभूमि का शोधन, भ्रमसंशयों का उच्छेदन, प्रगति के लिये मार्ग दर्शन, यह सब कार्य उनके लिये सरल ही हो जाते हैं, जिन्हें अनुभवी सद्गुरु की प्राप्ति हो जाय। इसके बिना आध्यात्म मार्ग के पथिक को अन्धकार में ही भटकते रहना पड़ता है।

गुरोपदेशास्त्रार्थं बिना चात्मा न बुध्यते।
एतत्संयोगात्त व स्वात्मज्ञान प्रकाशिनी॥

—योगवसिष्ठ ६।४१।१६

शास्त्र के अध्ययन और गुरु के उपदेश बिना आत्मज्ञान नहीं होता। अधिकारी, जिज्ञासु शास्त्राध्ययन और सद्गुरु इन तीनों के संयोग से ही। आत्मज्ञान प्रकाश में आता है।"

आचार्याद्धै पिद्या विहिता साधिष्ठते प्रापत्।

'आचार्य के बिना पराशक्ति स्वरूपा ब्रह्मविद्या स्वाधिष्टित होती ही नहीं है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र, साधना, विधान, स्वाध्याय और संगम का जैसा महत्व है, वैसा ही गुरु के सहयोग का भी है। उचित मार्गदर्शन से आधी कठिनाई तो स्वयमेव हल हो जाती है। इसलिये गुरु को भी एक प्रकार से मन्त्र एवं देवता ही माना गया है।

यथा घाटश्च कलश: कुम्भश्चेकार्थ वाचका:।
तथा मन्त्रो देवता च गुरुश्चैकार्थ वाचका:॥

"जिस प्रकार घट, कलश, कुम्भ, एक ही वस्तु के नाम हैं, उसी प्रकार मन्त्र, देवता और गुरु एक ही तत्व के नाम हैं।"

पन्थानो वहव: प्रोक्ता मन्त्र शास्त्र मनीषिभि:।
स्वगुरोर्मतयाश्रित्य शुभं कार्यं न चान्यथा॥

"बहुत से मार्ग हैं, अनेक मन्त्र एवं शास्त्र हैं पर अपने गुरु के मतानुसार मार्गावलम्बन करने से ही शुभ होता है। इसके विपरीत करने से नहीं।'

अनेक कोटि मन्त्राणि चित्त व्याकुल कारणम्।
मन्त्र गुरो: कृपा प्राप्तमेकं स्यात् सर्वासिद्धिदम्॥

"अगणित मन्त्र तो चित्त की व्याकुलता के कारण ही सिद्ध होते है। गुरु की कृपा से प्राप्त हुआ एक मन्त्र ही सर्व सिद्धियाँ प्रदान करता है।"

आतमा को अपने ही विचारों और तर्कों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिये सुयोग्य मार्गदर्शक गुरु का होना नितान्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में महोपनिषद् में वर्णित शुकदेवजी का प्रसङ्ग और कठोपनिषद् का प्रमाण माननीय है—

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय श्रेष्ठ।
—कठो० १।२।६

"यह आत्मा बुद्धि तर्क से नहीं मिलती। हे श्रेष्ठ! दूसरों के द्वारा कही जाने पर ही यह अच्छी तरह जानी जाती है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुकदेव जी के अन्तःकरणं में स्वतःकरण ही ज्ञान उत्पन्न हुआ था। पर उससे काम न चला। इस सम्बन्ध में 'महोपनिषद्' अध्याय २ में इस प्रकार वर्णन मिलता है—

जात मात्रेण मुनिराड् यत्सत्यं तदवाप्तवान्।
तेनासो स्व विवेकेन स्वयमेव महामनाः ।।
प्रविचार्य चिर साघु स्वात्मनिश्चयमाप्तवान्।

"उन शुकदेव जी को बिना गुरु के उपदेश के ही स्वतः आत्म-ज्ञान हुआ था। उनकी वासनायें स्वतः निवृत्ति हो गई थीं। परन्तु वह ज्ञान दृढ़ न होने के कारण उनके मन को शान्ति नहीं हुई। उन्हें अपने ज्ञान पर विश्वास नहीं। इसलिये अपने पिता व्यास जी के आदेश से उन्हें जनक के पास ज्ञान ग्रहण करने जाना पड़ा।"

गुरूर्गरीयान् मातृतः पितुश्चेति मे मतिः।

—शा० १०७।१७

"माता पिता से भी गुरु का स्थान ऊँचा है।"

क्योंकि—

माता पितरौ शरीरमेव काष्ठ कुड्यादि समं जनयतः।
आचार्यस्तु सर्वं पुरुषार्थं क्षम रूप जनयति ।।

"माता पिता तो लकड़ी के ढोल सरीखे इस देह को ही जन्म देते हैं, पर आचार्य सब पुरुषार्थ भरे अध्यात्म रूप को ही जन्म देता है।"

श्रुत्याचार्य प्रसादेन दृढोबोधां यदा भवेत्।
निरस्ताशेष संसार निदानः पुरुषस्तदा ।।

(वाक्यवृति ५०)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"जब श्रुति और आचार्य के अनुग्रह से दृढ़ ज्ञान उत्पन्न होता है तब पुरुष की संसार की कारण रूप समस्त व्याधि दूर हो जाती है।"

यथाकूर्मः स्वतनयान्ध्यान मार्गेण पोषयेत ।
बंध दीक्षोपदेशास्तु मानसास्यत्तथाविधिः ।।

(कुलार्णव तन्त्र)

"जिस प्रकार मादा कछुआ केवल ध्यान मात्र से अपने अण्डों का पोषण करती है, उसीं प्रकार सच्चे गुरु भी शिष्य को हृदय से ही दीक्षा दिया करते हैं।"

दृष्टान्तो नैव दृष्टास्त्रिभुवन जठेर सद्गुरोर्ज्ञानदातुः ।
स्पर्शश्चेतत्र कल्प्यः सनयातियदहो स्वर्णतामश्च सारम् ।।
न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे सद्गुरुः स्वीयशिष्येः ।
स्वीयं सभ्य विधत्ते भवति निरुपसन्तेन वालौकिकोऽपि ।।

(शंकराचार्य कृत "शतश्लोंकी)"

"इस त्रिभुवन में ज्ञानदाता सद्गुरु के लिये देने योग्य कोई दृष्टान्त ही दिखाई नहीं देता। उन्हें पारस मणि की उपमा दें तो भी यह ठीक नहीं जँचती कारण पारस लोहे को सोना बना देता है पर पारस नहीं बनाता। पर सद्गुरु के चरण कमल का आश्रय लेने वाले शिष्य को सद्गुरु अपने समान ही बना देते हैं इसलिये सद्गुरु की कोई उपमा नहीं हो सकती।"

चिन्तामणिर्लोके सुखं सुरद्रुमः स्वर्गसम्पदाम् ।
प्रयच्छित गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगि दुर्लभम् ।।

(भागवत माहात्म्य)

"गुरु की कृपा से संसार के समस्त सुख और स्वर्ग की सम्पदा प्राप्त हो सकती है जो कि योगियों के लिये भी दुर्लभ हैं।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
न गुरोरधिकः कश्चित् त्रिषुलोकेषु विद्यते ।

—योगशिखोपनिषद्

"गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव के समान है, तीनों लोकों में गुरु के समान अन्य कुछ भी नहीं है।"

आर्चार्य द्वैं विहिता सृाधिष्ठातं प्रापत् ।।

"आचार्य के बिना पराशक्ति स्वरूपा ब्रह्मविद्या स्वाधिष्ठति नहीं होती।"

आत्मविद्या चानन्तर्मुखस्य गुरुकासव्य—
रहितस्य न वेदशास्त्रमात्रेपोत्पद्यते ।

"गुरु की दयादृष्टि से रहित वहिर्मुख मनुष्य केवल वेद शास्त्र पढ़कर आत्म विद्या को नहीं पा सकता।"

गुरुपूजां बिना देवं स्वेष्ट पूजां करोति यः ।
मन्त्रस्य तस्य तेजांसि हरनं भैरवः स्वयम् ।।

—कालीविलास तन्त्र

"हे देवि ! जो गुरु पूजा के बिना अपने इष्ट की पूजा करता हैं, उसके मन्त्र के तेज को भैरव हरण कर लेता है।"

गुरोरंध्रि पद्मे मनश्चेन्न लग्नं ।
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।।

"मन यदि गुरु के चरण कमलों में नहीं लगा रहा तो और सब किस काम का ?"

कर्मणा मनसा वाचा गुरो क्रोधं न कारयेत् ।
तस्य क्रोधेतु दह्यान्ते आयुः श्रीज्ञान सत्क्रियाः ।।

"कर्म, मन वचन से गुरु को कभी क्रोधित होने का अवसर नहीं देना चाहिये। उनके क्रोध से आयु, लक्ष्मी, ज्ञान, सत्कर्म का नाश हो जाता है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा गुरुस्तथैवेशो यथैवेशस्तथा गुरुः ।
पूजनीयो महाभक्तया न भेदो विद्यतेऽनमोः ॥

(शिवपुराण-कैलाश सं०)

"जैसा गुरु का आदेश हो उसी तरह रहना चाहिये, आचरण करना चाहिये । उनकी परम भक्ति से पूजा करनी चाहिये और तनिक भी भेद नहीं रखना चाहिये ।"

यो गुरु स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरु स्मृतः ।
तस्माद्धि श्री गुरोर्भक्तिः भुक्तिमुक्ति प्रदायिनी ॥

(शिवपुराण)

"जो गुरु हैं वे शिव स्वरूप हैं और जो शिव हैं, वे गुरु स्वरूप हैं । इसलिये गुरु की भक्ति सब प्रकार से भक्ति और मुक्ति की प्रदाता होती है ।"

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
यस्यै कथिता ह्यार्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।

(श्वेताश्वतर)

'भगवान में जिसकी पराभक्ति है, जैसी भगवान में वैसी ही गुरु में है, उस महात्मा पर ये कथित अर्थ प्रकट होते हैं ।"

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकविद्याया परं पार ताश्वसीति । नमः परम ऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः ।

(प्रश्नोपनिषद् ६।८)

"भगवान् ! आप हमारे सच्चे पिता (गुरु) हैं । आपने हमको अविद्या सागर से पार लगा दिया है । आप जैसे परम ऋषियों को हमारा नमस्कार है—बारम्बार नमस्कार है ।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरवो बहवस्तात शिष्यवित्ताय हारका ।
विरला: गुरवस्ते ये शिष्य सन्ताप हारका ।।

"ऐसे गुरुओं की कमी नहीं है जो शिष्य का धन हर लेते हैं, पर शिष्य के सन्ताप हरण करने वाले गुरु विरले ही होते हैं ।"

गुरोपदेशतो ज्ञेयं न ज्ञेयं शास्त्र कोटिभि: ।

"योग का रहस्य गुरु के उपदेश से ही जाना जाता है, करोड़ों ग्रन्थ पढ़ने से भी उसका ज्ञान नहीं हो सकता ।"

स्वयंमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यापि ।
आचिनोति च शास्त्राणि आचार्यस्तेन चोन्यते ।।

(ब्रह्माण्ड पु०)

"जो धर्म कर्माचरणादि ग्रन्थों को स्वयम् धारण करते हैं और अन्यों से कराते हैं उन समस्त शास्त्री के ज्ञाता को आचार्य कहा जाता है ।"

गृणाति उपदिशति धर्ममिति गुरु: ।
गिरत्यज्ञानमिति गुरु: ।
यद्वा गीर्यते स्तूयते देवगन्धर्वादिभिरिति गुरु: ।।

"धर्म का उपदेश दे तम का विनाश कर ज्ञानरूपी ज्योति से जो प्रकाश दें, देव गन्धर्व आदि से जो स्तुति हों, उन्हीं साक्षात् देव कीं संज्ञा गुरु है ।"

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुत्वावमानयेत् ।
श्वानं योनिशतं गत्वा चाण्डालत्वमवाप्नुयात् ।।

(कुलार्णव तन्त्र)

"एक ही अक्षर के ज्ञान के प्रदान करने वाले को पूर्ण गुरु भाव से मानना चाहिये । यदि कोई ऐसे गुरु की अवमानना करते हैं तो सौ बार कुत्ते की योनि में जन्म ग्रहण करके अन्त में चाण्डालत्व को प्राप्त करता है ।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुलार्णव तन्त्र द्वादश उल्लास के अनुसार।—

न पादुकापरो मन्त्रो न देवः श्री गुरोः परः ।
न हि शक्तित् परा दीक्षा न पुण्य कुलपूजनात् ।।१२
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरो कृपा ।।१३

पादुका से परे कोई भी मन्त्र नहीं है, श्री गुरु से परे कोई देव यहीं हैं। शक्ति दीक्षा से उत्तम कोई दीक्षा नहीं और कुल पूजन से परे कोई पुण्य नहीं होता ।।१२।। गुरु की मूर्ति ध्यान मूल है और गुरु के चरण पूजा मूल है। गुरु के वाक्य मन्त्र मूल हैं अर्थात् मन्त्रवत हैं। गुरु की कृपा मोक्ष का मूल होता है ।।१३।।

गुरुमूलाः क्रियाः सर्वा-लोकेऽस्मिन् कुलनायिके ।
तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यं सिद्ध्यर्थं भक्तिसंयुतैः ।।

उपासना की समस्त क्रियाएँ गुरुमूल ही होती हैं अर्थात् गुरु ही के द्वारा सही उपासना की पद्धति का ज्ञान होता है। हे कुलनायिके! इसलिये सिद्धि प्राप्त करने के लिये भक्तियुक्त होकर मनुष्यों को गुरु की नित्य ही सेवा करनी चाहिये ।।१४।।

तावदार्त्तिर्भयं शोको लोभमोहभ्रमादयः ।
यावन्नायाति शरणं श्री गुरुं भक्तवत्सलम् ।।१५
तावद् भ्रमन्ति संसारे सर्व दुःखमलोमसाः
न भवेत् सद्गुरौ भक्ति र्यावद्देवेशि देहिनाम् ।।१६

"इस संसार में तभी तक आर्त्तिजन्य भय होता है और शोक, लोभ, मोह और भ्रम आदि होते हैं जब तक मनुष्य श्री गुरु चरण की शरणागति में नहीं आता है। क्योंकि गुरु भक्तों पर बहुत ही वत्सल अर्थात् कृपालु होते हैं, और उनकी शरण में जाने पर मनुष्य का परत कल्याण अवश्य ही हो जाता है ।।१४।। हे देवेश! इस संसार में समस्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकार के दुःखों का मूल तभी तक देहधारियों को घेरे रहता है और उन्हें भ्रमाता है, जब तक किसी सद्गुरु में पूर्ण भक्ति का भाव समुत्पन्न नहीं होता है ।१६।

तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ यदा भवेत् ।
गुरौ प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत् ॥२०

शिष्य को जब तक अपने गुरु की सच्ची आराधना करनी चाहिए जब तक श्रीगुरुचरण प्रसन्न न हों । जब गुरु प्रसन्न हो जाते हैं तो फिर शिष्य के पापों का तुरन्त ही क्षय हो जाता है ।२०।

ब्रह्माविष्णुमहेशादिदेवताभुनियोगिनः ।
कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टा गुरौः तुष्टे न संशय ॥२२

जब गुरुवर पूर्णतया सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाते हैं तो फिर एक मात्र गुरु की प्रसन्नता होने पर ब्रह्मा, विष्णुमहेशादि देवता, मुनि और योगीगण सभी उस गुरु भक्त पर अनुग्रह किया करते हैं । इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।२२।"

जन्म हेतु हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः ।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माधर्म प्रदर्शकः ॥४८

देहधारी के माता-पिता जन्म देने के कारण पूजा के योग्य होते हैं और प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए । गुरु उनसे भी अधिक पूज्य इसलिये होते हैं कि वह धर्म तथा अधर्म के सही ज्ञान का प्रदर्शन कराते हैं ।४८।

गुरोर्हितं हि कर्त्तव्यमनोवाक्कायकर्मभिः ।
अहिताचाचरणाद् देवि विष्ठायां जायते कृमिः ॥५०
शरीरं वित्तं प्राणेश्चय श्री गुरूं वंचियन्तिं ये ।
क्रिमिकीटपतङ्गत्वा प्राप्नुवन्ति न संशयैः ॥५१

अपने गुरु के हित को, मन, वाणी और शरीर के कर्मों द्वारा पूर्ण रूप से करना चाहिये । हे देवि ! जो कोई भी शिष्य किसी भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समय गुरु के अहित करने का आचरण करता है तो विष्ठा का कीड़ा बनकर नरक की यातना भोगता है।५०।"

शरीर, धन और प्राणों के द्वारा जो कोई शिष्य अपने गुरु को करता है, तो कृमि, कीट और पतंगत्व को प्राप्त होता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है।५१"

अनादृतगुरोर्वाक्यं श्रणुयाद् यः पराङ्मुखः।
अहितं वाहितं वापि रौरवं नरकं व्रजेत् ॥९८
गोब्राह्मणवध कृत्वा यत् पापम् समवाप्नुयात्।
तत् पापं सम बाप्नोति गुर्वग्रऽनृतभाषणात् ॥९९

गुरु के वाक्य का अनादार करके पराङ्मुख होता हुआ कुछ भी सुनता है, चाहे वह हितप्रद हो या अहितप्रद हो वह मनुष्य रौरव नरक में जाता है ॥१८॥

गौ और ब्राह्मण का वध करने से जो महापाप लगता है ठीक वैसा ही पातक गुरु के आगे मिथ्या-भाषण करने से लगता है।९९।

न विशेदासने देवि देवता गुरुसन्निधौ।
गुरोः सिंहासनं देयं ज्येष्ठानामुत्तामासनम्।
देश्यासनं कनिष्ठानामितरेषां समासनम् ॥१००

हे देवि ! देवता और गुरु की सन्निधि में कभी आसन पर नही बैठना चाहिये। गुरु के बैठने के लिये सिंहासन देना चाहिए और जो भी अपने बड़े हो उनके बैठने के लिये उत्तम आसन देना चाहिये अपने से छोटों के लिये देश्यासन देवें और अन्यों के लिये बराबर का आसन देना चाहिए।१०७।

"कुलार्णव तन्त्र" के त्रयोदश उल्लास के अनुसार—
यः क्षणेनात्मसामर्थ्यं स्वशिष्यायं ददाति हि।
क्रियायामादिरहितं स गुरुर्देव दुर्लभः ॥१०१

जो गुरु क्रिया और आयाम से रहित अपनी सामर्थ्य को क्षण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भर में ही अपने शिष्य को कृपा प्रदान कर देता है, ऐसा आचार्य वस्तुतः देव-दुर्लभ होता है अर्थात् कठिनाई से ही प्राप्त होता है ॥१०

वर्णाश्रमकुलाचारनिरता बह्वो भुवि ।
सर्व संकल्पहीनो यः स गुरुर्देवि दुर्लभः ॥१०९
गुरोर्यस्यैव सम्पर्कात् परानन्दोऽभिजायते ।
गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः ॥११०

"वर्ण और आश्रम तथा कुल के आचार में निरत संसार में इस पृथ्वी पर बहुत से आचार्य प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु जो सब प्रकार के संकल्पों से रहित हो, ऐसा आचार्य वेदों को भी बहुत दुर्लभ होता है ॥१०९॥ जिस गुरु के सम्पर्क प्राप्त होने से शिष्य को परमानन्द प्राप्त हो जावे, ऐसा ही गुरु वास्तव में वरण करना चाहिये । मतिमान् व्यक्ति को अन्य आचार्य नहीं बनाना चाहिए ॥११०॥

प्रेरकः सूचकश्चैव वाचको दर्शकस्तथा ।
शिक्षको बोधकश्चैव षडेते गुरवः स्मृताः ॥१२८
पंचते कार्यभूताः स्युः कारणं बोधको भवेत् ।
पूर्णाभिषेककर्त्ता या गुरुस्तस्यैव पादुका ।
पूजनीया महेशानि बहुत्वेऽपि न संशयः ॥१२९
श्री गुरुं लक्षणेपेतं संशयच्छेदकारकम् ।
लब्ध्वा ज्ञानप्रदं देवि न गुर्वन्तरमाश्रयेत् ॥१३०

प्रेरणा देने वाला, सूचना-प्रदाता, वाचक अर्थात् कहकर तत्व को बताने वाला, दर्शक, शिक्षा देने वाला और ज्ञान करा देने वाला— ये छह प्रकार के आचार्य बतलाये गये हैं ॥१३८॥ इनमें पाँच प्रकार के आचार्य तो केवल कार्यभूत ही होते हैं । और जो बोध करा देने वाला आचार्य होता है वह कारण-स्वरूप होता है । जो पूर्ण अभिषेक करने वाला होता है, उसी की पादुका पूजा के योग्य होती है । हे महेशानि !

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहे बहुत-से आचार्य न हों परन्तु सबसे अधिक महत्व बोधक-आचार्य का ही होता है ॥११९॥ गुरु के समस्त लक्षणों से युक्त और संशयों के उच्छेद करने वाले तथा ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु को प्राप्त करे। हे देवि ! फिर दूसरे गुरु की तलाश नहीं करनी चाहिये ॥१२०॥"

तन्त्रसार में लिखा है–

शान्तो दान्तः कुलीनाश्च विनीतः शुद्धवेषवान् ।
शुद्धाचारः सुप्रतिष्ठ शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान् ॥१
आश्रमी ध्याननिष्ठश्च मन्त्रतन्त्र विशारदः ।
निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्थभिधीयते ॥२

"गुरु शान्तिप्रिय, दमनशील, अच्छे कुल में समुत्पन्न, विनयान्विय, शुद्ध वेष-भूषा रखने वाला, शुद्ध आचार से युक्त, अच्छी प्रतिष्ठा समाज में रखने वाला, ध्यान में निष्ठित, मन्त्र और तन्त्र विद्या का पूर्ण पंडित और किसी को दण्ड देने तथा कृपा करने की शक्ति रखने वाला 'गुरु' अधिकारी होता है ।१०२।"

'ज्ञानवर्ण' में लिखा है–

गुरौ मनुष्यबुद्धिश्च मन्त्रे चाक्षरबुद्धिकाम ।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥१
जन्महेतुं हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः ।
गुरुं विशेषतः पूज्यो धर्म्माधर्म्मप्रदर्शकः ॥२

"जो मनुष्य अपने गुरु में मनुष्य की बुद्धि रखता है मन्त्र को केवल अक्षर समझता है प्रतिमाओं को पाषाण का एक खण्ड मात्र है—ऐसी बुद्धि रखता हैं, वह अवश्य ही नरक में जाता है ।१। माता पिता जन्म देने वाले हैं, इसलिये उनकी आवश्य ही पूर्ण प्रयत्न से पूजा करनी चाहिए । किन्तु उनसे भी अधिक विशेष रूप से गुरु की अर्चना करनी चाहिये, क्योंकि क्या धर्म है और क्या अधर्म ?' इसका ज्ञान देकर धर्म में प्रवृत्ति करने वाले गुरु ही होते हैं ।२।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः ।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।।३
गुरु हीनं कर्त्तव्यं वाङ्मनः कायकर्मभिः ।
अहिताचरणादेव विष्ठायां जायते कृमिः ।।४
मन्त्रत्यागात् भवेन्मृत्युगुरुत्यगित् दरिद्रता ।
गुरुमन्त्रपरित्यागात् रौरवं नरकं व्रजेत् ।।५

गुरु—माता, पिता, देव और गति सभी कुछ होते हैं, क्योंकि गुरु के बिना किसी प्रकार भी इस देहधारी आत्मा का कल्याण सम्भव नहीं होता है। साक्षात् शिव-देव भी नाराज हो जावें तो गुरु ही रक्षक हो सकता है, किन्तु यदि वही नाराज हो जावें तो त्रिलोकी में कहीं भी कोई त्राण करने वाला नहीं है ।३। मन वाणी और क्रम से गुरु का हित शिष्य को करना चाहिये। गुरु का अहित कार्य करने पर विष्ठा का क्रिमि बनकर जन्म लेना पड़ता है ।४। मन्त्र के त्याग कर देने पर मृत्यु होती है, गुरु का त्याग कर देने से दरिद्रता होती है और गुरु तथा मन्त्र दोनों के त्याग कर देने पर रौरव नरक में जाता है ।५।"

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मनः पिता ।
तस्मातमन्येत सततं पितुरप्याधिकं गुरुम् ।।१
गुरुवत् गुरुपुत्रेषु गुरुवत् तत्सुतादिषु ।।

पिता उत्पादक हैं और गुरु ज्ञान देने वाले हैं। शरीर और ज्ञान उत्पादन करने से दोनों ही पिता होते हैं, किन्तु ब्रह्मदान करने वाले गुरु को पिता से भी अधिक मानना चाहिये। गुरु के समान ही उसके पुत्र तथा सुतादि में पूज्य भाव रखना चाहिये ।१।"

शिवात्री चैव गलत्कुष्ठी नेत्ररोगी च वामनः ।
कुनखी श्यावदंतश्च स्त्रीजितोऽप्याधिकांगकः ।।
हीनांग कपटी रोगी बहुवाशी बहुजल्पकः ।
ततैर्दोर्विहीनो थः स गुरु शिष्यसम्मतः ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्वेत और गलित कुष्ठ वाला, नेत्रों के रोग वाला, कुत्सित नखों वाला, बौना, काले दाँतों वाला, कपट धारण करने वाला रोगी, बहुत अधिक खाने वाला, बहुत व्यर्थ बोलने वाला, गुरु निन्द्य होता है। अतः इन दोषों से रहित ही गुरु बनाना-चाहिए और ऐसा ही गुरु शिष्य सम्मत होता है।

गुरु की इस अनिर्वचनीय महत्ता को स्वीकार करते हुए कबीर ने गुरु को गोविन्द से भी उच्च आसन प्रदान किया—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥

ऐसे गुरु की महिमा वर्णन करना भी सम्भव नहीं है। कबीर के सशक्त शब्दों में—

सब धरती कागद करूं, लेखनि सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय॥

गुरु कैसे होते हैं, उनकी पहिचान और योग्यता की परख करना भी आवश्यक होता है। अब हर व्यक्ति थोड़े से ज्ञान का अर्चन करके कान में मन्त्र फूँकने के लिये उत्सुक रहता है और गुरु बनने का अपने को अधिकारी समझने लगता है। परन्तु शास्त्र की आज्ञा है कि गुरु का वरण पूरी जाँच करके ही करना चाहिये। जाँच के लिए शास्त्रों और सन्तों के ही आधार भूत तथ्यों का निरूपण किया जाता है—कबीर ने कहा है—

गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़े खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर बाहे चोट॥

अर्थात् "जिस तरह कुम्हार घड़ा बनाते समय मिट्टी को गढ़कर एक व्यवस्थित रूप देता है, उसी तरह गुरु भी शिष्य को कुपथ से हटा सुन्दर साँचे में ढाल देता है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सद्गुरु में दो गुणों का होना आवश्यक माना गया है। एक, इच्छा और दूसरी क्रिया। अनेकों विद्वान देखे जाते हैं, जिनके पास विद्या का भण्डार रहता है, परन्तु उसमें स्वार्थपरता का अवगुण विद्यमान रहता है अथवा उसके प्रसार के लिये कुछ उद्यम नहीं करते। उनका ज्ञान सडता यह रहता है। ज्ञान प्रसार के लिए इच्छा का होना आवश्यक है। पर्याप्त नहीं है, उसके साथ शक्ति का समावेश होना आवश्यक है। इच्छा में क्रिया का योग होने पर सोने में सुहागे का काम करता है। अतः ज्ञान-गङ्गा स्रोत प्रवाहित करने के लिए आप्त पुरुष—सद्गुरु में इच्छा और क्रियाशक्ति होनी चाहिये।

अधिकारी गुरु के लक्षणों पर टिप्पणीं करते हुए शास्त्रों में कहा है—

दर्शनात् स्पर्शनाच्छब्दात् कृपया शिष्यदेहके।
जनयेद् यः समावेशं शाम्भवं स हि देशिकः॥

—योग वसिष्ठ, निर्वाण प्रकरण १।१२८।१६१

अर्थात् "दर्शन, शब्द या कृपा से शिष्य के शरीर में शिव-भाव का जो आवेश कराने की क्षमता रखते हैं वही देशिक अथवा गुरु कहलाये जाने के अधिकारी हैं।"

आवेश का अभिप्राय हैं कुण्डलिनी जागरण के बाद षट्चक्र भेदन और ब्रह्मरन्ध्र में शिव के साथ मिलन।

विष्णोः संपर्कः सम्यक् त्रिविधोत्पातकर्मणि।
षट् चक्र भेदं कुशलः षडध्वज-ज्ञान-मारगः॥
पिण्डे पदे तथा रूपे रूपातीते विवेचकः।
सन्ध्यात्र्यविशेषज्ञौ ह्यध्वनटक-विशोधकः॥
मन्त्र चैतन्य विज्ञाता गुरुसक्तः स्वयंभुवः।
मन्त्र तन्त्रार्थ चैतन्य कुण्डलिगति वेदकः॥
तन्त्र सिद्धान्त विधिवत् गुरुर्वतिन न भक्ति न परः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् "त्रिविध तापों से तप्त व्यक्तियों कीजो सम्पक् रुप के विष्णु भगवान से सम्पर्क स्थापित करा देते हैं, जो षट् चक्र भेदन में कुशल हैं, जो षडध्व (वर्ण,पद,मन्त्र, कला, भुवन) और तन्त्र के ज्ञान में पारङ्गत हैं, पिंड कुण्डलिनी शक्ति, पद तन्त्र रूप बिन्दु और रूपातीत ब्रह्म का विवेचन करने की सामर्थ्य रखते हैं, जो संध्या जप में विशेषज्ञ हैं, जो षट् चक्रों के मार्ग को जानते हैं, मन्त्र चैतन्य के जानकार हैं स्वयम्भू ने इन्हें ही गुरु माना है। कुण्डलिनी की गति, मंत्र, तंत्र, और उनके चैतन्य भाव से जो परिचित हैं, और जो तंत्र सिद्धांत के विधि-विधान को जानते हैं, वही वास्तविक गुरू हैं, दूसरे नहीं।"

इसकी पुष्टि नवचक्रेश्वर' तत्र में की गई है।

पिण्डं पदं तथा रूपं रूपातीतं चतुष्टयम् ।
या वा सम्यग् विजानाति स गुरुः प्रकीर्त्तितः ।

अर्थात् 'गुरु वही है जिसे पिण्ड, पद, रूप और रूपातीत इन चारों की सम्यक रूप से जानकारी है ।"

गुरु गीता में कुण्डलिनी शक्ति, हंस बिन्दु और निरंजन को इन चारों की संज्ञा दी गई है ।

पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः पदं हसः प्रकीर्त्तितः ।
रूपं बिन्दुरिति ज्ञेयं रूपातीतं निरंजनम् ॥

अर्थात् पिण्ड कुण्डलिनी शक्ति परम हंस को कहा गया है, उसका रूप बिन्दु जानना चाहिए । वह रूप से परे और निरंजन होता है ।

अविद्याहृदयं ग्रन्थि वन्धु मोक्षो यतो भवेत् ।
तमे व गुरुरित्याहुर्गु रु शब्देन योगिनः ॥

(शंकराचार्य)

"जो हृदय की अविद्या ग्रंथि को छेदकर बन्धन से छुड़ाकर मोक्ष कामार्ग दिखलाते उन्हीं को योगीजन गुरू कहते हैं ।"

दतत्त्वविवेक वैराग्ययुक्तवेदान्त युक्तिभिः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्री गुरुः प्रापयत्येव न पद्ममपि पद्मताम् ।
प्रापय्य पद्ममतामेनं प्रबोधयति तत्क्षणात् ।।

अर्थात् श्री गूरुदेव विवेक और वैराग्यमय वेदान्त युक्तियों सहित अपद्म को जो पद्म रूप में परिवर्तन कर देते हैं और उसे तत्क्षण जागृत कर देते हैं।''

य: समः सर्वभूतेषु विरागो वीतमत्सरः ।
कर्मणां मनसा वाचां भीते चाभयदः सदा ।।
सम बुद्धि पदं प्राप्तस्तत्रापि भगवन्मयः ।
पंच काल परश्चैव पांचरात्रर्थवित्तथा ।।
विष्णु तत्वं रिज्ञाय एक चानेन भेदनम् ।
दीक्षयेन्मेदिनीसर्वा किं पुनश्चोपसम्भवान् ।।

(तत्वसार)

'जो समस्त प्राणियों में समभाव रखते हैं, राग-द्वेष हीन हैं, जिन्हें समत्व की प्राप्ति होगई है और जो भगवान्मय हो गये हैं, जो नित्यकर्म का पालन करते हैं और वैष्णव शास्त्र का रहस्य जानते हैं, वे गूरु एक ही विष्णु तत्व को अनेक रूपों में जानकर सारी पृथवी को दीक्षित कर सकते हैं, फिर ज्ञान सम्पन्न अधिकारियों की तो बात ही क्या है ?'

श्रीमद् वासुदेवानन्द सरस्वती ने अपने 'वृद्ध शिक्षा' नामक वेदांत ग्रन्थ में लिखा है—

विशारदं ब्रह्मनिष्ठं श्रोत्रियं गुरुगाश्रयेत् ।

गूरु को ब्रह्मानिष्ठ और श्रोत्रिय होना आवश्यक है ।

तंत्र दार्शनिक भास्कराचार्य ने ललिता सहस्रनाम के भाष्य (१०) में लिखा है—

''अयोग्येऽपि योग्यतामापाद्य श्री गुरु, सूर्यो बोधयति' अर्थात्— अयोग्य को भी योग्य बनाकर श्रीगुरुदेव रूपी सूर्य उसे प्रबुद्ध बना देते हैं ।'

मातृत: पितृत: शुद्धः शुद्धभावो जितेन्द्रियः ।
सर्वागमानां सारज्ञः सर्व शास्त्रार्थ तत्ववित् ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परोपकार निरतो जप पूजादि तत्परः ।
अमोघ वचनः शान्तोवेद वेदार्थ पारगः ।।
योगमार्गानुसन्धायी देवता हृदयसमः ।
इत्यादि गुण सम्पन्नी गुरुरागम सम्मतः ।।

—शारदातिलक

'जो असली माता पिता से पैदा हो, सदाचारी, शुद्ध भावना वाला हो, इन्द्रियाँ जिसके वश में हों, जो समस्त शास्त्रों के सार को जानता हो परोपकारी हो, जप पूजा आदि उपासनाओं में संलग्न हों, जिसकी वाणी अमोघ हो, शान्त हो, वेद और वेदार्थ का पारदर्शी हो, योगमार्ग में जिसकी प्रगति हो, जो हृदय में देवता के समान हो, इस के गुण जिसके स्वभाव में हों, वही शास्त्र सम्मत गुरु बनाने योग्य है ।

सुन्दरः सुमुखः स्वच्छः सुलभो बहुतन्त्रवित् ।
असंशय संशयच्छिन्निरपेक्षो गुरुमतः ।।
सौन्दर्यमनवद्यत्वं रूपे सुमुखतां पुनः ।
स्मरेपूर्वाभिभाषित्वं स्वच्छताऽजिह्मवृत्तिता ।।
शीलभ्यमत्यगर्वित्वं संतोषो बहुतन्त्रता ।।
असंशयस्तत्वबेधः तच्छित्तत्प्रतिपादनात् ।।
नरपैक्ष्यमवित्तेच्छा गुरत्व हितवेदिता ।
एवंविधो गुरुज्ञेयस्तित्वरः शिष्यदुखः उदः ।।

अर्थात् गुरु की विशेषता यह है कि वह देखने में सुन्दर, सुरम्य मुख वाला, साफ, आसानी से प्राप्त किये जाने वाला, बहुत से तन्त्र ग्रन्थों का ज्ञाता, स्वयं संशयसे रहित, संशयों की छेदन करने वाला, किसी भी वस्तु की अपेक्षा न रखने वाला, मुस्कराते हुए भाषण करने वाला, शरीर एवं वस्त्रादि से स्वच्छ रहने वाला, सरल, आसानी से प्राप्त होने वाला, अगर्वी, सन्तुष्ट, बहुत से तन्त्रों का ज्ञाता, संशय रहित, तत्व बोध वाला, जो शिष्य के समक्ष तत्वज्ञान का प्रतिपादन कर सके किसी की भी अपेक्षा न रखने वाला, धनेच्छा से रहित, हितकी बात जानने वाला

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार का व्यक्ति गुरु जानना चाहिए, इन गुणों से रहित अन्य तो शिष्यों को दुःखदायी ही होता है ।

ब्रह्मनिष्ठो वेधकः शक्तिपातं क्षमश्च गुरुः ।

"गुरु ब्रह्मनिष्ठ वेध करने वाला और शक्तिपात करने की क्षमता वाला होना चाहिए ।"

वेध करने का अभिप्राय षट्चक्रों के भेदन से है ।

निग्रहानुग्रहक्षमश्च ।'

'गुरु निग्रह और अनुग्रह की क्षमता वाला होना चाहिए ।"

शक्तिपात करने का नाम अनुग्रह और उसे रोकने का निग्रह है । जब शक्पितात अधिक वेग से हो जाता है, तो उसके कम करने की आवश्यकता पड़ जाती है । जैसी व्यवस्था भौतिक यन्त्रों में रहती हैं । वैसी आध्यात्मिक क्षेत्र में भी रहती है । गुरु भी शक्तिपात के वेग को कम करने की सामर्थ्य वाला होना चाहिए ।

अन्तर्लक्ष्यो वहिर्द्दष्टिः सर्वज्ञो देशकालवित् ।
आज्ञासिद्धिस्त्रिकालज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः ।।
वेधको बोधकः शान्त सर्व जीव दयाकरः ।
स्वाधीनेन्द्रियसंचारः षड्वर्गविजयप्रदः ।।
अग्रगण्योऽतिगम्भीरः पात्रापात्रविशेषवित् ।
शिवविष्णुसमः साधुमनु भूषण भूषितः ।।

अर्थात् "जिसकी दृष्टि बाह्य भले ही हो, परन्तु लक्ष्य अन्तर की ओर हो, देश काल का जानकर सर्वज्ञ हो, सिद्धियाँ जिसकी आज्ञा से काम करती हों, जो त्रिकालज्ञ हो, निग्रह-अनुग्रह की क्षमता वाला हो, षट्चक्र भेदन की सामर्थ्य वाला, ज्ञान का बोध कराने वाला हो, जो षट्रिपु पर विजय प्राप्त कर चुका हो और जितेन्द्रिय हो, समस्त कार्यों में अग्रगण्य रहता हो, गम्भीर प्रकृति का हो, पात्रापात्र की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेषता से परिचित हो, जिसकी विष्णु और शिव में समबुद्धि हो (एक को इष्ट मानकर दूसरे के प्रति द्वेष न रखता हो) साधना के भूषणों से भूषित हो। वही गुरु दीक्षा देने के योग्य कहलाता है।"

स्त्री धनादिष्वनासक्तो दुःसङ्गो व्यसनादिषु।
सर्वाहम्भावसन्तुष्ट निर्द्वन्द्वो नियतव्रतः॥
अलोलुपोह्यसङ्गश्च पक्षपाती विचक्षणः।
निःसङ्गा निर्विकल्पश्च निर्णीतात्मातिधार्मिकः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिमानी रिरपेक्षो नियामकः।
इत्यादिलक्षणोपेतः श्रीगुरुः कथितः प्रिये॥

अर्थात् "जो स्त्री पुरुष और धनादि में अनासक्त हो, दुःसंग और व्यवसनों से दूरहो,जो अपने में ही सन्तुष्ट, निर्द्वन्द और नियमित रुपसे व्रतशील हो, अलोलुप, संकस्प, आत्मतत्व का साक्षात्कारकर्ता, अति धार्मिक, निन्दा स्तुति में मौन (एक समान समझने वाला), निरपेक्ष किसी से अपेक्षा न करने वाला), नियामक (अपने आत्मबल से दूसरों को नियन्त्रित करने वाला) हो, ऐसे लक्षणों से युक्त व्यक्ति ही गुरु होने की योग्यता रखता है।"

निर्ममो नित्यसन्तुष्टः स्वतन्त्रोऽनन्दशक्तिमान्ः
सदुभक्तवत्सलोधीरः कृपालुः स्मितपूर्णवाक्॥
नित्यैनैमित्तकेकाम्ये रते कर्मण्यनिन्दिते।
रागद्वेषभयक्लेशदम्भाहंकारवर्जितः॥
स्वविद्यानुष्ठानरतो धर्मज्ञानार्थदर्शक।
यदृच्छाला असन्तुष्टो गुणदोष विभेदकः॥

अर्थात् "जो व्यक्ति निर्भय, नित्य सन्तुष्ट, स्वतन्त्र अनन्त शक्तिशाली, सद्भक्त वत्सल, धीर, कृपालु, हास्यपूर्ण सुख देने वाली वाणी वाला, नित्य, नैमित्तिक और अनिन्दित काम्य कर्म में रत, राग, द्वेष, भय, क्लेश, दम्भ, अहंकार से शून्य, विद्या अनुष्ठान के कार्य में व्यक्त,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्म व ज्ञान के अर्थ का प्रसारक, दैव इच्छा के लाभ से सन्तुष्ट, गुणदोष के भेद को जानने वाला है, वही गुरु होने का अधिकारी है ।"

'कुलार्णव तंत्र' सप्तदश उल्लास के अनुसार—

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधत्वात् गुरुरित्यभिधीयते ।।७।।
गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफ पापस्य दाहकः ।
उकारो विष्णुरित्युक्तस्त्रितयात्मा गुरुः पर, ।।८।।

"गु—यह अन्धकार का वाचक होता है । और "रु"—यह उस अंधकार के निरोध करने के अर्थ का वाचक होता है । मनुष्य के हृदय में अज्ञान स्वरूप अंधकार के नाश कर देने से ही 'गुरु'—यह शब्द निष्पन्न होता है । ग-कार सिद्धि देने वाला कहा गया है और रेफ पापों को जला देने वाला होता है । उकार विष्णु भगवानका वाचक कहा गया है । इन तीनोंसे निष्पन्न 'गुरु'—यह शब्द नियतात्मा सबसे परम प्रधान होता है । इन गुरु शब्दका महत्व बहुत अधिक इसीलिएहै कि यह अज्ञान को तथा पाप को नष्ट कर प्रकाश एवं ज्ञान की चमक दिया करता है । ।।७-८।।"

गृणाति उपदिशति धर्म मिति गुरुः ।
"जो धर्म का उपदेश करे उन्हें गुरु कहते हैं ।"
गिरत्यज्ञान मिति गुरुः ।
"जो अज्ञान को दूर करें वे गुरुहैं ।"
अविद्या हृदयं ग्रन्थि बन्ध मोक्षो यतो भवेत् ।
तयेव गुरुरित्यागंरु शब्देत योगिनः

—शंकाराचार्य

'जो हृदय की अज्ञान ग्रन्थि को खोलें, उन्हें गुरु कहते हैं ।"
नियमेकादीनि कर्मांणि य, करोति यथाविधि ।
संभावयति चान्येन स विप्रो गुरु रुच्यते ।।

—मनु० २।१४२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"जो स्वयं कर्तव्य-कर्मों में संलग्न हो दूसरों को भी वैसीही प्रेरणा दे, ऐसे ब्राह्मण को गुरु कहते हैं ।"

महेश्वर ने स्वयं गुरु के लक्षणों पर प्रकाश डाला है—

नाना विकल्प विभ्रान्ति नाशन्तु कुरुते च यः ।
सद्गुरुः स तु वियेयो न तु स्वरप्रजल्पकः ।।
अतएव महेशानि सद्गुरु स शिवोवित ।
सत्यवादी सत्यशीलो गुरुभक्तो दृढ़व्रतः ।।
स्वल्पाचाररतात्मानो दानादिशीलसंयुतः ।
कपटयलोभ विन्यासी महावंश समुद् भवः ।।
ईदृशः सद्गुरुस्तस्य संमतो यत्नवान् भवेत् ।
तदेव मनसा शान्ति प्राप्नोति परमं पदम् ।।

अर्थात् "नाना विकल्प ओर भ्रान्तियों का नाश करने वालाही सद्-गुरु होता है । केवल शास्त्र की दुहाई देने वाला ही गुरु नहीं कहलाता । इसलिये हे महेशानि ! सद्गुरु वह है जो सत्यवादी, गुरुभक्त, दृढ़व्रती, सूक्ष्म आचार वाले, आत्मरत, दानादि गुणों व शील से संयुक्त, उत्तम वंश में उत्पन्न, कपट-लाभ से रहित हो। ऐसे लक्षणों से युक्त गुरु की पहिचान करके वरण करना चाहिए । उनके सत्संग और कृपा से ही शान्ति व परम पद की उपलब्धि सम्भव है ।",

गुरु ईश्वरीय विभूति—

शास्त्रों का यह मत है कि ईश्वर जीव के उद्धारकर्ता होने के नाते गुरु के रूप में स्वयं अवतरित होते हैं और शिष्य के उत्थान की योजना बनाते हैं । ईश्वर गुरुओं के परम गुरु माने गये हैं । यही अनादि आचार्य तत्व हैं । पातञ्जलि ने भी अपने योग-सूत्रों में इस तथ्य को स्वीकार किया है—

तस्यात्मानुहामावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजन ज्ञान धर्मोपदेशेन काल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणं उद्धरिष्यामोति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् "ईश्वर का कहना कोई प्रयोजन नहीं होता, फिर भी कल्प प्रलय और महाप्रलय में ज्ञान और धर्म के उपदेश के माध्यम से संसारी जीवों के उत्थान की दृष्टि से वह आते हैं,यही उसका प्रयोजन रहता है। जीव में उनके अनुग्रह की योग्यता होती है, तभी वह अनुग्रह प्राप्त कर पाता है, यही निश्चित है ।"

सच्चे आचार्य का उद्देश्य भी यही रहता है इसलिए शास्त्रकारों ने उसे शिवतुल्य आसन पर आसीन होने की घोषणायें की हैं। वे आचार्य को शिव समान समझते हैं और उसी दृष्टि से उनकी पूजा अर्चना करने की सलाह देते हैं। शिव ने स्वयं इसे स्वीकार किया है—

शिवोऽहमाकृतिदेव नर दृगगोचरो न हि ।
तस्मात् श्रीगुरुरूपेण शिष्यान् रक्षति सर्वदा ।।

'मेरी शिवरूपी आकृति मनुष्य नहीं देख सकते, इसलिए गुरु का रूप धारण करके मैं शिष्यों की रक्षा किया करता हूँ ।"

शास्त्र की भी यहीं उक्ति है—

यन्मान्महेश्वरः साक्षात् कृत्वा मानुषविग्रहम् ।
कृपया गुरु रूपेण मग्नः प्रोद्धरित प्रजाः ।।

अर्थात् "शिव स्वयं ही मानुष विग्रह धारण करते हैं और गुरु रूप से कृपा करके माया में लिप्त जीवों का उद्धार करते हैं ।"

इसलिए उत्तम साधक शिव के साथ एक्य स्थापित करके अपने गुरु का ध्यान करते हैं—

स्वमूर्द्धानि सहस्रार पंकजासीन भव्यम् ।
शुद्ध स्फटिक संकाशम् शरच्चन्द्र निभाननम् ।।
प्रफुल्लेन्दीवरशंकार नेत्रं हय विराजतम् ।
शुक्लाम्बर धरं शुक्लगन्धभारव्यानु लेपनम् ।।
विभूषितं श्वेत माल्यै वराभय कर द्वयम् ।
वामांवतया शक्त्या सहितं स्वप्रकाशया ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुरक्तोपल धारिण्या ज्ञानैर्मुदित मानसम् ।
शिवेनैक्यं समुन्नीय ध्यायेत्परगुरूं धिया ।।

—अनन्तफल तन्त्र

"अपने मस्तक के सहस्रदल कमल में बैठे हुए अविनाशी स्वच्छ स्फटिक मणि के सदृश कान्ति वाले, शरद्कालीन चन्द्रमा के समान मुख वाले विकसित कमल के समान, विशाल नेत्र वाले, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले, श्वेत गन्ध तथा श्वेत पुष्प की माला को धारण करने वाले, श्वेत चन्दन धारण करने वाले दोनों हाथों में वराभय मुद्रा धारण किये हुए अपने प्रकाशित स्वर्ण के-से तेज से युक्त होकर ज्ञान से प्रसन्न चित्त वाले अपने परम गुरुदेव को सदाशिव के साथ एक्य समझकर उनका ध्यान करता है।"

क्योंकि शास्त्र का अनुमोदन यही है—

शिरः परमे शुक्ले दशशत दले के सरगते ।
पतत्रीणां तुल्यं परम शिवरूपं निजगुरुम् ।।

—अन्नदाकल्प

"मस्तक में स्थित सहस्रबल कमल के पात्रों पर परम शिवरूप अपने गुरु का स्थान जाने।"

शिरः पद्मे महादेवैस्तथैव परमोगुरः ।
तत्समो नास्ति देवेशि पूज्यो भुवनत्रयं ।।
तद्दशं चिन्तयेद्दुदेवि बाह्ये गुरु चतुष्टुयत् ।

—महानिर्वाण तन्त्र

"मस्तक के सहस्रार पद्म में महादेव हो सर्वप्रधान गुरु हैं । हे देवि ! उसके समान तीनों लोकों में और कोई नहीं है । गुरु, परम गुरु, परमेष्ठी गुरु और परम्पर गुरु—ये चारों उसी शिव के अंश हैं।"

शिवरूपं समास्थाय पूजां गृहणाति पार्वति ।
गुरुरूपं समादाय भवपाशान्निकृन्तयेय ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वानुग्रहकर्त्ता त्वादीश्वरं करुणानिधि ।
आचार्यरूपमास्थाय दीक्षया मोक्षयेत पशून् ।।

हे पार्वती ! शिवरूप में वह पूजा को ग्रहण करते हैं और गुरु के रूप में भव-बन्धनों को काटते हैं। सब पर अनुग्रह करने वाले करुणा निधि ईश्वर की आचार्य रूप ग्रहण करके दीक्षा देकर जीव को मोक्ष दिलाते हैं।"

तभी गुरु की श्रेष्ठता को शास्त्र ने स्वीकार किया है। उनका यह विश्वास है कि आनन्तर गुरु प्रत्येक जीवके हृदय में अन्तरिक रूप से निवास करता है। इसलिये गुरु के इस स्वरूप को निराकार और चैतन्यमय कहा गया है। उन्हें सच्चिदानन्द स्वरूपभी माना जाता है।

तन्त्र साधना में गुरु की परम आवश्यकता का आधार उपरोक्त युक्तियां ही हैं। गुरु बिना तन्त्र-मार्ग में गति असम्भव ही है। अतः तन्त्र-साधक को चाहिये कि वह अधिकारी तान्त्रिक को गुरु वरण करे।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र के विभिन्न अर्थ और लक्षण

तन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—काशिकावृति में 'तनु विस्तारे' धातु से औणादिक ष्ट्रन् (सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्, उणादि सूत्र ६०८) के योग से बना है।

यन्मते विस्तार्यते ज्ञान मनेन इति तन्त्रम्।

"तन्त्र उसे कहते हैं जिसके माध्यम से ज्ञान का प्रसार हो।"

'कामिक आगम' के अनुसार—

तनोति विपुलानर्थान् तन्त्र च समन्वितान्॥
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते।

'तन्त्र का व्यापक अर्थ शास्त्र, सिद्धान्त, अनुष्ठान, विज्ञान और विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों से अभिहित किया गया है।"

सरजान सम्बन्धी ग्रन्थों से अभिहित किया गया है।"

गति तक पहुँचने के लिये आवश्यक आचार-विचार का प्रतिपादन करे।"

शंकराचार्य ने सांख्य दर्शन को भी तंत्र नाम से ही सम्बोधित किया है—

स्मृतिश्च तन्त्राख्या परमर्षि प्रणीता।

—शांकरभाष्य २।१।१

तंत्र का अर्थ शिवमुखोक्त शास्त्र भी किया जाता है। यह आगम यामल और तंत्र तीन नामों से स्मरण किये जाते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाराही तन्त्र तो तन्त्रों को वेद के छः अङ्गों में से एक 'कल्प' मानता है—

कल्पश्चतुर्विधः प्रोक्तः आगमो डामरस्तथा ।
यामलश्च तथा तेषां भेदाः च प्रथक् प्रथक् ।

अर्थात्—कल्प चार प्रकार का बताया गया है। आगम तथा डामर है उसी भाँति यामल है । उनके प्रथक्-पृथक् भेद होते हैं ।

तन्त्र का अभिप्राय है—यह शास्त्र जिससे सांसारिक व पारलौकिक ज्ञान का विस्तार हो, जिससे चतुर्वर्ग की प्राप्ति हो । इन महान् उपलब्धियों के लिये जो यन्त्र-मन्त्रादि सहित एक विशेष पद्धति का निर्देश करते हैं वे 'तन्त्र हैं ।

वाचस्पति मिश्र के द्वारा 'तत्ववैशारदी' १।७ में इस प्रकार व्याख्या हुई है—

आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् आम्युदयानिःश्रेयसोपायः स आगमः ।

इसके अनुसार तन्त्र उस शास्त्र को कहतेहैं, जिससे भोग और मोक्ष के उपायों का बुद्धि में अवतरण हो ।"

तन्त्र का एक अर्थ है—सबसे रमण करने वाला व्यापक तन्त्र या सूत्र । यह ऐसा सूत्र है, जिसमें सभी प्रकार के भाव माला के मनकों की तरह एक साथ गुथे हुए हैं—

'सूत्रे मणिगणा इव'

अर्थात् "जिस प्रकार से धागे में मणि आदि को पिरो दिया जाता है ।"

म० म० डा० गोपीनाथ कविराज ने इसकी इस प्रकार व्याख्या की है—

"वेद की भाँति तन्त्र-क्रम भी बोधात्मक और वागात्मक ही है । शिव में समवेव शक्ति के रूप हैं—ज्ञान एवं क्रिया । ज्ञान रूपिणी शक्ति पर और अपर भेद से द्विविध है । पर ज्ञान बोधात्मक और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपर ज्ञान वागात्मक है। वागात्मक ज्ञान शास्त्ररूप से प्रतिष्ठित है। बोधात्मक परज्ञान वागात्मक अपरज्ञान शब्द पर आरूढ़ होकर अर्थ-प्रकाश में प्रवृत्त होता है। सात्वत-संहिता में परज्ञान को शिवकी साक्षात् शक्ति और अपरज्ञान को तन्त्र कहा है।''

श्री नर्मदाशंकर देवशंकर मेहता ने इसका इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

'श्रौतकाल पूर्ण होने के बाद उसके अनुसंधान में आयम ग्रन्थों का आभिर्भाव हुआ है। छांदोग्य उपनिषद् में पंचमृत विद्या का वर्णन है उसमें सूर्यविम्व को देवमधु की संज्ञा दी गई है और वह अपनी पूर्व पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं की किरणों द्वारा ब्रह्माण्ड में मधु-रस का प्रसारण करता है। पूर्व दिशा की किरणें ऋग्वेद रूपी पुष्प का रस खींचती हैं और असम से लो मधु उत्पन्न होता है, उससे वसु देवता अग्नि द्वारा तृप्त होते हैं। दक्षिण दिशा की किरणें यजुर्वेद के पुष्परस को चूसती हैं और उससे उत्पन्न अंहृन से रुद्र देवता इन्द्र द्वारा पुष्ट होते हैं। पश्चिम दिशा की किरणें समावेश के पुष्प का रस खींचते हैं और उसके अमृत से आदित्य देवता वरुण द्वारा तृप्त होते हैं और उत्तर दिशा की किरणें अर्थवेद के पुष्पों के सार को खींचती हैं और उसके अमृत से मरुत देवता सोम द्वारा पुष्ट होते हैं। विद्यारूपीं अमृत अथवा मधु आधार पुष्प ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में अवस्थित हैं और उनके सार को भगवान् सूर्य अपने बिम्ब में खींचकर उससे वसु, रुद्र, आदित्य और मरुत—इन देवताओं के गण अनुक्रम से अग्नि, इन्द्र वरुण और सोम—इन चार अध्यक्षों द्वारा मधुरस भोगकर तृप्त होते हैं। इन चार मुखों के रूपक वाले ब्रह्मदेव को चारों वेदों का प्रवर्तक माना गया है। परन्तु उसी उपनिषद् में सूर्य ऊर्ध्वमुख का वर्णन है उसकी। उसकी किरणें परोरजा कहालाती हैं, क्योंकि उसमें रजस् अर्थात् रजोगुणका भाग स्पर्श नहीं है। उसकी किरण 'गुह्य आदेश'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को खींचते हैं और उसे ब्रह्मतत्व के पुष्प में से खींचती है तथा उसका जो मधु होता है उसे प्रणव द्वारा साध्य देवता अर्थात् सिद्धजन भोगते हैं। इस 'गुह्य आदेश' को आगम कहते हैं।"

एक अनुभवी तान्त्रिक विमलानन्द स्वामी का कहना है कि तन्त्र द्वारा ही ब्रह्मविद्या का रहस्योदघाटन चारों युगों में हुआ है। सतयुग में जब देतताओं के लिए सकाम कर्मों का बाहुल्य था, तो हेमवन्ती उमा के रूप में इन्द्रादि देवताओं के समक्ष प्रकट हुई थी, अम्भृण मुनि की पुत्री वाक्सूक्त में अवतरित हुई थीं। त्रेता में जब पशु यज्ञों का विस्तार हुआ तो परशुराम, जनक, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि के द्वारा प्रकट हुई। द्वापर में यह भगवान कृष्ण द्वारा आविर्भाव में आईं। कलि में तो दुर्गा-पूजा व अनेक प्रकार के व्रतों में तन्त्र का समावेश प्रतीत होता है।

पार्वती ने शिव से कहा।—

सप्त सप्त सहस्राणि तन्त्राण्याहुर्वरानने।

अर्थात् "हे वरानने! सात सात सहस्र तन्त्र कहे गये हैं।"

साधारण: टोटकों को भी तन्त्र माना जाता है। यह तन्त्र ज्ञान के अभाव का ही कारण है।

तन्त्र उन ग्रन्थों को भी कहते हैं जिनमें साधना के पाँच अङ्गों—१. पटल २. पद्धति ३. कवच ४. सहस्रनाम, ५. स्तोत्र का प्रतिपादन हो। जिनमें देवी-देवताओं के स्वरूप, गुण, कर्म, आदि के चिन्तन योग्य उद्गार उपलब्ध हों और इन मन्त्रों की हवियज्ञ मे अवस्थित करके ध्यान की विधि बताई हो।

सृष्टिश्च प्रलयश्च देवतानां तथार्चनम्।
साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च॥
षट्कर्म साधनं चैव ध्यानयोगञ्चतुर्विधः।
सप्तभिलक्षणैर्युक्तमागमं तद्विदुर्बुधाः॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र उसे कहते हैं जिससे सृष्टि, प्रलय, देवपूजन' सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्म साधन और चार प्रकार के ध्यान रहित सात प्रकार के लक्षण हों ।"

शास्त्रों में तन्त्रों के लक्षण इस प्रकार वर्णित किये गये हैं–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च तन्त्रनिर्णय एव च ।
देवतानंञ्च संस्थानं तीर्थानांचैव वर्णनम् ॥
तथैवाऽऽथ धर्म्मश्च विप्रसंस्थान मेव च ।
संथानं चैव भूतानां यन्त्राणाञ्चैव निर्णयः ॥
उत्पत्त्तिर्विबुधाञ्च करुणां कल्पसंज्ञितम् ।
संस्थानं ज्योतिषांश्चैव पुराणाख्यानमेव च ॥
कोषस्य कथनं चैव व्रतानां परिभाषणम् ।
शौचाऽशौचस्य चाऽऽख्यानं नरकाणाश्चांवर्णनम् ॥
सगुणोपासना दिव्या पञ्चतत्वविभेदतः ।
चतुष्टयेन भेदेन ब्रह्मणे ध्यानधारणे ॥
मन्त्रयोगो लयश्चैव राजयोगो हठस्तथा ।
उपासनाविधिः सम्यगीश्वरस्य परमात्मना ॥
सप्तानां ज्ञानभूमीनां शास्त्रोक्तानां विशेषतः ॥
ज्ञानस्य चाऽथिकारांस्त्रीन्भावतात्पर्य्यैलक्ष्यैतः ।
तन्त्रेषु च पुराणेषु भाषायात्रिविधां स्मृतिम् ।
वेदस्य षडङ्गानि उपवेदचतुष्टयम् ॥
प्रेततत्वं पितृतत्वं लोकतत्वं वरानने ।
जीवतत्वं ज्ञानतत्वं कर्म्मतत्वं शुभाशुभम् ॥
रसायनं रससिद्धि जपसिद्धि तपः परम ।
देव रहस्यं शक्तिश्च निश्शेषदेवपूजिताम् ॥
हरचक्रस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसीश्चैव लक्षणम् ।
राजधर्मो दानधर्म्मों युगधर्मस्तथैव च ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यवहार: कथ्यते च तथा चाऽध्यात्म वर्णनम् ।
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तन्त्रशास्त्रं विदुबुधाः ।।

सृष्टि, प्रलय, तन्त्र-निर्णय, देव सृष्टि का सार, तीर्थ, ब्रह्मचर्यादि, आश्रम धर्म, ब्राह्मणादि वर्ण, जीवसृष्टि का प्रसार मन्त्र, देवोत्पत्ति, औपधिकल्प, ग्रह-नक्षत्रादि संस्थान, पुराण कथाएँ, दान, व्रत, शौचाशौच, नरक, आकाशादि. पाँच तत्वों के अधिकार के अनुसार पांच प्रकार की सगुण साधना, चार प्रकार का ध्यान और धारणा, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग ईश्वर प्राप्ति के उपाय सात दर्शनशास्त्रों की सात ज्ञानभूमि का रहस्य, तीन भावों का लक्ष्य, तन्त्र और पुराणों को तीन तरह की भाषा का विवरण, वेद के छः अङ्ग, चारों उपवेद, प्रेतत्व, पितृतत्व, चतुर्दश लोकतत्व जीवतत्व, ज्ञानतत्व, शुभाशुभ कर्मतत्व, रसायन शास्त्र रसायन सिद्धि, जपसिद्धि उत्कृष्ट, तपसिद्धि, देवी जगत से सम्बन्ध रखने वाले रहस्य, समस्त देवताओं द्वारा पूजित शक्ति का विवेचन, चक्र स्त्री पुरुष नक्षत्र, राजधर्म दानधर्म व्यवहार-नीति, आत्मा-अनात्मा आदि विषयों का विवेचन जिन शास्त्रोंमें उपलब्ध होता हो वे तन्त्रशास्त्र कहे जाते हैं ।

भारतीय संस्कृत के प्रमुख अङ्ग—निगम और आगम । निगम—वेद में ज्ञान, कर्म और साधना का विवेचन है । आगम–तन्त्र में इनकी साधना प्रणाली का दिग्दर्शन प्राप्त होता है । उदाहरण के लिये अद्वैत वेदांतों में अद्वैत तत्व के सिद्धान्त को सिद्ध किया गया है तो शाक्त आगमों में इनकी व्यावहारिक उपासना का निरूपण है ।

स्वच्छ तन्त्र पटल श्लोक ३०० में 'आगम' शब्द की परिभाषा करते हुए लिखा है—

आगमो ज्ञानमित्युक्तअनत्ताः शास्त्रकोट्यः ।

अर्थात्–आगम को ज्ञान कहा गया है और शास्त्रों की कोटियां तो अनन्त हैं ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गीता के अनुसार—

मात्रास्पर्शास्तुकौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

अर्थात् 'हे कौन्तेय ! तन्मात्राओं का जो स्पर्श अर्थात् सम्पर्क है, वह शीत उष्ण, सुख और दुःख देने वाला होता है । हे भारत ! उन आगमापिनों तथा अनित्यों को सहन करो ।'

वाचस्पति मिश्र ने तत्व वैशारदी में कहा है—

आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मादवयुदयनिः श्रेयः सोपायाः स आगमः ।

अर्थात् 'आते हैं अर्थात् बुद्धि का आरोहण करते हैं जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयस के उपाय होते हैं, वह आगम है ।'

शिव के पांच मुखों में से एक ईशान है । इससे जो गुह्य आदेश निकलते हैं । उन्हें आगम की संज्ञा दी गई हैं । इसकी साक्षी स्वच्छन्द तन्त्र में है—

मन्त्राख्यं तु महाज्ञानमीशानात्तु विनिर्गतम् ।
सद्योजातस्तु ऋग्वेदो वामदेवो यजुः स्मृतः ॥
अघोरः सामवेदस्तु पुरुषोऽथर्व उच्यते ।
ईशानश्च सुरश्रेष्ठः सर्वविद्यात्मकः स्मृतः ॥

अर्थात् 'मन्त्र नाम वाला महाज्ञान ईशान से ही विनर्गत हुआ है । ऋग्वेद सद्योजात है और यजु वामदेव से कहा गया है । सामवेद अघोर है, अथर्व पुरुष कहा जाता है । ईशान सब सुरों में श्रेष्ठ है और सर्व विद्याओं का स्वरूप कहा गया है ।

इसी बात को रुद्रयामल में इस प्रकार कहा गया है—

आगतः शिववक्त्रेभ्यो गतश्च गिरिजानने ।
मग्नश्च हृदयाम्भोजे तस्मादागम उच्यते ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थ—'शिव के मुखों से आया है और गिरजा के आनन में गया है। हृदय कमल में निमग्न है, इसी से आगम कहा जाता है ।।"

"ईश्वर प्रत्याभिज्ञा निवृत्ति विमर्शिनी" में आगम का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—

सर्वथा अनुमानेन आश्वसितव्यम् ।
अपि तु आगम एव, स च यो यस्य हृदये
निरूढ़िमुपगत: स एव:.।।
ननु एवं यस्य न किंचन्निरूढ़. तस्य किम् ।
ननु एवं यस्य चक्षुषी न स्त: तस्य किम् ?

अर्थ—'सर्वथा अनुमान में आश्वासन नहीं करना चाहिए बल्कि आगम में ही करें और वह योग के हृदय में निरुढ़ि को उपागत हुआ है, वही है। क्यों जी, इस प्रकार से जिनका कुछ भी निरुढ़ नहीं हैं, उसका क्या है ? क्यों जी, इस प्रकार से जिसके चक्षु नहीं हैं, उसका क्या है ?"

वेद को भी आगम की संज्ञा दी गई है। स्तवचिन्तामणि (६६) के अनुसार—

नुमस्त्वां ऋग्यजु:साम्नां शुञ्चत: परत: परम् ।
यस्य वेदात्मिकाज्ञेयमहो गम्भीर सुन्दरी ।।

अर्थ—'ऋक् यजु और साम का शुंच से पर से पर आपको नमस्कार करते हैं। जिसका ज्ञेय वेदात्मक ही है। अहो, गम्भीर, सुन्दरी, !!

ईश्वर प्रत्यभिज्ञा निवृत्ति विमर्शिनी में भी कहा है—.

ऋगादीनां शुक्रं सारं वीर्यं वाक्त्रयं पूर्वं व्याख्यात मिच्छा-दिशक्तित्रयमथं ततो यत्परं परशक्त्यात्मकमानन्दधाम, तत: परं समस्त शक्तिप्रतिष्ठारूपपरतंशक्ति विश्रान्तिराम: तत् नुम: । अहो, इति गाम्भीर्यस्त सौन्दर्यस्य च अतिशयं द्यौतयन्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अध्यात्माधिभूताधिदेवादि विषयार्यसहस्र-गर्भत्वमा वक्षाणः सर्वागमाविसंवादितां वेदागमस्य आहं ।।

अर्थ—"ऋगादि का शुक्र सार वीर्य है। वाक्त्रयं पूर्व में व्याख्यान हो गया है' जो इच्छादि तीन शक्तियों से पूर्ण है। इसके पश्चात् जो यह परशक्ति त्रयात्म आनन्दधाम है, उससे भी पर समस्त शक्ति प्रतिष्ठ-रूप परम शक्ति का विश्रामधाम है, उसको प्रणाम करते हैं। अहो! इससे गाम्भीर्य और सौन्दर्य का अतिशय द्योतिक करते हुए आध्यात्म, अधिभूत, आधिदेव विषयों के सहस्रों के मध्य में रहते हुए समस्त आगमों को अविसंवादिता वेदागम ही कहते हैं।"

ब्रह्मयामल के अनुसार—

तन्त्रकृत्तन्त्रसम्पूज्या तन्त्रेशी तन्त्रसम्मता।
तन्त्रेशा तन्त्रवित्तन्त्रसाध्या तन्त्रस्वरूपिणी।

अर्थ—"तन्त्रों के करने वाली—तन्त्रों के द्वारा सम्पूज्य, तन्त्र की स्वामिनी, तन्त्रों से सुसम्मत, तन्त्रेशा, तन्त्र की वेत्ता, तन्त्र से प्रसाध्य और तन्त्र स्वरूप वाली है।

प्र० आ० तन्त्रालोक टीका में कहा गया है—

तन्त्रजज्ञो रुद्रशिवभैरवाख्यमिदं त्रिधा।
वस्तुतो हि त्रिधैवेयं ज्ञानसत्ता विजृम्भते ।।
भेदेन भेदाभेदेन तथैवाभेदभागिमा ।।

अर्थ—"यह तन्त्र रुद्र, और भैरव नाम वाला तीन प्रकार का समुत्पन्न हुआ है। वास्तक में यह तीनों प्रकार से ज्ञात सत्ता विजृम्भित होती है, भेद से-भेदाभेद से और उसी भाँति अभेदभागी होने में तीन भेद हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार—

द्वौ दैवे वाक्त्रयः पित्र्ये उदयेकैकमेव वा।
मातामहनाम्प्येव तत्र वा वैश्वदैविकम ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थ—देवकर्म में दो पित्र्यकर्म में तीन, अन्यों को एक-एक ही उदाकाञ्जलि होती है। मातामही को भी इसी प्रकार से होती है अथवा वैष्णववैदिक तन्त्र है।

कात्यायन श्रौत सूत्र (१।७।१) के अनुसार—

कर्मणा युगपद्भावः तन्त्रम्।

अर्थ—कर्मों को जो युगपद् भाव है, वह तन्त्र है।

ऋग्वेद १०।७१६ में तन्त्र का उल्लेख हुआ है—

इमे ये नार्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासी न सुतेकरासः।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रज्ञया॥

अर्थ–'इस लोक में पुरुष वेद के जानने वाले ब्राह्मणों और पारलौकिक देवताओं के सहित यज्ञादि कर्मों को नहीं करते। जो स्तुति नहीं करते और न सोम याग की इच्छा करते हैं, वे पाप के चंगुल में चतुर होते हैं।"

यजुर्वेद ३८।१२ में तन्त्र का अर्थ सूर्य के अर्थ में हुआ है—

तन्त्रायिणे नमांद्यावापृथ्वीभ्याम।

'सूर्य और द्यावा पृथ्वी को नमस्कार है।'

यहाँ कालचक्र को तन्त्र माना है, तभी सूर्य को तन्त्रायी शब्द से अभिहित किया गया है—

आश्वलायन श्रोत सूत्र १।१।३ के अनुसार—

दर्शपूर्णमासौं तु पूर्वं व्याख्यास्यामः तन्त्रस्य तन्त्रम्नातत्वात्।

अर्थ—दर्श और पौर्णमासी की पूर्व में व्याख्या की गई है। तन्त्र का वहाँ पर आम्ना तत्व होता है।

वाचस्पत्यम् पृष्ठ ३२२५ में तन्त्र के अनेकों अर्थ इस प्रकार दिए गये हैं—

१. प्रवन्ध २. राष्ट्र ३. गृह ४. धन ५. कुल ६. हेतु ७. स्वराष्ट्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चिंता ८. प्रधान ६. औषधि १०. सिद्धाँत ११. परिवार के पालन-पोषण आदि कार्य १२. परिच्छद १३. तन्तुवाये १४. वेद शाखा-भेद १५. बयन साधन १६. इति कर्तव्यता १७. शिवादि शास्त्र-मेद १८ उभयार्थक प्रयोग १६. शपथ २०. परछन्दानुगमन।

वेद दीप—

तन्त्रे कालचक्रे एति निरन्तरं गच्छति तन्त्रायी तस्मै आदित्याय नमोऽस्तु। 'एष व तन्त्रायी य एष तपत्येष हीमांल्लौ-कांस्तन्त्रभिवानुसंचरति।'

अर्थात् "तन्त्र में कालचक्र निरन्तर जाता है, उस तन्त्रायी आदित्य के लिए नमस्कार है। यह निश्चय ही तन्त्रायी है, जो यह तपता है। यह इन लोकों को तन्त्र की तरह अनुसंचरण करता है।"

कर्काचार्य के अनुसार—

यत्र प्रधान कर्मणां युग पद्भावः सह प्रयोगः तत्र आराद्रुप कारकाणंअङ्गानां तन्त्र सकृदनुष्टानं भवति। न प्रतिप्रधानं पृथक पृथक्, यदि सकृत्कृतं वहनां उपकरोति तत्तन्त्रमित्युच्यते तथा वहूनां मध्ये कृतः प्रदीपाः।

अर्थात् "यहाँ पर प्रधान कर्मों का युगपद्भाव है सहयोग है वहाँ पर समीप में उपकार को अङ्गों का तन्त्र सकृत अनुष्ठान होता है। प्रति-प्रधान पृथक-पृथक नहीं है। यदि एकवार फिया हुआ बहुतों का उपकार करता है वह तन्त्र—यह कहा जाता है। जिस प्रकार से बहुतों के मध्य में रखा हुआ प्रदीप है।

'मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य' पुस्तक के लेखक ने तन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की हैं—

'वस्तुतः भावी विश्व की सूक्ष्म रूप रेखा जहाँ बनती है—मानी जाती है, वह सूक्ष्माकृति सम्पन्न, अभेद रूप वस्तु तन्त्र ही तन्त्र है। अनन्तर वही वस्तु तत्व, जब कुछ पूर्व दशा से उन्मिषित होता है, तब भेद और अभेद रूप को प्राप्त करके भावी प्रसार अथवा फैलाव का मध्यावस्थात्मक ठाठ या तन्त्र कहलाता है और भेदात्मक पूर्ण प्रसार तो तन्त्र है ही इस प्रकार तन्त्र की त्रिधास्थिति ही सम्भव है।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र का सिद्धान्त

शक्ति-तत्व की व्याख्या–

ब्रह्म की क्रिया और उसकी सक्रिय अवस्था को शक्ति कहते हैं। ब्रह्म का ब्रह्मत्व उसकी शक्ति है। जड़ का जड़त्व भी उसकी शक्ति है। सत् का सत्पन भी उसकी शक्ति है। संसार में जितने भी जड़ और चेतन पदार्थ दिखाई देते हैं, उनके अस्तित्व में शक्ति ही हैं। शक्ति के कारण ही वे रह सकते हैं। इसलिए शक्ति को विश्वमय और विश्व का आधार माना जाता है। चारों ओर हमें शक्ति के चमत्कार दिखाई देते है। सृष्टि की सारी क्रियाएँ शक्ति के सहारे होती हैं–हमारे शरीर इन्द्रियों और मन का संचालन भी शक्ति के कृपा-प्रसाद से होता है। जल, वायु, अग्नि की समस्त क्रियाओं में भी शक्ति ओत-प्रोत है। जगत् की छोटी-से छोटी क्रिया में शक्ति का हाथ है। उसकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी हिल नहीं सकता। ब्रह्म में जो सत्-चित् और आनन्द आदि के गुण पाये जाते हैं उसका मूल स्रोत, भी शक्ति ही है। ब्रह्म तो निर्विकार है, वह कुछ नहीं करता, क्रियाशीलता का श्रेय तो शक्ति को ही है। वही सर्वस्व है। उसी के बल पर हम सोचते, देखते, बोलते व समस्त कार्य करते हैं। जानने, समझने, सुनने, स्पर्श करने आदि की सारी क्रियायें उसी के कारण होती हैं। इस शरीर के संचालन के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता रहती है, उनकी उत्पत्ति भी उसीं से होती है प्राणों का संहार भी वह करती है। आकर्षण शक्ति, विद्युतशक्ति और चिन्तन शक्ति आदि सभी को शक्ति का साकार रूप कहा जाता है। चारों ओर शक्ति का ही खेल है, ब्रह्म इसके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बिना कुछ भी करने में असमर्थ है। शिव शक्ति के बिना शव वन जाते हैं श्री अध्यातम रामायण में सीताजी ने हनुमान जी से कहा है कि भगवान राम तो कुछ नहीं करते, अवतार की समस्त लीलाएँ तो मैंने ही की हैं।

ईश्वर ने यह संकल्प किया है कि 'एकोऽहं बहुस्याम्'—मैं एक हूँ, वहुत हो जाऊँ—ब्रह्म के इसी संकल्प अथवा इच्छा को आद्याशक्ति व महाविद्या की संज्ञा दी जाती है। इसी को आदिशक्ति, आदिमाया, महेश्वरी, परमेश्वरी मूल प्रकृति, जगदीश्वरी, पराशक्ति, माया, महामाया, कुण्डलिनी कहा जाता है। काली, नवदुर्गा, नवशक्ति, महाकाली महालक्ष्मी, महासरस्वती भी उस शक्ति के ही व्यक्त रूप हैं।

मूल प्रकृति अव्यक्त रूप में रहती है, जो इस संसार का मूल मानी जाती है। इसमें चेतन शक्ति अवश्य रूप में ही निवास करती है। वह जब शरीर के शक्ति-केन्द्रों में प्रवेश करती है तो उसके भिन्न-भिन्न रूप हो जाते हैं। मूलाधार चक्र में आकर 'डाकिनी' स्वाधिष्ठान चक्र में 'राकिनी', मणिपूर चक्र में 'डाकिनी' अनाहत चक्र में 'कलिनी' और विशुद्ध चक्र में 'शाकिनी' का रूप ग्रहण करती है।

शक्ति के व्यक्त होने के माध्यम हैं, प्रकृति के तीन गुण—सत्, रज और तम। पृथ्वी जय, वायु, तेज और आकाश को अपना साधन बनाती है। इन पाँच तत्वों में जब मन, बुद्धि और अहंकार सम्मिलित हो जाते हैं, तब वह जड़ अथवा प्रकृति कहलाती है। यह छोटे स्तर की है ऊँचे स्तर की परा प्रकृति हैं, जिसे आत्मारूप और क्षेत्रज्ञ कहते हैं, यह चैतन्य प्रकृति है। यही संसार के अणु अणु में व्याप्त है, जीवधारियों के जीवन की आधार शिला यही है।

एक विद्वान ने इसे बड़े अन्दर रूप में व्यक्त किया है—

'भारतीय दर्शन में शक्ति का स्वरूप बहुत ही दिव्य, बहुत ही उदात्त है। शक्ति ही विश्व का सृजन करती है, शक्ति ही उसका संचालन करती है और शक्ति ही संहार करती है। शक्ति ही सृष्टि का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आदि कारण है। शक्ति ही वह परम तत्व है, जिससे इस मिथ्या जगत की उत्पत्ति हुई है। जड़ प्रकृति के पूर्व भी शक्ति थी और शक्ति की इच्छा से ही भौतिक जगत को सृष्टि हुई। इसलिए शक्ति दर्शन में न तो ईश्वरवाद है, न देवी-देवता है और न पंचमकार ही है। यह तो विशुद्ध अद्वैतवाद है जिसमें आत्मा को प्रकृति के परे माना गया है।"

विद्या शक्ति को हिन्दू धर्म में जगज्जननी स्वीकार करके दुर्गा काली भवानी आदि अलग-अलग रूपों और नामों से पूजा जाता है। वही पार्वती हैं। इन्हें हिमालय की पत्नी मेनका की पुत्री कहा जाता है। वैदिक कोष निघण्टु में 'मेना' और 'मेनका' का अर्थ 'वाणी' और 'पर्वत' 'गिरि' का अर्थ 'मेघ' बताया गया है। माता बच्चे का पालन-पोषण दूध से करती है। जगन्माता जलरूपी दूध से प्राणियों की तृप्ति करती है। इस कार्य में मेघ भी सहायता देता है। वह पिता की भूमिका का अभिनय करता है। पार्वती और गिरिजा शब्दों के प्रचलन का भी यही अभिप्राय है। निरुक्त में हिमालय को भी मेघ कहा गया है 'हिमेन उदकेन' (नि० अ० ६)।

दुर्गा दुर्गति का नाश करने वाली बताई जाती है। शक्ति-सम्राट सिंह को उनका वाहन माना गया है। वह स्वयं शक्ति रूपा है वह शक्ति को अपने नियन्त्रण में रखती हैं, तभी तों आसुरी शक्तियों के विनाश की सामर्थ्य रखती हैं। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार जब वह राक्षसों के साथ युद्ध करती हैं, तो मद्यपान करती हैं। मद्य का अर्थ अहंकार है। वह अहंकार शून्य होकर संघर्ष करती हैं। अहंकार शक्ति के लिये घुन और दीमक का काम करता है। शक्ति के निकट अहंकार कैसे आने का साहस कर सकता है ? शक्ति की स्थिरता तभी रह सकती है जब अहंकार पर विजय प्राप्त कर लिया जाता है। अतः अहंकार रूपी मदिरा का पान करके ही वह

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युद्ध में विजय-घोष करती हुई राक्षसों का मदमर्दन करती हैं।

शक्ति तो सर्वव्यापक है। जड़ और चेतन हर वस्तु में वह सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। सभी दिशायें उनका निवास हैं। इन दिशाओं को वस्त्र की संज्ञा दी जाती है। इसीलिए उनका 'दिगम्बरा' नाम भी पड़ा।

'सौन्दर्यलहरी' (३५) में कहा गया है, सारा व्यक्त जगत अर्थात् पंचतत्वों का निर्मित्त यह शरीर, इन्द्रियाँ मन, बुद्धि और अहंकार शिव की प्रधान अर्द्धाङ्गिनी भगवती जगदम्बा के ही रूप हैं। इन्हें शक्ति के चमत्कार के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ?"

मूलाधार चक्र मे स्थित साढ़े तीन लपेटे लेकर सर्पाकार में गुप्त कुण्डलिनी विद्यमान है, जो परमात्मा की शक्ति कही जाती हैं। उसके जागरण से ही शक्ति और सिद्धियों के द्वार खुलते हैं, ब्रह्मविद्या की अनुभूति होती है, मोक्ष का मार्ग प्रसस्त होता है। स्वामी शंकराचार्य ने इस सम्बन्ध में कहा है—

शक्ति कुण्डिलिनोति विश्वजननव्यापारबद्धौद्यमा।
ज्ञात्वेत्थं न पुनर्विशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वंनराः।

'कुण्डलिनी शक्ति ही इस प्रकार जगत की सृष्टि के व्यापार में परिश्रम कर रही है ऐसा जानकर मनुष्य माता के गर्भ में बालभाव को पुनः प्राप्त नहीं होते।'

अतः शक्ति का आह्लास ही पार्वती-दुर्गा का वास्तविक पूजन माना गया है।

शिव-शक्ति दोनों से सृष्टि-रचना का सम्पादन—

शिव का महत्व शक्ति से युक्त होने में ही है, इसका सुन्दर विवेचन भगवान शंकराचार्य ने 'सौन्दर्यलहरी' के आदि श्लोक में किया है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिवः युक्तोशक्त्या यदि भवति शक्तः प्रभवितुन् ।
न च देवं न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।।

अर्थात् "शक्ति से युक्त शिव सामर्थ्य वाले होते हैं, और यदि शक्ति से रहित होते हैं, तो स्पन्दन के योग्य भी नहीं रहते ।'

शिव और शक्ति दोनों अभेद हैं, दोनों एक हैं । गोरखनाथ ने सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में कहा है—

शिवास्याभ्यन्तरे शक्तिःशक्तेरभ्यन्तरे शिवः ।
अन्तरं नैव जानीयात् चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ।।

'शिव के अन्दर शक्ति है और शक्ति के अन्तर शिव हैं । जिस तरह चन्द्रमा और चाँदनी में कोई भेद नहीं प्रतीत होता, उसी तरह शिव और शक्ति में भी कोई भेद नहीं हैं ।'

यदि सूर्य और उनकी किरणों में भी कोई अन्तर नहीं तो शिव और शक्ति में भेद की कल्पना कैसे की जा सकती है ?

योग वसिष्ठ के निर्याण प्रकरण में कहा गया है कि जिस तरह वायु और उसका स्पन्द, अग्नि और उसकी तपस दोनों एक ही हैं, उसी तरह चित अर्थात् ब्रह्म और स्पन्द-शक्ति अर्थात् माया दोनों एक ही हैं । शक्ति और शक्तिमान में सदा अभेद रहा है, विना शक्ति के शक्तिमान का वर्णन कैसे किया जा सकता हैं ? जिस तरह धन, बल और बुद्धि होने से ही धनवान, बलवान, और बुद्धिमान बनता है—उसी तरह शक्ति होने से शक्तिवान बनता है । दोनों में ऐक्य है ।

शिव की अग्नि और शक्ति को सोम की संज्ञा दी गई है । सोम शब्द उमा से ही बना है—'उमया सहितः सोमः ।

वृहज्जावलोपनिषद् ब्राह्मण (२) में कहा है—

अग्नीषोमात्मकं दिश्वमित्याग्निराचक्षते ।
राद्रो घोराया तेजसो तनूः ।।
सोम शक्त्यमृतमयः शक्तिकरी तनूः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अमृत प्रत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्याकला स्वायम् ।
स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु स एव रसतेजसि (सी) ।।१।।
द्विविधा तेजसी वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका ।
तथैव रसशक्तिश्च सामन्याचान (नि) लात्मिका ।।२।।
वैद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः ।
तेजो रसविभेदैस्तु वृतमेतच्चराचरम् ।।३।।
अग्नेरमृतनिष्पत्ति रमृतेनाग्निरेधते ।
अतएव हविः क्लप्तमग्नीषोमात्मिक जगत् ।।४।।
ऊर्ध्वशक्तिमयं (यः सोम अधो) (धः) शक्तिमयोऽनलः ।
ताभ्यां सम्पुटितस्तस्याच्छश्वद्विश्वमिद गतत् ।।५।।
अग्ने (अग्नि) रूर्ध्वं भवत्येषा (ष) यावत्सौम्यं परामृतम् ।
यावदग्न्यात्मक सौम्यममृतं विसृजत्यधः ।।६।।
अतएव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्वगा ।
यावदादहनश्चोर्ध्वमधस्तात्पवनं भवेत् ।।७।।
आधारन्नक्त्याववधृतः कालाग्निरयमूहवेगः ।
तथैव निम्नगः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः ।।८।।
शिवश्चोर्ध्वमवः शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः ।
तदित्थ शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तिमिह किंचन ।।९।।

इसका भाव यह है कि 'अग्नि और सोम इस समस्त जगत के आत्मा है। इसे अग्नि रूप भी कहा जाता है। घोर तेज (अग्नि) रुद्र का शरीर है सोम अमृतमय शक्ति प्रदाता है। वह सब की प्रतिष्ठा है। विद्या और कला में तेज (अग्नि) विद्यमान है। सोम और अग्नि का स्थूल व सूक्ष्म सब भूतों में निवास हैं। तेज दो तरह का है—सूर्य और अग्नि। सोम भी दो प्रकार का है–रस (अप) और अनिल (वायु)। तेज के विद्युत आदि और रस के मधुर आदि अनेकों भेद हैं। इन दोनों से ही जगत् की सृष्टि हुई है। अग्नि से ही अमृत (सोम) की उत्पत्ति होती है और सोम से अग्नि की वृद्धि। अतः अग्नि और सोम के सम्मि-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिप्त यज्ञ से ही संसार बना है। अग्नि जब ऊपर को जाती है तो सोम रूप ग्रहण कर लेती है। इन दोनों के परस्पर सम्पुट में सदैव यह जगत् स्थिर है। सोम रूप में परिवर्तित होने तक अग्नि ऊपर को ही जाती रहती है। सोम तक अग्नि रूप न ग्रहण कर ले तब तक नीचे की ओर प्रदत्त रहता है। अतः कालाग्नि रूपी रुद्र नीचे और शक्ति उनके ऊपर निवास करती है। फिर अग्नि ऊपर व पवन सोम नीचे हो जाता है। ऊर्ध्वगामी अग्नि की आधारशक्ति सोम है। नीचे आते हुए सोम को शिव की शक्ति कहते हैं। यह भी शिव पर आधारित है दोनों एक-दूसरे का आधार हैं। शिव शक्तिमय है और शक्ति शिवमय हैं। ऐसा कोई स्थान दृष्टिगोचर नहीं होता, जहाँ पर दोनों उपस्थित न हों।"

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदेव ममास्य च ।
योऽसौ साहमहं यासौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ।।

श्री देवी-भागवत में स्वयं देवि ने कहा है—

'मैं और ब्रह्म दोनों ही सदैव से एकत्व है, कभी भी भेद नहीं है। जो वह है, सो मैं हूँ और जो मैं हूँ, सो वह है। वास्तव में भेद नहीं है, वह भ्रांति से कल्पित है।'

श्री र० कृष्णस्वामी अय्यर ने कहा है—"निश्चल और निष्क्रिय तत्व जगत्पिता के रूप में तथा गतिशील सक्रिय तत्व जगत्माता के रूप में वर्णित किया जाता है।'

म० म० श्री गोपीनाथ कविराज ने शिव और शक्ति का दार्शनिक रूपण इस प्रकार किया—

'आगम शास्त्रों में साधारण दृष्टि से परम-शिव की अवस्था ही पूर्णता की परिचायक चरम अवस्था मानी गई है। दूसरी अवस्था में शिव और शक्ति का सामन्जस या साम्य प्रकट होता है। शिव-भाव अभिव्यक्त-प्रकाश का भाव है, यही वह परम प्रकाश होता है जिसके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आश्रम से सब कुछ प्रकाशित होता है एवं कुछ भी न रहने पर जो स्वप्रकाश होने से निरन्तर अपने में ही स्वयं प्रकाशमान रहता है। इस प्रकाश की जो आत्म विश्रान्त अर्थात् अह रूप से विमर्शन है, वही शक्ति है। शक्ति के स्फुरण से ही विश्व का उदय होता है। केवल इतना हीं नहीं विश्व की स्थिति और लय भी शक्ति के स्फुरण से ही होते हैं। इसीलिए शक्ति की उन्मेषावस्था में इस समग्र प्रकाश के अन्दर विश्व का आभास दीख पड़ता है।'

'भारत की संस्कृति साधना' पुस्तक में डा० रामश्री उपाध्याय का विवेचन इस प्रकार है—

'शिव और शक्ति के सम्बन्ध का दार्शनिक निरूपण किया है। सृष्टि के पहले शिव और शक्ति ही थी। शिव प्रकाश रूप से शक्ति के विमर्श रूप में प्रतिष्ठित होकर बिन्दु स्वरूप बन जाते हैं। शक्ति भी शिव में प्रवेश करती है। तभी बिन्दु का विश्वास होकर नीद बनती हैं। नाद ओर बिन्दु के संयोग से काम की उत्पत्ति होती है। काम का श्वेत और रक्त-बिन्दुओं से सम्पर्क होने पर कला की उत्पत्ति होती है। काम और कला के संयोग से त्रिपुर सुन्दरी-स्वरूप कामकला निष्पन्न होती है। इससे अखिल विश्वात्मक सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है और पद एवं पदार्थ उत्पन्न होते हैं।'

शिव और शक्ति अलग-अलग कोई भी सृष्टि की रचना करने में असमर्थ हैं, क्योंकि उसमें क्रिया का अभाव है। ईश्वर के प्रकाश में जब प्रकृति में स्पन्दन होता है, तभी सृष्टि का निर्माण होता है। प्रकृति और परमात्मा के संयोग से ही यह कार्य हो पाता है। भगवान कृष्ण ने भी गीता में कहा है—'हे अर्जुन ! मेरी शक्तिरूपी यौनि गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतना रूप बीजों की स्थापना करता हूँ। इन दोनों के संयोग से ही जगत की उत्पत्ति होती हैं। अनेक प्रकार की योनियों में जितने शरीर के आकार वाले पदार्थ उत्पन्न होते हैं,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनमें त्रिगुणमयी शक्ति तो गर्भ धारण करने वाली माता है और मैं बीज का स्थापन करने वाला पिता हूँ। मुझ अधिष्ठान के संकाश से मेरी शक्ति चराचर संसार को उत्पन्न करती है।"

ब्रह्म और शक्ति दोनों में कोई भेद भी सृष्टि-रचना में स्वतन्त्र नहीं है। ब्रह्म निर्विकार है और शक्ति में स्वतन्त्रता का अभाव है। अतः दोनों के संयोग से ही यह कार्य सम्पन्न होता है।

ब्रह्म दो प्रकार का माना गया है—सफल और निष्फल। जब वह प्रकृति के साथ युक्त होता है, तो 'सफल' बन जाता है और प्रकृति से विमुक्ति होने पर 'निष्फल' कहा जाता है। इन्हें सगुण और निर्गुण भी कहा जाता है। इसे कोई शिव कहते हैं कोई शक्ति। दोनों एक हैं, उसमें अभेद है दृष्टिकोण का अन्तर है। चिदंश से देखा जाता है, तो वह शिव लगता है और माया के अंश से देखने पर प्रकृति या शक्ति दिखाई देने लगती हैं। तो एक ही वस्तु, जब शक्ति को शिव से अलग कहते हैं तो इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि शक्ति निष्क्रिय अवस्था में पड़ी है। यहीं तन्त्र का सिद्धान्त है।

व्यवहारिक रूप–

तन्त्र-साधना शास्त्र है। साधना का विस्तार ही इसकी विशेषता है। उपरोक्त सिद्धांत को व्यवहारिक रूप देना ही तन्त्र ने जीवन की सफलता का रहस्य माना है। इस आशय को श्री अरविन्द घोष ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त किया है—

'इसने इस विराट् विश्व सत्य को अधिगत कर लिया है कि सत्ता के दो ध्रुव हैं–ब्रह्म और शक्ति, आत्मा और प्रकृति, जिनकी तात्त्विक एकता सत्ता का रहस्य है। इसने यह भी जान लिया है कि प्रकृति आत्मा की शक्ति है या वह वास्तव में शक्ति रूप आत्मा ही है। मनुष्य की प्रकृति को ऊँचा उठाकर उसे आत्मा की व्यक्त शक्ति बना देना ही इसकी प्रणाली है और आध्यात्मिक रूपान्तर के लिए यह उनकी सारी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की सारी प्रकृति को एकत्र करती है। यह अपनी साधन-प्रणाली में इन विधियों को समाविष्ट करती है—शक्तिशाली हठ यौगिक क्रिया, विशेषकर स्नायु-केन्द्रों का उद्घाटन तथा ब्रह्म से मिलने के लिये ऊपर की ओर जाती हुई जागरित शक्ति का मार्ग में उन केन्द्रों में से गुजरना। राजयौगिक, शुद्ध ध्यान और एकाग्रता, सूक्ष्मतर दबाव, संकल्प शक्ति का समर्थन आलम्बन, भक्ति की प्रेरणा शक्ति ज्ञान की कुञ्जी। परन्तु वह इन विशिष्ट योगों की विभिन्न शक्तियों को एकत्र करके ही नहीं रुक जाती। दो दिशाओं में वह अपनी समन्वयात्मक शक्ति के द्वारा योग-पद्धति के क्षेत्र को विस्तृत करती है। सर्वप्रथम यह मानवीय गुण सामर्थ्य, कामना और कार्य-व्यापार के मुख्य स्रोतों (किरणों) में से कोई एक को दृढ़तापूर्वक अपने हाथों में लेती है और उन्हें एक प्रभावकारी साधना में से गुजारती है। ऐसा करने में इसका पहला लक्ष्य होता है कि आत्मा अपनी प्रेरक शक्तियों पर प्रभुत्व प्राप्त कर ले और अन्तिम प्रयोजन यह है वह उन्हें एक दिव्यतर आध्यात्मिक स्तर तक उठा ले जाये। फिर यह योग के लक्ष्यों में केवल उस मुक्ति को ही नहीं समाविष्ट करती जो विशेष श्रेणी के अर्थात् सार्वभौमिक परिपक्व एवं विकसित मनुष्य के आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक पहुँचने के लिये अनिवार्य होती है, वलिक मनुष्य फिर परमेश्वर के एवं अपनी सत्ता के उच्चातिउच्च को ग्रहण करने या उस ओर आरोहण करने और दिव्य अनुभव के शिखरों पर पग रखने के योग्य होता है।'

तन्त्र के सिद्धान्त को व्यावहारिक साधना का रूप देने के लिए इस प्रकार समझना चाहिये। सृष्टि का पवित्र आयोजन शिव और शक्ति के संयुक्त प्रयत्न से सम्भव होता है कि शक्ति और शक्तिमान जब दोनों एक हो जाते हैं, तो यह प्रक्रिया सम्पन्न होती है। यह साम्यावस्था ही सृष्टि का मूल कारण है। जो क्रिया ब्रह्मांड में सम्पन्न होती है, वह पिंड में भी होती है क्योंकि पिंड ब्रह्मांड का संक्षिप्त संस्करण है। यहाँ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी शिव और शक्ति दोनों का निवास है। हर मानव में इस दिव्य सत्ता और शक्ति के दर्शन किये जा सकते हैं। जैसे शक्ति के गुप्त रहने से शिव में भी कुछ करने की सामर्थ्य नहीं रहती, वैसे ही मानव पिंड में शक्ति के निष्क्रिय बने रहने पर शिव के दर्शन की आशा धूल में मिल जाती है। भौतिक जीवन की चकाचौंध से यह शक्ति सोई रहती है। जिस तरह भस्म अग्नि को दबाये रहती हैं, उस तरह भौतिक जीवन की कामनायें और भोग मानव जीवन में व्याप्त शक्ति को दबाये रखती है, यह उसे उठने का अवसर ही नहीं देती। वह तो शिव से युक्त होने को व्याकुल रहती है, परन्तु माया जाल में फँसकर हम उस पवित्र को दूर करो और सोई हुई शक्ति को अपना काम् करने दो तन्त्र यह आश्वासन देते हैं कि शिव और शक्ति को अपने अन्तर में खोज निकलना सम्भव है। दोनों का मिलन तो स्वाभाविक है। केवल बाधाओं को दूर करना मात्र है। शक्ति की ज्वालाएँ हमारे अन्दर धधक रही हैं। ऊपर जमी भस्म को दूर करने से हर कोई इसका स्वयं अनुभव कर सकता है। जो शक्ति विश्व का सृजन और निर्माण करती है, वही शक्ति मानव देह में विद्यमान है। आवश्यकता केवल अनुभावात्मक जागरण की है। तन्त्र ने ऐसे मार्गों का निर्देशन किया है जिससे यह जागरण सम्भव हो सके। जब बन्द मार्ग खुल जाते हैं, तो उसे ही अज्ञानजन्य बन्धनों से मुक्ति, मोक्ष और आनन्दमय स्थिति की संज्ञा दी जाती हैं। यही तन्त्र-साधना का उद्देश्य है।

———

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तांत्रिकभाव–

भावना शक्तियों का भण्डार होती है। भावना से ही शक्तियों का उदय होता है। इसलिए जो जैसी भावना करता है, वह वैसी ही शक्तियों को प्राप्त करता है, वैसा ही बन जाता है। स्थूल की गति का कारण सूक्ष्म है—शरीर स्थूल है भावना सूक्ष्म। जैसी भावना होगी, वैसी ही कार्य से शरीर प्रवृत्त रहेगा। भावना का निर्मल, पवित्र, प्रबल और परमार्थमय होना ही आध्यात्मिक क्षेत्र में ऊँचा उठाने का अथवा स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति करने का चिन्ह है। व्यक्तिगत रूप में ही नहीं वरन् हर क्षेत्र, हर कार्य में प्रबल और क्षत्रिय भावना सफलता लाने में समर्थ होती हैं। भावना सोई हुई शक्तियों को जगा देती है। उनमें गति उत्पन्न करती है। भावना के फलीभूत होने का तात्पर्य शक्तियों का गतिवान होना ही है।

भावना पारसमणि। लोहे को सोना बनाती है। इस विशेष में कुछ विचारकों के अनुभव देखिये—

चार्ल्स डिक्सन कहते हैं—"जिस मनुष्य की जैसी आँतरिक भावनायें होंगी, उसकी बाह्य रूपरेखा वैसी ही बन जायेंगी।" बक्सटन का कथन है—"विश्वासों के आधार पर जीवन का स्थूल रूप तैयार होता है।" महर्षि वसिष्ठ का मत—"बीज की जाति का ही पौधा उगता है और संकल्पों की जाति की परिस्थितियाँ पैदा होती हैं—आत्मा जैसी-जैसी भावना करती है, वह शीघ्र वैसी ही हो जाती है और उसी प्रकार शक्ति से पूर्ण हो जाती है।' हम देखते हैं कि जिसकी भावना भीतर से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भलाई, सच्चाई, प्रेम सहानुभूति करुणशील, वात्सल्य और सद्भावों से ओत-प्रोत होती है, वह सदा सुखी रहता है, क्योंकि प्रतिक्रिया से उसमें दैवी गुणों का बाहुल्य हो जाता है।

जो सदा स्वार्थ ईर्ष्या, धोखेबाजी, लोभ, छल, कपट, काम, क्रोध, अहङ्कार, दूसरों को हानि पहुँचाने के भाव रखता है, उसमें यह दुर्गुण दिनों दिन बढ़ते जाते हैं और पाप अत्याचार की ओर उसकी प्रवृत्ति ही बढ़ती जाती है, जिसके परिणामस्वरूप वह नाना प्रकार के कष्ट उठाता है। सुख-दुःख, उन्नति-अवनति, बन्ध-मोक्ष हमारी भावनाओं पर आधारित हैं जो अपने को अयोग्य, असमर्थ, अभागा व अशक्त मानता है वह वैसा ही बन जाता है। इसके विपरीत जो अपने को योग्य, समर्थ, भाग्यवान् और शक्तिवान समझता है, वह भी वैसा ही बनता जाता है। अपने आप को नीच या महान, सुखी या दुःखी, साधारण या असाधारण, पवित्र या अपवित्र, सदाचारी या दुराचारी, पापी या पुण्यत्मा, चतुर या मूर्ख, निर्बलया शक्तिवान, भाग्यहीन या भाग्यवान बनाना भावना के ही खेल हैं, जो जैसी भावना करता है वह वैसा ही बन जाता है।

महात्मा गाँधी ने कहा है—'अपने को निर्बल समझने वाला ही निर्बल है।।' जीवन—रेखा को लिखना भावना के अधिकार में है भाग्य को बनाना भावना शक्ति के हाथ में है। वह इसको जिधर चाहे मोड़ लेती है। होमियोपैथिक विज्ञान के जन्मदाता डा० हैनीमैन ने अपनी पुस्तक, 'आर्गिग आफ मैडीसन' में लिखा है 'कि भावनाओं से रोग उत्पन्न भी किये जा सकते हैं और अच्छे भी।" यदि किसी को आप विश्वास दिलाते रहें कि वह निर्बल होता जा रहा है, तो वस्तुतः थोड़े दिनों में वह निर्बल होता चला जायगा। यदि किसी को उसके स्वास्थ्य निखारने का आश्वासन दिखायें तो उसका स्वास्थ्य और शक्तिवान बताना या प्रशंसा करना (खुशामद नहीं) और योग्य बताना-पुण्य।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सार यह है कि भावना शक्ति महान है । इस भावना-शक्ति ने मीरा का दिए हुए विष को अमृत में बदल दिया था । उसी भावना शक्ति से धन्ना भक्त से पत्थर को भगवान बनाया था । यह भावना शक्ति ही थी कि 'रुकमिणी ने एक तुलसी दल से तौला प्रभु गिरधर को ।' सुदामा के कच्चे चावलों में भावना का समावेश होने से उनमें इतनी मिठास आ गई थी कि भगवान कृष्ण ने उनको बड़े चाव से खाया था । शबरी के भावनामय बेरों का क्या ठिकाना है ।

साधना में भावना का होना आवश्यक है, अन्यथा पूर्ण लाभ की आशा नहीं की जा सकती ।

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मयो ।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावस्तु कारणम् ॥

'काष्ठ पाषाण और मिट्टी की मूर्तियों में देवता नहीं होते, वे तो मानसिक भावों में ही रहते हैं और वही उनका कारण है ।

शास्त्र भी भावना की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं—

भावेन लभते सर्वं भावेन देव दर्शनम् ।
भावेन परम ज्ञान तस्माद् भावावलम्बनम् ॥

—रुद्रयामल

'भाव से ही सब कुछ प्राप्त होता है, भावना की दृढ़ता से ही देव-दर्शन होते हैं भावना से ही ज्ञान प्राप्त होता है । इसलिए भावना का ही अवलम्बन करना चाहिए ।'

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।

'जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि मिला करती है ।'

बहुजायात् तथा होमात् काम क्लेशादिविस्तरैः ।
न भावेन विना देव यन्त्रमन्त्राः फलप्रदाः ॥

—भावचूडामणि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"बहुत जप और हवन करने से काम-क्लेश की ही वृद्धि होती है। बिना सच्चे भाव के यन्त्र, मन्त्र और देवता कोई फलदायक नहीं होता।"

सदा सुखदायिनी विभति शुद्ध भावना।
सदैव दुःखदायिनी भवेच्च दुष्ट भावना ॥
न निष्फला भवेद्यतः ददापि कोऽपि भावना।
यथा मस्तिथा गतिवेदन्ति वेदवादनिः ॥

"शुद्ध भावना सदैव सुख प्रदायक होती है, उसी प्रकार दुष्ट भावना का फल अवश्य दुःखदायी निकलता है। किसी की भावना कभी भी निष्फल नहीं जाती। वेदवासियों के कथनानुसार जिसकी जैसी मति होती है, वैसी गति को वह प्राप्त होता है।"

कि न्यासविस्तरेणेव किं भूतशुद्धिविस्तरैः।
किं वृथा पूजने नैव यदि भावी न जायते ॥
फला भावञ्च नियतं भावाभवात् प्रजायते।

—कलावती तन्त्र

"न्यास के विस्तार और शुद्धि से क्या प्रयोजन है और पूजन आदि से क्या फायदा है, यदि हृदय में सच्ची भावना मौजूद नहीं है। फल तो कर्म के अनुसार ही मिलेगा।"

तज्जपस्तदर्थ भावनम्।

—भोग सूत्र

"जप एवं जपमंत्र से जिस पदार्थ का बोध हो, उसकी भावना (ध्यान) करना, यही सिद्धि का मार्ग है।"

शास्त्र का कथन है—

अर्थात् "भाव मन का धर्म है।"

भावस्तु मनसो धर्मः।

मन में ही इसकी उत्पत्ति होती है और मन से ही इसका लय होता है। अतः मन के विषय को शब्दों में व्यक्त करना कठिन होता है। इसे अनुभव ही किया जा सकता है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथेक्षुगुडमाधुर्यं रसना ज्ञायते प्रभो ।
तथा भावो महादेव मनसा परिभाव्यते ।।

अर्थात् 'जिस प्रकार से गुड़ का मीठापन जिह्वा को ही ज्ञात हो सकता है, उसी प्रकार भाव भी मन को ही ज्ञात होना सम्भव है ।"

मन का विषय होने पर ही भाव में अपार शक्ति का अनुभव किया गया है । तन्त्र विकास की वैज्ञानिक प्रणाली है । इसीलिए विधि विधान में इसका उपयोग किया जाता है । 'ज्ञानार्णव तन्त्र' में अन्ययोग के विधान में इसके प्रयोग की विधि का निर्देश इस प्रकार दिया गया है—

मूलाधारादाब्रह्मविलं विलसन्ती बिसतंन्तुतनीयसी विद्युत्पुञ्जपिङ्जराँ विवस्वदयुतभास्वत्प्रकाशां परश्शतसुधामयेखशातलतेजोदण्डरूपां परचिंतिं भावयेदिति । अथ हृदि श्रीचक्रं विभाव्य तत्र तामेव स्वीकृतप्रागक्तरुपा श्रीदेवी ध्यात्वा वक्ष्यमाणैः गन्धादिताम्बूलान्त पड्डुपचारन्मत्रैः उपचय तां पुनस्तेजोरूपेण परिणतां परमशिवज्योतिरभिन्नप्रकाशत्मिकां वियदादिविश्वकारणां सर्वावभासिकां स्वात्माभिन्नां परिचिंतिं सुयुम्नांपथेन उभ्द्रमय्य निर्निभिन्न विधिविलविलसदमलशतदलकमलाद्वहन्नासापुटेन निर्गतां त्रिखण्डामुद्रामण्डितशिखण्डे कुसुमगर्भिते अञ्जलौ समानीय ऐं ह्रीं श्रीं सौः न्नीललित्ताया अमृतचैतन्यमूर्ति कल्पयामि नमः इति मन्त्रमुच्चारयन् निजलीलाऽङ्गीकृत—ललितवपुषं विचिन्त्य—ऐं ह्नीं श्रीं ह्ूं स्त्र ह्ूं स्क्लरीं ह्ू स्त्रौः ।

महापद्मवनःस्तःस्थे कारणनन्दविग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातरेह्येरि परमेश्वरि ।।

इति मन्त्रेण बिन्तुपीठगतनिर्विशेपब्रह्मात्मक श्रीमत्कामेश्वरांके परदेवतामावाहयेत् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ नित्याऽऽदिकमणिमांऽन्तं श्रीकामेश्वराङ्कोपवेशन विना श्रीदेवीसमानाकृतिवेशभूषणायुधशक्तिचक्रं ओधत्रयगुरूमण्डल च वक्ष्यमाणेषु आवरणेषु निजस्वानिन्यभिमुखो पविष्टमानव-मृश्य मूलेन आवाहनसंस्थापन सन्निधापनसन्निरोधनसम्मुखी-करणावगुण्ठवन्दनधेनुयोनिमुद्राः प्रदर्शयस्यदखिल भावसेत् ॥

अर्थात् 'मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक विलसित विष तन्तु के समान बारीक, विद्युत के समूह के सदृश, दस हजार सूर्यों के प्रकाश वाली सैकड़ों सुधा किरणों से शीतल तेजमयी, परिचित की भावना करे। हृदय में श्रीचक्र की भावना कर उसमें पहले बतलाये हुए स्वरूप वाली श्रीदेवी का ध्यान कर गन्धादि ताम्बूलपर्यन्त छः उपचारों के मन्त्रों द्वारा उपचारण कर पुनः तेजोरूप से परिणित, परम शिव की ज्योति से अभिन्न प्रकाशत्मक तथा अपने से अभिन्न उन परिचित को सुषुम्ना मार्ग से उत्पन्न कराकर नसापुट से निकली हुई को पुण्यगर्भित अञ्जलि लाकर "ऐ ह्नीं श्रीं ह्नीं श्रीं यौ, श्रीललिताया अमृत चैतन्य मूर्ति कल्पयामि नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करे और निज लीला से सुन्दर शरीर स्वीकार करने वाली का ध्यान कर ऐ ह्नीं ह्रस्त्रें ह्र स्कलरीं ह्रस्त्रौ' —महापद्मवान्यः स्थे कारणान्द विग्रहे, सर्वहितेमतृरह्यो हि परमेश्वरि' इन मन्त्रों से विन्दुपीडगत कामेश्वरांक में परदेवता का आवाहन करना चाहिए, साथ ही निज स्वामिनी के परिचारक वृन्द को भी श्रीदेवी के सम्मुख उपविष्ट हैं—ऐसी भावना करे तथा संस्थापनादि समस्त मुद्राएँ भी करनी चाहिए।"

यह वासनारूप श्रीद्रेवी के साथ पारस्परिक अभेदात्मक पूजा का विधान महान फलप्रद होता है। इसे श्री गुरु मुख से भली भाँति जान लेना चाहिए।'

अथ श्री परदेवतायाः चतुष्षष्ट्युपचारानाचरेत्। तेषु अश-क्तानां भावनया सामन्यार्घ्योदकात् किञ्चित्किं चिदम्बाचरणा-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

म्बुजे अर्पणबुद्ध्यापात्रान्यरे निक्षिपेत् पुष्पाक्षतान्वा समर्पयेत्। भूषावरोपणाभ्यङ्गरूपमुपचारद्वयमपि मण्डपान्तर एव भावनीयम, मज्जनादिषु तथा दर्शनात औचित्याच्च। अनयोः मण्डपादिशब्दस्य मन्त्रावयवत्वेन प्रवेशो न सम्भवित, अनुह्यत्वात्। मज्जनमण्टपप्रवेशादिषु मध्येमार्गं पाठ च मृदुलदुकूलास्तृतिश्च भावयितुमुचितम्। श्री चक्रादवरोहणमपि उत्तरत्ररोहणकथनात्ः अभ्यंगातिषुयवनिकाभावन च। उपचारमन्त्र शरीर तुअत्रादौ वितारी ततश्चतुर्थ्यन्तं ललितेति पद, अथासुक कल्पयामि नमः इति। ललिता कामेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी इति देवतानामपर्यायेषु सत्स्वपिसूत्रकारेण ललितापदग्रहणात् ललिताप्रदप्रयोगः कार्यः। यथा—

अर्थात् 'श्री परदेवता के ये चौंसठ उपचार हैं, इनसे अभ्यर्चन करे। यदि इनके करने में असमर्थता हो, तो केवल भावना से ही सामान्य अर्घ्योदिक से अम्बा के चरणाम्बुज में अर्पण करने की बुद्धि लेकर पात्रान्तर में डाल देवे अथवा समस्त उपचारों के बदले पुष्पाक्षत समर्पित कर देवे, भूपावरोहण और अभ्याग इन दोनों उपचारों को भी मण्डप के दूसरे भाग में ही धावित करना उचित है। अभ्यँगादि उपचारों के लिए यवनिका को भी भावना करनी चाहिए। प्रत्येक उपचार के समर्पण करने में—'ऐं' ह्नीं श्रीं ललितायै पाद्य कल्पयामि' इसी क्रम से बोलना चाहिए। यद्यपि ललिता—कामेश्वर तथा त्रिपुरसुन्दरी आदि अनेक नाम है, तो भी 'ललिता' इसी नाम का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि सूत्रकार ने यही ग्रहण किया है। आदि में तीनों बीज अर्थात् त्रितारी बोलकर चतुर्थान्त ललिता—यह फिर 'अमुक' कल्पयामि' द्वारा अर्पण करे। मज्जन मण्डप में प्रवेशादि करने के मार्ग में कोमल वस्त्र की आस्तृति की भावना भी करनी चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करपात्री स्वामी ने पूजा के विभिन्न अङ्गों में भावना के समावेश करने का निदेश दिया है। यथा—

'नामरूपात्मक जगत् में सच्चिदानन्द की भावना ही अम्बा को पाद्-समर्पण है। सूक्ष्म जगत् में ब्रह्म भावना ही अर्घ्यसमर्पण है। भावनाओं में ब्रह्म भावना ही आचमन है। सर्वत्र सत्वादि गुणों में चिदानन्द भावना ही स्नान है। चिद्रूपा कामेश्वरी में वृत्यविपयता का चिन्तन करना ही प्रोच्छन है। निरंजनत्व, अजरत्व, अशोकत्व, अमृतत्व आदि की ही विविध आभूपणों का अर्पण है। आकाश में चिन्मात्रत्व की भावना करनी पुष्पसमर्पण है। तेज में चिन्मात्रत्व की भावना दीप समर्पण है। अमृतत्व भावना नैवेद्यार्पण है।"

आधुनिक विज्ञान ने भी भावना की महानता को स्वीकार किया है और इसे आधुनिक रूप देखकर अनेकों प्रकार के प्रयोगों में सफलता प्राप्त की है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रार्थना में इसका उपयोग किया है और आशाजनक लाभ उठाए हैं।

नोबल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० अलेक्सिस कैरेल ने पुस्तक 'मैन दी अननोन' में लिखा है—भावना से कुछ ही क्षणों में मुँह के घाव, शरीर के अन्य भाव, कैंसर, मूत्राशय के रोग और यक्ष्मा आदि के रोगियों के यह रोग मिट गए हैं। कोढ़ के रोगी स्वस्थ्य हुए हैं। कैनेडा निवासी डा० सी० अलबर्ट ई० विल्फ भावना के माध्यम से ही चिकित्सा करते थे। 'थियालाजिया जर्मन' की पुस्तक के अनुसार विश्वास रखकर ईश्वर से भावनापूर्वक प्रार्थना करने पर बड़ी से बड़ी तथा भयंकर बीमारी से मनुष्य छूट जाता है।

वैज्ञानिक पद्धति—

भावना से आरोग्य व अन्य प्रकार के लाभ उठाने की भी एक वैज्ञानिक पद्धति है। अभाव की पूर्ति के लिए गिड़गिड़ाना उचित नहीं है। उससे आत्म-हीनता की भावना उत्पन्न होती है और आशाजनक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लाभ भी नहीं होता। भावना के समय-अशुभ के स्थान पर शुभ के, रोग के स्थान पर निरोगिता के अभाव के स्थान पर वैभव और ऐश्वर्य के संकेत मन को देने चाहिए। जिस इष्ट की पूर्ति करने की इच्छा है, इस अपने भावना-नेत्रों से पूरा होता देखें। यह संकेत जितना पूर्व व सुदृढ़ विश्वास पर आधारित होगा, सफलता उतनी ही शीघ्रता से प्राप्त होगी।

अलबर्ट विल्फ ने अपनी पुस्तक 'लेसन्स इन लिविंग, में लिखा है—'परमात्मा से हमें यह कामना नहीं करना चाहिए कि वह हमें स्वास्थ्य प्रदान करें। उसका ढंग यह होना चाहिए कि कल के लिए उन्होंने आज मुझे पूर्ण स्वस्थ कर दिया। श्री रिवेका वीयर्ड ने अपनी पुस्तक 'एवरी मैंस सर्च' में इस विषय का स्पष्ट प्रतिपादन करते हुए लिखा है—शक्ति की धारा को विपरीत शुभ दिशा में प्रवाहित करने के लिए आवश्यक है कि जिस परिणाम को हम उपस्थित देखना चाहते है, उप परिस्थिति को हम निर्मित करें और अपनी चिन्ता के विपरीत भाव का चिन्तन करें।

धन के अभाव को दूर करने के लिये यह नहीं करना चाहिये कि मैं अत्यन्त संकट में हूँ, उसे दूर करो। वरन् मानस नेत्रों से अपने प्रभु के सर्व समर्थ, शक्तिशाली और महान ऐश्वयों के रूप को निहारना चाहिए और भावना करनी चाहिये कि उसके उत्तराधिकारी और पुत्र होने के नाते इन ऐश्वर्यों पर हमारा स्वाभाविक अधिकार है, अतः इस अधिकार को मान्यता देते हुए प्रभु स्वयं हमारे रिक्त स्थान की पूर्ति कर रहे हैं हमारे भण्डारों को भर रहे हैं और हम भी ऐश्वर्यशाली हो रहे हैं। इस शुभ भावना से शक्ति का प्रवाह हमारी ओर परिवर्तित होगा, यह निश्चित है।

संकेत द्वारा आत्म-कल्याण—

आत्म-कल्याण के लिए भावना करते समय इसी क्रिया का अनुकरण करना चाहिए कि मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ, निर्बल नहीं शक्तिशाली हूँ, मैं स्वस्थ और प्रसन्न हूँ, मुझे कोई चिन्ता और परेशानी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं है, मेरा जीवन आनन्दमय है, सांसारिक विपत्तियों और कठिनाईयों का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं होता। क्रोध, लोभ,आसुरी शक्तियाँ मुझपर आक्रमण करती हैं, परन्तु वह अपने प्रयत्नों में असफल रहती हैं। मैं प्रगति पथ पर निरन्तर बढ़ता चला जा रहा हूँ, मुझे रोकने की सामर्थ्य किसी में नहीं हैं। मेरा शरीर सीमित नहीं, असीम है। सारी सृष्टि मुझमें समाई हुई है और प्राणों में मेरा निवास है। मैं सबमें हूँ और सब मुझमें हैं। मेरी आत्मा में प्रचण्ड तेज है। जो भी पाप और अवगुण मुझे भ्रष्ट करने वाले हैं, वह इस अग्नि में जलकर भस्म हो जाते हैं और मैं सूर्य की तरह चमक रहा हूँ मेरे चारों ओर प्रकाश-ही-प्रकाश है, मेरे अज्ञान की समस्त ग्रन्थियाँ टूट गई और मैं निरन्तर सत्यं-शिवं-सुन्दरं के दर्शन करता हूँ व आनन्द के समुद्र में गोता लगाता हूँ, मैं परिवार का पालन-पोषण करते हुए भी उससे अलिप्त हूँ। संसार में रहते हुए भी उससे अलग हूँ, शरीर में रहते हुये भी जीवन-मुक्त हूँ। मैं सब ओर अपने को ही बिखरा हुआ पाता हूँ। यहाँ मेरे अतिरिक्त कोई है ही नहीं, सब ओर मुझे अपने ही दर्शन होते हैं'' इस प्रकार की भावना से साधक शक्ति का पुंज बन जाता है और आत्म कल्याण के पथ पर बढ़ता ही जाता है। मनोविज्ञान के अनुसार इस प्रकार की भावना एक प्रकार का आत्म-संकेत या 'आटो सजेस्कशन' है।

नई सृष्टि की रचना—

भावना में शुभ संकेत द्वारा अभीष्ट लाभ की सिद्धि में कुछ भी सन्देह की गुंजायश नहीं है। यह प्रमाणित व अनुभव सिद्ध सिद्धान्त व पद्धति है। ईश्वर ने संकल्प किया कि मैं एक हूँ बहुत हो जाऊँ। इस संकल्प के परिणाम स्वरूप हम इतनी विशाल सृष्टि की रचना का विस्तार देख रहे हैं। हम भी उस ईश्वर के अंश है। हम में भी चिंन्तन द्वारा निर्माण करने की शक्ति विद्यमान है। हम जैसा चिन्तन करते हैं वाह्य-संसार में उसके अनुरूप ही आकृतियाँ व मूर्तियाँ बनने लगती है अर्थात्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हम भगवान के प्रयोग में मन को जैसे संकेत करते हैं, हमारा बाहरी संसार भी वैसे ही बनता चला जाता है हम उसी साँचे में ढालते जाते हैं। ये निर्माण कार्य हमारा संकेत ही करते हैं।

इन शुभ संकेतों का सीधा प्रभाव हमारे गुप्त मन पर पड़ता है। गुप्त मन ईश्वर प्रदत्त शक्ति का भंडार है, दैवी शक्तियों का वह मूल स्रोत है। ईश्वर से उत्तराधिकार में मिली समस्त शक्तियाँ वहीं सोई पड़ी हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए उन्हें जगाना होगा। इसका उपाय शुभ संकेत ही है। यह हमारे गुप्त मन का नव-निर्माण करते हैं और हमारे चारों ओर का संसार वैसा ही बनता चला जाता है। वे इसी इच्छा की पूर्ति और सिद्धि करते हैं। भावना का यह मनोवैज्ञानिक आधार है।

अतः भावना एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें गुप्त मन सतेज होता है, अन्दर से बाहर की ओर एक आध्यात्मिक प्रवाह चलता है, शक्तियों का सृजन होता है, बिखरी शक्तियाँ एकाग्र होकर दिव्यताओं व महानताओं का नव-निर्माण करती है, जिससे इच्छानुसार लौकिक व पारलौकिक लाभ प्राप्त होते हैं।

तन्त्र में तीन प्रकार के भाव-व्यक्त किये गये हैं—

१. पशु भाव, २. वीर-भाव, ३. दिव्य-भाव।

पशु-भाव

जीवात्मा या क्षेत्रज्ञ का नाम ही पशु है। जाबाल्युपनिषद् (११-१५) में कहा है—'अहंकार से युक्त-पशुपति ही संसारी जीव होकर पशु हो जाता है। पैप्पलादि ने फिर जाबालि से जिज्ञासा की कि पशु कौन हैं? उन्होंने उत्तर दिया—जीव को ही पशु कहा जाता है।" शिव-पुराण ने भी जीव को पशु स्वीकार किया है। वायु संहिता (पूर्व भाग) में कहा गया है कि 'ब्रह्मा से स्थावर तक सबकी संज्ञा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पशु है। यह पाशों से बँधता और सुख-दुःख भोगता है। इसलिये पशु कहा गया है।

शिव-पुराण (वायु संहिता पूर्व भाग) में कहा है—"अक्षर का नाम है पशु। वही जीव है तथा ब्रह्मज्ञान से पाश प्रकृति का क्षरण होने से उसे क्षर कहा गया है।'

पशु—पश् धातु से बना है, जिसका अर्थ है—बाँधना। जो पाशों से बँधा है, वही पशु कहलाता है—

पाशनच्च पाशवः।

जीव भी पाशों से बँधा रहता है। इसलिये उसे पशु कहते हैं।

सार यह है कि तामसिक प्रवृत्ति के व्यक्ति को पशु कहा जाता है, जो अपनी इच्छाओं और वासनाओं के नियन्त्रण में रहता है। गीता में इसके परिणामों पर अच्छा प्रकाश डालता है—

'हमको काम अर्थात् विषय चाहिये और काम की तृप्ति होने में विघ्न होने से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। क्रोध से अविवेक होता है, अविवेक में स्मृति-भ्रंश, स्मृति भ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से पुरुष का सर्वस्व नाश हो जाता है।' आगे फिर कहा है 'विषयों में संसार अर्थात् व्यवहार करने वाले इन्द्रियों के पीछे-पीछे मन जो लगता है वही पुरुष की बुद्धि को ऐसे हरण किया करता है, जैसे कि पानी में नौका को वायु खींचता है।"

गीता के मत से तो सभी विकारों और वन्धनों का मूल कारण यही विषय-वासनायें हैं, यही पाशविक वन्धन हैं। इससे छुटकारा पाये बिना पशु संज्ञा से मुक्ति मिलना सम्भव नहीं है।'

कुलार्णव तन्त्र में आठ प्रकार के पाशों का वर्णन आता है, जो इस प्रकार हैं—

दया, मोह, भय, लज्जा, घृणा, कुल, शील और वर्ण।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६२. पाशों तक का वर्णन तन्त्रों में आता है, परन्तु वह इन्हीं के भेद दिखलाई देते हैं।

साधारणतः तन्त्रों में तीन प्रकार के पाशों का ही वर्णन आता है– मल, कर्म और माया। इनमें मल ही प्रमुख है। मल के निवृत्त न होने तक पशुत्व दूर नहीं हो सकता।

अविद्या, आवरण और मृत्यु आदि मल के ही नाम है।

मल-निवृत्ति के लिए स्वायम्भुव ने आगम में दीक्षा को उत्तम साधन बताया गया है—

दीक्षैव मोचयत्यूर्ध्वं शैव धाम नयत्यपि।

अर्थात् "दीक्षा ही मल को निवृत्त करती है और ऊपर की तरफ शिवलोक को ले जाती है।"

अतः इस मल के पाश का काटना आवश्यक है, क्योंकि इसके रहते हुए पूर्ण विवेक की जागृति सम्भव नहीं है।

कर्म के बन्धन से निवृत्त होना भी आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति कर्म के बिना जीवित नहीं रह सकता। पग-पग पर उसे कर्म का सहारा लेना पड़ता है। यह तीन प्रकार के होते हैं—तामसिक, राजसिक, और सात्विक। जीव की प्रगति की मापदण्ड यही है कि वह तामसिक कर्मों से छुटकारा प्राप्त करता हुआ क्रमशः राजसिक सात्विक कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है। सात्विक की वृद्धि ही उन्नति के चिन्ह माने जाते हैं परन्तु कर्म-बन्धन से निवृत्त होने के लिए गीता में भगवान ने उत्तम निर्देश दिये हैं—

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥

अर्थात् "समन्वय बुद्धि से युक्त जो ज्ञानी पुरुष कर्मफल का त्याग करते हैं, वे जन्म के बन्धन से मुक्त होकर परमेश्वर के दुःख विरहित पद को पहुँचते हैं।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय ।

२।४८

"हे धनंजय ! आसक्ति को छोड़कर और कर्म को सिद्धि हो या असिद्ध दोनों को समान ही मानकर योगस्थ होकर कर्म कर ।"

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।।

—२।४५

'हे अर्जुन ! (कर्मकाण्डात्मक) वेद (इस रीति से) त्रैगुण्य की बातों से ओत-प्रोत हैं । इसलिए तू त्रिगुणों से अतीत, नित्यसत्वस्थ और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से अलिप्त हो एवं योग-क्षेम आदि स्वार्थों में न पड़कर आत्मनिष्ठ हो ।"

तीसरा पाश माया नाम का है जो माया तत्व से भिन्न है ।

जो आत्मा इन तीन पाशों से बँधी हुई है, उसे 'सकल' कहते हैं जिसका माया-फल क्षीण हो चुका है, उसे 'प्रलयाकाल' और जिसके कर्म और माया नाम के दोनों मल नष्ट हो जाते है उसे 'विज्ञानाकाल' कहा जाता है ।'

पशु-भाव में तामसिकता व्यापक रूप से विद्यमान रहती है । आलस्य और विचारों की जड़ता उसकी विशेषतायें मानी जाती हैं । तंत्र-दार्शनिक भास्कराचार्य के मत से 'यह बहिर्मुखी होते हैं और वस्तुओं के आन्तरिक सत्य को न देखकर बाहरी रूप को ही देखते हैं ।' इन पर अविद्या का आवरण चढ़ा रहता है और अद्वैत का कुछ भी ज्ञान नहीं होता ।

कुब्जिका तन्त्र में कहा है—'जो पशु-भाव से सम्बन्ध रखते हैं, वह पशु ही होते हैं । पशु मन्त्र का स्पर्श नहीं करता, रात्रि को मन्त्र का जप नहीं करता । तन्त्र और बलि के सम्बन्ध में जिसे सन्देह रहता है, मन्त्रों को जो केवल अक्षर मानता है, गुरु में जिसका विश्वास नहीं होता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवता को जो केवल पत्थर मानता है, जो दूसरों की निन्दा करता है—ऐसा पशु सबसे बुरा व्यक्ति है।'

संसार-मोह में जो चारों ओर से फँसा रहता है, उसे 'अधम' पशु कहते हैं। जो अपने पशुत्व को अनुभव करता है और जिसकी सत्कर्मों की ओर प्रेरणा प्रवृत्ति होने लगती है, उसे 'उत्तम पशु, कहा जाता है।

वीर भाव—

जिनकी प्रकृति में चंचलता, उग्रता और राजसिकता रहती है, वह 'वीर भाव' की संज्ञा में आते हैं। अहिंसक, परमार्थी, जितेन्द्रिय सुख दुःख में समज्ञान रखने वाला और काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि पर विजय प्राप्त करने वाला साधक ही वीर कहलाता है। एक विद्वान के 'अनुसार 'जो मानव अद्वैत ज्ञान रूपी अमृत हृद की कणिका मात्र का भी आस्वादन कर अज्ञान रज्जु के काटने में कुल मात्रा में भी कृतकार्य होते हैं, जो काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि से मुक्त हैं और तम व रज से परे हैं।

वीर साधक दो प्रकार के होते हैं—१. संभाव वीर और विभाव वीर। एक में सात्विकता और दूसरे में राजसिकता रहती है। जिन्हें तन्त्र के अर्थों और तत्वज्ञान की उपलब्धि हो गई है परन्तु विषय वासनायें पूरी तरह क्षीण नहीं हो पाई हैं, उन्हें 'संभाव वीर' कहते हैं। जिनमें पशु-भाव की समाप्ति तो हो चुकी है, परन्तु 'संभाव-वीर, की तरह तत्वज्ञान का उदय नहीं हो पाया है, वे 'विभाव वीर' कहलाते हैं।

पंचमकारों के उपयोग का अधिकार केवल वीर साधक को ही दिया गया है, जिसकी इन्द्रियाँ अपने नियन्त्रण में रहती है, जो विषय वासनाओं से मुक्त होता है, उत्तेजक कारण उपस्थिति होने पर भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसके मन में लेशमात्र भी विकार उत्पन्न नहीं होते।

वीर-भाव पशु-भाव से ऊँचा है परन्तु दिव्य-भाव से नीचा है।

दिव्य भाव—

सात्विक प्रकृति के साधक 'दिव्य-भाव' वाले कहलाते हैं। उनके दृष्टिकोण से संतुलन, बुद्धि में निर्वलता स्वभाव में गम्भीरता और सूक्ष्मता रहती है। महानिर्वाण तन्त्र के प्रथम उल्लास में स्पष्ट कहा गया है—

दिव्यश्च देवताप्रायो शुद्धान्तः करणः सदा।
द्वन्द्वातीती वीतरागः सर्वभूत समः क्षमो॥

अर्थात् "जिन मनुष्यों का अन्तःकरण शुद्ध होता है, वे सदा दिव्य और देवता के समान हैं द्वन्द्वों से परे, राग से रहित, सब प्राणियों में समभाव वाले क्षमाशील होते हैं।

कुब्जिका तन्त्र में दिव्य के लक्षणों का दिग्दर्शन कराते हुए कहा गया है—'स्त्री को देखते ही उनके मन में गुरु-भाव का जागरण होता है। नारी जाति को वह शक्ति की प्रतिमा और पुरुषमात्र को शिव का साक्षात् विग्रह समझता है, जिसके मन में जगत और देवता में भेदभाव नहीं रहता, जिनके मन में शत्रु व मित्र एक समान होते हैं, देवनिन्दक के साथ बस एक क्षण भी बात नहीं करना चाहता, वेद शास्त्र, देवता और गुरु में जिनका दृढ़ विश्वास रहता है।"

जिन साधकों में द्वैतभाव की समाप्ति हो जाती है और जो अपने इष्टदेव के साथ एकत्व स्थापित करने में समर्थ हो जाते हैं, वही 'दिव्य भाव' सम्पन्न कहलाते हैं। निर्वाण तन्त्र के अनुसार—'दिव्यभावयुतानां तु तत्वज्ञान सदा भवेत' अर्थात् दिव्यभाव वालों की तत्वज्ञान की उपलब्धि होती है।

दिव्य भाव तीन प्रकार के होते है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिविधं दिव्यभावञ्च वेदागमविकजम् ।
वेदार्थमधमं प्रोक्तं मध्यमञ्चागमोद्भवम् ॥
उत्तमं सकलं प्रोक्तं विवेकोल्लास सम्भवम् ।

—रुद्रयामल ११

'केवल वेद पाठ करने के बाद जो दिव्य भाव उत्पन्न हो जाता है, वह अधम है। आगम शास्त्र का अध्ययन मनन करने पर जो दिव्य भाव पैदा होता है, वह मध्यम है और साधन करते-करते विवेक उत्पन्न होकर जो दिव्य भाव प्रकट होता है, वह उत्तम है।'

इस प्रकार तन्त्रों में तीन प्रकार के भावों का वर्णन है—

पशु भाव, वीर-भाव और दिव्य भाव। ये तीन तम, रज और सत का प्रतिनिधित्व करते हैं। साधक की सफलता इसी में है कि वह तम से रज की ओर और रज से सत की ओर प्रवृत्त हो, यही पशु भाव से मुक्त होकर वीर भाव ग्रहण करना और वीर भाव से ऊँचा उठकर दिव्य भाव की सीमा में प्रवेश करना है। रुद्रयामल तन्त्र में कहा भी गया है—

आदौ भावं पशुं कृत्वा पश्चात् कुर्यादवश्यकम् ॥
वीर भावो महाभावः सर्वभावोत्तमोत्तमः ।
तत्पश्चाच्छ्रेयसं स्थानं दिव्यभावो महाफलः ॥

"आदि में पशु-भाव को ग्रहण करके अवश्य वीर-भाव को धारण करे और तत्पश्चात दिव्य भाव को ग्रहण करे। उत्तम वीर भाव का श्रेयस्कर स्थान दिव्य भाव का महाफल है।'

इस प्रकार की क्रमशः उन्नति ही तन्त्र का उद्देश्य है। जिस भाव को जो अपनाना चाहता है, उसे अपने भावना क्षेत्र का वातावरण उसी के अनुरूप बनाना पड़ता हैं। जिस भाव को वह दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करेगा वह वैसा ही बनता चला जाएगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तांत्रिक आचार

भारतीय संस्कृति में आचार का विशेष महत्व है । यहाँ सदाचार को ब्राह्मणत्व का कारण माना जाता है ।

न योनिः नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ।।

—महाभारत, वनपर्व १३।१०८

"ब्राह्मणत्व का कारण न जन्म है, न संस्कार, न वेदाध्ययनत और न कुल । उसका कारण केवल सदाचार है ।"

तभी आचार के आधार भूत वर्णों में परिवर्तन हो जाता था । ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि जब क्षत्रियों और शूद्रों ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया । शास्त्र भी इसके साक्षी हैं ।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैव शूद्रताम् ।
क्षत्रियात् जातमेवं तु विद्याद् वैश्यात् तथैव च ।।

—मनुस्मृति ।१०।६५

'आचार के कारण शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है । यही बात क्षत्रिय और वैश्य के सम्बन्ध में है ।"

आचारहीन की निन्दा भी की गई है—

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः ।

—वसिष्ठ स्मृति ६।३

"आचारहीन पुरुष को वेद पवित्र नहीं करते ।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र-शास्त्रों में आचारों की विशेष व्यवस्था है। यहाँ सप्त आचारों का वर्णन आता है। उनके नाम इस प्रकार हैं—वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। इन आचारों का वर्णन महानिर्वाण, कुलार्णव, नित्या आचार भेद, समयाचार, विश्वाचार, सर्वोल्लास, महाचीनाचार आदि तन्त्रों में आता है। 'कुलार्णव' के द्वितीय उल्लास में कहा है—

सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं परम्।
वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम्॥
दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्त मुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात् परत्तरं नहि॥

अर्थात् "सबसे उत्तम वेद हैं। वेदों से उत्तम परम वैष्णव हैं। वैष्णव से उत्तम शैव हैं। शैव से दक्षिण उत्तम है। दक्षिण मार्ग से उत्तम वाम है और वाम से सिद्धान्त और सिद्धान्त से कौल उत्तम होता है।' और कौल से अन्य कोई नहीं।

उपरोक्त सत आचारों में से पहले चार पशुभाव से सम्बन्धित है, वामाचार और सिद्धान्ताचार वीर भाव से और कौलाचार दिव्य-भाव से जुड़ा हुआ है।

योगवासिष्ठ रामायण (उत्पत्ति प्रकरण,) ११८ में सप्त ज्ञानभूमिकाओं का वर्णन आता है—१. दिग्दिपा २. विचारणा, ३. तनुमानसा, ४. सत्वापति, ५. असंसक्ति, ६. पदार्थोमाविनी ७. तुरीया।

तन्त्र के आचार और योगवासिष्ठ की ज्ञात भूमिकाएँ एक दूसरे से मिलती-जुलती हैं। अन्तर केवल इतना है कि तन्त्र में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को प्रामाणिकता दी गई है और योगवासिष्ठ में ज्ञान को प्रमुखता प्रदान की गई है।

तन्त्र-आचारों का विस्तृत वर्णन 'विश्वासार' तन्त्र' के २४ पटल में आता है। प्रथम वेदाचार के लक्षण इस प्रकार है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदाचार–

इसका उद्‌देश्य साधक की वाह्य शुद्धि है। इसके लिये वेद विहित कर्मों की जानकारी रखनी पड़ती है। वेद का अध्ययन करके वेद के आदेशों को मानस पटल पर बैठाना पड़ता है। वेद भारतीय संस्कृति को सिरमौर शास्त्र है। उसमें जीवन के उत्थान के लिए सभी सूत्र और सिद्धान्तों का निर्देश किया गया है। जिन लोगों की यह धारणा है कि तन्त्रों में वेद-विरोधी बातें भरी पड़ी है, उनके लिए व्यवहारिक रूप में यह अच्छा उत्तर है कि साधना में ही वेद के अनुकूल आचरण करने का आदेश दिया गया है। साधना का आरम्भ ही वेद में वर्णित आदेशों पर निर्भर करता है। इससे उत्तम प्रमाण और क्या मिल सकता है कि वेद के बिना तन्त्र की साधना ही चल सकती है। इससे सिद्ध है कि तन्त्र वेदो का सम्मान करते हैं, उनके अनुकूल हैं और उन्हें अपना प्रथ-प्रदर्शक मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि जो वेद-ज्ञान से शून्य है, वह तन्त्र-साधना में परिपक्व नहीं हो सकता।

वेद की आज्ञा है—

आनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।

—अथर्व० ३।३०।२

'माता-पिता के आज्ञाकारी तथा प्रिय बनो।'

न स्तेय मद्‌िम। —अथर्व४ १४।५७

'चोरी का धन न खाओ।'

प्र पतेतः पापिः लक्ष्मि। —अथर्व० ७।११।५१

'पाप की कमाई छोड़ दो।'

उपप्रयत्नो अध्वरं। —ऋग्वेद १।७।४।१

'वह कार्य करो, जिससे दूसरों को कष्ट न हो।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपैतु सर्वं तत् पापम् : —अथर्व० १०।१।१०

'सब प्रकार के दुष्कर्मों से वचो।'

आपेहि मनस्येतऽपक्राम परश्चर।

—अथर्व० २०।९६।२४

'मानसिक पापों का परित्याग करो।'

इदमहमनृतात सत्वमुपैमि। —यजु० १।५

'असत्य को त्यागकर सत्य ही ग्रहण करना चाहिये।'

पिपेश नाक स्तृभिर्दनूना:।

—ऋग्वेद १।८।१०

'संयमी मनुष्य स्वर्ग को भी जीत लेतें हैं।

प्रसुव चंज्ञश्च। —यजु० ३०

'सत्कर्म ही किया करो।'

ब्रह्मभ्य: कृणुता प्रियम्। —अथर्व० १२।२।३४।

'बुजुर्गों से शिष्टाचार वरतो।'

देव्याम कर्मणे शुन्ध्यध्वम्। —यजु० १।१३

'पवित्र बनो और शुभ कर्म करो।'

अन्यो अन्यं मभि हर्यंत। —अथर्व० ३।३०।१

'एक दूसरे से प्यार करो।'

विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्यत्। —यजु० २१।३

'संसार में किसी से द्वेष मत करो।'

भूयास मधुसद्दृश:। —यजु० ३७

'मधुरता की मूर्तिमान प्रतिमा बनो।'

भद्रं कर्णेभि श्रृणुयाम। —यजु० ३०

'कानों से अच्छे विचार ही सुनो।'

सायं प्रात: सौमनसो वो अस्यु। —अथर्व० ३।३०।७

'प्रात:-सायं आत्म-चिन्तन करना चाहिये।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीत मा ।

—यजु० १९।३९

"देवताओं के अनुगामी पुरुष मुझे पवित्र करें । मन से सुसंगत बुद्धि मुझे पवित्र करे । सम्पूर्ण प्राणिगण और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश आदि पञ्चभूत मुझे पवित्र करें । परमेश्वर भी मुझे पवित्र करें ।"

वेद की इन जीवन-निर्माण की शिक्षाओं और आदेशों का वेदाचार का साधक पूर्ण निष्ठा के साथ पालन करता है तभी वह अपने वैष्णवाचार के लिए उपयुक्त पात्र बनता है ।

नियमानुसार वेदाचार के साधक को ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर गुरुदेव को प्रणाम करने के उपरान्त सहस्रार पद्म में ध्यान करना चाहिए और पंचोपचार से पूजन करना चाहिए परमकला कुण्डलिनी शक्ति के ध्यान के पूर्व वाग्भव (ऐं) का जप करने का विधान है । संध्या अथवा रात्रि को देव पूजन आवश्यक हैं । उसे संयम का पालन करना पड़ता है । स्त्री समागम का पूर्ण निषेध तो नहीं है, परन्तु ऋतुकाल में ही उसकी आज्ञा है । इसके अतिरिक्त नियम का उल्लंघन माना जाता है ।

तन्त्रों पर निराधार आरोप लगाने वालों के लिए प्रथम आचार का वर्णन ही पर्याप्त है । इससे विदित है कि तन्त्र-साधक को कितने संयम से रहना पड़ता है । उसे तो अद्वैत सिद्धि के लक्ष्य तक पहुँचाना है । यदि वह विविध प्रकार के असंयमों से अपनी शक्तियों को क्षीण करता रहा तो मार्ग अवरुद्ध हो जायगा और लक्ष्य-सिद्धि में बाधा पड़ेगी । साधक को आत्मोत्थान के लिए जो उच्च साधनायें करनी हैं, उनकी नींव को दृढ़ करने वाला यही आचार है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वैष्णवाचार–

जब वेदाचार में साधक परिपक्व हो जाता है, तो उसका वैष्णवाचार में प्रवेश होता है। इसमें भी वेदाचार के समस्त नियमों का उसे पालन करना ही पड़ता है। इसके अतिरिक्त भगवान विष्णु की पूजा-अर्चना भी इसमें सम्मिलित है। इसमें विश्व के अणु-अणु में विष्णु के सर्वव्यापक होने की भावना करनी पड़ती है। वास्तव में विष्णु सर्वव्यापक शक्ति हैं, जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौलोक, भूलोक, भुवलोक और स्वलोक में फैली हुई है। विष्णु तीन पगों में सारी सृष्टि को घेर लेते हैं। त्रिविक्रम तो वह प्रसिद्ध ही है। उनकी जगमगाहट तीनों लोकों के अणु-अणु में दृष्टि गोचर होती है। प्राणीमात्र में वह समाया हुआ है। विष्णु तीन पगों में सारी सृष्टि को नाप लेते हैं। यह चलवा उनकी गति, क्रिया शीलता और सतर्कता की ओर इंगित करता है। वह सदा जागरूक रहते हैं।

विष्णु वामन थे। वामन छोटा था, बौना था परन्तु तीनों लोकों में, सारी सृष्टि में, फैल गया। अणु महान हो गया। इस हमारे छोटे से शरीर पिंड वामन में ही सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। यह पिंड— ब्रह्मांड का संक्षिप्त संस्करण है। इसी में वह विराट निहित है। इस पिंड और ब्रह्मांड, वामन और विष्णु में कोई अन्तर नहीं है, दोनों एक हैं। वैष्णवाचार का साधक विराट् दर्शन करता है। वह आत्मा को भूतों में और सब भूतों को आत्मा में देखता है। सच्चा विष्णु-भक्त मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षी और वनस्पति लताओं में भी अपने इष्टदेव को प्राप्त, अनुभव करता है। वह विश्व की हर वस्तु में उस एक मूल तत्व को समाया हुआ व्याप्त मानता है।

विष्णु शेष-शैय्या पर विश्राम करते हैं। इस रूपक में शेष अनन्त का प्रतीक हैं। जिसका कभी अन्त न हो, उसे अनन्त कहते हैं। शेष के हजार फन माने गये हैं। सहस्र अनन्त की प्रतीक है। अनन्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शेष सूर्य और आकाश दोनों को भी कहते हैं। आकाश का हम अन्त नहीं पा सकते, इसलिए उसे अनन्त कहते हैं विष्णु का आधार यही अनन्त्र है।

विष्णु की नाभि में कमल उत्पन्न हुआ। कमल से ब्रह्माजी आविर्भूत हुए। उन्हें सृष्टि रचना का आदेश दिया गया। ब्रह्मा ने अपनी-असमर्थता प्रकट की। तब उन्हें तप करने के लिए कहा गया और वह समर्थ हुए। यह भी एक अटल नियम है—तप से सृजन होता है, शक्ति का विकास होता है। विष्णु का साधक इसी नियम का पालन करता है।

'यज्ञो वै विष्णु' यज्ञ को विष्णु की संज्ञा दी जाती है। वेद में यज्ञ को विश्व ब्रह्माण्ड को नियन्त्रण में रखने वाला कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में यज्ञ की अग्नि को ही विष्णु कहा गया है। 'अग्निर्वेदवानाम वयो विष्णु परमः। तद—तरेव सर्वा अन्या देवताः।' ऋग्वेद (२।१।२) में कहा है। हे अग्ने ! तुम विष्णु रूप हो।' ऋग्वेद (४।५८।३) में अग्नि के चार सींग बताये गए हैं जिनका अर्थ चार दिशाएं अथवा चार वेद माना जाता है। विष्णु की भी चार भुजाएँ दिखाई जाती हैं। इनका अभिप्राय भी यही लिखा जाता है कि विष्णु विश्व व्यापी वेद हैं। विष्णु का वाहन गरुड़ है। भागवत (१२।११।१९) में तीनों वेदों को गरुड़ कहा गया है। उसे ही यज्ञ रूप विष्णु वाहन करते हैं। देवमयी रूपी गरुड़ ही यज्ञ स्वरूप भगवान के वाहन हैं। ऋग्वेद, सामवेद, और यजुर्वेद से ही यज्ञ की समाप्ति मानी जाती है। अतः वेदात्मा ही गरुड़ है और भगवान विष्णु उन पर विराजते हैं।

विष्णु का वर्ण श्याम है। काले रंग की यह विशेषता है कि उस पर कोई भी दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता और जब काला रंग किसी वस्तु पर चढ़ जाता है तो वह उतरता भी नहीं। इसमें सभी तरह के रंग समा जाते हैं और यह सब पर अपना प्रभुत्व रखता है। भगवान के गुण जिन्हें प्राकृतिक नियम भी कहा जाता है, काले रंग की तरह ही हैं जो बदल नहीं सकते। अनेक परिवर्तन होने पर भी प्राकृतिक नियमों या

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवान् के गुणों में अन्तर नहीं आ सकता। साधक को भी ऐसा ही वनना होगा।

विष्णु पुराण (१।२।७) के अनुसार अपने वेग से पवन को भी पराजित करने वाला अत्यन्त चंचल मन श्री विष्णु भगवान के करकमलों में स्थित चक्र का रूप धारण करता है।

विष्णु के हाथ कमल संसार में रहते हुए उससे अलिप्त रहने की प्रेरणा देता है। शंख-ज्ञान, प्रसार का प्रतीक है (विष्णु पुराण १।२२।६९) इस जगत के निर्लेप, निर्गुण और निर्मल आत्मा को अर्थात् शुद्ध क्षेत्रज्ञ स्वरूप को भगवान विष्णु कौस्तुभ मणि के रूप में धारण करते हैं विष्णु पुराण (१।२।८) वैजयन्तीमाला का अभिप्राय पंच महाभूतों से है (१।२।६२) श्री वत्स का चिन्ह प्रकृति का प्रतिरूप है (१।२२।६९) भागवत ११।११ के अनुसार वह प्रणव को यज्ञोपवीत रूप में धारण करते हैं। उनका सारंग धनुष-अहंकार है (विष्णु पुराण–१।२२।६०) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ वाण रूप से भगवान विष्णु के आयुधों में विराजती हैं (१।२२।६३)। खड्ग अविद्यामय कोश से आच्छादित विद्यामय ज्ञान ही है। (२२।६४) विष्णु त्याग और वलिदान की पवित्र भावनाओं से ओत प्रोत हैं।

वैष्णवाचार्य साधक को विष्णु के इन गुणों को ध्यान में रखना होगा और उन्हें व्यावहारिक जीवन में उतारना होगा। प्रेरणा जैसे साधक के लिये जो तंत्रोक्त नियम बनाये गये हैं, उनके अनुसार भी उसे अश्लील वार्ता माँसाहार, निद्रा, चुगली हिंसा आदि से दूर रहना पड़ता है। रात्रि पूजन भी उसके लिए निषिद्ध है।

शैवचार :—

इसमें पिछले सव आचारों का पालन तो करना ही पड़ता है। इस आचार में प्रविष्ट साधक को पशुवध की भी मनाही है, वह अपने गुरु से जिज्ञासा की निवृति का अधिकारी है। गुरु भी उसके अधिकार के अनुसार उसे ज्ञान प्रदान करते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस आचार की विशेषता यह है कि सदैव सभी कार्यों में शिव के तात्विक स्वरूप की भावना करनी होती हैं। शिव श्वेत वर्ण के हैं। श्वेत रंग ईश्वर की संज्ञा है। यही प्राणी का अन्तिम लक्ष्य है। सर्व-रंग मिलने पर ही यह बन पाता है। एक भी इनसे अलग हो जाय तो सफेदी में अन्तर आ जाता हैं, अतः तब प्राणी बाह्य दृष्टि से ही अलग अलग दृष्टिगोचर होते हैं। वास्तव में सब एक इकाई हैं। श्वेत रङ्ग की तब उत्पत्ति हो पाती हैं, जब सब रङ्ग क्रिया शील होते हैं। शिव की प्रत्यक्ष करने के लिए क्रियाशीलता आवश्यक है। शास्त्रों में इसी को तपकी संज्ञा दी गई है। श्वेतरङ्ग में स्वाभाविकता है। शिव का रूप भी स्वाभाविक है, कृत्रिमता उन से दूर रहती है श्वेतरङ्ग ज्ञान का प्रतीक है। शंकर की श्वेत भूमि में हम ज्ञान आह्वान करते है। श्वेत रङ्ग सात्विकता का प्रतिनिधित्व करता है श्वेतरङ्ग अद्वैत के लिए प्रेरित करता है। शिव सर्वव्यापी देव हैं। उन्हें अणु-अणु व्यापक जानना ही सच्चा ज्ञान है। उनको प्राणीमात्र में समाया हुआ मानना और तत्वतः व्यवहार उनकी सच्ची उपासना है। सारे जगत से अभिन्नता का अनु-भव करना ही शिव के श्वेत वर्ण की प्रेरणा है।

'अथर्व शिरोपनिषद्' में शिव ने स्वयं कहा है मैं एक हूं, मैं भूत भविष्य और वर्तमान काल में हूं। मेरे अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं हैं। जो अन्तर के भी अन्तर में हैं, जो सब दिशाओं में प्रविष्ट है, वह मैं हूँ। मैं ही नित्य और अनित्य हूँ, मैं ही व्यक्त और अव्यक्त हूँ, मैं ही ब्रह्म और अब्रह्म हूँ। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधो दिशा रूप प्रति दिशा रूप, पुमान अपुमान, स्त्री मैं ही हूं। मुझे सब में व्याप्त जानों। मुझे जानने वाला सब अंग सहित वेदों को जानता है।

शिव के गले में सर्प लटके रहते हैं। सर्प तमोगुण, व क्रोध का प्रतीक हैं। वह उन्हें अपने नियन्त्रण में रखते हैं। इनके रहते हुए इनसे अप्रभावित रहते हैं। सर्प संहारक शक्ति है। वह काल का प्रतीक है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काल किसी को नहीं छोड़ता, परन्तु जो साधक शरीर-भाव से ऊपर उठ गये हों, वह इससे अलिप्त रहते हैं। शिव के तो गले में काल लटका रहता है, परन्तु उन्हें स्पर्श करने का साहस नहीं कर सकता। सर्प मनुष्य जाति का शत्रु है। शिव शत्रुओं को गले लगाते हैं और उसकी हिंसावृत्ति को बदल देते हैं।

शिव की जटाओं में गंगा पवित्रता और शान्ति की प्रतीक है। शिव का उग्र व संहारक-रूप प्रसिद्ध है। उग्रता मस्तिष्क में रहती है, वहीं गंगा भी प्रवाहित होती है। यही उनकी विशेषता है। विष और अमृत दोनों ईश्वर के शरीर में ही रहते हैं। विष के रहते हुए भी उनकी जटाओं में मस्तक से अमृत की धारा प्रवाहित होती रहती है।

शिव का त्रिनेत्र विवेक और नीर क्षीरं सात्विक बुद्धि का प्रतीक है। जब तम सिर सिर उठाता है, वह उग्र रूप धारण उसे जला डालते हैं। शिव को जब समस्याओं का समाधान करना पड़ता है तो वह विचलित नहीं होते, शान्ति पूर्वक उन्हें सुलझाते हैं। उनके सिर पर अर्द्ध चन्द्र इस तथ्य का प्रतीक है कि शिव की शान्त गङ्गा में कभी ज्वार भाटा नहीं आता। आवेश रूपी लहरें शिव रूपी समुद्र में उत्पन्न हो ही नहीं सकती।

शंकर शरीर पर भस्म लपेटे रहते हैं। भस्म को जगत् का मूल तत्व माना गया है। वे सब जगत् को भस्म कर अन्त में उसकी भस्म शरीर पर लगा लेते हैं। भस्म नाश का चिन्ह है, यह जगत के संहार का प्रतीक है। यह विश्व की निस्सारता का प्रतीक है। यह विश्व की निस्सारता का बोध करती है, शिव को भी नश्वरता और अनित्यता का स्मरण दिलाती है। इसलिए वह स्वयं श्मशान में निवास करते हैं, जहाँ नाश की लीला हर समय प्रत्यक्ष दिखाई देती रहती है। वह इसे भूलते नहीं। *

* मुण्ड भी वह इसलिए धारण करते हैं। यह उनका आभूषण है जो मृतकावस्था का बोध कराता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकर त्रिशूलधारी हैं। त्रिशूल शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक त्रिविध शक्तियों का प्रतीक है। त्रिशूलधारी में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों शूलों को नष्ट करने की शक्ति होती है।

शिव व्याघ्र-चर्म ओढ़े रहते हैं। शेर सबसे शक्तिशाली पशु है। उसे मारकर वह अपना ओढ़ना बनाते हैं। शिव काल व संसार के प्रतीक हैं। बड़ी से-बड़ी शक्ति उनसे बच नहीं सकती इसका यह भी भाव है कि वह शक्ति के स्रोत व नियन्त्रक है।

शिव के चार हाथों में मृग, परशु वर और अभय रहते हैं। मृग यज्ञ के प्रतीक हैं। पशु संहार करता है। वर से अभिप्राय है कि वह सर्वशक्तिमान और सर्व समर्थ हैं। अभय मुद्रा से भक्तों को भयों से बचाने का आश्वासन देते हैं।

शिव का वाहन वृषभ है, जो धर्म का रूप है। उसे कामनाओं और इच्छाओं की वर्षा करने वाला कहते हैं। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रतीक भी माना जाता है। अथर्ववेद (४।११।१०८) वृषभ की पृथ्वी का पोषक,. धारक, उत्पादक, प्रकाशक, प्रेरक, विजेता और फलदाता की उपाधियों से विभूषित करते हुए अन्त में ब्रह्म और विराट के समान बताया गया है।

शैवाचार साधक के शिव के रूप का समझना आवश्यक है। यही शिव की सच्ची उपासना हैं। इस आचार से वह विशिष्ठता तभी प्राप्त करा सकेगा जब शिव के व्यक्तित्व से प्राप्त शिक्षाओं व प्रेरणाओं को व्यवहारिक जीवन में उतारता है।

दक्षिणाचार—

दक्षिण शब्द का अर्थ है—अनुकूल। अनुकूल आचार को ही दक्षिणाचार कहा गया है। पहले के तीन आचारों में जो साधक ने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञानार्जन किया है, उन्हें दृढ़ करने के लिए ही यह आचार बनाया गया है। उसकी साधना सर्व प्रथम दक्षिणमूर्ति ऋषि ने की थी, इसलिये, इसका नाम उसके आधार पर पड़ गया। उनके अनुसार शिवालय, श्मशान, चौराहे या किसी निर्जन स्थान में महाशंखमाला जप करना चाहिये और देवी का पूजन करना चाहिए।

वास्तव में ईश्वर का कोई लिंग नहीं है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (४।३) में कहा है "तू स्त्री है, पुरुष भी तू ही है, तू ही कुमार और कुमारी है।'

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।

अतः कुछ लोग ईश्वर को पुरुष रूप में और कुछ स्त्री-रूप में पूजते हैं। दोनों ही रूप उपादेय हैं। कोई छोटा-बड़ा नहीं है। जिस तरह देवताओं और अवतारों की उपासना प्रचलित है, उसी तरह देवी की पूजा भी व्यापक रूप में होती है। नारीमात्र में ईश्वर को व्यापक जानना ही इसका मूल उद्देश्य है। नारी के प्रति मातृत्व भावना के विस्तार के लिये इसका प्रचलन हुआ है। नारी जाति के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत होती हैं। उसे केवल भोग की सामग्री ही नहीं, वरन् एक व्यक्ति के रूप में बढ़ावा मिलता है। आधुनिक काल में तो यह उपासना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि अब लोग नारी का गलत मूल्यांकन करने लगे हैं। इस भ्रष्ट दृष्टिकोण को परिष्कृत करना आवश्यक है। वह तभी सम्भव है जब नारी को उच्च आसन पर अवस्थित किया जायेगा। दक्षिणाचार का यही उद्देश्य है।

समन्वयात्मक पद्धति—

इन चारों आचारों को 'पश्वाचार' कहते हैं। यह पशु-भाव के अन्तर्गत आते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपरोक्त चार आचारों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि तन्त्र का दृष्टिकोण समन्वयात्मक है। सर्वप्रथम वह भारतीय संस्कृति के मूलाधार वेद-ज्ञान के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत करता है और उनकी शिक्षाओं के अनुसार जीवन-निर्माण करने का संकल्प करने का नियम बनाता है। विभिन्न प्रकार के सम्प्रदायों में आपसी खींचतान की समस्या का भी समाधान कर दिया गया है। हर साधक को विष्णु की ओर फिर शिव की उपासना करनी होगी और उनके तत्वज्ञान को सच्चे अर्थों में समझना होगा। फिर देवी की उपासना का भी विधान बताया गया है। तन्त्र में सर्वदेव-पूजा को प्रोत्साहन दिया है। वह सभी के प्रति सम्मान की शिक्षा देता है। किसी के प्रति ऊँच-नीच की भावना को इसमें स्थान नहीं है। आरम्भिक साधक के लिए यह आवश्यक है अन्यथा वह भटक जाता है और अपने इष्टदेव के अतिरिक्त शेप सब देवी देवताओं को ही समझता है यह विचारधारा उनकी आत्मिक प्रगति में बाधक सिद्ध होती है। तन्त्र साधक को एक व्यापक दृष्टिकोण देता है, जिससे संकुचित भावना का उसके अन्तःकरण में लेशमात्र भी प्रवेश न हो। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो तन्त्र की महान विशेषता को ही प्रदर्शित करती है।

वामाचार—

दक्षिणाचार की परिधि का अतिक्रमण करके साधक वामाचार में प्रवेश होता है। इसके लक्षणों में—दिन में ब्रह्मचर्य का पालन, रात्रि को पंचतत्वों के माध्यम से भगवती की पूजा और चक्रानुष्ठान करने तन्त्र, जप आदि सम्मिलित हैं। इसे अत्यन्त गुप्त माना जाता है। कहा भी है—

प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्याद्वामाचारगतौ प्रिये।
अतो वामपथं देवि गोपयेन्मातृजारवत्॥

अर्थात् "हे प्रिये! वामाचार गति में प्रकाश से सिद्धि की हानि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होती है। इसलिये हे देवि ! मातृजार की भाँति वाम पक्ष को गुप्त ही रखना चाहिए।'

इसे अत्यन्त कठिन और योगियों के लिए भी अगम्य बताया गया है—

वामो मार्गः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।

वाममार्ग जितेन्द्रिय के लिये ही प्रशस्त है, इन्द्रिय-लोलुप के लिए वाममार्ग में गति असम्भव है। शिव ने कहा भी है—

लोलुपं नरकं व्रजेत्।

'लोलुप नरक को जाता है।"

वाममार्ग का अधिकारी उच्च भौतिक स्तर के साधकों को ही दिया गया है—

परद्रव्येषु योऽन्धश्च परस्त्रीषु नपुंसकः।
परापवादे यो मूकः सर्वदा विजितेन्द्रियः॥
तस्यैव ब्राह्मणस्यात्र वामे स्याद्धिकारिता।

—मेरु तन्त्र

अर्थात् "जो पर-द्रव्य के लिये अन्धा है, पर स्त्री के लिए नपुंसक है, जो पर-निन्दा के लिये गूंगा है और जो इन्द्रिय को सदा वश में रखता है, ऐसा ब्राह्मण वाममार्ग का अधिकारी होता है।"

तन्त्राणामतिगूढत्वातद्भावोऽप्यतिगोपितः।
ब्राह्मणो वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो बुद्धिमान् वशी॥
गूढतन्त्रार्थ भावस्थं निर्मथ्योद्धरणे क्षमः।
वाम मार्गेऽधिकारी स्यदितरो दुःख भाग भवेत्॥

—भावाचूड़ामणि

अर्थात् तन्त्र अत्यन्त गहन है, इसलिए उनका भाव भी गुप्त है। वाममार्ग का अधिकारी वही हो सकता है, जो वेद-शास्त्रों का तत्वज्ञ,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बुद्धिमान साधक गूढ़ तन्त्रार्थ भाव का मंथन करने उनका उद्धार कर सके। इसके अतिरिक्त दूसरे दुःख के ही भागी होंगे।'

अयं सर्वोत्तमो धर्मः शिवोक्तः सर्व सिद्धिदः।
जितेन्द्रिस्य सुलभो नान्यस्यानन्तजन्नाभिः।

—पुरश्चर्यार्णव

अर्थात् "सर्वोत्तम और सर्वसिद्धिताता शिवोक्त वाममार्ग जितेन्द्रिय के लिये ही सुलभ हैं। अनेक जन्म ग्रहण करके पर भी यह लोलुप के लिए सुलभ नहीं है।"

उपरोक्त उदाहरणों से विदित होगा कि वाममार्ग के सम्बन्ध में जो लोक में धारणायें हैं कि यह व्यभिचार को प्रोत्साहन देने वाला मार्ग है, कुछ भी सार नहीं है। शास्त्र का विधान तो यही है, परन्तु यदि स्वार्थी व्यक्ति छोड़ा-सा सहारा मिलने पर उनका दुरुपयोग करते हैं, तो उनसे शास्त्र और उसके प्रतिपादित मार्ग को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। ऋग्विधान में ही कहा है—

अस्य वामस्य सूक्तं तु जपेच्चान्यंत्र वा जले।
ब्रह्महत्यादिकंदग्ध्वा विष्णुं लोकं स गच्छति॥

अर्थात् "इस वाम के सूक्त को अन्य स्थान में अथवा जल में जपना चाहिए। वह पुरुष ब्रह्महत्या आदि महापाप को दग्ध करके विष्णुलोक को चला जाता है।"

वामाचार का अर्थ व्यभिचार नहीं है, प्रतिकूलाचार है। अभी तक दक्षिणाचार तक जिन चार आचारों की वह साधना करता रहा है, वह संसार में रहकर ही सोते रहे थे। अब इस आचार से उसे सांसारिक बन्धनों को खोलना पड़ता है, इसलिये उसे प्रतिकूलाचार अथवा वामाचार कहते हैं। निरुक्त में वाम का अर्थ इस प्रकार लिखा है—

आश्रेयः अनेनः अनेद्य अवनद्यः अनभिशापः उपथ्यः सुनीथः पाकः वाम त्रयुनमिति दश प्रशस्यनामानि।

अर्थात् उपरोक्त दश नाम प्रशस्य अर्थात् श्रेष्ठ के वाचक हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युगाचार ने प्रज्ञावान को ही प्रशस्य कहा है–

य एवं हि प्रजावन्तस्त एवं हि प्रशस्य भवन्ति ।

इसमें प्रशस्य का अर्थ प्रज्ञावान किया गया है। ऐसे ही योगी का नाम वाम है।

अतः वाम पथ उत्तम मार्ग का निर्देशक है, न कि भ्रष्ट पथ की ओर ले जाने वाला, जैसी कि लोक मानस में भावनायें व्याप्त है। अन्य मार्गों की अपेक्षा तो यह कठिन मार्ग है, क्योंकि जितेन्द्रियता एक आवश्यक शर्त है।

कुलाचार–

वामाचार में परिपक्व होने पर साधक अगली कक्षा–सिद्धान्ताचार में प्रविष्ट होता है। इसमें वह रुद्राक्ष और अस्थिमाला धारण करता है और भैरव वेश भी धारण करता है। अब तक साधक अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों प्रकार की साधनायें कर चुका है। इस आचार में प्रविष्ट होने पर साधक के मन की चंचलता क्षीण होने लगती है और वह आत्मिक आनन्द का रसास्वादन करने की स्थिति में जाता है। तन्त्र में कहा है–

देवं पूजारतो नित्यं तथा विष्णुपरो दिवा।
नक्तं द्रव्यादिकं सर्वं यथालाभेन चोत्तमम् ॥
विधिवत् क्रियते भक्तया स सर्वं च फलं लभेत्।

अर्थात् "देवों की पूजा में रत तथा दिन में विष्णु परायण को नित्य हो तथा रात्रि में ही यथा लाभ सब द्रव्य आदि का संग्रह करे यही उत्तम है। जो इस प्रकार भक्ति भाव क्रिया पूर्वक करता है, वह सब फल प्राप्त किया करता है।"

वाम, चार और सिद्धान्ताचार वीर भाव के अन्तर्गत आते हैं।

सिद्धान्ताचार–

सिद्धान्ताचार में सिद्धि प्राप्त हो जाने पर कुलाचार में प्रविष्ट

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होती है। यह तन्त्र का अन्तिम आचार है। इसलिए अत्यन्त कठिन है।

कौला धर्मः परम गरम गहनो योगिनामप्यगम्य ।

अर्थात् 'कौल धर्म अत्यन्त गहन है, जो योगियों के लिए भी गहन है।"

आत्मिक भूमिका में यह स्थिति अत्यन्त उच्च मानी जाती है, जबकि विकार उत्पन्न करने वाली व पतन की ओर ले जाने वाली कोई भी वस्तु उसका स्पर्श नहीं कर सकती।

कहा भी है--

अहो पीतं महद्द्रव्यं मोहयेष्त्रिदशानपि ।
तत्मद्यं कौलिकैः पीत्वा विकारं नाप्नुयात्तु यः ।।
मद्ध्यानैकपरो भूयात् स भक्तः स च कौलिकः ।

—परमानन्द मत (गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज पृष्ठ १७)

अर्थात् 'इसलिए व्याह हुआ महद्रव्य देवों को भी मोह उत्पन्न कर देता है। उस मद्य को पीकर यदि विकार को प्राप्त नहीं होता है और मेरे ध्यान में तत्पर रहता है, वह भक्त है और कौलिक है।"

इसलिए जिसे कौल धर्म का अधिकार नहीं है, वह यदि इसे अपनाता है, तो वह हास्यास्पद हो लगेगा।

कुलधर्मनजानन् यः ससारान्मोक्षमिच्छति ।
पारावारमपारं स पाणिभ्यः तत्तु मिच्छति ।।

—कुलार्णव २।४७

अर्थात् 'कुला-धर्म को न जानते हुए जो संसार से मोक्ष की इच्छा करता है, वह अपार पारावार को हाथों से ही तैरने की इच्छा किया करता है।'

वास्तविकता यह है कि कौल धर्म उच्च स्थिति का वाचक है, परन्तु भ्रष्टाचारियों ने उसे बदनाम कर दिया है। उत्तम कौल के लक्षणों की ओर यदि हम ध्यान दे, तो स्थिति स्पष्ट हो जायेगी—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अगम्यागमनञ्चैव धूर्तमुन्मत्तवञ्चकम् ।
अनृतं पापगोष्ठीं च वर्जयेत् कौलकोत्तमे ॥

अर्थात् 'अगम्यागमन, धूर्त, उन्मत्त, चुगल, झूंठ, पाप-वार्ता को उत्तम कौल छोड़ दे ।'

शैववैष्णवदौर्गकिगाणपत्यादिकै क्रमात् ।
मन्त्रे विशुद्धचित्तस्य कौलज्ञानं प्रसाशते ॥

अर्थात् 'शिव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य आदि सिद्धान्तों के मन्त्रों द्वारा चित्त की शुद्धि हो लेने के पश्चात् कौलज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की प्राप्ति होती है ।'

शक्तिश्च शक्तिमद्रुपाद व्यतिरेकं न वाञ्छति ।
तादात्म्यनयोर्नित्यं वान्हदाहिकयोरिव ॥
शक्तिशक्तिमतीयद्वदभेदः सर्वदा स्थितः ।
अतस्तद्धर्मधर्मित्वात पराशक्तिः परात्मनः ॥
न वन्हेर्दाहिका शक्ति व्यतिरिक्ता विभाव्यते ।
केवलं ज्ञानसत्तयं प्रारम्भोऽयां प्रवेशने ॥
शक्त अवस्था प्रविष्टस्य निर्विभागेन भावना ।
तदसौ शिवरूपः स्याच्छैवीमुखमिहोच्यते ॥

——अभिनवगुप्ताचार्य

अर्थात् "शक्ति और शक्तिमान के रूप में जो व्यक्तिरेक नहीं चाहता है, वह दोनों का वान्ह और दाहिक की भाँति नित्य ही तादात्म्य होता है । शक्ति और शक्तिमान का सर्वदा जिस प्रकार से अभेद स्थिति है, अतएव तद्धर्म और धर्मी होने से परमात्मा की पराशक्ति है । वह्नि की दाह करने वाली शक्ति व्यतिरिक्त अवभासित नहीं हुआ करती है । केवल ज्ञान की सत्ता में प्रवेश करने में ही यह प्रारम्भ है । शक्ति की अवस्था में प्रविष्ट हुए की भावना तो निर्विभावना होती है । उस समय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में यह शिवरूप ही होता है। अतएव यहां पर शैवी मुख भी कहा है।

तन्त्र दार्शनिक भास्करराय ने 'कुल' शब्द के अनेकों अर्थ किए हैं। कलामृतैकरसिका' के सौभाग्य-भास्कर' भाष्य में वह लिखते हैं–

कुलं सजातीय समूहः । स च एक विज्ञान विषयत्वरूप-साजात्या पात्र ज्ञातृज्ञय-ज्ञानरूप त्रयात्मकः । ततः सा त्रिपुटो-कुलम् ।

अर्थात् कुल सजातीय समूत है और वह एक विज्ञान विषयत्व रूप सजात्यापात्र ज्ञातृज्ञेय ज्ञानरूप त्रयात्मक है। इसी से त्रिपुट कुल है।'

इस अर्थ में कालिदास रचित, चिद्गगनचन्द्रिका' का प्रणाम भी किया गया है—

मेयमातृमितिलक्षणं कुलं प्रात्नयो व्रजति यत्र विश्रमम् ।

अर्थात् "जिस साधक की अद्वेत भावना पूर्ण और विशुद्ध हो चुकी है, वही सच्चे रूप में कौल पद का अधिकारी है।'

सभी तो विश्वसार तन्त्र में कहा है–

कर्द्दमे चन्दने देवि पुत्रो शत्रो प्रियाप्रिये ।
श्मशाने भवने देवि तथैव तृणकाञ्चने ॥
न भेदो यस्य देवेशि स एव कौलिकोत्तमः ।
चिन्तयेदात्मनाऽऽत्मानं सर्वत्र समदृष्टिवान् ॥

'श्रेष्ठ कौल वही है जिसको कर्दम और चन्दन में, पुत्र और शत्रु में, श्मशान और भवन में, कांचन तथा तृण में कोई भेदज्ञान नहीं रह जाता और सब वस्तुओं से साम्यभाव उत्पन्न हो जाता है। वह सब भूतों में अपने आत्मा का और अपने आत्मा में सब भूतों का दर्शन करता है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुल शब्द के अर्थ से कौल का अर्थ और स्पष्ट हो जायेगा-

कुः पृथ्वी तत्व लीयते यत्र तत्कुलं--आधार चक्रं तत्सम्बन्धाल्लक्षणया सुषुम्णामार्गोऽपि ।

'पृथ्वी तत्व जिसमें लीन हो जाता है, उसे कुल और आधार चक्र कहते हैं और उसके सम्बन्ध से सुषुम्णामार्ग को कुल कहा जाता है ।'

अधः स्थितः रक्तं सहस्रदलकमलमपि कुलं, तत्कर्णिकायां कुलं देवि दलेषु कुलशक्तयः सन्तीति स्वच्छन्द तन्त्रऽस्या विस्तरः ।

'ब्रह्मरन्ध्र रक्तवर्ण के सहस्रदल कमल को भी कहा जाता है । उसकी कर्णिका के ऊपर कुलदेवि दलों में कुल शक्तियां निवास करती हैं, जिसको विस्तृत रूप से स्वच्छन्द तन्त्र में वर्णित किया गया है ।'

कुलं शक्ति दिति प्रोक्तयोकुलं शिव उच्यते ।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते ।।

अर्थात् 'कुल शब्द शक्ति का वाचक है और अकुल शब्द शिव का बोधक हैं । कुल और अकुल के सम्बन्ध को कौल कहते हैं ।'

भविष्य पुराण में आचार को कुल कहा है-

"आचारः कुल मुच्यते" ।

अर्थात् 'आचार ही कुल कहा जाता है ।'

विश्वकोष के अनुसार-

जनपदे ग्रहे सजातीयगणे गोत्रे देहेऽपि कुलं कथितम् ।

'देश घर, सजातीय पुरुष, गोत्र और शरीर को भी कुल कहा जाता है ।'

कुलार्णव तन्त्र के अनुसार--

अन्यान्य सकला विद्याः प्रकटा गणिका इव ।
इयं तु शाम्भवी विद्या गुप्ता कुलवधूरिव ।।

अर्थात् 'अन्य तो सभी विद्यायें गणिका की भांति प्रकट हैं । यह तो शाम्भवी विद्या है, जो एक कुलवधू की भांति गुप्त होती है ।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चिन्तामणिस्तव में कहा है–

'कुलाङ्गनैषाऽप्यथ राजवीथिः ।
प्रविश्य संकेतगृहान्तरेषु ॥
विश्रम्य विश्रम्य वरेण पुंसा ।
संगम्य संगम्य रसं प्रसूते ॥

कुलं नाम पातिव्रत्यादिगुणराशियो वंशः ।

अर्थात 'यह एक कुलाङ्गना है अथवा यह राजवीथी है, जिसमें प्रवेश करके संकेतगृही के अन्दर विश्राम करके पुरुष वर के साथ सङ्गम प्राप्त कर-करके रस का प्रसव करता है। कुल का अर्थ है–पातिव्रत्य आदि गुणराशि के स्वभाव वाला वंश।"

कुलं गोत्रमिति ख्यातं तच्च शक्तिशिवमद्रवम् ।
वज्रेन मोक्षमिति ज्ञानं कौलिकः परिकीर्त्तितः ॥

अर्थात् 'कुल नाम गोत्र का है। गोत्र शिव शक्ति से उत्पन्न है। कौल वह कहलाते हैं जो शिव-शक्ति में अभेद मानता है।'

अतः कुलाचार उच्चकोटि की साधना है। इसकी आलोचना करना तांत्रिक ज्ञान के अभाव का परिचायक है।

यह सप्ताचार निश्चय ही नैतिक व आध्यात्मिक धरातल पर स्थित हैं। इसके नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करने वाला साधक क्रमशः प्रगति-पथ पर बढ़ता जाता है और अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच सकता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

———

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तान्त्रिक पूजा का रहस्य

परिभाषा-

तन्त्र एक व्यवस्थित उपासना प्रणाली है जिसके माध्यम से मानव जीवन के उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। साधारणतः तो तन्त्र को जादू और चमत्कार वाली पद्धति ही समझा जाता है। इससे भौतिक उपलब्धियाँ भी होती है। परन्तु तन्त्र उपासना का वास्तविक लक्ष्य तो अद्वैत भावना का विकास है। उत्तम उपासना का यही अर्थ समझा जाता है। उपासना के शास्त्रों में विभिन्न नाम आते हैं-पूजा, वन्दना, अर्चना, भजन, आराधना आदि।

तन्त्र के अनुसार सच्ची पूजा वह है जो पुनर्जन्म को समाप्त करती है। जन्म और मृत्यु के चक्र को रोकती है, सम्पूर्ण फल प्रदान करतीहैं। अर्चना इसलिए कहते हैं क्योंकि वह अभीष्ट फल देने वाली है। तांत्रिक शास्त्रियों के अनुसार समस्त ज्ञेय पदार्थों की चिद्भूमि में विश्रांति ही पूजा कहलाती है। ऋजुनिर्मशिनी के इस लक्षण के साथ ही गुरु की अपने आत्मरूपमें भावना, करनाही पूजा है अथवा निर्मिकल्पक महाकला में आदरपूर्वक लय ही पूजा है।'

तांत्रिक पूजा का अभिप्राय किसी देवी-देवता से सम्बन्धित नहीं है वरन् उस ईश्वर की पूजा का निर्देश दिया जाया है जो समस्त जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और लय की पूर्ण सामर्थ्य रखता है। इसे ही भगवती, परब्रह्म, भगवान और परामाया आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया जाता है।

तंत्र का सिद्धांत यह है कि शिव और शक्ति के संयोग से सृष्टि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की रचना होती है। शिव शक्ति के बिना शव बन जाते हैं। शक्ति में क्रियाशीलता है। तांत्रिक भाषा में इसे 'विमर्श नाम दिया जाता है। शिव प्रकाश स्वरूप हैं क्योंकि सारा संसार उनसे प्रकाशित होता है, परन्तु विमर्शके अभाव में वह स्वयं प्रकाश नहीं हो सकते। प्रकाश और विमर्श दोनों अभिन्न रूप से रहते हैं। बिना शक्ति की उपासना के कुछ भी करना सम्भव नहीं है–

शक्त्या विना परे शिवे नाम धाम न विद्यते।

जब शक्ति की अपेक्षा की जाती है तो परम शिव में नाम आदि भावों का सम्बन्ध टूट जाता है। वास्तव में पूजा इस विमर्श शक्ति की ही हुआ करती है जो ईश्वर की स्वरूप भूता कहलाती है,इसी को ईश्वर की पूजा कहते हैं।

प्रकार–

तांत्रिक भावनाओं के अनुसार पूजा के भी चार अलग-अलग प्रकार है। यह अनुभव करना कि जीवात्मा और परमात्मा एक है, हर वस्तु ब्रह्ममय है, इस सृष्टि में ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं, ब्रह्म भाव कहलाता है। यह साधक की उच्चतम स्थिति हैं। जप और प्रार्थना, स्तवन उससे भी नीचे वाली श्रेणी की पूजा है। हृदय में योग-साधना के माध्यम से इष्ट देवता का अटूट ध्यान निम्न श्रेणी की किन्तु मध्यम है। चौथी पूजा बाह्य जगत में दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थों की है। साधक और देवता में जब पूजा करने और ग्रहण करने का भाव विद्यमान रहता है तो स्वाभाविक रूप से इसमें द्वैत भावना रहती है। जिसने अद्वैत तत्व का अनुभव कर लिया है और जो जानता है कि सब कुछ ब्रह्म ही है, जब साधना करने वाले और जिसकी पूजा की जा रही है, इसका कोई मान नहीं होता और न ही जप, तप, पूजा व्रत, ध्यान, धारणा आदि योगांगों का ही ध्यान रहता है, तभी पूजा की अन्तिम स्थिति मानी जाती हैं। जब तक यह स्थिति न आए, समझना-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहिए कि अभी पूजा अधूरी हैं और प्रयत्न करना शेष है।

'चिद्‌गगनचन्द्रिका' नामक आगम ग्रंथ में चार प्रकार की पूजा का विधान बताया गया—१- चार, २- राव, ३- चरु, ४- मुद्रा। 'राव ही इनमें प्रमुख हैं। आत्मशक्ति को साक्षात्कार को ही 'राव' कहा जाता है। चार अचार से, चरु हव्य से और मुद्रा से सम्बंधित है। ठीक भी है आरम्भिक साधन को पहले बाह्य उपकरणों का सहारा लेना पड़ता है, फिर धीरे-धीरे वह आगे बढ़ता है। उन्नति की कसौटी यह है कि उसे फिर बाह्य पूजा की अपेक्षा नहीं रहती। साधक के लिए आंतरिक पूजा के द्वार खुल जाते हैं। तंत्र की भाषा में बहिर्योग से अंतर्योग की ओर पग बढ़ाता है। बहिर्याग के मुख्यतः पाँच अङ्ग हैं—जप, होम तर्पण मार्जन और ब्रह्मयोजना। अंतर्योग के भी पाँच अङ्ग हैं-पटल, पद्धति, धर्म, स्रोत और नामसहस्र। पटल का अभिप्राय है—षष्टचक्रों और सहस्रदल कमल में देवी के स्वरूप की भावना करना। उस मंत्र पटल से पाँच या सोलह उपचारों से हृदयादि पीठमें देवी पूजनपद्धति, कह लाता है। इष्ट मन्त्र के अक्षरों से स्थूल शरीर पर कवच बनाना, देवी के विभिन्न नामों से शरीर की सुरक्षा की भावना करना धर्म कहलाता है। स्मृति जाग्रत रखने के लिए देवी के रहस्यमय स्तोत्रों का स्तवन और उनके सहस्र नामों में से विशेष गुणपरक नामों का ध्यान करके आंतरिक रूप से प्रणाम करना होता है।

अन्तर्योग की व्याख्या इस प्रकार की गई है।

पृथिव्यात्मकगन्धः स्यादाकाशात्मकपुष्पकमम् ।
धूपो वाय्वात्मकः प्रोक्तो दीपो वह्न्यात्मकः परः ॥
रसात्मकं च नैवेद्यं पूजा पञ्चोपचारिका ।

"पृथ्वी तत्व की गन्ध, आकाश तत्व की फूल, वायु-तत्व की धूप तेजस्व की दीप, रसात्मक जल तत्व की नैवेद्य के रूप में भावना करके पञ्चोपचार पूजा की जाती है। इसे अन्तर्याग कहते हैं।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समझने की सुविधा के लिए तन्त्र में तीन प्रकार की पूजा मानी जाती है—उत्तम मध्यम-और अधम, जिनको 'परा', 'परापरा' और 'अपरा' भी कहा जाता है। इन तीन के अतिरिक्त एक अधमाधम पूजा भी है। तांत्रिक शास्त्रियों का विचार है कि भौतिक युग में लोक-मानस का आत्मिक स्तर इतना गिर गया है कि साधारण व्यक्तियों को तन्त्र की अधम पूजा का भी अधिकार नहीं हैं।

तन्त्र की परम पूजा का स्पष्टीकरण करते हुए 'सकेत पद्धति' में कहा गया है—

न पूजा बाह्यपुष्पादिद्रव्यैर्या प्रथिताग्निशम् ।
स्वे महिम्न्यद्वये धाम्नि सा पूजा यत्परा स्थितिः ॥

बाह्य पुष्पादि द्रव्यों से जो पूजा की जाती हैं, वह श्रेष्ठ पूजा नहीं है। विश्व में इसी का विस्तार है परन्तु जब अपनी स्वरूप महिमा में साधक की स्थिति दृढ़ हो जाती है तभी वह परापूजा कहलाने योग्य है, क्योंकि इसमें द्वैतभाव का अभाव हो जाता है और अद्वैत भावना की स्थापना। इस अद्वैत भाव का विकास ही परा-पूजा कहलाती है। मध्यम पूजा शिव के साथ अवेद की अनुभूति नहीं होती। परन्तु वह इसके द्वार पर अवश्य खड़ा होता है क्योंकि उसे यह ज्ञान हो जाता है कि जड़ पदार्थों का अद्वैत में लय हो रहा है। समय पाकर मध्यम श्रेणी का साधक परा पूजा का अधिकारी बन जाता है, जैसे कि वह अधम पूजा से मध्यम में आया था। आरम्भ में तो साधक को साधारण पूजा का ही सहारा लेना पड़ता है। साधारण पूजा में बाह्य उपकरणों का प्रयोग होता है। तन्त्र में ६४ उपचार, १८ उपचार, १६ उपचार, १० उपचार फिर ५ उपचारों से पूजा का विधान बताया गया है।

इन उपचारों की संक्षिप्त सूची इस प्रकार है—

६४ उपचार—

पाद्यम्, अर्घ्यम्, आसनम्, सुगन्धितैलाभ्यङ्गम्, मज्जनशाल प्रवेशनम्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मज्जनमणिपीठोपवेशनम्, दिव्यस्नानीयम्, उद्वर्तनम्, उष्णोदकस्नानम्, कनककलशस्थितसर्वतीर्थाभिषेकम्, धौतवस्त्रपरिमार्जनम्, अरुणदुकूलपरिधानम्, अरुणदुकूलोत्तरीयम्, आलेपमण्डपप्रवेशनम्, आलेपमणिपीठोप्रवेशनम् चन्दनागुरुकुंकुममृगदकर्पूरं कस्तूरीरोचना दिव्यगन्धसर्वांगानुलेपनम्, केशभारस्य कालागुरुधूपमल्लिकामालतीजाती चम्पकाशीकशतमन्त्रपगकुवरी पुन्नागकल्हारपूथीसर्वतु कुसुममालाभूषणम्, भूषणमण्डपप्रवेशनम्, भूषणमणिपीठोपवेशनम्, नवरत्नमुकुटम्, चन्द्रपकंलशम्, सीमन्तसिन्दूरम्, तिलकरत्नम् कालाञ्जनम्, कर्णपालीयुगलम्, नासाभरणम्, अधरयातकम्, प्रथमभूषणम्, कनकचित्रपदकम्, महापदकम्, मुक्तावलीम्, एकावलीम्, देवाच्छान्दकम् केयूरयुगलचतुष्कम्, तलयावलीम्, ऊर्मिकावलीम्, कांचीदामकटिसूत्रम्, शोभाख्याभरणम्, पादकटकयुगलम्, रत्ननूपुरम्, पादांगुलीयकम्, एककरेसशम्, अन्यकरेअंकुशम्, इतरकरेपु, पुण्डेक्षुचापम, अपरकरे पुष्पबाणान्, श्रीमन्माणिक्यपादुकाम् स्वसमानवेशास्त्रावरणेदेवताभिः सह सिंहासनारोहणम् कामेश्वरपर्यङ्कोपवेशनम्, अमृताशनम् आचमनीयम्, कर्पूरवटिकाम्, आनन्दोल्लासविलासहासम्, मंगलारात्रिकम् श्वेतछत्रम्, चामरयुगलम् दर्पणम्, तालवृन्तम् गन्धम्, पुष्पम्, धूपम्, दीपम्, नैवेद्यम्, पानम्; पुनराचमनीयम् = ६४

१८ उपचार--

अष्टदशोपचार ये हैं–आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, यज्ञोपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अन्न, दर्पण माल्य, अनुलेपन और नमस्कार = १८

१६ उपचार--

षोडशोपचार–ये हैं पाद्य अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमनीय, ताम्बूल स्तवपाठ, तर्पण और नमस्कार = १६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१० उपचार--

दशोपचार ये हैं-

पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य=१०

५ उपचार--

पञ्चोपचार ये हैं-

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य=५

पूजा का रहस्य--

पूजा के विभिन्न प्रकारों और माध्यमों का तांत्रिक शास्त्रियों ने इस प्रकार निरूपण किया है-

आवाहन-ईश्वर सर्वव्यापी है। इसलिए उसका आवाहन व्यर्थ है, यह धारणा निर्मूल है। यह तो साधना की सुविधा के लिए किया जाता है। इसके विश्वासकी दृढ़ता होती है। साधक यह धारणा करता है कि उसका इष्टदेव सामने उपस्थित है। आरम्भिक साधना में यह आवश्यक है।

आसन-हृदय में पविन भाव से इष्टदेव की प्रतिष्ठापना करना।

पाद्य-पञ्च तत्वों से निर्मित जगत में उत्पन्न मल को ईश्वर के एकात्मक भावना रूपी जल से प्रक्षालन करना।

स्नान-जल से पाञ्चभौतिक शरीर को पवित्र करना स्नान कहलाता है। सत्-चित् आनन्दरूपी ब्रह्म से अपनी अन्तरात्मा को पवित्र करना आध्यात्मिक स्नान है।

नैवेद्य-में अमृतांश की भावना है।

आचमन-वाणी, मन और अन्तरात्मा से पवित्र अनुभव करने तथा भविष्य में इन तीनों को अधिक पवित्र बनाने की भावना के साथ तीन बार आचमन किया जाता है। पहले आचमन के साथ वाणी को

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्नान कराके पवित्र क्रिया माना जाता है। दूसरे से मन को और तीसरे से आत्मा को अपनी बाह्य और आंतरिक पवित्रता देन उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है। इस तथ्य को अपने आपको स्मरण दिलाने के लिए तीन आचमन किये जाते हैं। जल ब्रह्म का रूप है, उसके एकीकरण का भाव है—आचमन।

प्रदक्षिणा—जो विचार और भाव साधना तथा अध्ययनकाल में प्राप्त हुए हैं, उन्हें क्रिया रूप में परणित करने के लिए कदम बढ़ाना प्रदक्षिणा का उद्देश्य है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की चतुर्विध जीवन साधना के लिए चार परिक्रमा की जाती हैं।

गन्ध—दुर्भाग्य की सम्भावना को नष्ट करने और धर्म का ज्ञान प्रदान करने के कारण गन्ध नाम पड़ा।

अक्षत—अक्षत अन्न का साधन है, पापों की निवृत्ति करते हैं और परम सत्य से परिचय कराते हैं।

पुष्प—धन, सम्पत्ति, पुण्य की वृद्धि करने और पापों के समूह को नष्ट करने के कारण पुष्प कहलाते हैं।

धूप—धूप, बदबू को दूर करती है और परमानन्द प्रदान करती हैं।

दीप—दीप, अज्ञानता, गहरे अंधकार को दूर करके परम सत्य परातत्व को प्रकाशित करता है।

बलि—बलि का अभिप्राय पापों और दुष्प्रवृत्तियों का नाश है।

पान—पान पाशों को खोलता है, नरक से बचाता है और पवित्र भावों का उदय करता है।

अर्घ्य—धन की वृद्धि करने और पाप की निवृत्ति करने के कारण अर्घ्य कहलाता है।

प्रसाद—प्रकाश के रूप में आनन्द प्रदान करने और परम सत्य के दर्शन कराने के कारण प्रसाद कहलाता है। तन्त्र में अद्वैतभाव ग्रहण को गुरुप्रसाद कहते हैं—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वप्रकाशवपुषा गुरुः शिवो,
य: प्रसीदति पदार्थमस्तके ।
तत्प्रसादमहि तत्वशोधनं
प्राप्य मोदमुपयाति भावुकः ।।

स्वप्रकाश रूपी शिव गुरु जब पदार्थ मस्तक में प्रसन्न होते हैं, तब सभी तत्वों की शुद्धि हो जाती है और स्वभाविक रूप से परमानन्द की प्राप्ति होती है ।

गुरु प्रसाद की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है—

ईश्वराराधनधिया स्वधर्माचरणात्सताम् ।
ईशप्रसादस्तद्रूपः सुलभश्चात्र सद्गुरुः ।।

अर्थात् 'ईश्वर की आराधना करने की बुद्धि सत्पुरुषों को अपने धर्म का आचरण करने से उसी स्वरूप वाला ईश्वर का प्रसाद होता है, इसकी प्राप्ति के लिए सद्गुरु की सुलभता होनी चाहिए ।"

सदगुरोः सम्प्रसादेऽस्य प्रतिवन्धक्षयस्ततः ।
दुर्भावनातिरस्कारादविज्ञा मुक्तिदः क्षणात् ।।

अर्थात् सद्गुरु के भली-भाँति प्रसाद के होने पर इसके प्रतिबन्धों को क्षय हो जाता है । बुरी भावनाओं के तिरस्कार से क्षणमात्र में मुक्ति के प्रदान करने वाला विज्ञान प्राप्त होता है ।'

प्रणाम—चित्त को विषय वासनाओं से दूर करके ब्रह्म में लीन करने की क्रिया को प्रणाम कहते हैं ।

विसर्जन—पूजा की समाप्ति पर इष्टदेव का भावनापूर्ण विसर्जन किया जाता है, क्योंकि सर्व प्रथम आह्वान भी किया गया था । जब पूजा सम्बन्धी कोई काम करना शेष नहीं रहता, तभी विसर्जन होता है । आध्यात्मिक भाषा में इसे ज्ञान का स्तर मानते हैं । पूर्ण सन्तोष होने पर ही यह भावना उत्पन्न होती है कि अब कोई कार्य करना शेष नहीं रहा है । साधना की सफलता का भी यह चिह्न है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मानस पूजन--

बाह्य पदार्थों और उपचारों से जब साधना में परिपक्वता होने लगती है तो इन पदार्थों के माध्यम की अपेक्षा नहीं रहती, इनका नाम रूप से भावना ही पर्याप्त रहती है। श्री पूर्व आगम शास्त्र में कहा है–

द्रवद्रव्यसमायोगात् स्नपनं तस्य जायते।
गन्ध पुष्पादिगन्धस्य ग्रहणं यजनं स्मृतम्॥
षड् रसास्वादनं तस्य नैवेद्याय प्रजायते।
यमेवोच्चारयेद् वर्ण स जपः परिकीर्तितः॥

अर्थात् द्रव्य पदार्थ के स्पर्श को स्नान कहते हैं। गन्ध-पुष्पादि की गन्ध ग्रहण करना अर्चना कहलाती है। षडरसों का आस्वादन नैवेद्य है और वर्णों का उच्चारण जप कहा जाता है।'

भावनोपनिषद् (३) में मानस-पूजन का विस्तृत निरूपण है–

सलिलं सौहित्यकारणं सत्वं कर्त्तव्यमकर्त्तव्यमिति भावना-युक्त उपचारः। अस्ति न स्तोति कर्तव्यता उपचारः। बाह्याभ्यन्तः कारणानां रूपग्रहणयोग्यताऽस्त्यावाहनम्। तस्य बाह्याभ्यन्तः कारणानामेकरूपविषय ग्रहणमासनम्। रक्तशुक्लपदकीकरणं पाद्यम्। उज्वलदामोदानन्दासनं दानमर्घ्यम स्वच्छ स्वतः--सिद्धनित्याचमनीयम्। चिच्चन्द्रमयोसर्वाङ्गवर्ण स्नानम्। चिदग्निस्वरूपपरमानन्दशक्तिस्फुरणे वस्त्रम्। प्रत्येक सप्तविंशतिधाभिन्नत्वेनेच्छाज्ञानक्रियाऽऽत्मब्रह्मग्रन्थिमद्रसतन्तु-ब्रह्मनाडी ब्रह्मसूत्रम्। स्वव्यतिरिक्तवस्तुसङ्गरहितस्मरण विभूषणम् स्वच्छं स्वपरिपूरणानुस्मरण गन्धः समस्तविषयाथा मनस स्थैर्यैणनुसंधान कुसुमम्। तेषामेव सर्वदा स्वीकरण धूपः पवनावच्छिन्ना ध्वज्वलनस चित्तुल्काऽकाशदेहो दीपः समस्तयातायातवर्ज्यं नैवेद्यम्। अवस्थात्रयैकीकरण ताम्बूलम्। मूलाधारादाब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रादामूलाधार पर्यन्तं गतागत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रूपेणप्रादक्षिण्यम् । तुर्यावस्था नमस्कारः । देहशून्यप्रमातृतानिमज्जनं बलिहरणम् । सत्वमस्ति कर्तव्यमकर्तव्यमौदासोन्यनित्यात्मविलापन होमः । स्वयं तत्पादुकानिमज्जनं परिपूर्णध्यानम् ।

अर्थात् 'सलिल तथा गुरुमन्त्रात्मक देवताओं का एकीकरण रुद्र जो सत्य ही कर्तव्य है, इस भावना से युक्त ही उपचार (पूजा) है । ब्रह्म ही है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है, यह जो कर्तव्यता है, यह ही उपचार है । ब्रह्म तथा अभ्यन्तर के कारणों की रूप ग्रहण की योग्यता ही यही आह्वान है । उसका बाह्य तथा आभ्यास्तर कारणोंका एक रूप विषयों का ग्रहण करना ही आसन है । केवल कुम्भक से सुषम्ना प्रवेश के अनन्तर तथा भौंहों के मध्य में स्थित प्रत्येक और परनाम के लाल सफेद पदों का एकीकरण ही पाद्य है । अपने शिष्यों को यह उपदेश करना कि ब्रह्म भिन्न सदोज्वल दासोदानन्द रूप से स्थिति हमेशा करनी चाहिए, यह अर्घ्य है । स्वयं स्वच्छ तथा स्वतः सिद्ध ही आचमनीय है । चिद्रूप चन्द्रमयी के सर्वाङ्गों का स्मरण ही स्नान हैं । चिद् अग्नि स्वरूप परमात्मिक शक्ति का स्फुरण ही (प्रकाशित होना) वस्त्र है । इच्छा आदि तीन शक्तियों के त्रिगुणात्मक होने से प्रत्येक के जो २६ भेद तथा इच्छाज्ञान तथा क्रिया शक्ति स्वरूप ब्रह्मग्रन्थि, भद्रस्य नाड़ी सुषम्ना, यही ब्रह्मसूत्र है क्योंकि यही ब्रह्म की द्योतिका है । अपने से भिन्न वस्तु का स्मरण न करना ही आभूषण हैं । स्वच्छ रूप जो ब्रह्म उससे कुछ भिन्न नहीं है, यह स्मरण करना गन्ध हैं । सब विषयों का मन में स्थिरता से अनुसंधान ही फूल है और उन्हीं को स्वीकार करना ही धूप है । वाय्वात्मक (वायु युक्त) योग के समय प्राण अपान की एकता से सुषुम्ना में सत् चित् आनन्द उल्कारूप जो (प्रकाश है) आकाश देह है, वही दीप है । अपने से भिन्न सभी विषयों मन की गति का जाना आना रुक जाना (न लाना) ही नैवेद्य है । तीनों अवस्थाओं का एकीकरण ही पान । मूलाधार में बार-बार गतागत करना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(आना-जाना) ही प्रदक्षिणा है। चतुर्थी अवस्था में स्थित रहना ही नमस्कार है। देह की जड़ता में डूबना (अर्थात् आत्मा को चैतन्य मान कर देह को जड़ मानकर स्थित रहना ही) बलि है। अपनी आत्मासत्य स्वरूप है, यह निश्चित करके कर्तव्य, अकर्तव्य, उदासीनता, नित्यात्मक विलापन (आत्म-चिन्तनासक्ति) ही यज्ञ होम है तथा उस परमब्रह्म की पादुकाओं में डूबे रहना ही परिपूर्ण ध्यान है। सारांश यह हुआ कि जैसे पूजा के लिए धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा, नमस्कार, प्रदक्षणादि अपेक्षित होता है, वैसे ही परम ब्रह्म प्राप्ति के लिए ऊपर बताई गई वस्तुओं का साधन कर लेना ही तद्-तद् दीप आदि हैं। इन्हीं से वह ब्रह्म दृष्टिगोचर हो जाता है।"

भगवान शंकराचार्य की "शिवमानस पूजा स्तोत्र" से भी यही ध्वनि निकलती है—

आत्मा त्वं गिरजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं।
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समधिस्थितिः॥
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो।
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

शिव को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि "तुम्हीं मेरी आत्मा हो, गिरजा बुद्धि हैं, प्राण सहचर है, मेरा शरीर तुम्हारा घर है। विषय भोग के लिए मेरे इन्द्रिय-व्यापर ही पूजा है, निद्रा समाधिस्थिति है मेरे पद संचार तुम्हारी प्रदक्षिणा और बोलना तुम्हारा स्तोत्र है। मेरे समस्त कर्म तुम्हारी आराधना है।"

भक्ति-सुधा (प्रथम खण्ड) में स्वामी श्री हरिहरनन्द सरस्वती ने मानस पूजा का विवेचन इस प्रकार किया है—

"नामरूपात्मक जगत में सच्चिदानन्द की भावना ही अम्बा को पाद्यसमर्पण है। सूक्ष्म जगत में ब्रह्म-भावना ही अर्घ्यसमर्पण है। भावना में ब्रह्म-भावना ही आचमन है। सर्वत्र सत्वादि गुणों में चिदानन्द

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावना ही स्नान हैं। चिद्रूपा कामेश्वर में कृत्यविषयता का चिन्तन करना ही प्रोच्छन है। निरंजन तत्व, अजरत्व, अशोकत्व, अमृतत्व आदि की भावना ही विविध आभूषणों का अर्पण है। स्वशरीर पटक पार्थिव-प्रपञ्च में चिन्मात्र भावना ही गन्धसमर्पण है। आकाश में चिन्मात्रत्व की भावना करनी पुष्प-समर्पण है। वायु की चिन्मात्र भावना धूप समर्पण है, तेज में चिन्मात्रत्व की भावना दीपसमर्पण है। अमृतत्व की भावना नैवेद्यार्पण है। विश्व में सच्चिदानन्द भावना करनी ही ताम्बूल समर्पण है। वाणियों का ब्रह्म में उपसंहार ही स्तुति है। वृत्ति विषय के जडत्व का निराकरण ही आरात्तिक्य है। वृत्तियों को ब्रह्म में लय करना ही प्रणाम है।"

आदर्श पूजन का एक और रूप शास्त्र में प्रस्तुत किया गया है—

शिवशक्तिपरां पूजां योगेनैव समाचरेत्।
मन्त्रोदकंविना संध्या पूजाहोमविना जपन्।
उपचारैर्विनायागं योगी नित्यं समाचरेत्।
यमादि नियमैः पुष्पैः आत्मकादशभिः परैः।
दशदिक्षु तथा मध्ये यजेत् परमेश्वरम्।
ध्यानिनां हि वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम्।
ध्यानं यज्ञरतास्तस्मात् देवान् पाषाणमृण्मयान्।
नायन्तं नतिपद्यन्ते शिवयाथात्म्यवेदनात्॥

अर्थात् "जो साधक योग के माध्यम से शिव-शक्ति की पूजा करते हैं, उनकी बिना मन्त्र और जल के संध्या होती है, उनका जप बिना पूजा और होम के होता है। उनका नित्यज्ञ बिना सामग्री के होता है उनके लिए पाँच यम, पाँच नियम और ग्यारहवाँ मन पुष्प रूप होते हैं, जिनमें दसों दिशाओं और शरीर के मध्य में ईश्वर को पूजन करते हैं। इस तरह से परमेश्वर की आराधना करने वाले साधकों के समक्ष परमेश्वर का ज्योतिर्मय सूक्ष्म शरीर प्रकट होता है। ध्यान यज्ञ में रस साधक जिसे शिव के ज्योतिर्मय रूप के दर्शन हो जाते हैं, उन्हें पाषाण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और मृतिका के बने देवताओं की पूजा करने की आवश्यकता नहीं रहती।"

मूर्ति-पूजा का यहाँ खण्डन किया हो, ऐसी बात नहीं है। यहाँ तो उपासना के स्तर का विवेचन किया है कि जब साधक ऊर्ध्व भूमिकाओं में प्रवेश करता है, तो उसे आरम्भिक साधनाओं के माध्यमों को छोड़ देना पड़ता है। तन्त्र ने भी इस विचारधारा का समर्थन किया है और कहा है कि आरम्भ में तो पूजा के लिए बाह्य उपचारों की अपेक्षा रहती है, परन्तु जब साधक प्रगति-पथ पर आरूढ़ होता है तो यह माध्यम स्वतः छूट जाते हैं। वह स्वयं इसकी आवश्यकता अनुभव नहीं करता। पहले तो वह पाषाण या मृत्तिका निर्मित मूर्ति को ही ईश्वर समझता था परन्तु जब उसकी भावना विकसित होती है, तो वह प्रत्येक मानव पिंड में पशु-पक्षी और कीट-पतङ्ग में तथा फिर सृष्टिके अणु-अणु मे अपने इष्टदेवके दर्शन करता है। उसमें अद्वैत भाव की जाग्रति होती है। यही तन्त्र परापूजा अर्थात् पूर्जा कहलाती है, जिसकी ओर बढ़ने के लिए सभी तन्त्र साधनाओं का विधान बताया गया है।

उपरोक्त विवेचन का सार यह है कि अन्य उपासना पद्धतियों की तरह तान्त्रिक पूजा में भी आरम्भिक साधक को मूर्ति पूजा की अपेक्षा रहती है और अपने इष्टदेवता की बाह्य उपचारों से आराधना करनी पड़ती है। साधारण देवपूजा में बुद्धिमान साधक से यह आशा की जाती है कि वह अपने इष्टदेवता के गुणों का चिन्तन करे और उन्हें अपने व्य-वहारिक जीवन में प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न करे तभी वह साधना के उच्चस्तर की ओर बढ़ सकता है। उसी तरह तांत्रिक पूजा में बाह्य उपचारों द्वारा पूजन करते समय उनके अन्तर्भावों की स्थापना होनी चाहिए। उदाहरण के लिए पुष्पसमर्पित करते समय यह भावना जाग्रत होनी चाहिए कि इनके माध्यम से दुर्गन्ध रूपी दुर्गणोंका विनाश हो रहा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है और मेरे मन के गुह्य क्षेत्रों में गुण रूप सुगन्ध ही फैल रही है जिसके परिणाम स्वरूप मन असाधारण रूप से प्रफुल्लित और आनन्दित हो रहा है। कुछ समय के अभ्यास से यह भावना दृढ़ हो जायेगी और साधक का मन वास्तव में आनन्द का केन्द्र हो जाएगा। इसी तरह से आवाहन, आसन, पाद्य, स्नान, नैवेद्य, आचमन, प्रदक्षिणा, गन्ध अक्षत् धूप, दीप, बलि पात्र, अर्घ्य,प्रसाद आदि के द्वारा भावनाओं का विकास करना चाहिए। इस साधना पद्धति से साधक वाह्य पूजा अथवा बहि-र्योग से अन्तर्योग की ओर पग बढ़ाता है। यही साधक की उन्नति की कसौटी है कि वह अधम पूजा से मध्यम पूजामें प्रवेश करता है। मध्यम पूजा में भी द्वैत का भाव बना रहता है परन्तु उत्तम श्रेणी का मध्यम साधक यह अनुभव करने लगता है कि द्वैत की अनुभूति कराने वाली जड़ अथवा स्थूल भावनाओं का धीरे-धीरे सूक्ष्म में अथवा अद्वैत में लय हो रहा हैं इस स्थिति तक पहुँचा साधक परा-पूजा का अधिकारी होता हैं और वह चारों ओर अपने प्राणों को बिखरा हुआ अनुभव करता है, सभी प्राणियों में परमात्मा को व्याप्त मानता और समझता है,उसे सृष्टि में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता अर्थात् द्वैत का नाश होकर अद्वैत की सिद्धि होती है। यही तांत्रिक पूजा में उच्चतम स्थिति है जिसे सच्चा तन्त्र साधक निश्चित रूप से प्राप्त कर सकता है, वास्तव में आत्मा और परमात्मा की एकता की अनुभूत तांत्रिक पूजाका उद्देश्य और रहस्य है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पंचमकार रहस्य

तन्त्र ग्रन्थों में पंचमकारों की बहुत चर्चा आती हैं। उनके लम्बे-चौड़े माहात्म्य भी वर्णित किए गए हैं। आध्यात्मिक मकारों की प्रशंसा करते हुए कहा गया है–

मद्यं मांसञ्च मीनञ्च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकार पञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्ति दायकम् ॥

अर्थात् "मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन–यह पांच आध्यात्मिक मकार ही योगीजनों को मोक्ष प्रदान करने वाले हैं।"

साधारणतः यह समझा जाता है कि मद्य, मांस, मीन और मैथुन आदि का प्रत्यक्ष प्रयोग का विधि विधान है। इसीलिए तन्त्र के विधि-विधानों पर सर्वाधिक आक्रोश प्रकट किया जाता है और इसे निम्न वर्ग का साधन-प्रणाली घोषित किया जाता है। स्पष्ट है कि मद्य, मांस का उपयोग करने वाले तामसिक अथवं राजसिक प्रकृति के ही व्यक्ति हो सकते हैं, सात्विक प्रकृति के व्यक्ति उनका उपयोग तो अलग रहा, उनका नाम सुनना भी पसन्द नहीं करते। लोक में भी आध्यात्मिक दृष्टि से शराबी और मांसाहारियों को हेय दृष्टिसे देखा जाता है क्योंकि निश्चय ही इनका उपयोग तमोगुण की वृद्धि करता है। आध्यात्म शास्त्रों में सर्वत्र इनकी निन्दा की गई है और इनके त्याग के आदेश दिये गये हैं।

सुरापान से व्यक्ति इतना संज्ञाशून्य हो जाता है कि विष्णु पुराण में अवतारी पुरुष बलरामजी द्वारा कथावाचक सूतजी की हत्या का उल्लेख मिलता है, जबकि वह मद्यपान किए हुए थे। ऐसे महान व्यक्तियों से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जब इतने अन्यायपूर्ण कार्य हो जाते हैं, तो साधारण व्यक्तियों से तो और भी जघन्य कार्य होने सम्भव हैं। विष्णु पुराण में ही कहा है कि स्यमन्तक मणि को अपने पास रखने वाले का जीवन पवित्र होना आवश्यक है। श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा—

आर्यबलभद्रेणापि मदिरापानाद्यशेषोपभोगपरित्याग: कार्य:
—(४।१३।१५७)

अर्थात् "यदि आर्य बलरामजी इसे अपने पास रखते हैं, तो उन्हें अपने मदिरापान आदि सभी भोगों को छोड़ना पड़ेगा।"

महाभारत में स्पष्ट रूप से मद्य का निषेध किया गया है—

सुरा मत्सया मधु मांसं आसवं कृशरौदनम् ।
धूतं प्रवर्तितं ह्येतत् तद्वेदेषु कल्पितम् ।।१०
मानान्मोहाच्च लोभाच्च लोलेयमेतत्प्रकल्पितम् ।
विष्णुमेवाभिजानान्तिसर्वं यज्ञेषु ब्राह्मण: ।।११
पायसै: सुमनोभिश्च तस्यापि भजनं स्मृतम् ।
याज्ञियाश्चैव ये वृक्षा:वेदेषु परिकल्पिता परिकल्पिता ।।१५
—महाभारत शांति०

"सुरा, मत्स्य, शराब, मांस, आसव आदि सब व्यवहार धूर्तों का चलाया हुआ है। उनका वेदों में कोई प्रमाण नहीं है। मान, मोह, लोभ और जिह्वा की लोलुपता के कारण यह बनाया गया है। वास्तव में सच्चे ब्राह्मण सभी यज्ञों में उस कण-कण में व्याप्त प्रभु का ही भजन-पूजन करते हैं और वेदों में दिए हुए आदेश के अनुसार यज्ञ में काम आने वाली वृक्षों की समिधाओं का उपयोग करते हैं।"

शराब और मांस में रुचि रखने वालों को दैत्य की संज्ञा दी गई है—

मधुमांसं प्रिया दैत्यास्ताम सत्वाद्भवन्ति च ।
—स्कन्दपुराण, अध्याय ६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नारद ने एक स्थान पर कहा है–जिस धर्म में मांस और मद्य-सेवन का विधान है, वह धर्म केवल नरक के लिए होता है ।"

विष्णु पुराण में इनसे दूर रहने वालों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है—"जो जीवनपर्यन्त किसी प्रकार का मांस नहीं खाता, उसे स्वर्ग में विपुल स्थान प्राप्त होता है । यदि वह मांस खाता है तो सारे जप,होम, नियम, तीर्थस्थान व्यर्थ हैं ।"

शास्त्रों में मांसाहार पर दोषारोपण करते हुए उसके त्याग की प्रबल प्रेरणायें दी गई–

"मांस से हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती है, अधर्म की वृद्धि होती है, दुःख की उत्पत्ति होती है । इसलिए मांस का त्याग करना ही उपयुक्त है ।

–शांतिपर्व

चूंकि मांस से शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति में बाधा पड़ती है, इसलिए अपने जीवन-क्रम को शांतिपूर्वक चलाने का उपदेश करते हुए भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं–

या इच्छेत पुरुषोत्यन्तमात्मानं निरुपद्रवम् ।
स वर्जयेत मांसानि प्राणिनामिह सर्वथा: ।।

–महा० अनुशासन पर्व

"जो मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा शांति से चलना चाहे, उसके लिए आवश्यक है कि वह मांस भक्षण कभी न करें ।"

मांस-भक्षण रसना का विषय है । एक बार खा लेने से वह सहज में ही नहीं छूट पाता, इसलिए पहले से ही सावधान करते हुए भीष्म पितामह कहते हैं–

दुष्करहि रसज्ञाने मांसस्य परिवर्जनम् ।
चतुर्वृत्तमिदं श्रेष्ठं सर्वप्राणाय भयप्रदम् ।।

"मांस के रस के स्वाद में आसक्ति हो जाने पर मांस का छूटना कठिन है । मांस भक्षण करने वाला कभी भी श्रेष्ठ अहिंसा व्रत का पालन नहीं कर सकता ।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्त्तायोपहर्त्ता चरवांदश्चेनो घातकः ॥

मनु ५।१

"पशु-वध के लिए सम्मति देने वाला, मांस को काटने, पशु आदि को मारने, उनको मारने के लिए बेचने, मांस के पकाने, परोसने और खाने वाले यह आठ मनुष्य घातक हैं।"

नाकृत्वा प्राणिनां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्णयस्तस्यान्मांसं विवर्जयेत् ॥

"प्राणियों के वध के बिना मांस प्राप्त नहीं हो सकता, प्राणियों की हिंसा से स्वर्ग उपलब्ध नहीं होता, इसलिये मांस का त्याग करना चाहिए।"

शास्त्रों में मांस न खाने वालों की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है–

वर्ष वर्षेऽश्मेधने यो यजेत् शतं समाः ।
मांसानि चैन खादेद्यस्तयो पुण्येफलं समम् ॥

–मनु० ४।५३

"मांस-भक्षण न करने वाले और सौ वर्ष तक अश्वमेध यज्ञ करने वाले को समान फल की प्राप्ति होती है।

याज्ञवल्क्य-स्मृति में मांस न खाने वाले की प्रशंसा की है। यथा–

सर्वात्क्रामानवाप्नोति तपमेधफलं यथा ।
गृहेपि निवसन्तिद्रो मुनि मांसं विर्वजनात् ॥

–आचार्य प्रकरण ७, श्लोक १८०

"विद्वान सभी इच्छाओं तथा अश्वमेघ के फल को पाता है, वह गृहस्थ मुनि है, जो मांस भक्षण नहीं करता।"

मैथुन काम-वासना की तृप्ति का साधन है। उससे काम का वेग

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बढ़ता है, जो अध्यात्म-मार्ग की महान बाधा है। गीताकार ने तो काम से सर्वस्व-नाश की घोषणा की है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

—गीता २।६।६४

अर्थात् "विषयों का चिन्तन करने से इनमें सङ्ग बढ़ता है। सङ्ग से वासना की उत्पत्ति होती है कि हमें काम चाहिए। जब काम की तृप्ति नहीं हो पाती, तो क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से संमोह अर्थात् अविवेक होता है, संमोह से स्मृति भ्रंश, स्मृति भ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से सर्वस्वनाश हो जाता है।"

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

——गीता २।६७

अर्थात् "विषयों में संचार अर्थात् व्यवहार करने वाले इन्द्रियों के पीछे पीछे मन जो जाने लगता है, वही व्यक्ति की बुद्धि को ऐसे हरण करता है जैसे कि जल में नाव को वायु खींचती है।"

शास्त्र सुरा, मांस और मैथुन आदि का विरोध करते हैं। तन्त्र वेदादि शास्त्रों के अनुकूल हैं, विरोधी नहीं। जो अध्यात्मिक विचार धारा इन शास्त्रों में वर्णित की गई है, उनकी साधन प्रणाली का प्रतिपादन तन्त्रों में किया गया है। सभी शास्त्र एक स्वरसे मद्य, मांस और मैथुन आदि को आत्मिक उत्थान में बाधक समझते हैं, तो तन्त्र उनके प्रत्यक्ष प्रयोग की आज्ञा कैसे दे सकते हैं? वास्तव में तन्त्रों की भाषा सांकेतिक है, उन्हें उसी रूप में समझना उपयुक्त रहेगा। तन्त्रों में इन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संकेतों को दो रूपों में व्यक्त किया गया है--अनुकल्प और दिव्य उनका विचार सभी मकारों में किया जायेगा।

मद्य--

मद्य का अनुकल्प नारियल का पानी है। 'कुलार्णव तन्त्र' में नारियल का पानी और दूध दोनों का वर्णन आता है। योगिनी तन्त्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए अलग-अलग अनुकल्प दिये गये हैं-

तेषां विधिं शृणुष्वाद्य मत्तस्त्वं कुलिनायिके।
गुडदिकरसेनैव सुरां तु ब्रह्मणस्य च॥

अर्थात् "हे कुल नायिके! उसकी विधि का श्रवण करो। गुड़ और अदरक का रस मिलाने से ब्राह्मण की सुरा बनाती है।"

नारिकेलोदकं कांस्ये क्षत्रियस्य वरानने।
वैश्यस्य माक्षिकं प्रोक्तं कास्यस्थं वरवर्णिनि॥

अर्थात् "कांसी के पात्र में नारियल का जल क्षत्रिय की और कांसे के पात्र में मधु वैश्य की सुरा कही गई है।"

जहाँ सुरा का विधान है, वहाँ पूजा में इन वस्तुओं का प्रयोग अभीष्ट है। सुरा के दिव्य रूप का अभिप्राय इस प्रकार है।

अन्तर्योग में कुण्डलिनी शक्ति को ही सुरा कहते हैं-

न मद्यं माधवी मद्यं शक्तिचरसोद्भवम्।
सामरस्याहृतोल्लासं मैथुनं तत्सदाशिवम्॥

"मद्य से मदिरा का तात्पर्य नहीं है, वरन् शिव-शक्ति के संयोग से जो महान अमृतत्व उत्पन्न होता है, वही वास्तविक मुक्तिप्रदायक रस है।

व्योमं पंकजानित्यत्वं सुधापानरतो भवेत्।
मद्यपानामिदं प्रोक्तामितरे मद्यपायिनः॥

"ब्रह्मगन्ध सहस्र दल से जो स्रवित होता है, उसका पान करना ही मद्यपान है। इसके अतिरिक्त पीने वाला मद्यप है।

ब्रह्मस्थानं सरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या शुभ्रांशुकला सुधाविगलिता सा पानयोग्यसुरा ।।
सा हालापिवतामनर्थ फलदा श्रीदिव्यभावाश्रिता ।
यामित्या मुनयः परार्थकुशला निर्वाणमुक्ति गताः ।।

—तन्त्रतत्व प्रकाश

"जो सहस्रार कमलरूपी पात्र में भरी हैं और चन्द्रमा कलासुधा से स्रवित है, वही पीने योग्य सुरा है। इसका प्रभाव ऐसा होता है कि वह सब प्रकार के अशुभ कर्मों को व्यर्थ कर देती है। इसी के प्रभाव से परमार्थ कुशल मुनियों ने मुक्ति रूपी फल को प्राप्त किया है।"

यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम् ।
तस्मिन् प्रमदनंज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्तितम् ।।

"निर्विकार, निरंजन, परब्रह्म के विषय में योग-साधना द्वारा जो प्रमदन-ज्ञान उत्पन्न होता है।" उसको मद्य कहते हैं।"

मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि देवी जब युद्ध में रत रहती थीं, तो सुरा का पान करती थीं। यहाँ मद्य का अभिप्राय अभिमान और उन्मत्त आचरण से है। देवी इससे शून्य होकर संघर्ष में कूदती हैं। नारद भक्तिसूत्र में ईश्वर का यही गुण बताया गया है—

ईश्वरस्याभिमानद्वेषत्वाद्दैन्यप्रियत्वाच्च ।

"व दोनों का बन्धु और अभिमान का द्वेषी है।" अहङ्कारी को गीता में अज्ञानी कहा गया है—

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्कृतबुद्धित्वान्न पश्यतिसदुर्मतिः ।।१८।।१३

अर्थात् "जो संस्कृत बुद्धि न होनेके कारण यह समझे कि मैं अकेला ही कर्त्ता हूँ, समझना चाहिए कि वह दुर्मति कुछ नहीं जानता।"

इसलिए भगवान परामर्श देते हैं कि—

मच्चित्त सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यति ।
अथ चेत्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विमङ्क्ष्यसि ।।१८।।५८

"यदि तू मुझमें चित्त रखेगा, तो मेरी कृपा से संकटों को पार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर लेगा। परन्तु अहंकार के वशीभूत होकर मेरी ओर ध्यान न देगा तो नाश को प्राप्त होगा।"

प्रश्नोपनिषद् ३।१।४ में लिखा है कि ईश्वर को जानने वाले में अहंकार का अभाव रहता है–

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति।
विजानन् विद्वान भवति नातिवादी॥

"यह परमेश्वर ही प्राण है, जो सब प्राणियों के द्वारा प्रकाशित हो रहा है। इसको जानने वाला ज्ञानी अभिमानपूर्वक बढ़-बढ़कर बातें, करने वाला नहीं होता।"

अतः तन्त्र-साधक को देवी की तरह इसी सुरा का पान करना चाहिए, तभी उसकी आत्मा शक्तिशाली होगी और वह आत्म-साक्षात्कार के योग्य हो सकेगा। यदि इस सुरा का पान नहीं किया जाता अर्थात् अहंकार का नाश नहीं किया जाता तो सौ कल्पों में भी ईश्वर दर्शन करना असम्भव है।

मांस—

मांस का अनुकल्प है लवण, अदरक, लहसुन, तिल और गेहूँ की बालें। योगिनी तन्त्र में कहा है–

मांसं मत्स्यन्तु सर्वेषां लवणार्द्रकं मीरितम्।

अर्थात् 'सबका मांस और मत्स्य, लवण तथा अदरक बताया गया है।"

कुलार्णव-तन्त्र में भी मांस के स्थान पर लवण, अदरक, गेहूँ या लहसुन से पूजा-विधान बताया गया है। मांस के लिए दिव्य रूप है– समस्त वस्तुओं को अन्तर्यामी ईश्वर को समर्पित करना।

–कौलिकार्चन तन्त्र

मांसाहार का प्रतीकात्मक स्पष्टीकरण करते हुए शास्त्रों में कहा है–

माशब्दाद्रसना ज्ञेया तदंशान रसनाप्रिये।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सदा यो भक्षयेद्देवि स एव मांस साधक: ॥

"हे रसनाप्रिये ! मा रसना–शब्द का नामान्तर है, वाक्य उसका अंश हैं। जो सर्वदा उस वाक्य को भक्षण करता है अर्थात् जो वाक् संयम करके मौन रहता है, वही वास्तव में मांस-साधक है।"

पुण्यापुण्यं पशुं हत्वा ज्ञानं खड्गेन योगिवत् ।
परे लयां नयेत् चित्तम् मांसाशीं स निगद्यते ॥

"पुण्य पापरूपी पशु को ज्ञानरूपी खड्ग से मारकर जो योगी मन को ब्रह्म में लीन करता है, वही सच्चा मांसाशी (मांसाहारी) है।"

कामं क्रोधं मुलोभमोहपशुकांश्छित्वा विवेकाविना ।
मांसानिर्वियं परमात्मसुखदं खादन्ति तेषां बुधाः ॥
ते विज्ञान परा धरातल सुरास्ते पुण्यवन्तो निरा ।
नाश्नीयात्पशुमांसमात्मविमतेहिंसागरं सज्जनः ॥

—तन्त्रतत्व प्रकाश

"काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पशुओं को विवेक रूपी तलवार से मारकर उसको भक्षण करे और दूसरों को सुख पहुँचावे, वही सच्चा बुद्धिमान है। ऐसे ही ज्ञानी और पुण्यशीलजन पृथ्वी के देवता कहे जाते हैं। ऐसे सज्जन कभी पशु-मांस का प्रयोग करके पापी नहीं बनते।"

पशु बध से मांस की प्राप्ति होती है। मांस-लोलुपों ने उपासना के अतिरिक्त हवन-यज्ञों में भी अर्थ का अनर्थकर पशु-बध करना आरंभ किया था, उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

उपनिषद् के अनुसार–

काम क्रोध लोभादाय: पशवः ।

अर्थात् 'काम, क्रोध, लोभ, मोह–यह पशु हैं, इन्हीं को मारकर यज्ञ में हवन करना चाहिये।'

'महानिर्वाण तन्त्र' में भी इसी आशय का श्लोक आया है–

काम क्रोध मुलोभ मोह पशु कांश्छित्वा विवेकासिना ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मांसं निर्विषयं परात्त सुखदं भुञ्जति तेषां बुधाः ॥

अर्थात् 'विवेकी पुरुष काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी पशुओं को विवेकरूपी तलवार से काटकर दूसरे प्राणियों को सुख देने वाले निर्विषय रूपी मांस का भक्षण करते हैं ।'

कामक्रोधौ द्वौ पशु इमावेव मनसा बलिमर्पयेत् ।
कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलि कृत्वा जपं चरेत् ॥

"काम और क्रोध रूपी दोनों विघ्नकारी पशुओं का बलिदान करके उपासना करनी चाहिए, यही शास्त्रोक्त बलिदान का रहस्य है ।'

अलंकारिक रूप से यह आत्म-शुद्धि की, कुविचारों, पाप-तापों कषाय कल्मषों से बचने की शिक्षा है ।

गीता में लिखा है कि मन और बुद्धि को अर्पण करनी चाहिए(१२। ८) किन्तु विषयासक्त मन बुद्धि की संज्ञा पशु है और अर्पण ही बलि है ।

परमार्थसार में लिखा है कि "मायापरिग्रह वशाद् बोधो मलिनः पुमान् पशु भवति' अर्थात् माया के कारण मलिन बुद्धि होने से मनुष्य पशुभाव को प्राप्त होता है । तन्त्र में कहा है—'इन्द्रियाणि पशून हत्वा' इन्द्रिय रूप पशु का वध करे ।"

एक विद्वान का कहना है कि पशु जगत् में इन्द्रियों सर्वोपरि हैं और उन्हीं का संचालन वहाँ प्रधान साधन है । किन्तु मनुष्यमें जीवात्मा सर्वोपरि है और जीवात्मा तथा इन्द्रियों के मध्य में अन्तःकरण है । इनके पशु स्वभाव को कामात्मक स्वार्थ के लिए व्यवहृत न कर ईश्वर के अनेक होने के संकल्प (एकोऽहं बहुस्याम्) अर्थात् इच्छा-शक्ति की, जिसकी संज्ञा महाविद्या है, पूर्ति रूपी यज्ञ में व्यहृत होने के लिए महाविद्या को समर्पित करना अर्थात् ईश्वर के दिव्य गुण शक्ति सामर्थ्य आदि को प्रकाशित करने योग्य बनाना ही यथार्थ पशुबलि है । जीवात्मा रूपी होता को सद्बुद्धि रूपी स्रुवा में इस पशु-स्वभाव के साथ संयोजित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर ब्रह्माग्नि में अर्पण करना अर्थात् ब्रह्म के निमित्त सृष्टि-हित कार्य में प्रवृत्त करना ही, यज्ञ में इनकी बलि करना है।

तन्त्र के एक प्रसिद्ध लेखक ने अपने एक ग्रन्थ में बकरे को काम, भैंसे को क्रोध, विलाव को लोभ, भेड़े को मोह और ऊँट को मात्सर्य कहा है और इन्हीं विकारों के त्याग को पशुबलि कहा है।

यजुर्वेद में ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे यह अभिप्राय निकलता है कि अग्नि, वायु और सूर्य ही पशु हैं। यथा–

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त ।

अर्थात् अग्नि पशु था, उस द्वारा यज्ञ किया।

वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त ।

अर्थात् वायु पशु था, उस द्वारा यज्ञ किया।

सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त ।

अर्थात् सूर्य पशु था, उस द्वारा यज्ञ किया।

'एतरेव ब्राह्मण (१।२१ में पाशवो व इवा हुआ' इस पृथ्वी को ही पशु कहा गया है। क्या इन सबको काट-काटकर होमा जायगा? अन्न से बनी हुई वस्तु तथा (रोटी और पूरी आदि) खाद्य पदार्थों को भी पशु माना गया है।

चरक संहिता में 'अज' औषधि का वर्णन है–

अजानां-मौषधि रंजं शृगति, विजायते।

—चरक संहिता प्र०

क्या उपरोक्त वाक्य में वर्णित अजा बूटी के स्थान पर बकरी की औषधि बनावेगा?

महाभारत में भी अजा का अर्थ औषधि और बीज ही किया गया है–

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्य मिति वा वैदिकी श्रुतिः।

अज संज्ञानि बीजानि, छाग तो हन्तमर्हथ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नेष धर्मः सतां देवा यत्र वध्यते वै पशु ।

—महाभारत शान्ति ३३७

अर्थात् "बीजों को यज्ञ में हवन करना चाहिये, ऐसी ही वेद की श्रुति है । अज संज्ञक बीज होते हैं । इसलिए बकरे का हनन करना उचित नहीं, जिस कर्म में पशु की हत्या होती है, वह सज्जनों का धर्म नहीं ।

वैद्यक ग्रन्थों में अनेक पशुवाचक शब्द आते हैं । यथा—

अश्व=अश्व गन्धा । ऋषभ=ऋषभक कन्द । श्वान=कुकर कुत्ता । बराह=वराहीकन्द । काक=काकमाची । अज=अजमोद । मत्स्य=मत्सयाक्षी । लोभ=जाटुमांसी । महिष=महिषाक्ष गुग्गुल । मेष=वकवड़, मेषमर्णी । मातुल=धतूरा । मृग=महादेवी वूटी । पशू =मोथरा । कुमारी=घृतकुमारी । रुधिर=केशर । पेश=जटामांसी । हृद=दालचीनी ।

पशुवाचक शब्दों के अन्य प्रकार के भी अर्थ होते हैं—

(१) अज या छाग—तीन या सात वर्ष के पुराने धान, राशिचक्र में की मेष राशि ।

(२) धेनु—धाना (अथर्व १२४।३२), पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्योलोक, दिशाएं आदि (अथर्व० ४।३९) ।

(३) गो—तण्डुले, शमीवृक्ष (ऋग्वेद १०।३।१०) रश्मि, चन्द्रमा, दूध, चर्म धनुष की डोरी आदि (निरुक्त अ० २, पा० २, ख० १—३) ।

(४) अश्व—तण्डुल के कण (अथर्व० कां० ११, सू० ३ पर्याय १, म० ५) सूर्य अश्वपणी या असगन्धा औषधि (यजु० २१।२८), एक नक्षत्र आदि ।

(५) अक्षा—सोम औषधि आदि (ऋग्वेद १०।२८।११) ।

(६) रुषभ—ओदन (अथर्व० ११।९।३५), वादन, ऋषभ औषधि आदि ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरुष-सूक्त में लिखा है कि 'अबध्नन् पुरुषं पशून'—अर्थात् ईश्वर को ही पशु मान यज्ञ में समर्पण किया, ईश्वर के अपने को यज्ञ अथवा बलि करने से ही सृष्टि हुई और ऋषि, देवता आदि ने भी उन्हीं की शक्ति की बलि अथवा प्रयोग कर सृष्टि-यज्ञ किया, यही आदि पशुबलि हुई।

यदा पिष्ठान्यथलोमानि भवन्ति।
यदाय आनयति अथ त्वमवति।
यदासंयोत्थय मांसं भवति सतत इव हि तिहि ।
भवति संततमिव हि मांसं यदाशृतोऽथास्थि भवति।
दारुण उत्र हि तर्हि भवति। दारुण: मित्थास्थि ।
अथ यदुद्वासयन्नभिधारयमि तं मज्जानं ददाति।
ऐ षो स सम्पद्यदाहु पाच्य: पशुरिति।

—शतपथ १।२।३।६

अर्थात् "अन्न का पिसा हुआ आटा ही रोम (बाल) है। जब उस पिसे हुए आटे में जल मिलाते हैं, तो वह चमड़ा हो जाता है। (क्योंकि) चमड़े के समान कोमल होता है (जब वह आटा गूँथा जाता है जब वह सेका जाता है, तब वह अस्थि कहलाता है (क्योंकि अस्थि कड़ी होती है जब उसमें घी डाला जाता है, तो उसका नाम मज्जा होता है ।"

पशुर्ह वा एष आलम्भते तत्पुरोडश: ।—शतपथ १. २. ३. ५

अर्थात् 'निश्चय ही पुरोडाश (चावल या जौ की पीठी) ही पशु है।

स यावद्वीर्यवद्धास्य हविरेव भवति, य एवमेतद्वेदात्रो सा सम्पद्ददाहु: पाक: पशुरिति। —शतपथ १. २. ३. ७

अर्थात् 'सब पशुओं के आलम्भन से कितना फल है, निश्चय रूप से उतना ही हवि, धान और जौ से होता है। पाँचों पशुओं—गौ, अश्व, पुरुष, अज और हवि की श्री इसी हवि में विद्यमान है।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऊपर की पंक्तियों से स्पष्ट है कि चावल या जौ की पीठी ही पशु है अतः यज्ञ में इन्हीं का हवन कराना चाहिए, न कि मांस द्वारा पशुओं का वध करके ।

ऐसे ही प्रमाण एतरेय ब्राह्मण (२।२।२१) में भी मिलते हैं :–

पशुभ्यो वै मेध उदक्रमपतौ व्रीहि वचेये यवश्च भूतावर्ज य तास्।

"पशुओं में से हवनीय तत्व पृथ्वी में चला गया, जो चावल और जौ के रूप में ऊपर आया है।"

ब्राह्मण ग्रन्थका यह वाक्य पशुओंके बलिदानका स्पष्ट निषेध करता है और चावल तथा जौ के आटे की ही बलि देने का आदेश देता है ।

शास्त्रकारों के उपरोक्त बचनों से स्पष्ट है कि पशु-वध, मांसाहार अथवा पशु-बलि आदि के अलंकारिक अर्थ है, जिन्हें न समझकर प्रत्यक्ष व्यवहार होने लगा, जो अर्थ का अनर्थ और घोर जघन्य कार्य है ।

पुराणों में भगवती के साथ राक्षसों का जो युद्ध-वर्णन है, उसमें लिखा है कि उनके भय-से राक्षसों के मांस और रक्त सूख जाते हैं। सम्भवतः इसलिए कवियों ने यह कल्पना कर ली है कि माता रक्त-मांस खाती है अथवा वह इसके अर्पणसे प्रसन्न होती है। यह प्रतीकात्मक वर्णन भले ही हो सकता है। वह प्रत्यक्ष मांस के पूजन विधान से कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकती और न ही ऐसे निर्दयी साधक को क्षमा कर सकती है । माँ तो विश्व के अणु-अणु में समाई हुई है, कौन-सा ऐसा स्थान है, जहाँ वह नहीं है । कौन-सा प्राणी है जिसमें वह नहीं है ।

श्वेताश्वतरोनिषद् का यही कहना है–

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत व कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेम वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ।।४।३

अर्थात् "तू स्त्री है, पुरुष भी तू है, तू ही कुमार और कुमारी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है तू वृद्ध होकर लाठी के सहारे से चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब ओर मुख वाला हो जाता है।"

नीलः पतङ्गो हरतो लोहिताक्ष—
स्तडिन्दगम ऋतव. समुद्राः।
अनदिमत्वं विभुत्वेन वर्तसे,
यतो जातानिभुवनानि विश्वा।

अर्थात् 'तू ही नील पतंग है, हरे रङ्ग का और लोहित वर्ण के नेत्र वाला है, तू मेघ ऋतु और सप्त समुद्र है, तुझ से ही सब लोक प्रकट हुए हैं। तू अनादि प्रकृतियों का स्वामी है और सब में व्याप्त हो रहा है।"

यदि यह सत्य हैं तो माँ की उपासना के विधान में मांस के प्रत्यक्ष प्रयोग की कभी भी आज्ञा नहीं दी जा सकती। यदि कोई साधक ऐसा करते भी हैं तो वह भगवती के कोप भाजनहो बनेंगे, क्योंकि वह जघन्य पाप के अपराधी माने जायेंगे।

मत्स्य :—

तन्त्रों में मत्स्य का विधान लिखा है। इसके अनुकल्प है लाल मूली और बेंगन आदि। योगिनी तन्त्र के अनुसार—

मांस मत्स्यन्तु सर्वेषां लवणाद्रकमीरितम्। —४-४

अर्थात् "सबका मांस, मत्स्य (मछली) और लवण आदिक कहा गया है।"

कुलार्णव तन्त्र में भी जहाँ मत्स्य का विधान है, वहाँ बैंगन, मूली या पानीफल अर्जित करने का विधान है। श्री एम० पी० पण्डित ने मत्स्य प्रतीकात्मक रूप इस प्रकार लिखा है—"ममत्व की भावना त्याग स्वयं से तादात्म्य जिसके फलस्वरूप विश्व के सुख दुःख दोनों ही समान भोग्य हो जाते हैं।"

मत्स्य और उसका सेवन करने वाले सच्चे मत्स्य-साधक के शास्त्रों में इस प्रकार लक्षण दिए गए हैं—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मानसादीन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत् ।
स मीनाशो भवेंद् देवि इतरे प्राण हिंसका ।

"मन आदि सारी इन्द्रियों को वश में करके आत्मा में लगाने वाले को ही मीनाशी करते हैं। दूसरे तो जीव हिंसक हैं ।"

अहंकारो दम्भो मदपिशुनतामत्सरद्विषः ।
षडेतात्मीनान् वै विषयहर जालेन विधृतान् ।
पचन् सद्विद्याऽग्नौ नियमित कृतिर्धीवरकृतिः ।
सदा खादेत्सर्वान्न च जलचराणांपु पशितुम् ।

—तन्त्र तत्व प्रकाश

'अहंकार, दम्भ, मद पिशुनता, मत्सर, द्वेष—ये छः मछलियाँ हैं । इनको धीमर की तरह विषय-विराग रूपी जाल में पकड़े । उनको सद्विद्या रूपी अग्नि पर पकाकर नियमपूर्वक काम में लाता रहे। इसके अतिरिक्त जल में रहने वाली मछलियों को खाना तो सर्वथा धर्म विरुद्ध पापकर्म है ।

यत्समानं सर्वमूले सुख दुःख मिदं प्रिये ।
इति यत्सात्विकं दानं तन्मत्स्यः परिकीर्तितः ।

"सब प्रकार के सुख दुःखों में मेरी ही भाँति समभाव रखना चाहिए । यह सात्विक ज्ञान ही मत्स्य है ।'

गङ्गायमुनोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौचरतः सदा ।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तुः स भवेन्मत्स्य साधकः ।

'गङ्गा-यमुना के भीतर सदा ही दो मत्स्य विचरण करते रहते हैं । जो व्यक्ति उन दोनों का भक्षण करता है । उसका नाम मत्स्य-साधक है !" गङ्गा-यमुना से आशय है मानव शरीरस्थ इड़ा और पिंगला नाड़ी का । उनमें निरन्तर बहने वाले श्वास-प्रश्वास ही दो मत्स्य हैं । जो व्यक्ति प्राणायाम द्वारा इन श्वास-प्रश्वास को रोककर कुम्भक करते हैं, वे ही यथार्थ मत्स्य-साधक हैं ।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनसा चेन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत् ।
मत्स्याशी स भवेद्देवि शेषाः स्युः प्राणि हिंसकाः ।

अर्थात् 'अपनी समस्त इन्द्रियों के समुदाय का भली-भाँति संयम करके मन में खूब नियन्त्रित करके फिर आत्मा में योजित करना चाहिये। हे देवि ! यह मत्स्याशी होता है, शेष अन्य प्राणियों के हिंसक ही होते हैं ।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इन्द्रियों का वशीकरण, दोषों तथा दुर्गुणों का त्याग, साम्यभाव की सिद्धि और योग-साधन में रत रहना ही मत्स्य का ग्रहण करना है। इस सांकेकित भाषा को न समझ कर प्रयत्न मत्स्य के द्वारा पूजन करना अर्थ का अनर्थ होगा साधना क्षेत्र में एक कुप्रवृत्ति को बढ़ावा देना होगा।

'मत्स्य' शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके नाम से एक अलग पुराण की रचना की गई है। मत्स्य पुराण में सृष्टि रचना के अन्य कारणों के साथ एक कारण मत्स्य को भी बताया गया है। वहाँ मत्स्य का अभि-प्राय एक प्रकार का प्राण है, जो जगत के बीच में केन्द्रित हो जाता है और विषुवत् रेखा से उत्तर ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव तक भ्रमण करता रहता है। इसी क्रिया को भौतिक सृष्टि के उत्पन्न होने का कारण बताया गया है।

मत्स्य पुराण में मत्स्य को भगवान का रूप दिया गया है । भग-वान विष्णु स्वयं मत्स्य का रूप धारण करते हैं। और राजर्षि सत्यव्रत को आगामी प्रलय के प्रति सावधान करते हैं। उन्हें वे बचाते भी हैं। यहाँ सत्यव्रत से अभिप्राय वैवस्वत मनु से है, जो जगत के मूल बीजों को सुरक्षित रखने के लिए तप का व्रत लेते हैं। मत्स्य रूप भगवान ने मनु की परीक्षा ली। उन्होंने एक महान् कर्म भार अपने कन्धों पर लिया था, अतः उन्हें अहंकार का महारोग न हो जाय, उन्हें सावधान किया। पहले वह एक मत्स्य के रूप में प्रस्तुत हुए, बड़े होते होते इतने बड़े हो गये कि समुद्र में भी नहीं समा पाए। तब मनु का अहङ्कार तिरोहितहो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गया और वह समझ गये कि यह भगवान का ही प्रतिरूप मत्स्य है। भगवान विष्णु ने मत्स्य रूप में अवतार लिया। इस पवित्रतम रूप का उसे श्रेय दिया गया उस पवित्र रूप की हम पूजा-उपासना करते हैं। उसे काटकर खाना एक ऐसा अपराध होगा, जिसे भगवान कभी क्षमा नहीं करेंगे।

पुराणों में विष्णु के मत्स्य रूप ग्रहण करने का आधार कुछ विद्वान यह मानते हैं कि ऋग्वेद में इन्द्र को जल में निवास करने वाला महा-मत्स्य बताया गया है। विष्णु को उपेन्द्र-छोटा-इन्द्र, इन्द्र का सखा आदि की उपाधि तो वेद में दी गई है। अतः सम्भव है इस रूप का अवतरण ऐसे ही हुआ हो। इन्द्र वेद में परमात्मा का वाचक नाम है। अतः मत्स्य को ईश्वरीय विभूति ही घोषित किया है।

अन्य देशों में भी यह पवित्रता की प्रतीक थी। मिश्र में माता 'आइसिस' की जो मूर्तियां उपलब्ध होती हैं, उनके सिर पर 'मत्स्य' की स्थापना दृष्टिगोचर होती है। इसे वह विश्व की पिता शक्ति का प्रतीक मानते थे। इसी कारण से प्राचीनकाल में वहाँ मन्दिरोंमें विधान बनाया गया था कि वहाँ के पुजारी मत्स्य को आहार रूप में खा सकेंगे।

Myths of Babylon and Assyria पुस्तक में लिखा है कि सुमेरी सभ्यतां में एरिदु नगर का 'या' देवता माना जाता था। इस 'या' देवता का रूप मत्स्य जैसा था। इससे स्पष्ट है कि सुमेर में प्राचीन काल में मत्स्य रूपी देवता की पूजा होती थी।

इससे मत्स्य पवित्रता का ही प्रतीक सिद्ध होता है। इसको इसी रूप में ग्रहण करना उपयुक्त है।

मुद्रा—

मुद्रा के महात्म्य का वर्णन करते हुए कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है—

इत्यादि पञ्चमुद्राणां वासनां कुलनायिके।
ज्ञात्वा गुरुमुखाद्देवि यः सेवेतः स :मुच्यते ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"हे कलनायिके ! हे देवि ! ये उपर्युक्त पंच मुद्राओं की वासना को गुरुके मुख से समझकर और ज्ञान प्राप्त करके जो सेवन किया करता है, वह मुक्ति को प्राप्त किया करता है।

मुद्रा का अनुकल्प है चावल, धान। योगिनी तन्त्र में कहा है—

भ्रष्टधान्यादिकं यद्वच्चर्वणीयं प्रचक्षते सा मुद्रा ।

"भ्रष्ट धान्यादि अर्थात् जो भुने हुए चर्वणीय द्रव्य है, उन्हीं को मुद्रा कहते हैं ।"

कुलार्णव तन्त्र में चावल; गेहूँ अथवा धान को ही मुद्रा के स्थान पर चढ़ाने के लिए आदेश दिया गया है।

मुद्रा का दिव्य रूप है—बुराईयों का त्याग। ज्ञान की ज्योति से अपने अनन्तर को जगमगाने वालाही मुद्रा साधक कहा जाता है। शास्त्रों के अन्यवचन भी यही सिद्ध करते हैं।

आशा तृष्णा महामुद्रा ब्रह्माग्नौ परिपाचिता ।
ऋषयाऽश्नन्ति नियतं चतुर्थी सैव कीर्तिता ।।

—कैलाश तन्त्र ८० पटल

अर्थात् "आशा और तृष्णा महा मुद्रा है, जो ब्रह्म की अग्नि में परिपाचित होती हैं। ऋषिगण नियत रूप से इनका अशन कर जाते हैं, वही चतुर्थी कही गई है ।"

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकामुद्रितश्चरेत् ।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलः पारदोपमः ।।
सूर्य कोटि प्रतीकाशः चन्द्रकोटि सुशीतलः ।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनी युतः ।।
यस्य ज्ञानोदय स्तत्र मुद्रासाधक उच्यते ।

—आगम सार

"हे देवेशि महापद्म में मुद्रित कर्णिका के अन्दर पारद की भाँति आत्मा का निवास है। यद्यपि उसका तेज करोड़ों सूर्यों के समान है, परन्तु स्निग्धता में वह करोड़ों चन्द्रमाओं के तुल्य हैं। यह परम पदार्थ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतिशय मनोहर तथा कुण्डलिनी शक्ति से समन्वित है। जिसके अनन्तर में यह ज्ञान उदय हो जाता है, वही यथार्थ मुद्रा-साधक है ।"

आशातृष्णाजुगुप्साभय विशदघृणामान लज्जा प्रकोपाः ।
ब्रह्माग्निकष्ट मुद्राः परसुकृतिजनः पच्यमानाः समन्तात् ॥
नित्यं समक्षयेतानवहितमनसा दिव्यभावानुरागो ।
योऽसौ ब्रह्मांडभाडे पशुहति विमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा ॥

—तन्त्र तत्व प्रकाश

"आशा तृष्णा, जुगुप्सा, भय घृणा, घमण्ड, लज्जा, कोप ये आठ कर्षदायक मुद्राएँ है सत्कर्म में निरत पुरुषों को इन्हें ब्रह्मरूप अग्नि में ५का डालना चाहिए। दिव्य भावानुरागी सज्जनों को सदैव इनका सेवन करके सार ग्रहण करना चाहिए। ऐसे पशु-हत्या से विरत साधक ही पृथ्वी पर शिव के तुल्य माननीय पदवी प्राप्त करते हैं ।

सत्संगेन भवोन्मुक्तिरसत्संगेषु बन्धनम् ।
असत्संग मुद् गुणे यत तन्मुद्रापसरिकीर्तितम् ॥

—विजय तन्त्र

"सत्संग से मुक्ति प्राप्त होती है और असत्सङ्ग से बन्धन होता है। अतएव असत्सङ्ग त्यागने का नाम मुद्रा है।"

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रा न वेत्ति य ।
शतकोटिजपेनाऽपि तस्य सिद्धिर्न जायते ॥

—मन्त्र मुक्तावली

अर्थात् 'मन्त्र का अर्थ और मन्त्र-चैतन्य की योनि मुद्रा जो पुरुष नंहीं जानता है वह चाहे सौ करोड़ भी जप क्यों न करे, उसकी कदापि सिद्धि नहीं होती है।"

मुद्रा शब्द 'मुद' धातु से बना है, जिसका अर्थ है प्रसन्न करना । उपासना में इसका नामकरण इसलिए किया गया है क्योंकि इससे देवताओं को प्रसन्नता होती है।

देवनाम् मोददा मुद्रा ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और भी—

मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च ।
तस्मान्मुद्रा इयि ख्याता दर्शितव्याः कुलेश्वरि ॥

—कुलार्णव तन्त्र

"हे कुलेश्वरि ! देवताओं को मुद अर्थात् आनन्द उत्पन्न करने से और उनके मन को उपासक के प्रति द्रवित कर देने से मुद्रा—यह नाम पड़ा है, जो कि अवश्य ही देवों को दिखानी चाहिए ।"

उपासनाकाल में आन्तरिक भावों को व्यक्त करने के लिए ब्राह्य शरीर की विशेष भंगिमाएँ हैं, उन्हें मुद्रा कहते हैं । यह उपासक के आंतरिक भावों की भाषा है, जिसके माध्यम से वह अपने इष्ट देवता से वार्तालाप करता है, क्योंकि बाह्य रूप से उसके शरीर के अवयवों का संचालन होता है, यह उसके हृदय और मन का प्रतीक माना जाता है । हाथों और अंगुलियों की सहायता से बनाई गई यह भंगिमाएँ जब बार-बार उसी रूप में बनाई जाती है, तो वह आंतरिक भावों का रूप ही बन जाती है । ऐसा लगता है जैसे सूक्ष्म ही स्थूल आकार में साकार हो गया है और दोनों में कोई अन्तर नहीं है ।

मुद्राओं की संख्या १०८ है । आवाहन, विसर्जन अर्घ्य आदि उपासना के सभी अंगों के लिए मुद्राओं का विधान है । आवाहन के लिए आवाहन मुद्रा, अर्घ्य के लिए मत्स्य मुद्रा किसी वस्तु को ढकने के लिए अवगुंठन मुद्रा । योनि मुद्रा से भगवती को आकर उपासक के सामने बैठने का निवेदन किया जाता है ।

मुद्राओं का प्रयोग काम्य कर्म, प्रतिष्ठा, स्नान, आवाहन, नैवेद्य, अर्पण और विसर्जन के साथ किया जाता है ।

'नित्योत्सव' में मुद्राओं के विभिन्न प्रकारों का विवेचन इस प्रकार किया गया है—

श्री गुरुवन्दन मुद्रा—सुसुखं, सुवृत, चतुरस्त्र मुद्गर, योनि ये गुरुवन्दना की मुद्राएं होती हैं, जिसमें बिकसित कल्प होकर उत्तान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अञ्जलि होती है, वही ससुख मुद्रा है। यही मुष्टीकृत हो, तो सुवृत हो जाती है। दश-वास करतलों को ऊर्ध्वांधा स्थिर कर अंगुलियों का मणिबन्ध के साथ सम्बन्ध करने पर चतुरस्त होती है। अधरोत्तर वाम मुष्टियों को स्नाभिमुख्य में योजक करने पर मुद्गर होती है। अंगुलियों को तिरछी मिलाकार मध्यमांगुलियोंके पीछे ऊपर-नीचे वामदखाअनामिकाओं के तिरछे होने पर तर्जनियों से निपीड़ित कर वाम कनिष्ठका को दक्षिण से पकड़ कर दोनों अंगूठों के अग्र भागों को मध्यमा से आगे मध्य पर्वद्वय से सम्बन्ध करने पर योनि-मुद्रा बनती है। अन्य मुद्राओं के नाम इस प्रकार हैं।

अर्घ्य स्थापन मुद्रा—मत्स्व:, अस्त्रं, अवगुन्ठनं, धेनु योनि और गालिनी मूद्राएँ अर्घ्यस्थापन में आती हैं। विस्तार अधिक हो जाने के कारण इन सबके बनाने की बिधि यहाँ नहीं लिखी जाती है। वस्तुतः मुद्राओं का ज्ञान गुरु से प्राप्त कर अभ्यास कर लेना चाहिए। तभी सार्थक सिद्ध ज्ञान भी होगा।

अर्चन मुद्रा—आवाहनी, संस्थापनी, सन्निधायनी, सन्निरोधनी, सन्मुखीकरणी, अवगुन्ठनी, वन्दनम्, धेनु योनि, तत्वमुद्रा, ज्ञान मुद्रा—ये अर्चना में आती हैं।

सर्वसंक्षोभिणी — सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्पणी, सर्वेश्वरी, सर्वोन्मादिनों, सर्वमहंकुश, सर्वंश्वेश्वरी, सर्वबीजम, सर्वविखण्डा, प्राणामुद्रा अपान, व्यान, उदान, समान, नाराच, चक्रम—ये भी मुद्राएं होती हैं। मुख, करसस्पुट, षडङ्ग मुद्राएँ हैं। शक्त्युत्यापिनी, पाश अंकुश चाप, बाण मुद्राएँ भी हैं। ये पचास मुद्राएँ हैं। इनके प्रकार का भेद भी तन्त्रों में पाया जाता है।

मन्त्र कौमुदी के अनुसार—

भगवान श्री रामचन्द्र की ज्ञानमुदा है, जिनमें शर के सहित धनुष है। श्री वत्स और कौस्तुभ वाली गारुड़ी मुदा है और दूसरी मोहिनी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। नारसिंह, बाराही, हयग्रीवी और उनकी प्रिया काममुद्रा—ये सभी विष्णु भगवान की मुद्राएँ कही गयी हैं।

त्रिशूला नाम की लिंग योनि, वराभीती, मृगात्मिका, खट्वांगा, कपाला और डमरू—ये शिव की मुद्रिकाएँ होती हैं। सूर्य की पद्मा नाम वाली एक ही मुद्रा होती है। क्रम से दन्द विघ्न, पाश, अंकुश, धराभीती और खड्ग—ये दुर्गा की मुद्रायें हैं। धनुष, शर, धर्माख्या और मौसली से दुर्गा की मुद्राएँ होती हैं और लक्ष्मी की मुद्रा उसका अर्चन ही है।

शास्त्रों में योगिक मुद्राओं का वर्णन भी आता है। शिव संहिता में १० मुद्राओं की चर्चा है।

महामुदा महावंधो महावेधश्च खेचरी।
उड्डियान मूलवन्धश्च वन्धो जालन्धराभिधः॥
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्।
इदं हि मुद्रा दशकं जरामरणनाशनम्॥

अर्थात् "महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डयान मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, विपरीत करणी, वज्रोली और शक्ति चालन—ये १० मुद्रायें जरा और मृत्यु को नष्ट करने वाली हैं।

घेरण्ड-सहिता के अनुसार मुद्राएँ २४ प्रकार की हैं—
महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डियानं जलन्धरम्।
मूलबधो महाबन्धो महावेधश्चखेचरी।
विपरीतकरी योनिबज्रोली शक्तिचालनी।
ताड़गी मांडुगी मुद्रा शाम्भवी पंचधारणा॥
कश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी।
चतुर्विशति मुद्राणि सिद्धदानीहयोगिनाम्॥

अर्थात् "महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डयान, जालन्धर, मूलबन्ध महाबन्धी, माहवेध, खेचरी विपरीतकरणी, योनि, वज्रोली शक्तिचालनी,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ताड़ागी, मांडुकी शाम्भवी पार्थिवी, आम्भसी, वैश्वानरी, वायवी, आकाशी अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी और भुजङ्गिनी—ये २४ मुद्राएँ योगियों को सिद्धि प्रदान करने वाली हैं।"

मुद्राओं का उद्देश्य शरीर को दृढ़ करके प्राणवायु को अंग विशेष में स्थिर करना है, जिससे मन धारण की साधना के उपयुक्त बन जाता है। इनसे लौकिक व परलौकिक सभी प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं।

महामुद्रा से अहङ्कार, अविद्या, भय, द्वेष, मोह आदि के पञ्च क्लेशदायक विकारों का शमन होता है। भगन्दर, बवासीर, संग्रहणी प्रमेह आदि रोग दूर होते हैं। शरीर का तेज बढ़ता है और वृद्धावस्था दूर हट जाती है। महावेध के लाभ भी महामुद्रा की तरह ही हैं। इसके अतिरिक्त चक्रभेदन का मार्ग इससे प्रशस्त हो जाता है और कुण्डलिनी जागरण में सहायता मिलती है। महावेध के लाभ हैं—जठराग्नि की तीव्रता, बालों का जल्दी सफेद न होना,शरीर पर झुर्रियाँ न पड़ना प्राण का सूक्ष्म होकर सुषुम्ना में गमन आदि।

खेचरी मुद्रा से कपाल गह्वर में होकर प्राण शक्ति का संचार होने लगता है और सहस्रदल कमल में अवस्थित अमृत-निर्झर झरने लगता है, जिसके आस्वादन से एक बड़ा ही दिव्य आनन्द आता है। प्राण की ऊर्ध्वगति हो जाने से मृत्यु-काल में जीव ब्रह्म-रन्ध्र में होकर ही प्रयाण करता है, इसलिए उसे मुक्ति या स्वर्ग की सद्गति प्राप्त होती है। गुदा आदि अधोमार्गों से जिनका प्राण निकलता है वह नरकगामी तथा मुख, नाक, कान से प्राण छोड़ने वाला मृत्यु लोक में भ्रमण करता है। किन्तु जिसका जीव ब्रह्मरन्ध्र में होकर जायगा, वह अवश्य ही सद्गति को प्राप्त करेगा खेचरी मुद्रा द्वारा ब्रह्मांड स्थित शेषशायी सहस्रदल निवासी परमात्मा से साक्षात्कार होता है। यह मुद्रा बहुत ही महत्वपूर्ण है।

विपरीतकरणी द्वारा ऋण प्राण और धन का एकीकरण होता है,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिससे मस्तिष्क को बल मिलता है। इसका लाभ है—शरीर की स्वस्थता, बालों का शीघ्र श्वेत न होना, जठराग्नि का बढ़ना आदि।

वज्रोली मुद्रा से वीर्य और मूत्र सम्बन्धी दोष दूर होते हैं। प्रमेह और स्वप्नदोष आदि रोग भी नहीं होते। इसका उद्देश्य ब्रह्मचर्य रक्षा है।

शक्तिशालिनी मुद्रा से शरीर में आलस्य और प्रमाद का नाश होकर प्राणों में सक्रियता आती है, जो कुण्डलिनी जागरण के लिये आवश्यक है।

योनि मुद्रा से प्राण और अपान के मिलने की प्रक्रिया सफल होती है, जो कुण्डलिनी जागरण का पूर्व क्रम है।

शाम्भवी मुद्रा के साधक को साक्षात् ब्रह्मस्वरूप कहा गया है। इससे मन और बुद्धि में शान्ति उत्पन्न होती है। मनोलय के लक्षण इसमें दिखाई देने लगते हैं जिससे आनन्द की वृद्धि होती है।

काकी मुद्रा से नेत्र-शक्ति बढ़ती है, पित्त की शांति होती है, अम्ल और पित्त के विकारों का शमन होता है, दिव्य-ज्योति के दर्शन होते हैं।

अश्विनी मुद्रा से दिव्य-ज्योति का प्रकाश, मूलाधार चक्र की शुद्धि, प्राणों में सक्रियता, कुण्डलिनी जागरण के लाभ प्राप्त होते हैं।

मातङ्गिनी मुद्रा से सिर, नेत्र, गले और फेफड़ों के रोगों में लाभ होता है। बाल शीघ्र सफेद नहीं होते, मुख पर अपूर्व चमक आती है। ब्रह्मरन्ध्र में शांति और आनन्द का उदय होता है।

यहाँ कुछ प्रधान मुद्राओं के लाभ वर्णित किये हैं। यह मुद्राएँ तंत्र साधना का अंग है इनसे शारीरिक और आत्मिक दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं।

मैथुन—

मैथुन का अनुकल्प है—उपर्युक्त विधि से पुष्पों का समर्पण।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र में 'लता साधना' को बहुत कलङ्कित किया गया है । इसमें प्रत्यक्ष मैथुन का विधान बताया गया है । वास्तविकता यह है कि तन्त्र में परिभाषिक शब्द होते हैं । उनके अर्थों को न समझने से भ्रम फैलता है । इसी से तन्त्र में तथाकथित गन्दगी का प्रवेश हुआ है । महानिर्वाण तन्त्र में एक गन्दा श्लोक मिलता है ।

मातृ-योनौ क्षिपेत् लिगं भगिन्वा स्तनमर्दनम् ।
गुरोर्मूर्ध्नि पदं दत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।

इसकी व्याख्या श्री एम० पी० पण्डित ने इस प्रकार की है—

'इस पद का शाब्दिक अर्थ स्पष्ट ही है, पर वह इसका वास्तविक अर्थ नहीं है । प्रथम पंक्ति का पूर्वार्द्ध—जीवात्मा को स्वयम्भू लिंग से युक्त मूलाधार केन्द्रकी त्रिभुजाकार योनि में प्रतिष्ठित करने की ओर संकेत करता है। इसी त्रिभुज को मातृयोनि कहा जाता है । जीवात्मा ही लिंग है । इसी स्थल से कुण्डलिनी के साथ योनि होने पर जीवात्मा को ऊपर की ओर ले जाना होना है । जीवात्मा से कुण्डलिनी के योग को पहली पंक्ति के उत्तरार्द्ध में कहा गया है । कुण्डलिनी जीवात्मा की बहिन है और दोनों एक ही शरीर में है । द्वितीय चरण का अर्थ है—कुण्डलिनी और जीवात्मा के मिलने के बाद दोनों संयुक्त रूपसे शीर्षस्थ सहस्रार की ओर जाते हैं, जो कि गुरुके निवास स्थान द्वादश दलों वाले कमल के ऊपर स्थित है । जब योगी द्वादशदलीय कमल के ऊपर चला जाता है, तो उसके चरणों को गुरु के सिर पर अवस्थित कहा जाता है। इस स्तर पर यह कहा जाता है कि यहां गुरु और शिष्य के सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं । मातृयोनि नाम उँगलियों के उन भागों का भी है जिन पर जप की गिनती या मन्त्रोच्चारण नहीं करना चाहिए ।

तंत्र शास्त्रों में जिस मैथुन की ओर संकेत किया है, वह इस प्रकार है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहस्रारोपरिबिन्दौ कुण्डल्या मेलनं शिवे ।
मैथुनं शयनं दिव्यं यतीनां परिकीर्तितम् ॥

—योगिनी तन्त्र

'हे शिवे ! सहस्र पद्मोपरि बिन्दु में जो कुल कुण्डलिनी का मिलन है, वही यतियों का परम मैथुन कहा गया है ।"

मैथुन का अर्थ है मिलाना । साधारण भाषा में स्त्री और पुरुष के मिलन को मैथुन कहते हैं, परन्तु तन्त्र की पारिभाषिक भाषा में मैथुन का अभिप्राय हाड़ मांस वाले स्त्री-पुरुष का नहीं है । स्त्री से अभिप्राय कुण्डिलिनी शक्ति से है, जो हमारे अन्दर सोई हुई है । इसका स्थान मूलाधार है । सहस्रार में शिव का स्थान है । इस शिव और शक्ति का मिलन ही वास्तविक मिलन अथवा मैथुन है । योग की भाषा में सुषुम्ना का प्राण से मिलन ही 'मैथुन' कहा जाता है । शास्त्र का वचन है ।

परशक्त्यात्म मिथुनं—संयोगानन्दनिर्गताः ।
मुक्तात्ममिथुनं तप्र स्त्यादितरस्त्रोनिवेषकाः ।

—तन्त्रसार

अर्थ—'परा शक्ति के साथ आत्मा के विलास-रस में निमग्न रहना हो मुक्ति आत्माओं का मैथुन है । यहां किसी स्त्री इत्यादि का ग्रहण करना नहीं है ।"

इडापिंगलयोः प्राणान् सुषुम्नायां प्रवर्तयेत् ।
सुषुम्नाशक्तिसुद्दिष्टा जोवोष्यं तु परः शिवः ।
तयौस्तु सगमे देवैः सुरतं नाम कीर्तितम् ॥

अर्थात् 'इड़ा और पिंगला से प्राणों को सुषुम्ना में प्रवृत्त करना चाहिए । सुषुम्ना की शक्ति उद्दिष्ट है । यह जीव तो फिर परम शिव है देवों ने उन दोनों के सङ्गम में सुख को बतलाया है ।

यानाड़ी सूक्ष्मरूपा परम पदगता सेवनीया सुषुम्ना ।
सा कान्तालिंगनासी न मनुज रमणीं सुन्दरी वारयोवित् ।३
कुर्याच्चिन्द्रार्कयोगे युगपवन गतं मैथुनं नैव योनी ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमय भवेत् तां परिष्वज्य नित्यम् ।

—भैरव यामल

परमानन्द को प्राप्त हुई सूक्ष्म रूप वाली सुषुम्ना नाड़ी है, यही आवलिंगन करने योग्य सेवनीय कांता है न कि मानवी सुन्दरी वैश्या । सुषुम्णा के सहचक्र के अन्तर्गत परम ब्रह्म के साथ होने का नाम ही मैथुन है, स्त्री सम्भोग का नहीं । विश्ववन्द्य योगीजन सुखमय वनस्थली में ऐसे ही संयोग का परमानन्द प्राप्त किया करते हैं ।

रेफस्तु कुंकुसाभासं कुण्डमध्ये व्यवस्थितः ।
मकारश्च विन्दुरूपः महायोनौ स्थितिः प्रिये ॥
अकारहंसमारुह्य शक्ताश्च महाभवेत् ।
तदा जातो महानन्दो ब्रह्मज्ञानं सुदर्लभम् ॥

"रेफ कुंकुम वर्ण कुण्ड के भीतर रहता है । विन्दुरूप महायोनि में रहता है, आकार रूपी हंस का आश्रय लेने पर जब उन दोनों का एकत्व हो जाता है, तभी सुदुर्लभ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है । ऐसे साधक ही सच्चे मैथुन साधक कहे जाते हैं।"

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि तन्त्र में जहाँ मैथुन शब्द आया है, वहाँ उच्च भावनाओं का उद्रेक है, कहीं भी निम्न भावनाओं का लेश मात्र भी प्रवेश नहीं है । इसकी आलोचना का कारण तन्त्र-ज्ञान का अभाव ही है ।

यह पाँच प्रकारों का रहस्य है । तन्त्र में जहाँ-जहाँ भी मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन शब्द आये हैं, वहाँ उनका अलङ्कारिक वर्णन ही किया गया है, उसे न समझकर भोगवादियों ने अपने मानसिक स्तर के अनुरूप उनके अर्थ निकाल कर उनका प्रत्यक्ष व्यवहार आरम्भ कर दिया, जिससे कि जन साधारण में तन्त्र की उपेक्षा होने लगी और वह निम्नकोटि के विषयलोलुप वर्ग तक ही सीमित रह गये । वास्तव में तंत्र बहुत उच्च स्तर के ग्रन्थ हैं । पंचमकारों से उनको बदनाम करना ठीक नहीं है । उनके अलङ्कारिक रहस्यों को समझना अभीष्ट है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दीक्षा की अनिवार्यता

मानव विकास में गुरु की परम आवश्यकता--

मनुष्य की यह कमजोरी कि वह दूसरों से ही सब कुछ सीखता है, उसके उच्च विकास में बाधक होता है। कारण कि साधारण वातावरण में भले तत्वों की अपेक्षा बुरे तत्व अधिक होते हैं। उन बुरे तत्वों में ऐसा आकर्षण होता है कि सच्चे दिमाग उनकी ओर बड़ी आसानी से खिंच जाते हैं। फलस्वरूप वह बुराईयाँ अधिक सीख लेने के कारण आगे चलकर बुरे मनुष्य साबित होते हैं। छोटी आयु में यह पता नहीं चलता कि बालक किन संस्कारों को अपनी मनोभूमि में जमा रहा है। बड़ा होने पर जब वे संस्कार एवं स्वभाव प्रकट होते हैं, तब उन्हें हटाना कठिन हो जाता है, क्योंकि दीर्घकाल तक वे संस्कार बालक के मन में जमे रहने एवं पकते रहने के कारण ऐसे सुदृढ़ हो जाते हैं कि उनका हटाना कठिन होता है।

ऋषियों ने इस भारी कठिनाई को देखकर एक अत्यन्त ही सुन्दर और महत्वपूर्ण उपाय यह निश्चित किया है कि प्रत्येक बालक पर माँ-बाप के अतिरिक्त किसी ऐसे व्यक्ति का भी नियन्त्रण रहना चाहिए, जो मनोविज्ञान की सूक्ष्मताओं को समझता हो। दूरदर्शी, तत्वज्ञानी और पारदर्शी होने के कारण बालक के मनमें जमते रहने वाले संस्कार बीजों को अपनी पैनी दृष्टि से तत्काल देख लेने और उनमें आवश्यक सुधार करने की योग्यता रखता हो। ऐसे मानसिक नियन्त्रणकर्त्ता की उन्होंने प्रत्येक बालक के लिए आवश्यकता घोषित की।

शास्त्रों में कहा है कि मनुष्य के तीन प्रत्यक्ष देव हैं- (१) माता, (२) पिता, (३) गुरु। इन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपाधि दी है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माता जन्म देती है, इसलिए ब्रह्मा है। पिता पालन करता है, इसलिए विष्णु है। गुरु कुसंस्कारों का संहार करता है, इसलिए शङ्कर है। गुरु का स्थान माता-पिता के समकक्ष है। कोई यह कहे कि मैं विना माता-पिता के पैदा हुआ, तो उसे झूठा कहा जायेगा, क्योंकि माता के गर्भ में रहे बिना कोई किस प्रकार जन्म ले सकता है? इसी प्रकार कोई यह कहे कि 'मैं बिना बाप का हूँ' तो उसे वर्णसंकर कहा जायेगा, क्योंकि जिसके पिता का पता न हो, ऐसे बच्चे तो वेश्याओं के यहाँ पैदा होते हैं। उसी प्रकार कोई कहे कि मेरा कोई गुरु नहीं है, तो समझा जायगा कि यह असभ्य एवं असंस्कारित है, क्योंकि जिसके मस्तिष्क पर विचार, स्वभाव, ज्ञान, गुण, कर्म आदि पर किसी दूरदर्शी का नियन्त्रण नहीं रहा—उसके मानसिक स्वास्थ्य का क्या भरोसा किया जा सकता है? ऐसे असंस्कृत व्यक्तियों को 'निगुरा' कहा जाता है। निगुरा का अर्थ है—बिना गुरु का किसी समय में 'निगुरा' कहना भी वर्णशंकर या मिथ्याचारी कहलाने के समान गाली समझी जाती थी।

बिना माता का, बिना पिता का, बिना गुरु का भी कोई मनुष्य हो सकता है—यह बात प्राचीन काल में अविश्वस्त समझी जाती थी। कारण कि भारतीय समाज के सुसम्बद्ध विकास के लिए ऋषियों की यह अनिवार्य व्यवस्था थी कि प्रत्येक आर्य का गुरु होना चाहिए, जिससे वह महान पुरुष बन सके। उस समय प्रत्येक माता-पिता को अपने बालकों को महापुरुष बनाने की अभिलाषा रहती थी। इसके लिए यह आवश्यकता रहती थी कि उनके बालक किसी सुविज्ञ आचार्य के शिष्य हों।

गुरुकुल प्रणाली का उस समय आम रिवाज था। पढ़ने की आयु के होते ही बालक ऋषियों के आश्रम में भेज दिये जाते थे। राजा-महाराजाओं तक के बालक गुरुकुलों का कठोर जीवन बिताने जाते थे, ताकि कुशल नियन्त्रण में रहकर सुसंस्कृत बन सके और आगे चलकर मनुष्यों के महान गौरव की रक्षा करने वाले महापुरुष सिद्ध हो सकें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'मैं अमुक आचार्य का शिष्य हूँ--यह बात बड़े गौरव के साथ कही जाती थी। प्राचीन परिपाटी के अनुसार जब कोई मनुष्य किसी दूसरे को परिचय देता था, तो कहता था—मैं अमुक आचार्य का शिष्य, अमुक पिता का पुत्र, अमुक गोत्र का, अमुक नाम का व्यक्ति हूँ।' संकल्पों में, प्रतिज्ञाओं में, साक्षी में राजदरबार में अपना परिचय इसी आधार पर दिया जाता था।

मनोभूमि का परिष्कार--

बगीचे को यदि सुन्दर बनाना है, तो इसके लिए किसी कुशलमाली की नियुक्ति आवश्यक है। जब आवश्यकता हो तब सींचना,जब अधिक पानी भर गया हो, तो उसे बाहर निकाल देना,समय पर गोड़ाई निराई करना, अनावश्यक टहनियों को छांटना, खाद देना, पशुओं को चरने न देने की रखवाली करना आदि बातों के सम्बन्ध में माली सदा सजग रहता है, फलस्वरूप वह बगीचा हरा-भरा, फला-फूला, सुन्दर और समुन्नत रहता है।

मनुष्य का मस्तिष्क एक बगीचा है, इसमें नाना प्रकार के मनोभाव विचार, सङ्कल्प, इच्छा, वासना, योजनारूपी वृक्ष आते हैं। उनमें से कितने ही अनावश्यक होते हैं। बगीचे में कितने ही पौधे झाड़-झंझाड़ के अपने आप उग आते हैं, वे बढ़ें तो बगीचों को नष्ट कर सकते हैं,इस लिए माली उन्हें उखाड़ देता है और दूर-दूर से लाकर अच्छे-अच्छे बीज उसमें बोता है। गुरु अपने शिष्य के मस्तिष्क रूपी बगीची का माली होता है। वह अपने क्षेत्र में से जङ्गली झाड़-झंझाड़ जैसे अनावश्यक संकल्पों संस्कारों, आकर्षणों और प्रभावों को उखाड़ता रहता है और अपनी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता एवं चतुरता के साथ ऐसे संस्कार बीज जमाता रहता है, जो उस मस्तिष्क रूपी बगीचे को बहुमूल्य बनावें।

कोई व्यक्ति यह सोचे कि "मैं स्वयं ही अपना आत्म-निर्माण करूँगा, अपने आप अपने को सुसंस्कृत बनाऊँगा, मुझे गुरु की आवश्यकता नहीं" तो ऐसा किया जा सकता है। आत्मा में अनन्त शक्ति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। कल्याण करने की शक्ति उसमें मौजूद है।" परन्तु ऐसे प्रयत्नों में कोई मनस्वी व्यक्ति ही सफल होते हैं। सर्व साधारण के लिए यह बात बहुत कष्टसाध्य हैं, क्योंकि बहुधा अपनी आंखों से अपने आपको नहीं देखा जा सकता। किसी दूसरे मनुष्य या दर्पण की सहायता से ही अपने मुख को देखा जा सकता है। जब कोई वैद्य डाक्टर बीमार होते हैं, तो स्वयं अपना इलाज आप नहीं करते, क्योंकि अपनी नाड़ी स्वयं देखना, अपना निदान आप कर लेना साधारणतया बहुत कठिन होता है। इसलिए वे किसी दूसरे वैद्य या डाक्टर से अपनी चिकित्सा कराते हैं।

कोई सुयोग्य व्यक्ति भी आत्म-निरीक्षण में सफल नहीं होते हैं। हम दूसरों की जैसी आलोचना कर सकते हैं, दूसरों को जैसी नेक सलाह दे सकते हैं वैसी अपने लिए नहीं कर पाते। कारण यह है कि अपने सम्बन्ध में आप निर्णय करना कठिन होता है। कोई अपराधी ऐसा नहीं जिसे यदि मजिस्ट्रेट बना दिया जाये, तो अपने अपराध के सम्बन्ध में उचित फैसला लिखे। निष्पक्ष फैसला करना हो तो किसी दूसरे जजका ही आश्रय लेना पड़ेगा। आत्म-निर्माण का कार्य भी ऐसा ही है, जिसके लिए किसी दूसरे सुयोग्य सहायक की, गुरु की आवश्यकता होती है।

समुचित बौद्धिक विकास की सुव्यवस्था के लिए 'गुरु' की नियुक्ति को भारतीय धर्म में आवश्यक माना गया है। इससे मनुष्य की विचार धारा, स्वभाव, संस्कार, गुण, प्रकृति, आदतें, इच्छायें महत्वाकाक्षायें कार्य पद्धति आदि का प्रयास उत्तम दिशा में हो सकेगा, मनुष्य अपने आप में सन्तुष्ट, प्रसन्न, पवित्र और परिश्रमी रहेगा तथा सद्व्यवहार से सुख पहुँचावेगा। इस प्रकार के सुसंस्कृत मनुष्य जिस देश में अधिक होंगे वहां निश्चय पूर्वक सुख-शान्ति की, सुव्यवस्था की, पारस्परिक सहयोग की प्रेम की साथ ही सद्भाव की बहुलता रहेगी। हमारा पूर्व इतिहास साक्षी है कि सुसंस्कारित मस्तिष्क के भारतीय महापुरुषों ने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कैसे महान् कार्य किये थे और इस भूमि पर किस प्रकार स्वयं को अवतरित कर दिया था ।

हमारे पूर्वकालीन महान् गौरव की नींव में ऋषियों की दूरदर्शिता छिपी हुई है, जिसके अनुसार प्रत्येक भारतीय को अपना मानसिक परिष्कार कराने के लिए किसी उच्च चरित्र, आदर्शवादी, सूक्ष्मदर्शी विद्वान के नियन्त्रण में रहना आवश्यक होता था, जो व्यक्ति मानसिक परिष्कार कराने की निपट आवश्यकता से जी चुराते थे, उन्हें 'निगुरा' की गाली दी जाती थी। 'निगुरा' शब्द का अपमान करीब-करीब बिना बाप का या वर्णसङ्कर रहे जाने के बराबर समझा जाता था । धन कमाना,विद्या, पढ़ना, शस्त्र चलाना—सभी बातें आवश्यक थीं, मानसिक परिष्कार तो सबसे अधिक आवश्यक था, क्योंकि असंस्कृत मनुष्य तो समाज का अभिशाप बनकर ही रह सकता है, भले ही उसके पास कितनी ही अधिक भौतिक सम्पदा क्यों न हो । गुरु को प्रत्यक्ष तीन देवों में तीन परम पूज्यों में स्थान देने का यही कारण था ।

हमारे यहाँ धर्मशास्त्रों के अनुसार मनुष्य ८४ लक्ष योनियों से होकर आता है । उसमें पशु-प्रवृत्तियों के भाव गहरी जड़ जमाये रहते हैं । उनके शमन के लिए दीर्घ प्रयत्न की अपेक्षा रहती है । हिन्दू धर्मशास्त्रों में जीवन का परम लक्ष्य मुक्ति और मोक्ष बताया गया है जिस तक पहुँचने के लिए अत्यन्त दुर्गम मार्गों और घाटियों से होकर गुजरना पड़ता है । यह इतना सरल नहीं है, जितना पुराणों में अतिशयोक्ति शैली में वर्णित है । इस लम्बी यात्राको सफल बनाने के लिए भीमकाय बाधाओं का सामना करना पड़ता है । फिर मार्ग अपना देखा हुआ भी नहीं होता, इसलिए पथिक इस संसार रूपी अरण्य में भटक जाता है । स्वयं किसी साधारण व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचना सर्वथा असम्भव है । कुछ अपवाद भले ही हो सकते हैं, परन्तु सामान्यतः हर व्यक्ति को हर क्षेत्रमें प्रशिक्षण के लिए एक पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहती है। फिर अध्यात्म मार्ग तो सबसे दुर्गम है। इस पर तो बिना पथ-प्रदर्शक के चलना सम्भव ही नहीं है।

दीक्षा की आवश्यकता—

गुरु केवल मार्गदर्शन ही नहीं करते हैं, वरन् वह समय की दीर्घा को कम करते हैं और उसे बहुत ही कम समय में अभीष्ट लाभ की सिद्धि में सहायक होते हैं। इस जगत् में मानव अपूर्ण रूप से आता है। उसे पूर्णता की पूर्ति की अभिलाषा रहती है। इसकी पूर्ति से गुरु ही एक-मात्र सहारा होते हैं। इसलिए दीक्षा की आवश्यकता पड़ती है।

तन्त्र ग्रन्थों की तो यह धारणा है कि—

मूलपद्मे कुण्डलिनी यावत् सा निद्रिता प्रभा।
तावत किञ्चिन्न सिद्धयेत मन्त्रवन्त्रार्चकादिकम् ॥
जागर्ति यदि सा देवि वहुभिः पुण्यसञ्चयैः।
तदा प्रसादमायान्ति मन्त्र यन्त्रार्चनादयः ॥

"मूलाधार में जब तक कुण्डलिनी शक्ति सोई हुई है,तब तक मन्त्र, यन्त्र, अर्चन आदि कर्म सफल नहीं होते। यदि गुरु के पुण्य प्रताप से कुण्डलिनी देवी का जागरण हो गया, तो मन्त्र, तन्त्र, पाठ, पूजन, जप, तप, ज्ञान,ध्यान जो कुछ भी बन पड़ेगा,यह सभी सिद्धि को प्राप्त होंगे। इससे पूर्व जिस दुःखमय जगत् को मिथ्या और नरक माना जाता था वही सत्य और स्वर्ग स्वयं बन जायेगा, क्योंकि शक्ति के जागरण से हर क्षेत्र में सफलता के स्तम्भ स्थापित किये जाने सम्भव होंगे। आत्म-शक्ति के विकास से समस्त भव-व्याधियों का परिष्कार हो जाएगा।'

शास्त्र भी आश्वासन देते हैं—

अज्ञस्य दुःखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत्।
अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशं तु सुचक्षुवान् ॥

अर्थात् 'जो अज्ञ पुरुष होता है उसके लिए यह जगत् दुःखों के समूह से परिपूर्ण होता है और जो ज्ञानी है उसके लिए समस्त जगत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आनन्दमय होता है। जो अन्धा है, उसके लिए समस्त भुवन ही अन्धकार मय है और जो सुन्दर नेत्रों वाले हैं, उनको यही प्रकाशमय है।

जीवन की सफलता में कुण्डलिनी जागरण एक प्रमुख प्रक्रिया है इसे गुरु की सहायता से ही सम्पन्न किया जा सकता है। यही दीक्षा की आवश्यकता का आधार है।

दीक्षा द्वारा कुन्डलिनी शक्ति को मन्त्र-सृष्टि पर प्रकाश डालते हुए शास्त्र में कहा गया है–

यदा भवति सा संविद्द्विगुणीकृतविग्रहा।
सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दं ब्रह्ममयी विभुः॥
शक्ति ततो ध्वनितस्मान्नादस्तस्मान्निबोधिका।
ततोऽर्धेन्दुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत्परा ततः॥
पश्यन्ती मध्यमा वाणी वैखरी सर्ग जन्मभूः।
इच्छा ज्ञान-क्रियात्मासौ तेजोरूपा गुणात्मिका।
क्रमेणानेन सृजति कुण्डली वर्णमालिकाम्॥

अर्थात् द्विगुण विग्रह से युक्त जब वह संविद हो जाती है, तब कुन्डलिनी जो शब्द ब्रह्ममयी विभु है, शक्ति का प्रसव करती है। इसके अनन्तर ध्वनि होती है, उससे नाद होता है और उससे निबोधिका हुआ करती है। फिर उसके पश्चात् अर्ध चन्द्र और उससे बिन्दु होता है। उससे परा पश्यन्ती, मध्यमा वाणी जो वैखरी की जन्म भू होती है। यह इच्छा, ज्ञान और क्रिया स्वरूप है तथा तेजोरूप–गुणात्मक है। इस क्रम से कुन्डली वर्णमालिका का सृजन किया करती है।'

गुणिता सर्वगात्रेषु कुण्डली पर देवता।
विश्वात्मना प्रबुद्धा सा सूते मन्त्रमयं जगत्॥
एकधा गुणिता शक्तिः सर्वं विश्वप्रवर्तिनी।
वेदादिबीजं श्रीबीजं शक्तिबीजं मनोभवम्॥
प्रसादं तुम्बुरं पिण्डं चिन्तारत्नं गणेश्वरम्।
मार्तण्ड भैरवं दीर्घं नारसिंह वराहजम्॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासुदेवं हयग्रीवं बींजं श्री पुरुषोत्तंमम् ।
अन्यान्यपि च बीजानि तदोत्पादयति ध्रुवम् ।।

अर्थात् "यह गुणित और सब गात्रों में कुन्डली पर देवता है । विश्वात्मा के द्वारा प्रबुद्ध वह इस मन्त्रमय जगत् का प्रसव किया करती है। एक बार गुणिदा शक्ति सम्पूर्ण विश्व के प्रवृत्त कराने वाली होती है। वेदादि के बीज, श्री बीजीशक्ति बीज, मनोभाव, प्रसाद,तुम्बुर पिंड चितारत्न, गणेश्वर, मार्तण्ड, भैरव, दीर्ग, नारसिंह, वराहज, वासुदेव हयग्रीव बीज, श्री पुरुषोत्तम बीज, और अन्य-अन्य बीजों को उस समय में निश्चय ही उत्पन्न कर दिया करती है।"

इसलिए शास्त्र का आदेश है कि दीक्षारहित ज्ञान निष्फल होता है—

विना दीक्षा फलं नस्यायमिनां शिवशासने ।
सा च न स्याद्विनाचार्यमित्याचार्यं पुरःसरम् ।।
देवि.दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न सद्गतिः ।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ।।

अर्थात् "बिना दीक्षा के कोई भी फल नहीं होता है, जो शिव के शासन में यमरहित होते हैं। उनको फल नहीं मिलता है। यह दीक्षाभी आचार्य के बिना नहीं होती है, अतएव आचार्य के पुरस्सर ही होवे । हे देवि ! जो दीक्षा से विहीन पुरुष है, उसे न तो सिद्धि होती है और न उसकी सद्गति ही । इससे सभी प्रयत्नों से सद्गुरु के द्वारा दीक्षित होना चाहिये।"

तन्त्र की भाषा में कहें तो यो कहा जा सकता है कि दीक्षा का उद्देश्य समस्त प्रकार के पापों का नाश करके ईश्वर-भाव का विकास करना है। इसके दो मुख्य अङ्ग माने जाते हैं—एक, पाशों का नाश करना और दूसरा, शिवतत्व के साथ शिष्य का योग कराना । इसमें गुरु-शक्ति ही प्रधान कार्य करती है। इसलिए गुरु को सामर्थ्यवान होना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आवश्यक बताया गया है। सामर्थ्यवान गुरु से दीक्षा लेने के लिए शिष्य को भी अपने को अधिकारी सिद्ध करना आवश्यक है।

गुरु शिष्य की परस्पर परीक्षा–

हम चाहते हैं कि हमें व्यास और वशिष्ठ जैसे गुरु मिल जाएं। इसके लिए आवश्यक है कि हम भी रामचन्द्र और जैमिनी जैसे शिष्य बनकर दिखाएं। हर शिष्य चाहता है कि उसे उत्तम गुरु मिल जाएं, परन्तु गुरु भी चाहते हैं कि उन्हें शुकदेव, गौड़पाद, गोविन्दपाद और शङ्कराचार्य जैसे शिष्य मिलें। योग्य गुरु मिलने पर शिष्य का शीघ्र विकास सम्भव होता है और योग्य शिष्य मिलने पर गुरुकी आत्मशक्ति-का कम व्यय होता है। थोड़े परिश्रम और शक्ति से ही अभीष्ट लाभ की सिद्धि हो जाती है। इसलिए शास्त्र का आदेश हैकि दोनों को एक-दूसरे की परीक्षा कर लेनी चाहिए। इसमें दोनों को सुविधा होगी।

गुरुशिष्याधिकारार्थं विरक्तोऽपिशिवाज्ञया ।
किञ्चित्कालं विधायेत्थ स्वशिष्याय समर्पयेत् ॥
तस्यापि नाधिकारस्य योगः साक्षात् परे शिवे ।
देहान्ते शाश्वती मुक्तिरिती शङ्करभाषितम् ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साक्षात् परशिवोदितम् ।
सम्पदाय परिच्छिन्नां सदा कुर्यात्गुरुं प्रिये ।
शक्तिसिद्धिसिद्धार्थं परीक्ष्य विधिवत् गुरुं ॥
पश्चादुपदिशेन्मन्त्रंमन्यथा निष्फलं भवेत् ॥

अर्थात् "गुरु शिष्य के अधिकारार्थ विरक्त को भी शिवजी की आज्ञा से कुछ काल पर्यन्त ऐसा करके फिर अपने शिष्यके लिए समर्पित कर देना चाहिए। उस अधिकार का योग भी साक्षात्, पर शिव में नहीं है। देह के अन्त हो जाने पर शाश्वती मुक्ति होती है–ऐसा भगवान शंकर का भाषित है। इससे सर्व प्रयत्न के द्वारा परशिव के उदित का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिच्छिन्न प्रदान करके हे प्रिये सदा गुरु को करना चाहिए। गुरु को भी चाहिए कि शिष्य की शक्ति, सिद्धि और असिद्धार्थता का विधि सहित परीक्षण करके पीछे मन्त्रका उपदेश देना। अन्यथा सभी निष्फल हो जाता है।'

गुरु शिष्यावुभौ मोहाद्परीक्ष्यचपरस्परम् ।
उपदेश ददद् गृहणन् प्राप्तयातां पिशाचताम् ॥
अशास्त्रीयोपदेशश्च यो गृहणाति ददाति हि ।
भुञ्जते तावुभौ घोरे नरकानेन् विशतीः ॥
अन्यायेन तु यो दद्याद् गृहणात्यन्यायतश्च यः ।
ददतो गृहणतो देविकुलशापो भविष्यति ॥

अर्थात् 'गुरु और शिष्य इन दोनों को ही मोह के वश में होकर परीक्षण परस्पर में न करके ही उपदेश देना तथा उस दिए हुये उपदेश को ग्रहण करना अनुचित है और इससे पिशाचता की प्राप्ति होती है। कशास्त्रीय उपदेश जो देता है या जो इसको ग्रहण करता है, वे दोनों ही अनेक विंशति तक घोर नरक में दुःख भोगते हैं। अन्याय से जो कोई उपदेश देता है और जो भी कोई उसे ग्रहण किया करता है उस उपदेश को देने वाले तथा ग्रहण करने वाले को हे देवि! कुलशाप हो जावेगा।'

ज्ञानेन क्रियया वापिगुरुः शिष्य परीक्षयेत् ।
संवत्सरं तदर्द्धंवा तदर्द्ध चप्रयत्नतः ॥
धनेच्छा भयलोभाद्यै रयोग्यं यदि दीक्षयेत् ।
देवता शापमाप्नोति कृतञ्चं निष्फलं भवेत् ॥

अर्थात् 'ज्ञान के द्वारा अथवा क्रिया के द्वारा गुरु को शिष्य की परीक्षा करनी चाहिए। एक वर्ष तक अथवा उसके आधे भाग में या इसके भी आधे समय तक परीक्षण करे और प्रयत्न करें। धनकी इच्छा भय और लोभ आदि से यदि किसी भी अयोग्य को दीक्षा देता है, तो देवता के शाप को प्राप्त होता है और जो भी कुछ किया हुआ है, वह सब निष्फल हो जाता है।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिकारी व अनधिकारी शिष्य के लक्षण—

अधिकारी शिष्य के लक्षण शास्त्रों में इस प्रकार वर्णन किये गये हैं—

हित सत्यं मितं स्मरेत् भाषणं मुक्तदूषणम् ।
सकृदुक्तग्रहीतार्थं चतुरं बुद्धिविस्तरम् ।।
स्वस्तुतौ परनिन्दायां विमुखं सुमुखं प्रिये ।
जितेन्द्रियं सुसन्तुष्टं धीमन्तं ब्रह्मचारिणम् ।।
त्यक्ताधिव्याधिचापल्यंदु:खभ्रान्तिमसंशयम् ।
गुरुध्यानंस्तुतिकथादेवाचविन्दनात्सुकम् ।।

अर्थात् 'हितप्रद, सत्य और परिमिस दूषण से रहित भाषण का स्मरण करे। एक बार कहा हुआ हो तथा उसके अर्थ को ग्रहण कर लिया जावे। यह चतुर बुद्धि का विस्तार है। अपनी स्तुति में तथा दूसरों की निन्दा से विमुख हो। हे सुन्दर मुख वाली, हे प्रिये ! इन्द्रियों को जीतकर वश में रखने वाले पूर्णरूप से सन्तुष्ट, बुद्धिमान, ब्रह्मचारी आधि, व्याधि, चपलता, दु:ख, भ्रान्ति से रहित, संशय-शून्य, गुरु का ध्यान, स्तुति कथा, देवों का अर्चन और वन्दना में उत्सुक हो।

सर्वकार्यातिकुशलं स्वच्छं सर्वोपकारिणम् ।
कृतज्ञं पापमातञ्च साधुसज्जनसम्मतम् ।।
आस्तिकं दानशीलञ्च सदाभूतहिते रतम् ।
विश्वासविनयोपेतं धनदेहाद्यवञ्चकम् ।।
असाध्यसाधकं शूरंमुत्साहबलसंयुतम् ।
अनुकूलक्रियायुक्तमप्रमत्तं घ विचक्षणम् ।।

अर्थात् "समस्त कार्यो में अत्यन्त प्रवीण, स्वच्छता से युक्त सबका उपकार करने वाला, कृतज्ञ, पापों से डरने वाला, साधु एवं सज्जन पुरुषों का सम्मत, आस्तिक, दानशील, समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला, विश्वास और विनय गुण से युक्त, धन और देहादि का वञ्चन न करने वाला, जो असाध्य कार्य हो, उसकी भी साधना करने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाला शूर, उत्साह और बल से समन्वित, अनुकूल क्रिया से युक्त, प्रमाद से रहित एवं विलक्षण शिष्य होना चाहिए।"

सच्छिष्यन्तु कुलेशानि शुभलक्षणसंयुतम् ।
समाधिसाधनोपेतं गुणशीलसमन्वितम् ॥
स्वच्छदेहाम्बरं प्राज्ञ धार्मिकं शुद्धमानसम् ।
दृढ़व्रतं सदाचारं श्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ॥
दक्षमल्पाशिनं गूढ़चित्तं निर्व्याजसेवकम् ।
विमृष्यकारिणं वीरं मनोदारिद्रवर्जितम् ॥

अर्थात् "हे कुलेशानि ! ऐसाही सच्छिष्य होता है, जो शुभ लक्षणों से युक्त होता है। समाधि के साधनों से युक्त हो तथा गुण और शीलसे भी समन्वित हो। देह और वस्त्र को सदा साफ-सुथरा रखने वाला, प्राज्ञ, धार्मिक और शुद्ध मन वाला होना चाहिए। व्रत पर दृढ़ रहने वाला, सदाचारी तथा श्रद्धा एवं भक्ति से युक्त, अति दक्ष, अल्प अशिन करने वाला, गम्भीर चित्त वाला और बिना किसी बहाने या निमित्त के सेवा करने वाला, विचारपूर्वक कार्य करने वाला, वीर और मन की दरिद्रता से रहित शिष्य होना चाहिए।'

अनधिकारी शिष्य के लक्षण शास्त्र में इस प्रकार वर्णित किए गये हैं—

निन्दातन्द्रा जड़वालस्य द्यूतादिव्यसमान्वितम् ।
अन्तभक्तिकरं क्षुद्रं बाह्यभक्तिविवर्जितम् ॥
व्यलीकंवादिनं शुष्कं प्रेषितं प्रेरकं शठम् ।
धनस्त्रीशुद्धिरतिं निषेधविधिवर्जितम् ॥
रहस्यभेदकं वापि देवि कार्यविनाशकम् ।
मार्जारवकवृत्तिञ्च रन्ध्रान्वेषणतत्परम् ॥

अर्थात्—"वर्जित शिष्य के लक्षण ये होते हैं—निन्द्रा, तन्द्रा, जड़ता, आलस्य, द्युत-क्रीड़ा आदि व्यसनों से युक्त हो, निस्सार भक्ति करने वाला, क्षुद्र, बाह्य भक्ति से रहित, व्यलोक मिथ्या बोलने वाला, शुष्क,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रेरित, प्रेरणा वाला, शठ, धन और स्त्री की शुद्धि से रहित एवं निषेध क्या है और विधि क्या है—इस ज्ञान से शून्य हो। रहस्य का भेदन करने वाला, हे देवि! कार्यों का विनाश कर देने वाला, मार्जार और वगुला के समान वृत्ति रखने वाला तथा सर्वदा छिद्रों का अन्वेषण करने में परायण। ये सब अधिकार-रहित शिष्य के लक्षण होते हैं।"

स्वक्लेशवादिनं स्वामिद्रोहिणं स्वात्मवञ्चकम्।
जिह्वोपस्थपरं देवि तस्करं पशुचेष्टितम् ॥
अकारणं द्वेषहासक्लेशंक्रोधादिकारिणम्।
अतिसाहसकर्माणं मर्मातिपरिहासकम् ॥
कामुकं चातिनिर्लज्ज मिथ्यादुष्चेष्टसूचकम्।
असूयामदमात्सर्यदंभाहंकारसंयुतम् ॥

अर्थात् "सदा अपने ही क्लेश को बोलने वाला, स्वामीके साथ द्रोह करने वाला स्वात्मवञ्चक, जिह्वा और उपस्थ की तृप्ति में तत्पर रहने वाला, हे देवि! तस्कर तथा पशु के तुल्य चेष्टा रखने वाला, बिना ही किसी कारण के द्वेष, हास, क्लेश और क्रोध आदि करने वाला, अत्यन्त साहस के कर्म करने वाला, मर्मान्तिक भेदक परिहास का करने वाला, कामुक, अत्यन्त निर्लज्ज, मिथ्या और दुष्चेष्टाओं का सूचक, असूया, मद और मात्सर्य, दम्भ अहंकार जैसे दुर्गुणों से युक्त शिष्य अनाधिकारी होता है।"

ईर्ष्यापारुष्यपैशुन्यैकार्पण्यं क्रोधमानसम्।
अधीरं दुःखिनं भीरुमशक्तं स्तब्धमातरम् ॥
अप्रबुद्धमतिं मन्दं मूढं चिन्ताकुलविटम्।
तृष्णालोभयुक्तं दीनमतुष्टं सर्वयाचकम् ॥

अर्थात् 'ईर्ष्या, परुष्यता, पिशुनता, कृपणता, और क्रोध मनमें रखने वाला, धीरता से शून्य, आतुर, अप्रबुद्ध मति वाला, मन्द, मूढ़ एवं असन्तुष्ट तथा सभी किसी से याचना करने वाला शिष्य अनधिकारी होता है।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मायाविनं कृतघ्नञ्च प्रछन्नान्तरदायकम् ।
विश्वासघातिनं द्रोहकारिणं पापकर्मिणम् ॥
आततायिनमेकाक्षं कुत्सितं कूटसाक्षिणम् ।
सर्वप्रतारकं देवि सर्वोत्कृष्टाभिमानिनम् ॥
असत्यं निठुरासक्तं ग्राम्यादिबहुभाषिणम् ।
कुविचारकृतंर्कादिकारकं कलहप्रियम् ॥

अर्थात् 'मायावी, किये हुए अहसान को न मानने वाला, प्रच्छन्नान्तर दायक, विश्वास घात करने वाला, आततायी, एक अक्षि वाला, कुत्सित, कूटसाक्षी (झूठी गवाही देने वाला), सभी किसी को ठगने वाला, हे देवि ! सबसे अपने आपको ऊँचा मानने का अभिमान रखने वाला, असत्य निष्ठुर, अमक्त, ग्राम्य तथा बहुत अधिक भाषण करने वाला, बुरे विचार, कुतर्क आदि के करने वाला और सदा कलह से प्यार रखने वाला शिष्य अन धिकारी होता है ।'

महिमा—

तन्त्र-साधना में दीक्षा को आवश्यक बताया गया है । तभी उसकी महिमा का अपूर्व वर्णन प्राप्त होता है—

दीक्षावै मोक्षयत्यूद्र्ध्वं शैवेधाम नयत्यपि ।

अर्थात्—'दीक्षा से मुक्ति होती है और वह ऊपर के शिवधाम में पहुँचाती है ।'

दीक्षया पाशमोक्षस्तु शुद्धभावाद् विवेकमम् ॥

'दीक्षा से पाशों का मोक्ष होता है और उसके बाद विवेक ज्ञान की उत्पत्ति होती है ।

पिच्छिला तन्त्र के अनुसार—

दीक्षा विना न मोक्षः स्यात्प्राणिना शिवशासनात् ।
सा च स्याद् विनाचार्यमित्याचार्यपरम्परा ।।४
पासनाशतेनापि यं विना सिद्ध्यति ।
तां दीक्षामाश्रयेद यत्नात् श्रीगुरोमन्त्रसिद्धये ।।५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"शिव का अनुशासन यही है कि दीक्षा के बिना किसी को मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। आचार्य-परम्पराके विना दीक्षा नहीं होती। सैकड़ों प्रकार की उपासना-पद्धतियां प्रचलित हैं, परन्तु दीक्षा के बिना सिद्धि प्राप्त नही होती। गुरुदेव से दीक्षा प्राप्त करके ही मुक्ति प्राप्त करना सम्भव है।'

रसेन्द्रेण यथा विद्धमयः सुवर्णतां व्रजेत्।
दीक्षाविद्धस्तथैवात्मा शिवत्वं लभतेप्रिये ॥
दीक्षाग्निदग्धकर्मासौ यायाद्विच्छिन्नबन्धनः।
गतस्तस्यचकर्मबन्धो निर्जीवश्च शिवो भवेत् ॥

अर्थात्—रसेन्द्र पारद भस्म से विद्ध होकर लोहा सुवर्ण बन जाया करता है, उसी भांति दीक्षा से भली-भांति सिद्ध हुआ आत्मा हे प्रिये ! शिव के स्वरूपता को प्राप्त हो जाया करता है। दीक्षा रूपी अग्नि से दग्ध हुए कर्मो वाला यह मनुष्य विच्छिन्न बन्धन वाला हो जाया करता है। इसके कर्मों का बन्धन निश्शेष हो जाया करती है। फिर जब यह मृत होता है, तो शिव के स्वरूप वाला हो जाया करनी है। फिर जब यह मृत होता है, तो शिव के स्वरूप वाला हो जाया करता है।"

दत्तात्रेय यामल के अनुसार—

अनीश्वरस्य मर्त्यस्य नास्ति त्राता यथा भुवि।
तथा दीक्षाविहीनस्य नेह स्वामी परत्र च: ॥

अर्थात् "जो मनुष्य विना ईश्वर वाला होता है, जिस तरह से भूमण्डल में उस अनीश्वरवादी का कोई त्राण करने वाला नहीं होता है, वैसे ही दीक्षा से विहीन पुरुष का भी यहाँ और परलोक में भी कोई रक्षक नहीं होता है।"

विष्णु यामल में लिखा है—

अतः गुरुं प्रणम्यैव सर्वस्वं विनिवेद्य च।
गृह्णीयाद्वैष्णवं मन्त्रं दीक्षापूर्वं विधानतः ॥

अर्थात् "इसलिए इस प्रकार से गुरु को प्रणाम करके जो भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ अपने पास हो उस सब कुछ को उनकी सेवा में समर्पित करके वैष्णव मन्त्र का ग्रहण करे, जो कि विधान से दीक्षापूर्वक ही होना चाहिए।'

पुरश्चरण रसोल्लास (प्रथम पटल) के अनुसार दीक्षा से बढ़कर न कोई ज्ञान है, न तप है। अतः यह सर्वश्रेष्ठ है।

नवरत्नेश्वर में कहा है कि "सभी तरह की दीक्षा से मोक्ष की उपलब्धि होती है और योग की प्राप्ति होती है। पापों का नाश होताहै. गुरु से दीक्षा न लेकर जो केवल पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर साधना करता है, वह सहस्र मन्वन्तर में भी सद्‌गति नहीं पाता। जो व्यक्ति दीक्षा नहीं लेता, उसके व्रत, नियम, तप और तीर्थयात्रा कुछ भी सफल नहीं होता। ऐसे व्यक्ति द्वारा या ऐसे के लिए किया गया श्राद्ध मान्य नहीं होता। इसलिए सद्‌गुरु से दीक्षा लेना अत्यन्त आवश्यक माना गया है।"

तन्त्र का मत है कि दीक्षा से अपूर्णता का नाश और आत्मा की सम्यक् शुद्धि होती है। इनसे आर्णवमल की निवृत्ति होती है। जो आत्मा पशुभाव में स्थित है, वह दीक्षा के प्रभाव से ऊपर उठकर शिव को प्राप्त होती है।

परिभाषा—

दीक्षा की परिभाषा तन्त्र में इस प्रकार दी गई है—

दीयते ज्ञान सद्‌भावं क्षीयते पशु वासना।
दानक्षपण संयुक्ता दीक्षा तेनेह कीर्त्तिता॥

"जो ज्ञान देती है और पशु-वासना का क्षय करती है, ऐसी दान और क्षपणयुक्त क्रिया को दीक्षा कहा जाता है।"

दिव्यज्ञानं यतो दद्यात् कुर्याद् पापक्षयं ततः।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वतन्त्रस्य सम्मता॥

—विश्वसार तन्त्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"जो पापों का नाश करके दिव्य ज्ञान प्रदान करती है, उसे दीक्षा कहा जाता है। सभी तन्त्रों का यही मत है।"

ददातिदिव्यभावञ्चेत् क्रिणुयात् पापसन्ततिम्।
तेन दीक्षेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रपारगैः ॥

—गोतमीय तन्त्र अ० ७

"जिससे दिव्य भाव की उपलब्धि और पाप-नाश होता हो, तन्त्र में विख्यात मुनियों ने उसी को दीक्षा कहा है।"

दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते पाप पद्धतिः।
तेन दीक्षोच्यते मन्त्रेस्वागमार्थवलावलात् ॥

—लघु कल्पसूत्र

"जो परम ज्ञान की दाता और पापों का नाश करती है, आगम शास्त्रों में उसी को दीक्षा के नाम से सम्बोधित किया गया है।"

ददाति शिवतादात्म्यं क्षिणोति च मलयत्रम्।
अतो दीक्षेति संप्रोक्ता दीक्षातन्त्रार्थवेदभिः ॥

"जो शिव की तद्रूपता समाधि को प्रदान करती है और तीन मलों (आर्णव, कर्मण और मायिक) का क्षय करती है। अतः दीक्षा तन्त्र के अर्थ को जानकर मुनियों ने इसका नामकरण दीक्षा किया।'

दीयते ज्ञानमत्यर्थं क्षीयते पाशवन्धनम्।
अतोद्दीक्षेति देवेशि कथिता तत्वचिन्तकः ॥
मनसा कर्मणा वाचा यत्पापं समुपार्जितम्।
तेषां विशेषा करणी परमंज्ञानदीयते ॥
तस्मात् दीक्षेति लोकेऽस्मिन् गीयते शास्त्र वेदकैः।
विज्ञानं फलदो सैत्र द्वितीया लयकारिणी।
तृतीयामुक्तिदा चैव तस्माद्दीक्षेतिधीयते ॥

'जो ब्रह्मज्ञान को प्रदान करने वाली और पाश व कर्म-बन्धनों का क्षय करने वाली है। तत्व चिन्तकों ने उसे दीक्षा नाम दिया है।'

मनसा, वाचा, कर्मणा जो पाप किये जाते हैं, उनकी नाशकर्ता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और परम-प्रदाता होने के कारण शास्त्रज्ञों ने इसे दीक्षा कहा है।

प्रथम विज्ञान फल देने वाली द्वितीय लय योग सिद्ध करने वाली और तृतीय मोक्षदाता होने के कारण इसे दीक्षा कहते हैं।'

दीक्षा को तन्त्रोंमें आत्म संस्कार की संज्ञा दी गई है। बद्ध आत्मा तीन मलोंसे युक्त रहती है। तीन मल हैं—आर्णव, कर्म और मायिक। इनके कारण उसकी पूर्णतामें बाधा पड़ती है। इनकी निवृत्ति से पूर्णता की प्राप्ति होती है। वास्तव में तो आत्मा-पूर्ण है, उसमें अपूर्णता का अंशमात्र भी नहीं है परन्तु माया के संयोग के कारण वह अपने को अपूर्ण समझती है। इस स्थिति को आर्णव मल की संज्ञा दी गई है। अपूर्णता की भावना के साथ कामनायें इच्छायें और वासनायें जुड़ी हुई हैं। मनुष्य जब अपने को आत्मा न मानकर शरीर ही समझता है, तो जड़ शरीर की सुख-सुविधाओं की वृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहता है। यह भोग बन्धन का कारण बनते हैं। इन्हें तन्त्र की भाषा में कार्ममल कहा जाता है। एक तांत्रिक शास्त्री के अनुसार मायिक मल की परिभाषा इस प्रकार है—'कला, विद्या, राग, काल तथा नियति और इनकी समष्टिभूता माया। पुर्यष्टक तथा स्थूल भूतमय विभिन्न जातीय कारण, सूक्ष्म एवं स्थूल देह—इन सब देहों के आश्रयभूत, विचित्र भुवन और नाना प्रकार के भोग पदार्थों का अनुभव जिसके कारण होता है, उसे मायिक मल कहते हैं।' इन तीनों मलों से बद्ध आत्मा का संस्कार ही दीक्षा है।

एक विद्वान् ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में दीक्षा का प्रतिपादन किया है—

'श्री गुरुदेव की कृपा और शिष्यकी श्रद्धा, इन दो पवित्र धाराओं का संगम ही दीक्षा है। गुरुका आत्मदान और शिष्य का आत्मसमर्पण एक की कृपा और दूसरे की श्रद्धा के अतिरेक से ही यह सम्पन्न होती है—

दीक्षा एक दृष्टि से गुरु की ओर से आत्मदान ज्ञान-संचार अथवा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तिपात हैं, तो दूसरी दृष्टि से शिष्य में सुषुप्त ज्ञान और शक्तियों का उद्‌बोधन है। दीक्षा से ही शरीर की समस्त अशुद्धियाँ मिट जाती हैं और देह शुद्ध होने से देव पूजा का अधिकार मिल जाता है। गुरु एक है और उन्हींसे चारों ओर शक्तिका विस्तार हो रहा है। यदि परम्परा की दृष्टि से देखें तो मूल पुरुष परमात्मा से ही ब्रह्मा, रुद्र आदि के क्रम से ज्ञान की परम्परा चली आई है और एक शिष्य से दूसरे शिष्य में संक्रान्त होकर वही वर्तमान गुरु में भी है। इसी का नाम सम्प्रदाय है और गुरु के द्वारा इसी अविच्छिन्न साम्प्रदायिक ज्ञान की प्राप्ति होती है क्योंकि मूल शक्तिही क्रमशः प्रकाशित होती आई है। उससे हृदयस्थ सुप्त शक्ति के जागरण में बड़ी सहायता मिलती है और यही कारण है कि कभी-कभी तो जिनके चित्त में बड़ी शक्ति है, व्याकुलता और सरल विश्वास है, वे भी भगवत्कृपा का उतना अनुभव नहीं कर पाते, जितना कि शिष्यों का दीक्षा द्वारा होता है।"

इसका कारण यह है कि दीक्षा देते समय गुरु को अपने शरीर में गुरुत्व शक्ति की स्थापना करनी पड़ती है तभी वह गुरु-दीक्षा देने के योग्य होता है। सहस्रदल कमल में निवास करने वाले परम शिव की प्राणशक्ति ही गुरुत्व शक्ति कही जाती है। इस महाशक्ति के संचार से ही गुरु शिष्य की आत्मा के बाह्य मलोंका संस्कार कर पाता है। आज-कल तो न योग्य गुरु हैं और न शिष्य। केवल लकीर पीटना ही मात्र रह गया है यदि तन्त्र में दर्शाये विधि-विधान के अनुसार दीक्षा दी जाये तो शास्त्रों में वर्णित लाभ अवश्य प्राप्त होते हैं। तभी इसका इतना महान् माहात्म्य बताया गया है और इसकी अतीव आवश्यकता का अनुभव किया गया है।

प्रकार--

दीक्षा विभिन्न प्रकार की हैं, शास्त्र का वचन है—

स्पर्शाख्या देवि दृकसंज्ञा मानसाख्या महेश्वरी।
क्रियायासादिरहिता देवि दीक्षा त्रिधा स्मृता॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मङ्गलमयी दीक्षा तीन प्रकार की कही गई है। स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा और मानस दीक्षा। योग्य गुरु अपनी कृपा से शिष्य को शिवहस्त से स्पर्श दीक्षा, दिव्य दृष्टि में देखने पर दृग दीक्षा और सत्य सङ्कल्प के मनन से मानस-दीक्षा देते हैं।'

कुलार्णव तन्त्र में इनका वर्णन इस प्रकार है—

यथा पक्षी स्वपक्षाभ्याँ शिशून् संवर्धयेच्छनैः।
स्पर्शदीक्षोपदेशस्तु तादृशाः कथितः प्रिये॥

'जिस तरह पक्षी अपने पङ्खों के स्पर्श से अपने शिशुओं का पालन पोषण करता है, उसी तरह की यह स्पर्श दीक्षा है।'

स्वपत्यानि यथा कूर्मी वीक्षणेनैव पोषयेत्।
दृग्दीक्षाख्योपदेशस्तु तादृशाः कथितः प्रिये॥

'जिस तरह कछवी अपने शिशुओं का दृष्टिमात्र से पोषण करती हैं, उसी तरह की यह दृग दीक्षा है।'

यथा मत्सी स्तवनयात् ध्यानमात्रेण पोषयेत्।
वेददीक्षोपदेशस्तु मनसः स्यात्तथाविधः॥

"जिस तरह से मछली ध्यान मात्र से अपने बच्चों को पालती है, उसीं तरह से ध्यान दीक्षा मन से की जाती है।"

इसके अतिरिक्त एक शब्द-दीक्षा होती है। इस तरह से स्पर्श, भाषण, दर्शन और सङ्कल्प यह चार प्रकार की दीक्षा हुई, जिसे स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम कहते हैं :—

विद्धि स्थूलं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं सूक्ष्मतममपि क्रमतः।
स्पर्शनभाषणदर्शनसङ्कल्पनजत्पश्चतुर्धतिम्।

शिवागम में तीन प्रकार की दीक्षा का विवेचन है–

शांभवीं चैव शाक्ती च मांत्री चैव शिवागमे।
दीक्षोपदिश्यतेत्रेधा शिवेन परमात्मना॥

"परमात्मा शिव ने शिवागम में तीन प्रकार की दीक्षा—शांभवी, शाक्ती और मन्त्रों का उपदेश दिया है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शाम्भवी दीक्षा के लक्षण इस प्रकार वर्णित किये हैं—

गुरोरालोकमात्रेण भाषणात्स्पर्शनादपि ।
सद्यःसञ्जायते ज्ञानं सा दीक्षा शांभवीयता ।
देश कालग्रहेणैव शिवता व्यक्तकारिणी ।
सेवन्त साम्भवी दीक्षा शिवादेशस्य कारिणी ॥
चरणद्वथयसंभूता शाम्भवी शीघ्रसिद्धदा ।

'सामर्थ्यवान गुरु की दृष्टि, भाषण व स्पर्श से वह शक्ति का संचार करते हैं, तब शिष्य में दिव्य ज्ञान की उत्पत्ति होती है। गुरु कृपा और शिष्य के सौभाग्य से आत्म-साक्षात्कार की स्थिति आती है, उसे शाम्भवी दीक्षा कहा गया है। गुरु अपने अनुग्रह से शिष्य कों कृतार्थ कर देते हैं। शिव शक्ति के समायोग चरणद्वय से सम्यक् प्रकार से दी हुई शाम्भवी दीक्षा सिद्धि प्रदाब करती है।'

'वायवीय संहिता' में कहा है कि गुरु दृष्टि और स्पर्श से एक क्षण में ही स्वरूप स्थित कर देते हैं। वही शाम्भवी दीक्षा है।

'रुद्र यामल के अनुसार शिव के चरण-द्वय से सम्पन्न दीक्षा ही शाम्भवी है। चरण द्वय का अभिप्राय है---शिव और शक्ति दोनों के चरण।

शाम्भवी दीक्षा से स्वरूप स्थित का कारण बताते हुए शास्त्र में कहा गया है कि गुरु की दृष्टि से शिष्य का सहस्रार प्रफुल्लित हो जाता है, जिससे उसे समाधि की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

शाक्ती दीक्षा का वर्णन शास्त्रों में इस प्रकार किया गया है कि कुण्डलिनी ही शक्ति है, उसका जागरण करके ब्रह्मनाड़ी से होकर शिव के साथ मिला देना ही शाक्ती-दीक्षा कहलाती है। इसमें कुण्डलिनी जागरण के लिए गुरु-शिष्य के अन्तर में प्रवेश करते हैं और अपनी शक्ति से यह क्रिया सम्पन्न करते हैं। इसमें गुरु शक्ति की ही विशेषता है शास्त्र में कहा है–

शाक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यदेहे प्रवेश्यत् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरुणा योगामार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा ।।

ज्ञानवती शाक्ती दीक्षा उसी को कहते हैं, जिसमें गुरु योगशक्ति से शिष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं और अपने ज्ञान-चक्षुओं से दीक्षित करते हैं।

शाक्ती शक्तिभवा दीक्षा शक्तिः श्रीपरकुण्डली ।
तस्याः प्राण विलोमेन प्रवेशः परशम्भवे ।।

शक्ति से होने वाली शाक्ती-दीक्षा श्री परकुण्डली है । उसके प्राण विलोम से परशम्भव में प्रवेश हो जाता है ।

मांत्री दीक्षा के लक्षण इस प्रकार बताए गये हैं—

मंत्र मार्गानुसारेण साक्षात् कृतेष्टदेवताम् ।
गुरुश्चेद्‌बाधयेच्छिष्यं मन्त्र दीक्षेति सोच्यते ।।
स्वयं मन्त्रतनुर्भूत्वा संक्रममन्त्रमादरात् ।
दद्यात् शिष्याय सा दीक्षा मांत्रीमलविद्यालिनी ।।
मांत्री मन्त्रोद्‌भवादीक्षा तच्छक्ति स्वात्मसम्भवा ।
मन्त्र यन्त्रार्चनादुक्तक्रियाभिर्भोगमोक्षदा ।

मन्त्र से उत्पन्न होने वाली दीक्षा को मांत्री दीक्षा कहा जाता है, उसकी शक्ति अपनी ही आत्मा से सम्भूत हुआ करती है । मन्त्र जाप तथा मन्त्रके अर्चन से उक्त क्रियाओं के द्वारा वह भोग और मोक्ष दोनों का प्रदान करने वाली होती है ।'

मन्त्र मार्ग में आर्णवी दीक्षा इस प्रकार दी जाती है—

मन्त्रार्चनासनंन्यासं ध्यानोपचारवादिभिः ।
दीक्षा स आर्णवी प्रोक्ता यथाशास्त्रोक्तरूपिणी ।।
शिवशक्तिसमायोगाज्जन्मान्तरक्रमात् शुभात् ।
शिवपूजानुसन्धानात् कर्मसाम्यं यदा भवेत् ।।
शिव एव तदा साक्षादार्णवोदीक्षया भवेत् ।
सर्वेषामेव दीक्षाणां मुक्तिः फलमखण्डितम् ।।

अर्थात् मन्त्र, अर्चना, आसन, न्यास, ध्यान, उपचार आदि के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वारा जो दीक्षा होती है, वह आर्णवी दीक्षा कही गई है और शास्त्रोंके अनुसार उक्त रूप वाली होती है। शिव शक्ति के समायोग से तथा अन्य जन्मों में किये हुये कर्म से तथा शिव की पूजा के अनुसंधान से जिस समय कर्म का साम्य होता है—उस समय आर्णवी दीक्षा से साक्षात् शिव हो जाया करता है। सभी दीक्षाओं का फल अखण्डित है और मुक्ति अर्थात् जन्म-मरण के बारम्बार आवागमन से छुटकारा पाना होता है।'

नाम क्रिया-भेद से दीक्षा के अनेक भेद हैं। आर्णवी दीक्षा के दस भेदों का वर्णन करते हुये कहा गया है—

स्मार्त्ती मानसिकी योगी चाक्षुषी स्पृशिकी तथा।
वाचिकी मांत्रिकी होत्री शास्त्री चेत्यभिषेचिका॥

"स्मार्ती, मानसी, योगी, चाक्षुषी, स्पर्शिकी, वाचिकी, मांत्रिकी, होत्री, शास्त्री और अभिषेचिका—यह दस प्रकार की दीक्षाएँ हैं।'

'शारदा पटल' में चार प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन है—

चतुर्विधासासंन्दिष्टा क्रियावत्यादि भेदतः।
क्रियावती वर्णमयी कलात्मावेधमय्यपि॥

अर्थात् "क्रिया आदि के भेद से वह चार प्रकार की सन्दिष्ट की गई है। क्रियावती, वर्णमयी, कलात्मा और वेधमयी—यही उसके चार प्रकार होते हैं।"

सुविधा की दृष्टि से दीक्षा के दो भेद भी कर लिए गये हैं—वाह्य और आन्तरिक।

दीक्षा च द्विविधा प्रोक्ता वाह्याभ्यन्तर भेदतः।
क्रियादीक्षा भभेदवाह्या वेधाख्याभ्यन्तरी मता॥
द्विधादीक्षाचधारा च निराधारा तथैव च।
नित्ये नैमित्तिके काम्ये यस्याश्चैवाधिकारिता।
साधारा सासंप्रोक्ता निराधा च मुक्तिदा।
निर्मला सा च विज्ञे या कथ्यते तत्वचिन्तकैः॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् "दीक्षा दो प्रकार की बतलाई गई है—एक बाह्य होती है और दूसरी आभ्यंतर हुआ करती है। जो क्रिया दीक्षा है, वह बाह्य होती है तथा जो वेधनाम वाली दीक्षा है वह आभ्यंतरी मानी गई है। दोनों प्रकार की दीक्षा आधार से युक्त तथा बिना आधार वाली होती है। नित्य, नैमित्तिक और काम्य में जिसकी अधिकारिता हुआ करती है, वह साधार दीक्षा कहलाती है। जो निराधार दीक्षा है, वह मुक्ति प्रदान करने वाली होती है। उसे तत्वों के चिन्तन करने वालों के द्वारा निर्मला दीक्षा कहा जाता है। अतः उसे निर्मला जानना चाहिए।

पं. गोपीनाथ कविराज ने दीक्षा भेदों का वर्णन करते हुए कहा है–

"आगम के अनुसार साधारणतया अध्वायों के वैचिन्थ से दीक्षाभेद इस प्रकार है—कला दीक्षा १, तत्व दीक्षा ५, पददीक्षा १, मन्त्रवर्ण–भुवन दीक्षा ३, केवल भुवन दीक्षा १, सब मिलाकर ११ है।

तत्व दीक्षा के आवांतर भेद ये हैं—एकतत्व दीक्षा, त्रितत्व दीक्षा पंचतत्व दीक्षा, नवतत्व दीक्षा और छत्तीस तत्व दीक्षा। ये सब पांच प्रकार की हैं। किसी-२ स्थान पर अठारह तत्वों की दीक्षा का भी वर्णन दीख पड़ता है, छत्तीस तत्व तो सर्वत्र सुप्रसिद्ध ही हैं। अठारह तत्व इस प्रकार हैं—शब्दादि ५, मन, बुद्धि, अहंकार, गुण प्रकृति ५, पुरुप, नियत काल, माया, विद्या, ईश्वर, सदाशिव और शक्ति ८, कुल नवतत्व हैं—प्रकृति, पुरुप, नियत, काल, माया, विद्या, ईश्वर, सदाशिव और शिव। पंच तत्व इस प्रकार हैं– पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तीन तत्व इस प्रकार हैं—आत्मतत्व (विज्ञानकाल पर्यन्त), विद्यातत्व (ईश्वर पर्यन्त और) शिव तत्व (शेष सब तत्व)। एक तत्व याने शिव-तत्व, जिस प्रक्रिया में जिस तत्व या जिन तत्वों को मुख रूप से ग्रहण किया जाता है, वहाँ अन्याय तत्वोंका अन्तर्भाव समझना चाहिए क्योंकि वहाँ उक्त तत्वों का प्राधान्य हैं तथा और तत्वों का गुणभाव है। ये ग्यारह प्रकार की दीक्षाएँ अध्वगत भेद के अनुसार कही गई हैं।"

इनके अनन्तर ज्ञान-दीक्षा से लेकर सब दीक्षाओं की संख्या

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१२ होती हैं। इनमें से प्रत्येक के सबीज, निर्जीव तथा सद्योनिर्वाण-दायिनी भेदसे तीन अवान्तर भेद होते हैं। इस प्रकार दीक्षाओं की कुल संख्या ३६ है। आचार्य की दीक्षा केवल सजीव ही होती है, वह बारह प्रकार की हैं। साधक लोकधर्मी तथा शिव धर्मी भेद से दो प्रकार के होपे हैं, इसलिए साधक-दीक्षा २४ प्रकार की है। (१२×२)। समयी का अध्वन्यास नहीं होता, ज्ञान तथा क्रिया से उनकी हृदादि या ग्रन्थि भेदन हो जाता है। इसलिए इस दृष्टि से उनकी दीक्षा दो प्रकार की होती है। कुल दीक्षा भेद ७४ हैं (३६+१२+२४+२) इनमें सकल, निष्फल, अघोरेश्वरी आदि के अनुष्ठान और लोकधर्मी साधकके आवान्तर वैचित्र्योंके कारण तथा भौतिक, नैष्ठिक आदि भेदोंके कारण दीक्षा के असंख्य भेद हैं।'

समय दीक्षा—

जब गुरुदेव शिष्यको हृदय से आशीर्वाद देना चाहते हैं, तो शिष्य के मस्तक पर शिव हस्त का अर्पण करते हैं। इसी को 'समय-दीक्षा' कहा जाता है। शिवहस्त के स्पष्टीकरण के लिए शास्त्र का वचन है—

ब्रह्मप्रपञ्चसंयुक्तं शिवेनाधिष्ठितः शिवः।
पाशच्छेदकरः क्षेमोशिवहस्तः प्रकीर्त्तितः॥

अर्थात् ब्रह्म प्रपञ्च से संयुक्त शिव, शिव के द्वारा अधिष्ठित, शिव का हस्त, पाशों के छेदन करने वाला तथा क्षेमप्रद कहा गया है।'

यह दीक्षा उसे दी जाती है, जिसके हृदयमें मन्द शक्तिपातसे श्रद्धा भक्ति की उत्पत्ति हो ताकि वह गुरु व देवता की पूजा कर सके और मन्त्र ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त कर सके। यह दीक्षा सर्वसाधारण को दी जाती है। इससे ईश्वर तत्व की पूजा पात्रता प्राप्त होती है। इस दीक्षा का वर्णन दीक्षोत्तर तन्त्र, स्वच्छन्द तन्त्र और देवी यामल में आता है। इस दीक्षा में सभी का समान अधिकार स्वीकार किया गया

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। इसमें भेद-भाव का कोई नियम नहीं है और न ही काल और आश्रम के कोई बन्धन है। इसमें कर्म समूह का परिपाक होता है, क्योंकि कर्म परिपक्व हुए विना नष्ट भी नहीं होते। इस दीक्षा से पूर्णत्व की प्राप्ति सम्भव नहीं। इससे तो पूजा, पाठ, हवन, ध्यान आदि की पात्रता ही प्राप्त होती है।

पुत्रक-दीक्षा :—

'निशिसंचार' और 'योगसंचार तन्त्र' में इसका वर्णन है। वागीश्वरी के गर्भ में दूसरा जन्म होने के कारण जो दीक्षा लेता है, उस 'पुत्रक' कहा जाता है। इसलिए इसे पुत्रक दीक्षा कहते हैं। जैसे समय दीक्षा से ईश्वर-पद में प्रतिष्ठित होता है, वैसे ही पुत्रक दीक्षा से परम तत्व में स्थिरता मिलती है। तान्त्रिक भाषा में इससे शुद्ध देहकी प्राप्ति होती है। यह देह भी उच्च श्रेणी की है, परन्तु फिर भी उससे पूर्णता की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

निर्वाण दीक्षा :—

पुत्रक के बाद निर्वाण दीक्षा का क्रम है। पुत्रक दीक्षा देकर जब साधक दीर्घकाल तक साधन करता है, तभी निर्वाण दीक्षाका अधिकार प्राप्त करता है। समय व पुत्रक की अपेक्षा इसका महत्व विशेष है, क्योंकि इसके प्रभाव से शिवपद में योग होना सम्भव है, समय और पुत्रक में ऐसा नहीं हो सकता। समय दीक्षित साधक का पूर्व जाति-सम्बन्ध बना रहता है। अतः उसकी पशुत्व निवृत्ति नहीं होती। उसकी देह भी अशुद्ध मानी जाती है। पुत्रक की देह तो अशुद्ध नहीं रहती वरन् विशुद्ध हो जाती है, परन्तु इतना होने पर भी आर्णव मल की निवृत्ति नहीं होती। अतः शिवपदमें योग नहीं हो पाता। निर्वाणमें मल परिपक्व हो जाता है, तभी शिवपद में योग होने की आशा रहती है।

वेध दीक्षा :—

ततो वेधमती वक्ष्ये दीक्षां संसारमोचिनीम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यायेच्छिष्यरन्ध्रमध्ये मूलाधारे चतुर्दले ।।
त्रिकोणमध्ये विमले तेजस्त्रविजृम्भिते ।
वलयत्रयसंयुक्तां तडित्कोटिसमप्रभाम् ।।
शिवंशक्तिमयीं देवी चेतनामात्रविग्रहाम् ।
सूक्ष्मां सूक्ष्मतरां शक्तिं भित्वा षट्चक्रमञ्जसा ।।
गच्छन्ति मध्यमार्गेण दिव्यां परशिवावधि ।
सहैवमात्मनः शक्तिं वेधयेत्परमेश्वरे ।।

'यह वेध दीक्षा जगत् के पापों को नष्ट करने वाली है। गुरु का कर्तव्य है कि वह कोटि-कोटि विद्युत पुंज की भाँति प्रकाशमयी और शिवशक्तिमयी देवी कुण्डलिनी का ध्यान करे जो शिष्य के शरीर में चतुर्दल मूलाधार कमल में तीन तरह के रंगों में मिले हुए विमल तेज-त्रय से प्रकाशित त्रिकोण योनि-स्थान के मध्य में त्रिवलयाकार रूप में निवास करती है। कुण्डलिनी का चेतनामात्र ही विग्रह है। यह सूक्ष्म-तर शक्ति है। इस शक्ति को परशिव में विलीन करने के लिए मध्य मार्ग सुषुम्ना में प्रवेश कराके षट्चक्र का वेधन करे। इस तरह से ईश्वर के रूपका बोध कराने के लिए गुरु अपनी शक्तिका संचार शिष्य में करते हैं।"

गुरोपदिष्टमार्गेण वेधं कुर्याद्विचक्षणः ।
पापं मुक्तः क्षणच्छिष्यश्छिन्नपाशस्तथा भवेत् ।।
बाह्यव्यापार निर्मुक्तो भूमौ पतति तत्क्षणात् ।
संजातदिव्यभावऽसौ सर्वं जानाति शाम्भवि ।
यदस्ति वेधकं तत्तत्स्वयमेवानु भूयते ।

"परम्परा मार्ग से जब गुरु वेध-दीक्षा देते हैं, तो शक्तिपात से शिष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह बाह्य व्यापारसे निर्मुक्त होकर उसी समय भूमि पर गिर जाता है। ऐसा शिष्य गुरु के भाव को समझ जाता है। वह स्वयं भी दिव्यभाव को प्राप्त हो जाता है, अतएव वह भी सब कुछ जान जाता है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेध-दीक्षा के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए कहा है—

प्रबुद्धः सहसा शिष्यस्यत्सौख्यं बहुधेश्वरि ।
वेधविद्धः शिवः साक्षात् पुनर्जन्मतां व्रजेत् ॥

एषा तीव्रतरा दीक्षा भवबन्धविमोचिनी ॥
शिवभावप्रदा देनि त्वां शपथे कुलनायिके ॥

"शक्तिपात से भूमि पर गिरने के बाद वह तत्काल ही होश में आ जाता है, तब वह महासुख की अनुभूति करता है। ऐसी वेधदीक्षा जिसे मिलती है, वह भाग्यवान साक्षातरूप ही हो जाता है, उसका फिर जन्म नहीं होता। ऐसी तीव्रतर दीक्षा भव-बन्धन को नष्ट करने वाली और शिव भाव प्रदान करने वाली है—ऐसा स्वयं शिव शपथ लेकर कहते हैं।"

चाक्षुषी दीक्षा द्वारा भी शक्तिपात किया जाता है। शतश्लोकी के ९१ वें श्लोक में इस प्रकार वर्णन है।

तद्ब्रह्मैवाहमस्मीत्यनुभव उदितो यस्यकस्यापि चेद्वै
पुंसः श्रीसद्गुणामतुलितकरुणपूर्ण पीयूषदृष्टया ।
श्रीवन्मुक्तः स एव भ्रमविधुरमना निर्गतेनादमुपाधौ
नित्यानन्दैकधामं प्रविशति परमं नष्टसन्देहवृत्तिः ।

"वह ब्रह्म मैं ही हूँ—इस प्रकार के अनुभव से अर्थात् उस ब्रह्म और मुझमें कोईभी भेद नहीं है, एकही हैं। ऐसा जब अनुभव हो और उस अनुभव को प्राप्त करनेका सौभाग्य जिस किसी को भी श्री गुरुकी अतुलित करुणा से पूर्ण पीयूषमयी दृष्टि से प्राप्त हो जावे तो अनादि उपाधि के निर्गत हो जाने पर भ्रम से विधुर मन वाला वह ही पुरुष जीवनमुक्त हो जाता है। उसकी जो सन्देह वृत्ति होती है, वह तो नष्ट ही हो जाया करती है, फिर वह परम नित्यानन्दमय एक धाममें प्रवेश कर जाया करता है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिवधर्मी और लोकधर्मी दीक्षा:—

साधक दो प्रकार के होते हैं--एक, भौतिक सुखों की कामना करते हैं, दूसरे पारलौकिक प्रगति की। एक सकाम उपासना करते हैं, दूसरे निष्काम। निष्काम साधक शिवधर्मी और सकाम साधक लोकधर्मी कहे जाते हैं। एकका लक्ष्य अलौकिक सुख है, दूसरे का लौकिक। शिव धर्मी दीक्षा से तीन प्रकार की सिद्धियों की उपलब्धि होती है—१. योगेश्वर पद, २. मन्त्र पद: ३. पिंड सिद्धि और अवांतर सिद्धियां। तंत्र के अनुसार इस दीक्षा से अजर, अमर और स्थित देह की प्राप्ति होती है। इस देह की स्थिरता प्रलय काल तक रहती है।

लोकधर्मी दीक्षा में मन्त्र की उपासना नहीं होती। यह भोगार्थी साधक है और अपने शुभ कर्मों के फल से ही सञ्चित अशुभ कर्मों से दुष्परिणामों को नष्ट करती है। संचित शुभ कर्मों से इन्हें अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस साधक में वासना का प्राधान्य होता है। अतः इन सिद्धियों के योग के लिए वह गुरु द्वारा ऊर्ध्व लोकों में भेजा जाता है। जब यहाँ भी उसकी तृप्ति नहीं होती, तो उसे उससेभी ऊपर के लोक में भेजा जाता है, जब तक कि उसे भोगों से वैराग्य न हो जाय। वैराग्य होने पर उसे परमेश्वर के निष्फल रूप से युक्त किया जाता है। तन्त्र में कहा है।

लोकधर्मिणमारोप्यैं यत्ते भुवनभर्त्तरि।
तद्धर्मापादनं कुर्याच्छिवे वा मुक्तिकांक्षिणः ॥

"गुरु का कर्तव्य है कि वह लोकधर्मी साधक को इष्टभुवनेश्वर के स्वभाव से और उसके धर्म से युक्त करे। यदि साधक में मोक्ष की आकांक्षा हो, तो उसे शिव में आरोपित करे और फिर उनके धर्मों से युक्त करे।"

गुरु साधक की मनोभूमि का अच्छी तरह निरीक्षण करके ही उसके अनुरूप दीक्षा देते हैं और इस ढंग से उसकी प्रगति करते हैं, जो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके स्तर और इच्छा के अनुरूप ही। दीक्षा में पात्रता और योग्यता तो प्रथम सोपान हैं।

अन्तः दीक्षा :–

गुरु तो साधक की वाह्य वृत्तियों की पात्रता के अनुसार अन्तर्मुख करने का प्रयत्न करते हैं। यह वृत्तियाँ शक्तियों में परिणित हो जाती हैं। शास्त्र का भी यही कहना है।

"मन्त्र अर्थात् चित्त जब वहिर्मुख होता है, तो उसे वृत्ति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। परन्तु जब वह अन्तर्मुख होता है, तो उसे 'शक्ति' कहते हैं।

गुरु साधक को शक्ति सम्पन्न करने के लिए उसकी वृत्तियों को अन्तर्मुख करते हैं। इस प्रयत्न अर्थात दीक्षा को अन्त-दीक्षा कहते हैं।

इससे स्पष्ट है कि तन्त्र-साधना में दीक्षा एक अत्यन्त आवश्यक अंग माना जाता था, तभी हर स्तर के व्यक्ति के लिए विभिन्न प्रकार की दीक्षाओं के विधान की आवश्यकता पड़ी, ताकि किसी भी स्तर का व्यक्ति इससे वंचित न रहे। परन्तु तन्त्र-विज्ञान के लुप्त होने से दीक्षा के व्यवहार में भी व्यवधान आ गया, क्योंकि न अधिकारी गुरु रहे न अधिकारी शिष्य। यदि इस विज्ञान का विकास किया जाय तो भारत की यह प्राचीन विद्या हमें गौरवान्वित कर सकती है।

शक्तिपात की वैज्ञानिक प्रक्रिया

परिभाषा–

जीव का परम उद्देश्य है जीवत्व से मुक्त होकर शिवत्व में प्रवेश करना। यह तभी सम्भव है जब जीव वस्तुस्थिति का ज्ञान कर लेता है, वह अपनी आत्मस्थिति का अनुसंधान करते हुए उसमें अवस्थित हो जाता है। स्वस्थ स्थिति में स्थायित्व प्राप्त करना ही मुक्ति द्वार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तक पहुँचने का लक्षण है। इसके अभाव में यह सफलता प्राप्त करना असम्भव है। वह स्वरूप स्थिति तक पहुँचने के लिए जो उपाय काम में लाया जाता है, उसे 'शक्तिपात' कहते हैं।

तन्त्राचार्यों का मत है कि मुक्त-मार्ग अवरुद्ध करने वाले मलावरण हैं। जब तक इन्हें नहीं हटाया जाता, मुक्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं होता। इन मलों को ज्ञान और कर्म की सहायता से पूर्णतः हटाने की क्षमता से तन्त्र असहमत हैं। द्रव्यात्मक पदार्थ होने के कारण मल की उपमा आँखों की जालीसे दी जाती है। जिस तरह से मोतियाबिन्द के परिपक्व होने पर उसे शल्य-क्रिया से ही दूर किया जाना सम्भव है, उसी तरह मलों से निवृत्ति का उपाय तन्त्रों में परम सिद्धि का अनुग्रह हीं बताया गया है। इस कृपा तथा भगवदनुग्रह को ही शक्तिपात कहा जाता है।

शक्तिपात एक ऐसी आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सद्-गुरु अपनी शक्ति को शिष्य में संचारित करता है ताकि उसकी सुप्त आध्यात्मिक शक्तियों का जागरण हो जाये अथवा उसकी बुद्धि अतीन्द्रिय विषय को समझ सके।

शास्त्रों में भी कहा है—

तत्पातः शिष्येषु।

"उस शक्ति का पात शिष्यों में होता है।"

शिष्य पर गुरु के द्वारा शक्ति उतारने की प्रक्रिया को शक्तिपात कहा जाता है।

माधवाचार्य का मत यह है—

परमेश्वरस्वरूप भूतत्वेन सर्वगतायाः परशक्तेः पतनासम्भवाच्छिष्यस्यात्मनि प्रागेवावस्थिता सा पाशजालावृतत्वेनतिरोहिता सातीदीक्षासंस्कारेणावरणापगमे सत्याभिव्यक्तिमासादयन्तीपतितेत्युपचर्यते। ऊर्ध्वदेशादधोदेशप्राप्तिर्हि पतनं न खलु तादृशमस्याः सम्भवतीति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसका अभिप्राय यह है कि परमेश्वर स्वरूप सर्वगत पराशक्ति का पात नहीं हो सकता। शिष्य में मल-कर्मादि पाश बन्धनों से घिरी हुई पूर्व अवस्थित आत्म-स्वरूपभूत पराशक्ति के दीक्षा संस्कारके माध्यम से (मल आवरणों को दूर करके) अभिव्यक्ति की जाती है। इस अभिव्यक्ति को ही शक्तिपात की संज्ञा दी गई है।

गुरु-कृपा :—

शक्तिपात गुरु कृपा पर निर्भर करती है। सद्गुरु सर्वतत्व वेत्ता और अध्यात्म-विद्या के जानने वाले होते हैं। 'तालिनी विजय' में भी कहा है—

सगुरुर्मत्समः प्रोक्तो तन्त्रवीर्य प्रकाशकः।

अर्थात् 'वही, गुरु मेरे समान कहा गया है, जो तन्त्रों के वीर्य का प्रकाश करने वाला हो।'

सिद्धिके लिए शक्तिपात आवश्यक माना गया है, जिसके लिए गुरु ही एकमात्र साधन है—

शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति।
यत्र शक्तिर्न पतितं तत्र सिद्धिर्न जायते॥

"शक्तिपात न होनेसे सिद्धिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। शक्तिपात के अनुसार ही तो शिष्य अधग्रहीत होता है।"

सन्त तुकाराम ने भी अपने एक अभङ्ग में इसी तथ्य पर बल देते हुए कहा है—"गुरुके विनामार्ग प्राप्त नहीं होता। अतः सर्वप्रथम उनके चरणारविन्दों का स्पर्श करो।" वह शरणागतवत्सल शिष्य को अपनी तरह ही बना लेते हैं। उन्हें इसमें कुछ भी समय नहीं लगता।"

इस गुरु-कृपा को शास्त्रों में गुरुप्रसाद कहा गया है। इसके प्राप्त होने पर ही शिष्य का उद्धार होता है।

परिपक्वमला ये तानुत्पादनहेतुशक्तिपातेन।
योजयति परे तत्वे स दीक्षयाचार्यमूर्तिस्थः॥

अर्थात् "जो परिपक्व मन वाले हैं और उनका उत्पादन करने के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिये शक्तिपात के द्वारा परतत्व में जो योजित करता है, वही दीक्षा से आचार्य की मूर्ति में स्थिति पाने वाला है।"

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

अर्थात् "जिसकी देव में पराभक्ति है, वैसी ही गुरु में भी पराभक्ति देव की ही भाँति होनी चाहिए।

अयं गुरु प्रसाद स्ततोषात्प्राप्यो न चान्यथा।

अर्थात् "यह गुरु का प्रसाद है जो तोष से प्राप्त करने के योग्य होता है अन्यथा नहीं मिलता है।"

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

अर्थात् "उसको प्रणिपात के द्वारा—परिप्रश्न से और सेवा के द्वारा जानना चाहिए।"

आत्मविद्या चान्तर्मुखस्य गुरुकारुण्यरहितस्य न वेदशास्त्र-मात्रेणोत्पद्यते।

"आत्म-विद्या अन्तर्मुख गुरु की दया से शून्य को केवल वेदशास्त्र से उत्पन्न नहीं होती है।"

गुरु कृपा से ही इस ससार को पार किया जा सकता है—

सद्गुरोः सम्प्रसादेऽस्य प्रतिबन्धक्षस्ततः।

दुर्भविना तिरस्काराद्विज्ञानां मुक्तिदं क्षणात्॥

अर्थात्—"सद्गुरु के तत्प्रसाद के होने पर मनुष्य के जो प्रतिबन्ध हुआ करते हैं, उनका क्षय हो जाता है। दुर्भाविना का जब तिरस्कार होता है तो विज्ञान एक ही क्षण में मुक्ति देने वाला हो जाता है।"

महात्म्य :—

सूत संहिता में शक्तिपात की महिमा का वर्णन करने हुए कहा गया है—

तत्वज्ञानेन मायया बाधो नान्येन कर्मणा।

ज्ञानं वेदान्तवाक्योत्थं ब्रह्मात्मैकत्वगोचरम्॥

तच्च देवप्रसादेन गुरोः साक्षान्निरीक्षणात्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जायते शक्तिपातेन वाक्यादेवाधिकारिणाम् ।।

"तत्व ज्ञान के अतिरिक्त और किसी उपाय से माया का निराकरण नहीं हो सकता । यह तत्व ज्ञान ब्रह्म और आत्मा की अभेद सिद्ध का निरूपण करने वाले वेदान्त वाक्यों से प्राप्त होता है । इसका अधिकार गुरु द्वारा शिष्य को शक्तिपात से ही दिया जाता है ।'

शक्तिपातं समायोगादृतेतत्वानितत्वत: ।
तद्व्याप्तिस्तद्विशुद्धिश्च ज्ञातुमेव न शक्यते ।।

—शिवपुराण वायवी संहिता

अर्थात् 'शक्तिपात के समायोग के अभाव में तत्वत: तत्वों का ज्ञान आत्मा की व्यापकता और उसके शुद्ध-बुद्ध स्वरूप का ज्ञान कभी भी सम्भव नहीं है ।'

तन्त्र का यही मत है कि शक्तिपात अथवा भगवत् कृपा के बिना जीव को पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

सन्त ज्ञानेश्वर ने 'ज्ञानेश्वरी' टीका में लिखा है कि शक्तिपात होने पर, होने को तो वह जीव ही रहता है परन्तु महेश्वर के समान माना जाता है ।

लाभ—

शक्तिपाताद्विशेषेण ।

शक्तिपात के द्वारा विशेषता से शक्ति जाग उठती है । इसमें विशेषता यही है कि बिना शिष्य के परिश्रम के गुरु कृपा से शक्ति का जागरण हो जाता है । इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए शिष्य को बहुत कष्ट सहने पड़ते हैं और साधना में असावधानी बरती जाय तो हानि उठाने की सम्भावना रहती है ।

शक्तिपात होने पर यौगिक क्रियाओं की अपेक्षा नहीं रहती । वह साधक की प्रकृति के अनुरूप-स्वरूप होने लगती है । प्रबुद्ध कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र की ओर प्रवाहित होने के लिए छटपटाती है, इसी से सभी क्रियाएँ होने लगती हैं । व्यवहारिक रूप में ऐसा देखा गया है कि जिन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधकों ने कोई अभ्यास नहीं किया था और नहीं विशेष अध्ययन किया था, वह इन क्रियाओं को ऐसे करने लगते हैं, जैसे वह वर्षों से इसका अभ्यास कर रहे हों। हठयोग की क्रियाओं में थोड़ी सी त्रुटि होने पर बहुत हानि उठाने की सम्भावना रहती है, परन्तु इस साधक के अभ्यास में आ जाती है और आसन, प्राणायाम मुद्रा आदि अपने आप होने लगते हैं। इसे गुरु-कृपा का ही प्रसाद समझना चाहिए।

शक्तिपात से साधक के आत्मिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हो जाता है। उसमें भगवद्भक्ति का विकास, चिदात्मा का प्रकाश होता है, मन्त्र-सिद्धि होती है जिससे श्रद्धा-विश्वास का जागरण होता है, सब शास्त्रों का अर्थज्ञान हो जाता है, सब तत्वों का स्वायत्त करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है, शरीर भाव जाता रहता है शिवत्व लाभ होता है। रत्नमाला आगम की साक्षी है—

यस्मिन्काले तु गुरुणा निर्विकल्पं प्रकाशितम्।
तदैव किल मुक्तोऽसौ यन्त्र तिष्ठति केवलम् ॥

"जिस समय गुरु-कृपा से निर्विकल्प बोध हो जाता है, तब उसे मुक्ति-लाभ होता है। केवल वह यन्त्र की तरह ही जीवन व्यतीत करता है।"

कृष्ण के शक्तिपात के किस तरह अर्जुन को आत्मानुभूति हुई इसका हृदयानुग्रही वर्णन ज्ञानेश्वरी गीता में हुआ है —"तब भगवान ने अर्जुन को बाँया हाथ फैलाकर अपने हृदय से लगा लिया। दोनों हृदय एक हो गए। जो कुछ एक में था, वह दूसरे में डाल दिया। द्वैत भी बना रहा परन्तु अर्जुन को भगवान ने अपने जैसा बना लिया।' यही गुरु कृपा का विशेष लाभ होता है।

शास्त्र के अनुसार—

शक्तिपातेन संयुक्ता विद्या वेदान्तवाक्यजा।
यदा यस्य तदा तस्य विमुक्तर्नात्र संशयः ॥

"शक्तिपात से संयुक्त साधक को जब वेदान्त वाक्यों की विद्या

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राप्त होती है, उसी समय से उसे मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।"

लक्षण—

शक्तिपात का मुख्य लक्षण है—साधक में भगवद्भक्ति का उन्मेश होना। सत्वर मन्त्र की सिद्धि भी प्राप्त होती है। वह सभी प्राणधारियों को अपने अनुकूल बनाने की योग्यता वाला हो जाता है। उसके प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं, उनके बिना भोगे ही उसकी मुक्ति हो जाती है। ऐसा तब तक होता रहता है जब तक शरीर रहता है उसके साथ सुख-दुःख तो संयुक्त रहते हैं, उनका उस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, वह अलिप्त भाव से उन्हें ग्रहण करता है। सभी परिस्थितियों में आनन्द की मुद्रा ही उसकी विशेष बन जाती हैं। साधक पर समस्त शास्त्रों का ज्ञान प्रकट हो जाता है उसे कविता रचने की सामर्थ्य प्राप्त हो जाती हैं।

शास्त्रों में शक्तिपात के लक्षण इस प्रकार से वर्णित किये गये हैं।

देहपातस्तथा कम्पं परमानन्दहर्षणे।
स्वेदो रोमाञ्च इत्येतच्छक्तिपातस्य लक्षणम् ॥
शिष्यस्य देहे विप्रेन्द्राः धरण्या पतितेसति ।
प्रसादः शङ्करस्तस्य द्विज सन्जात एव हि ॥
यस्य प्रसादः संजातो देहपातावसानकः ।
कृतार्थं एव विप्रेन्द्रा न स भूयोऽभिजायते ॥

शक्तिपात होते ही शरीर भूमि पर गिर जाता है, कम्पन होने लगते हैं। मन में अपार प्रसन्नता का उदय होता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है, जिससे रोमांच होता है, प्रस्वेद होता है। इस तरह से शक्तिपात से देहपात के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगें तो यह जानना चाहिए कि शिव कृपा हुई। शक्तिपात से देह पात के लक्षण आने पर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृतार्थता का भाव आना चाहिए, क्योंकि इसके बाद फिर जन्म ग्रहण करने की सम्भावना नहीं रहती ।"

सूत-सहिता के अन्तर्गत 'ब्रह्मगीता के चौथे अध्याय में शक्तिपात के लक्षण विस्तृत रूप से दिये गये हैं । यथा—

प्रसादो नाम रुद्रस्य कर्मसाम्ये तु देहिनाम् ।
देशिकालोकनाज्ज्ञातो विशिष्टातिशयः सुराः ॥
प्रसादस्य स्वरूपं तु मया नारायणेन च ।
रुद्रेणापिसुरा वक्तु न शक्य कल्पकोटिभिः ॥
केवलं लिङ्गगम्य तु न प्रत्यक्ष शिवस्य च ।
शिवायाश्च हरेः साक्षान्ममचान्याय नास्तिकाः ॥

"देहधारियों के कर्मों की समता होने पर भी रुद्रका प्रभाव आचार्य के अवलोकन से हे सुरगण ! विशिष्ट अतिशय वाला जाना गया था । उस प्रभाव का स्वरूप मेरे द्वारा, नारायण के द्वारा और रुद्र के द्वारा भी हे सुरगण ! करोड़ों कल्पों में भी बताया नहीं जा सकता है । केवल लिङ्गगम्य है, शिव का प्रत्यक्ष तो होता ही नहीं । हे नास्तिको ! शिव का—हरि का —मेरा और अन्य का भी साक्षात् नहीं होता है ।

प्रहर्षस्वरनेत्रांगविक्रिया कम्पनं तथा ।
स्तोम शरीरपातश्च भ्रमणं चोद्गतिस्तथा ॥
आकाशेऽवस्थितिर्देवाःशरीरान्तरसंस्थितिः ।
अदर्शनं च देहस्य प्रकाशत्वेन भासनम् ॥
धनधीतस्य शास्त्रस्य स्वतः एव प्रकाशनम् ।
निग्रहानुनृहे शक्तिः पर्वतादेश्च भेदनम् ॥
एवमादीनि लिंगानि प्रकाशस्य सुरर्षभाः ।
तीव्रतीव्रतरः शम्भो प्रसादो न समो भवेत् ॥
एवंरूपं प्रसादश्च शिवया च शिवेन च ।
ज्ञायते न मया नान्यैर्नैव नारायणेन च ॥
अतः सर्वं परित्यज्य शिवादन्यत दैवतम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तमेव शरणं गच्छेत्सद्यो मुक्ति यदीच्छति।

अर्थात्—"प्रकृष्ट हर्ष का उत्पन्न होना, स्वर,नेत्र और अङ्गों विशेष की क्रिया का होना, कम्पन, स्तोम, शरीर का पात, भ्रमण, उद्गति, आकाश में अवस्थान, अन्य शरीर में संस्थिति हे देवगण! देह का दिखलाई न देना, प्रकाशरूप सें भासित होना, अनवीत शास्त्र का स्वतः ही प्रकाशमान होना, निग्रह और अनुग्रह शक्ति तथा पर्वत आदि का भेदन, हे सुरश्रेष्ठो ! इसी प्रकार के लिङ्ग हैं, जो प्रकाश के होते हैं। तीव्र से भी तीव्रतर शम्भु का प्रसाद सम नहीं होता है। इस प्रकार के रूप वाले प्रसाद को शिवा-शिव के द्वारा ही जाना जाता है। अतएव अन्य सभी देवों को त्याग शिव की शरण में जाओ, यदि सद्य मुक्ति की इच्छा रखते हो।"

सति तस्मिश्च चिह्नानि, तस्यैतानि विलक्षयेत्।
तत्रैतत्प्रथमं चिह्नं रुद्र भक्तिः सुनिश्चलाः।
द्वितीयमन्त्र सिद्धिस्स्यात्सद्य प्रत्ययकारिका :
सर्वसत्वं वंशित्वं च तृतीय तस्य लक्षणम्॥
प्रारब्धं कर्म निष्पत्तिश्चिन्हमाहुश्न्तुर्थकम्।
कवित्वं पञ्चमं ज्ञेयं सालङ्कारमनोहरम्॥
सर्वं शास्त्रार्थं वेतृत्वं अकस्मात्तस्य जायते॥

अर्थात्—"उसके होने पर इसके इन चिन्हों को देखना चाहिए। उनमें प्रथम चिन्ह यही है कि रुद्र में सुनिश्चल भक्ति है। दूसरा मन्त्र की सिद्धि है जो तुरन्त ही विश्वास करने वाली है। तीसरा उनका लक्षण यह है कि समस्त जीवों को वश में कर लेना है प्रारब्ध कर्म की निष्पत्ति चौथा चिह्न है। कवित्य पाँचवाँ चिन्ह है, जो अलङ्कारों से युक्त परम सुन्दर हो। अकस्मात ही सब शास्त्रों का ज्ञाता होना उसको पैदा हो जाता है।"

राम को गुरु वसिष्ठ से जब यह प्रसाद प्राप्त हुआ था अर्थात् वसिष्ठ ने जब राम को शक्तिपात का प्रसाद दिया था, तो राम को इस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भौतिक जगत् से वैराग्य हो गया, राजवैभव की सभी सुख-सुविधाओं को त्याग ही दिया। खाना,पीना,पहनना,ओढ़ना आदि साधारण क्रियाएँ भी उनसे छूट गई तो किसी तरह से उन्हें राज-सभा में बुलवाया गया। वहाँ ऋषियों ने उन्हें उपदेश दिया। वहाँ पर महर्षि विश्वामित्र भी उपस्थित थे। उन्होंने वशिष्ठ को सम्बोधित करते हुए कहा–

हे वशिष्ठ महाभाग ब्रह्मपुत्र महानसि ।
गुरुत्वं शक्तिपातेन तत्क्षणादेव दर्शितम् ।।

"हे महाभाग वसिष्ठ ! तुम ब्रह्मा के पुत्र हो। तुमने राम के प्रति शक्तिपात करके अपने गुरुत्व का तत्क्षण ही प्रदर्शन कर दिया।'

घटनाएँ :–

शास्त्रों में यत्र-तत्र गुरु कृपा से शिष्य के शक्तिपात के उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। कहा जाता है कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने स्वामी विवेकानन्द पर शक्तिपात कर उनकी शक्ति का जागरण किया था। तभी नास्तिक नरेन्द्र स्वामी विवेकानन्द बन सके। सन्त ज्ञानेश्वर के अनुसार भगवान कृष्ण ने अर्जुन पर शक्तिपात किया था ।

सन्त एकनाथ की भागवत टीका में भद्र-अवधूत संवाद में दत्तात्रेय द्वारा भद्र पर शक्तिपात करने की घटना दी गई हैं। इसमें स्पर्श दीक्षा से आत्मबोध कराया गया। आलिंगन करते ही आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा। जब वह अन्दर न रोका जा सका,तो बाहर स्वेद और नेत्राश्रुओं के रूप में निकल पड़ा। शरीर का अङ्ग-अङ्ग खिलखिला-सा उठा। रोमाञ्च होने लगा, मन अमन हो गया,देहभाव की सुधि-बुधि न रही। अङ्गों में कम्पन आ गया। सङ्कल्प-विकल्प की समाप्ति हुई। शिष्य ने अपना जीव भाव गुरु को समर्पित किया। इसमें शक्तिपात के सभी लक्षण आ गये हैं।

सन्त एकनाथ ने भागवत टीका मे अपने जनार्दन स्वामी का भी उदाहरण दिया है कि उन्हें किस प्रकार दत्तात्रेय द्वारा शक्तिपात का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुग्रह प्राप्त हुआ। वह अपने गुरु को दत्तात्रेय की शिष्य-परम्परा में मानते हैं। गुरु ने शिष्य के मस्तक पर हाथ रखा और शक्ति का जागरण हो गया।

प्रकार :—

शक्तिपात तीन प्रकार का होता है—तीव्र, मध्य और मन्द। इन तीनों के भेद होते हैं। भेद होने के कारण उनके लाभों में अन्तर तो स्वाभाविक ही है, विद्युतचालित पंखे में मन्द, मध्य और तीव्र-गति का प्रभाव तुरन्त वायु की गति से परिलक्षित होने लगता है। उदाहरण के लिए तीव्र शक्तिपात के तीन प्रकार हैं तीव्र-तीव्र, मध्य तीव्र और मन्द तीव्र तीव्र-तीव्र शक्ति के आगे तीन भेद हैं अत्यन्त तीव्र, मध्य तीव्र और मन्द तीव्र। अत्यन्त तीव्र से उसी समय शरीर छूट जाता है। मध्य-तीव्र तीव्र में कुछ समय लगता है और मन्द तीव्र-तीव्र से अपने आप ही शरीर का नाश होता है। अत्यन्त तीव्र-तीव्र प्रारब्ध कर्मों का भी नाश ही हो जाता है। शेष में भी प्रारब्ध का नाश शक्तिपात की तीव्रता पर निर्भर करता है।

तीव्र तीव्र शक्तिपात से तो शरीर का नाश होता है, परन्तु मध्य तीव्र में ऐसा नहीं होता, उसमें अज्ञान का नाश और ज्ञान का उदय होता है। इस ज्ञानार्जन से कर्मों का क्षय होता है। गीता के शब्दों में—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।।

अर्थात् 'हे अर्जुन! तेजी से जली हुई अग्नि जिस तरह ईंधनों को जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि भी समस्त कर्मों को भस्मसात कर दिया करती है।"

मन्द तीव्र शक्तिपात से मन में विवेक के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है, सद्गुरु की प्राप्ति की इच्छा जाग्रत होती है तत्व को जानने की उत्कण्ठा ही इसका लक्षण है। इच्छा होने पर सद्गुरु की प्राप्ति भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होती है। गुरु की प्राप्ति होने पर जिज्ञासाओं का शमन होता है। शिष्य मुक्तिपथ की ओर अग्रसर होता है।

अधिकार :-

शक्तिपात के लिए गुरु को सामर्थ्य का होना तो आवश्यक है, परन्तु शिष्य को इसके लिए कोई तैयारी नहीं करनी पड़ती। तैयारीकी आवश्यकता न होने पर भी उसका अधिकार तो उसे प्राप्त होना ही चाहिए अन्यथा शक्तिपात तो एक खेल मात्र बनकर रह जायेगा। इस अधिकार के लिए शास्त्र ने कुछ मर्यादाएँ नियत की हैं, उनका पालन व विकास आवश्यक है, तभी वह सद्गुरु का पात्र बन जाता है। शिष्य में किन गुणों का विकास होना चाहिए। इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

'जो इन्द्रियों को जीतने वाला, ब्रह्मचारी, गुरुभक्त हो, उसी के सम्मुख यह रहस्य प्रकट करना उचित है।'

—हंसोपनिषद्

"इस पैप्पलाद ऋषि को प्राप्त हुए महाशास्त्र को चाहे जिस किसी को न देना चाहिए। नास्तिक कृतघ्न, दुर्वृत्त, दुरात्मा, दाम्भिक, नृशंश शठ और असत्यभाषीको इसे कदापि न दें। जो सुव्रतधारी, सच्चा भक्त, शुद्ध वृत्ति वाला, सुशील, गुरुभक्त, शतदम वाला, धर्मबुद्धि वाला, ब्रह्मचर्य में चित्त लगाने वाला, भक्ति-भावना वाला हो, कृतघ्न न हो, उसी को इसे देना चाहिए। यदि ऐसा न मिले, तो किसी को न देकर उसकी रक्षा करनी चाहिए।'

—शरभोपनिषद्

"यह ज्ञान शङ्कर का महान् शास्त्र है। उसे जो कोई नास्तिक, कृतघ्नी, दुराचारी, दुरात्मा हो उसको नहीं देना। पर जिसका अन्तःकरण गुरु-भक्ति से शुद्ध हो, ऐसे व्यक्ति को एक महीना, छः महीना या वर्ष भर तक परीक्षा करने के उपरान्त ही इस शास्त्र को देना चाहिये।'

—तेजबिन्दु उपनिषद्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह ब्रह्म का ज्ञान उसे नहीं देना चाहिए, जो अत्यन्त शांत न हो, जो पुत्र न हो, शिष्य न हो और एक वर्ष पास न रहा हो । अनजान कुल-शील वाले को भी नहीं देना चाहिए और न सुनाना चाहिए । जिसको परमात्मा के ऊपर और परमात्मा के समान ही गुरु के ऊपर परम भक्ति हो, उसी के लिए यह वाक्य कहे गये हैं और ऐसी आत्मा को ही ये प्रकाशवान् करते हैं ।'

—सुवाल उपनिषद्

यस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्
प्रशान्तय चित्ताय शमन्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाच तां तत्वतो ब्रह्म विद्याम् ।

—मुण्डक १।२।१३

'वह ज्ञानी गुरु उस श्रद्धापूर्ण, शान्तिचित्त एवं तितिक्षा और साधना निष्ठ शिष्य को ब्रह्म-विद्या का उपदेश करे, जिससे वह अविनाशी सत्स्वरूप आत्मा को जान ले ।'

यह भी ध्यान रखने की बात है कि सत्पात्र, श्रद्धालु और विश्वासी शिष्य ही गुरु-कृपा का लाभ उठा सकता है । जिसमें यह गुण नहीं, उस ऊसर भूमि में किसी भी गुरु का बोया गया-ज्ञान-बीज नहीं जम सकता है । गुरु के एक पक्षीय प्रयत्न से भी शिष्य कल्याण नहीं हो सकता । दोनों ही पक्षों की श्रेष्ठता से गुरु शिष्य संयोग का सच्चा लाभ मिलता है । कहा भी है—

गुरुश्चेदुद्धरत्यज्ञमात्मीयात्पौरुषादृते ।
उष्ट्रं दान्तं वलीवर्दं तत्कस्मान्नोद्धरत्यसौ ॥

—योग वासिष्ठ ५।४३।१६

'यदि गुरु किसी अविचारी और पुरुषार्थहीन का उद्धार कर सकते होते तो ऊँट, हाथी, बैल आदि का उद्धार क्यों न करते ?'

सच्चिचष्यन्तु कुलेशानि शुभलक्षणसंयुतम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समाधिसाधनोपेतं गुणशीलसमन्वितम् ॥
स्वच्छदेहाम्बरं प्राज्ञं धार्मिकं शुद्धमानसम् ।
दृढव्रतं सदाचारं श्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ॥
दक्षमल्पाशिनं गूढ़चित्तं निर्व्याजसेवकम् ।
विमृष्यकारिणं वीरं मनोदारिद्रवर्ज्जितम् ॥

अर्थात् जो व्यक्ति समाधि के साधनों, गुण और शील से समन्वित हो, वही दीक्षा का श्रेष्ठ अधिकारी है। जो स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाला, धार्मिक, शुद्ध मन वाला, दृढ़व्रती सदाचारी, श्रद्धा-भक्ति से युक्त विचारवान, उदारचित्त, गम्भीर, मिताहारी, समस्त कर्मों में दक्ष, अभिमान शून्य वीर और निष्काम भाव वाला वही दीक्षा का अधिकार रहता है।'

शिष्य के भी गुरु के प्रति अनेक कर्तव्य है। उन सबमें आवश्यक कर्तव्य हैं सच्ची श्रद्धा और भक्ति-भावना का होना। यही वह आकर्षण है, जिसके बल पर शिष्य गुरु के हृदय में से आवश्यक सहायता और कृपा प्राप्त कर सकता है। यदि बछड़ा थन चूसेगा नहीं तो गाय उसके मुख में अपना दूध उड़ेल नहीं सकेगी। जिसके मन में भक्ति भावना का अभाव है, केवल चिह्न-पूजा के लिए अथवा प्रयोजन विशेष के लिए किसी गुरु को वरण किया है, तो ऐसे लोग वह प्रसाद प्राप्त नहीं कर सकते, जो श्रद्धा-भावना वाले शिष्य प्राप्त करते हैं।

शिष्य को अपने गुरु-भक्ति की स्थापना हृदय में करनी पड़ती है और यही आगे चलकर ईश्वर-भक्ति के रूप में परिणित हो जाती है। गुरु-भक्ति ईश्वर-भक्ति का ही प्रारम्भिक एवं स्थूल रूप है। आरम्भिक शिष्यों के लिए इसकी उपयोगिता बताते हुए कहा गया है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यते कथिता ह्यार्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।

—श्वेताश्वतरोपनिषद

'जिसके मन में परमात्मा की भक्ति के समान ही गुरु की भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्ति है उसी महान् आत्मा वाले के हृदय में यह ज्ञान प्रकाशित होता है।"

शक्तिपात का अधिकार प्राप्त करने के लिए निष्काम भाव का विकास अत्यन्त आवश्यक है। गीता में भी कहा है—

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥

—गीता २।५.१

अर्थात्—"समत्व बुद्धि से युक्त जो ज्ञानी पुरुष कर्मफल का त्याग करते हैं, वे जन्म के बन्धन से मुक्त होकर ईश्वर के दुःख विरहित पद को जा पहुँचते हैं।"

तभी भगवान् ने कहा है—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥

—गीता ४।१४

अर्थात् "मुझे कर्म का लेप अर्थात् बाधा नहीं होती, क्योंकि कर्म के फल में मेरी इच्छा नहीं है। जो मुझे इस प्रकार जानता है, उसे कर्मकी बाधा नहीं होती।'

ऐसा निष्काम साधक ही शक्तिपात का उत्तम अधिकारी माना जाता है। इसे पर-शक्तिपात कहा जाता है।

जिनमें निष्कामता का अभाव रहता है और फल की इच्छा रहती है, उन्हें निम्न कोटि का अधिकार प्राप्त होता है। इसे अपर शक्तिपात कहा जाता है। निष्काम साधक के लिए गुरु को बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं रहती परन्तु जिसमें इस गुण का अभाव रहता है, उनके लिये बाह्य उपकरणोंकी अपेक्षा रहती है और शास्त्रीय मर्यादाका पालन करना पड़ता है।

वैज्ञानिक प्रक्रिया :-

शक्तिपात एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिससे गुरु शक्ति का संचार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिष्य में करता है। गुरु को आध्यात्मिक शक्तियों से ओत-प्रोत होना आवश्यक बताता गया है। उनके षट्चक्र और कुंडलिनी का जागरण होना आवश्यक है. तभी वह शिष्य के इन महत्वपूर्ण केन्द्रों को प्रभावित कर सकता है। शिष्य की यह शक्तियाँ सुप्त अवस्था में होती हैं, उन्हें जगाना मात्र होता है। माचिस की डिब्बी पर जलाने की सामर्थ्य वाली सामग्री लगी रहती है, परन्तु वह अपने आप नहीं जल सकती। उसे जलाने के लिए बाह्य उपकरण की अपेक्षा रहती है जो उसमें विद्यमान शक्तियों को उत्तेजित कर सके। माचिस की तीली पर भी ऐसी रासायनिक सामिग्री लगी रहती है, जो डिब्बी पर लगी सामग्रीको उत्तेजित करने की क्षमता रखती है। शक्तिपात वही व्यक्ति कर सकता है, जो अपनी आध्यात्मिक शक्तियों को एकत्रित करना जानता है।

साधारणतःहाथ के स्पर्श से शक्तिपात किया जाता है। आधुनिक विज्ञान की भी यही मान्यता है कि हाथ के पोरुओं में विद्युत का संचार रहता है और अपनी प्राण-विद्युत को दूसरे के शरीर में प्रवेश करके उसके शरीर व मन में परिवर्तन लाये जा सकते हैं। हिप्नोटिज्म आदि कुछ ऐसी वैज्ञानिक प्रणालियों का आविष्कार किया जा चुका है, जिनमें हाथ की विद्युत से चमत्कारिक अनुभूतियाँ दिखाई देती हैं। भारतीय सन्त तो लाखों वर्षों से इस अभ्यास को करते आ रहे हैं। वे हाथ के स्पर्श व मार्जन आदि क्रियाओं से कष्टसाध्य रोगों का निवारण तक करते देखे गये हैं। यह जादू नहीं, वैज्ञानिक सत्य है किहमारे प्राणों में रोग-निवारक शक्ति होती है। जब बच्चे को चोट लगती है, तो माँ उस स्थान पर फूँक देती है और बच्चा सुख अनुभव करता है। रोता हुआ बच्चा जब गोद में आता है चुप हो जाता है, क्योंकि वह व्यक्ति के शरीर की विद्युत के स्पर्श में आता है और उसके शरीर में एक शक्तिशाली है प्रवाह दौड़ने लगता है। प्रियजनों का चुम्बन उनसे आलिंगन, हाथ मिलाना और गुरुजनों के चरण स्पर्श से असाधारण प्रसन्नता प्राप्त होती है। इन क्रियाओं की सफलता में भी यही रहस्य निहित है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कि एक व्यक्ति की विद्युत दूसरे के शरीर में उस क्रिया विशेष के माध्यम से प्रवेश करती है।

भारतीय ऋषि जानते थे कि किस माध्यम से शक्ति का संचार सरल रीति से होना सम्भव है। प्राण विद्युत तो सारे शरीर मे रहती है, परन्तु उसका संचार प्रमुख रूप से हाथों से ही किया जा सकता है। वैसे आलिंगन भी एक सशक्त प्रक्रिया है। सामर्थ्यवान गुरु के सारे शरीर में भक्ति की विद्युत का प्रवाह चलता है, जो भी उससे स्पर्श करता है, उस शक्ति से लाभान्वित होता है। परन्तु यदि उसका संचार एक विशेष विधि-विधान और प्रबल इच्छा-शक्ति से किया जाए तो उसका प्रभाव विशेष होता है। शक्तिपात जिन परिस्थियों में किया जाता है, दोनों पक्षों की ओर से पवित्र और अनुकूल भावनाओं का आदान-प्रदान होता है, इससे उस प्रक्रिया को और अधिक बल प्राप्त होता है।

शक्तिपात में निष्कामता परिलक्षित होती है। जिसके पास शक्ति का भण्डार एकत्रित हो गया है, वह उसे अपने तक सीमित नहीं रखना चाहता वरन् योग्य पात्रों को वितरण करना चाहता है। यह जनहित की भावना ही समाज में सुव्यवस्था लाने में सहायक सिद्ध होती है। आजकल स्थिति विपरीत है। अपने अहं की पुष्टि और विस्तार के लिए वह अपनी विद्या को अपने तक ही सीमित रखना चाहता है। जिनके पास किसी प्रकार का भी भण्डार एकत्रित हो गयाहै, वह उसका नाजायज लाभ उठाना चाहता है। प्राचीन काल में ऐसा न था। वे समाज के उत्थान में विश्वास करते थे। शिष्य की शक्तियों को विकसित करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे, चाहे वे विद्या भौतिक हो या आध्यात्मिक। शक्तिपात तो उदार हृदय का प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसके गुरु अपनी शक्ति का व्यय करके शिष्य की सामर्थ्य को बढाता है। अपने तप की पूंजी में से खर्च करके शिष्य को देना परमार्थ और निःस्वार्थ भावनाओं का परिणाम है। यह परम्परा निरन्तर चलती रहती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जब शिष्य की शक्तियों का पूर्ण विकास हो जाता है तो वह अपने से कम विकसित व्यक्तियों को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है। वह इसे अपना नैतिक उत्तरदायित्व समझता है।

अतः शक्तिपात एक ऐसा वैज्ञानिक और आध्यात्मिक साधन है, जिससे गुप्त शक्तियों का जागरण किया जाता है।

—:❋:—

कुण्डलिनी द्वारा शक्ति जागरण और प्रभाव

पिंड को ब्रह्मांड का एक छोटा नमूना बताया गया है। वृक्ष का सारा कलेवर एक छोटे से बीज में समाया रहता है। नन्हें-से क्षुद्र कीट में मनुष्य-शरीर का ढाँचा विद्यमान है। सौर-मण्डल के ग्रहों का पारस्परिक आकर्षण और क्रिया-कलाप जिस ढङ्ग से चलता है, उसकी एक नन्हीं-सी प्रक्रिया परमाणु परिवार के इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन, प्रोटोन आदि प्रदर्शित करते हैं। इसी प्रकार समस्त ब्रह्मांड मनुष्य-देह-पिंड में—एक लघु कलेवर में दृष्टिगोचर होता है। हमारी इस छोटी-सी देह में वह सब कुछ विद्यमान है, जो इस निखिल विश्व ब्रह्मांड में उपस्थित दृश्य और अदृश्य इकाइयों में पाया जाता है। इस पृथ्वी की समस्त विशेषताओं को भी हम अपनी इस छोटी—सी देह में विद्यमान देख सकते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृथ्वी की समस्त शक्तियों, विशेषताओं और विभूतियों के केन्द्र उसके सन्तुलन बिन्दु उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव हैं। यहीं से वह सूत्र-सञ्चालन होता है,जिसके कारण यह धरतीएक सजीव पिंड एवं अगणित जीवधारियों की क्रीड़ा-स्थली बनी हुई है। यदि ध्रुवों की स्थिति में किसी प्रकार आघात पहुँच जांय या परिवर्तन उपस्थित हो जाय तो फिर इस भू-मण्डल का स्वरूप बदल कर कुछ और ही तरह का हो जायगा। कहा जाता है किसी ध्रुव के सन्तुलन केन्द्र-बिन्दु पर यदि एक घूँसा मार देने जितना आघात भी पहुँचा दिया जाय, तो यह पृथ्वी अपनी कक्षासे लाखों-करोड़ों मील इधर-उधर हट जायगी और तब दिन, रात्रि ऋतु, वर्षा, गर्मी आदि का सारा स्वरूप ही बदलकर किसी दूसरे कर्म में परिणित हो जायगा। यह छोटा-सा घूँसा आघात भू-पिंड को किसी अन्य ग्रह-नक्षत्र से टकराकर चूर-चूर हो जानेकी स्थिति में डाल सकता है। कारण स्पष्ट है-ध्रुव ही तो सारी धरती का नियन्त्रण करतेहैं और उन्हीं के शक्ति-संस्थान कठपुतली की तरह इस भू-मण्डल को विभिन्न क्रीड़ा-कलाप करने की प्रेरणा एवं क्षमता प्रदान करते हैं। दोनों ध्रुव ही तो उसकी क्रिया और चेतना के केन्द्र-बिन्दु हैं।

जिस प्रकार पृथ्वी में चेतना एवं क्रिया उत्तरी-दक्षिणी' ध्रुवों से प्राप्त होती है, उसी प्रकार मानव पिंड के भी दो ही अति सूक्ष्म शक्ति संस्थान हैं। उत्तरी ध्रुव हैं—ब्रह्मरन्ध्र—मस्तिष्क में सहस्रार कमल। दक्षिणी ध्रुव है सुषुम्ना संस्थान—कुण्डलिनी केन्द्र मूलाधार चक्र। पौराणिक कथा के अनुसार क्षीर-सागर में, सहस्र फल वाले सर्प पर विष्णु भगवान शयन करते हैं। यह क्षीर-सागर मस्तिष्क में भरा श्वेत सघन स्नेह सरोवर ही है। सहस्रार कमल एक ऐसा परमाणु है, जो अन्य कोषों की तरह गोल न होकर आरी के दाँतों की तरह कोण-कलेवरों से आवेष्ठित है। इन दाँतों को सर्प-फन कहते हैं। चेतन का केन्द्र विन्दु इसी ध्रुवकण में प्रतिष्ठित है। चेतन और अचेतन मष्तिष्कों के अगणित घटकों को जो इन्द्रियजन्य एवं अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता है,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसका आधार यही ध्रुव-विष्णु अथवा सहस्रार कमल है। ध्यान से लेकर समाधि तक और आत्म-चिन्तन से भक्तियोग तक की सारी आध्यात्मिक साधनायें तथा मनोबल, आत्म बल एवं संकल्पजन्य-सिद्धियों का केन्द्र बिन्दु इसी स्थान पर है।

दूसरा दक्षिण ध्रुव—मूलाधार चक्र, सुमेरु-संस्थान, सुषुम्नाकेन्द्र है। जो मल-मूत्र के स्थानों के बीचों बीच अवस्थित है। कुंडलिनी महासर्पिणी, प्रचंड क्रिया-शक्ति इसी स्थान पर सोई पड़ी है। उत्तरी ध्रुव का महासर्प अपनी सहचरी सर्पिणी के बिना और दक्षिणी ध्रुव की महासर्पिणी अपने सहचर महासर्प के बिना निरानन्द मूर्छित जीवन व्यतीत करते हैं। मनुष्य-शरीर विश्व की समस्त विशेषताओं का प्रतीक प्रतिबिम्ब होते हुए भी तुच्छ-सा जीवन व्यतीत करते हुए—कीट-पतङ्गों की-मौत मर जाता है, कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त नहीं कर पाता। इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारे पिंड के, देह के दोनों ध्रुव मूर्छित पड़े है, यदि वे सजग हो गये होते, तो ब्रह्माण्ड जैसी महान् चेतना अपने पिंड में भी परिलक्षित होती।

मूत्र-स्थान यों एक प्रकार से घृणित एवं उपेक्षित स्थान है। पर तत्वतः उसकी सामर्थ्य मस्तिष्क में अवस्थित ब्रह्मरन्ध्र जितनी ही हैं। वह हमारी सक्रियता का केन्द्र है। नाक, कान आदि छिद्र भी मल विसर्जन के लिए प्रयुक्त होते हैं, पर उन्हें कोई ढकता नहीं। मूत्र-यन्त्र को ढकने की अनादि एवं आदिम परिपाटी के पीछे वह सतर्कता है, जिसमें यह निर्देश है कि इस संस्थान से जो अजस्र शक्ति प्रवाह बहता है उसकी रक्षा की जानी चाहिए। शरीर के अन्य अङ्गों की तरह यों प्रजनन अवयव भी मांस-मज्जा मात्र से ही बने हैं, पर उनके दर्शन मात्र से मन विचलित हो उठता है। अश्लील चित्र अथवा अश्लील चिंतन जब मस्तिष्क में उथल-पुथल पैदा कर देता है तब उन अवयवों का दर्शन यदि भावनात्मक हलचल को उच्छृंखला बनादे तो आश्चर्य ही क्या है? यहाँ यह रहस्य जान लेना ही चाहिए मूत्र संस्थान के मूल में बैठी हुई कुंडलिनी शक्ति प्रसुप्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थिति में भी इतनी तीव्र है कि उसकी प्रचण्ड धारायें खुली प्रवाहित नहीं रहने दी जा सकती हैं। उन्हें आवरण में रखने से उनका अपव्यय बचता है और अन्यों के मानसिक संतुलन को क्षति नहीं पहुँचती। छोटे बच्चों को भी कटिबन्ध इसलिए पहनाते हैं। ब्रह्मचारी को धोती के अतिरिक्त लँगोटी भी बाँधे रहना है पहलवान भी ऐसा ही करते हैं। संन्यास और वानप्रस्थ में भी यही प्रक्रिया अपनानी पड़ती है।

ब्रह्मरन्ध्र मस्तिष्क की सामर्थ्य से हम सभी परिचित हैं पर कुंडलिनी क्रिया-शक्ति के केन्द्र-बिन्दु मूलाधार का रहस्य बहुत कम लोगों को मालूम है। उसी संस्थान का जादू है कि मनुष्य अपने समान एक नये मनुष्य को बनाकर तैयार कर देता है, जबकि भगवान भी अपने जैसा नया भगवान बना सकने का साहस न कर सका। इन अवयवों को पारस्परिक स्पर्श होने से नर-नारी के बीच एक असाधारण भावना प्रवाह बनने लगता है। साथी के दुश्चरित्र और अविश्वस्त होने की बात मानते हुए भी परस्पर इतना आकर्षण हो जाता है कि व्यभिचार परायण नर-नारी भी एक दूसरे के लिए सभी मर्यादाओं को तोड़कर रोग, कलंक, पाप, परिवार विग्रह एवं धन हानि की क्षति उठाते देखे गये हैं। विशुद्ध दाम्पत्य जीने वाले पति-पत्नी के पारस्परिक आकर्षण का केन्द्र जहाँ उनकी धर्म भावना है, वहाँ वह शारीरिक क्रिया कलाप भी हैं, जिनके कारण कुंडलिनी बिन्दुओं का स्पर्श कर दूसरे के शरीर एवं मन पर जादुई प्रभाव डालता है और एक दूसरे को अपना वशवर्ती कर लेता है।

शिव लिंग के पूजा-प्रचलन में एक महान आध्यात्मिक तत्व-ज्ञान का संकेत है, जिसमें व्यक्ति को सचेत किया गया है कि वह शरीर के इस अवयव में ईश्वरीय दिव्य शक्ति का अति उत्कृष्ट अंश समाविष्ट समझे और इस ब्रह्मांड को ईश्वर की क्रियाशक्ति-कुण्डलिनी का प्रतीक माने। शिवलिंग का जल-अभिषेक करने का एक तात्पर्य यह भी है कि इस शक्ति के महान् लाभों को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसे शीतल रखा जाय, उद्दीप्त न होने दिया जाय। योगी-यती अपनी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासनाओं में यह तत्वज्ञान सँजोये ही रहते हैं कि उन्हें ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिए, ताकि पिण्ड की—देह की—मूलाधार क्रियाशक्ति कुंडलिनी का अपव्यय न हो और वह वहिर्मुखी होकर अस्त-व्यस्त बनने, उच्छृङ्खल होने की अपेक्षा लौटकर ऊर्ध्वगामी दिशा पकड़ती हुई ब्रह्मरन्ध्र अवस्थित महासर्प के साथ तादात्म्य होकर परमानन्द—ब्रह्मानन्द का लक्ष्य प्राप्त कर सके।

कुण्डलिनी का एक अमोघ चमत्कार प्रजनन-शक्ति—काम क्रीड़ा और उसकी अनुभूतियों और प्रतिक्रियाओं के रूप में देखा और समझा जाता रहा है। इस रूप में उसका उपयोग करने की इच्छा बोधवान् बालकों से लेकर अशक्त वयोवृद्धों तक में पाई जाती है, भले ही वे उसे मूर्त्त रूप देने में तरुणों की तरह सफल न हो सकें। इतना मात्र परिचय वस्तुत: बहुत ही स्वल्प है। कुण्डलिनी काम-वासना के रूप में जितना प्रभावित करती है, उससे लाखों गुना अधिक प्रभावित वह कर सकती है, सर्वाङ्गीण—सर्वतोमुखी—क्रिया-शक्ति के रूप में। भूखण्डों को काट कर वीरान बनाती चलने वाली, उच्छृङ्खल नदियों को जब बाँध के रूप में रोका और नहरों के रूप में प्रवाहित किया जाता है, तो उससे सहस्रों एकड़ जमीन सींची जाती और उससे प्रचुर धन-धान्य की उत्पत्ति होती है। ठीक इसी प्रकार प्रजनन-शक्ति को कामुकता की उच्छृङ्खलता से रोककर यदि अन्य रचनात्मक कार्यों में लगा दिया जाय, तो उसके सत्परिणाम आश्चर्यजनक होते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए आध्यात्मिक साधनाओं में इन्द्रिय संयम को—ब्रह्मचर्य को बहुत महत्व दिया गया है।

मल-मूत्र स्थान के मध्य अवस्थित मूलाधार चक्र का केन्द्र-विन्दु एक तिकोना कण है जिसे 'सुमेरु' अथवा कूर्म कहते हैं। शरीर में समस्त जीवन-कण गोल हैं केवल दो ही ऐसे हैं जिनकी आकृति में अन्तर है—एक ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्रार कमल नाम से पुकारा जाने वाला आगी की नोकों जैसी आकृति का ब्रह्मरन्ध्र—उत्तरीध्रुव। दूसरा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मूलाधार में अवस्थित चपटा बीच में उठा हुआ—कछुए की आकृति वाला—दक्षिणी ध्रुव। इन दोनों पर ही जीव की सारी आधारशिला रखी है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के-अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोशों के अन्तःकरण चतुष्टय में, सप्त प्राणों के—मूलाधार यही दो ध्रुव हैं। इन्हीं की शक्ति और प्रवृत्ति से हमारा बाह्य और अन्तरङ्ग जीवन क्रम चलते रहने में समर्थ होता है।

उत्तरी ध्रुव सहस्रार कमल में विक्षोभ उत्पन्न करने और उसकी शक्ति को अस्त-व्यस्त करने का दोष, लोभ, मोह, अहंकार जैसी दुष्प्रवृत्तियों का है। मस्तिष्क उन चिन्तनों में दौड़ जाता है, तो उसे आत्म-चिन्तन के लिए—ब्रह्मशक्ति संचय के लिये अवसर ही नहीं मिलता। इसी प्रकार दक्षिणी ध्रुव-मूलाधार से भरी प्रचण्ड क्षमता को कार्य-शक्ति में लगा दिया जाय, तो मनुष्य पर्वत उठाने एवं समुद्र मथने जैसे कार्यों को कर सकता है। क्रियाशक्ति मानव-प्राणी में असीम है। किन्तु उसका क्षय कामुकता के विषय-विकारों में होता रहता है। यदि इस प्रवाह को गलत दिशा से, रोककर सही दिशा में लगाया जा सके तो मनुष्य की कार्य-क्षमता साधारण न रहकर दैत्यों अथवा देवताओं जैसी हो सकती है।

पुराणों में समुद्र-मन्थन की कथा आती है। यह सारा चित्रण सूक्ष्म रूप से मानव-शरीर में अवस्थित कुण्डलिनी शक्ति के प्रयोग प्रयोजन का है। हमारा मूत्र संस्थान खारी जल से भरा समुद्र है। उसे अनगणित रत्नों का भण्डार भी कह सकते हैं। स्थूल और सूक्ष्म शक्तियों की सुविस्तृत रत्नराशि इसमें छिपी हुई है। प्रजापति के संकेत पर एक बार समुद्र मथा गया। देव और दानव इसके मन्थन करने में जुट गये। असुर उसे अपनी ओर खींचते थे अर्थात् कामुकता की ओर घसीटते थे और सुर उसे रचनात्मक प्रयोजनों में नियोजित करने के लिए तत्पर थे। इसी खींच-तान को दूध में से मक्खन निकालने वाली बिलोने की, मन्थन की क्रिया चित्रित की गई है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समुद्र मन्थन उपाख्यान में यह भी वर्णन है कि भगवान ने कछुए का रूप बनाकर आधार स्थापित किया, उनकी पीठ पर सुमेर पर्वत 'रई' के स्थान पर अवस्थित हुआ। शेषनाग के साढ़े तीन फेरे उस पर्वत पर लगाये गये और उसके द्वारा मन्थन-कार्य सम्पन्न हुआ। कच्छप और सुमेरु मूलाधार चक्र में अवस्थित वह शक्ति-बीज है, जो दूसरे कणों की तरह गोल न होकर चिपटा है और जिसकी पीठ नाभि की ओर उभरी हुई है। इसके चारों को महासर्पिणी, कुण्डलिनी साढ़े तीन फेरे लपेटकर पड़ी हुई है। इसे जगाने का कार्य मन्थन का प्रकरण, उद्दाम वासना के उभार और दमन के रूप में होता है। सुर और असुर दोनों ही मनो-भाव से अपना-अपना जोर आजमाते हैं और मन्थन आरम्भ हो जाता है। कामुकता भड़काने और उसे रोकने का खेल ऐसा है, जैसे सिंह को क्रुद्ध और उत्तेजित करने के उपरान्त उससे लड़ने का साहस करना। कृष्ण की रासलीला का अध्यातम-रहस्य कुछ इसी प्रकार का है। तन्त्र में वर्जित पाँच 'मकारों' (मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन सेवन) में पाँचवा भाग मैथुन का है। उस प्रकरण की गहराई में जाने और विवेचन करने का यह अवसर नहीं। यहाँ तो इतना ही समझ लेना पर्याप्त है कि कामुकता की उद्दीप्त स्थिति को प्रतिरोध द्वारा नियंत्रित करने का पुरुषार्थ—समुद्र मन्थन का प्रयोजन पूरा करता है।

समुद्र मन्थन कुण्डलिनी की स्थूल प्रेरणा कामुकता की अन्य दिशा में नियोजित करना है। यों कामुकता भी विषयानन्द और सन्तान लाभ का सुख देती है, पर यह दो छोटे लाभ नगण्य है। समुद्र मन्थन १४ रत्न निकले थे। जिनमें अमृत, कल्प-वृक्ष, कामधेनु जैसे अति उत्क्रष्ट और अति महत्वपूर्ण भी थे। यह ऐतिहासिक अथवा पौराणिक उपाख्यान हमारे जीवन में चरितार्थ किया जा सकता है। कुण्डलिनी जागरण साधना में काम वासना का निग्रह समुद्र मन्थन की भूमिका प्रस्तुत करता है। यों आगे चलकर आत्म-प्राण और महा-प्राण की इड़ा-पिंगला द्वारा सुषुम्ना तक पहुँचाने की साधना भी समुद्र-मन्थन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का दूसरा कार्यक्रम प्रस्तुत करती है, पर उसका प्रथम सोपान तो इन्द्रिय निग्रह पर ही अवलम्बित है। उत्तरी ध्रुव सहस्रार विचार शक्ति का और दक्षिण ध्रुव, मूलाधार क्रिता शक्ति का केन्द्र है। यह दोनों ही शक्तियाँ अद्‌भुत एवं महान है, इनका समन्वय ही व्यक्ति की भौतिक एवं आत्मिक स्थिति को समुन्नति बनाने में समर्थ होता है। सहस्रार की विचारणात्मक साधनायें प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि स्तर की हैं। अनेक-अनेक प्रयोग और प्रयोजन है। उनकी चर्चा भी अन्यत्र की गई है। यहाँ तो कुण्डिलिनी शक्ति का आरम्भिक परिचय करना और उसका प्रथम सोपान प्रस्तुत करना ही अभीष्ट है। अस्तु यहाँ समझना और समझाना ही पर्याप्त है कि कुण्डलिनी के स्थूल स्वरूप की महत्ता समझें, अनुमान लगावे कि यदि उसे अन्तर्मुखी बनाकर प्रसुप्त दिव्य शक्तियों के जागरण में विधिवत् प्रयुक्त किया जा सके तो अद्‌भुत एवं अनुपम लाभ उपलब्ध किये जा सकते हैं।

लौकिकानन्द का भी यदि कोई मूल्यांकन किया जाय, तो वह भी संयमी व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है। कुण्डलिनी की संचित, परिपुष्ट एवं परिष्कृत शक्ति-ही भौतिक प्रयोजनों को पूरा कर सकती है। जो उसके साथ खिलवाड़ करते रहते हैं, उन्हें तो शारीरिक अशक्ति और मानसिक अवसाद ही हाथ लगने वाले हैं। ग्रहस्थ जीवन में भी ब्रह्मचर्य की अधिकाधिक मर्यादाओं का पालन किया जाता रहे, तो उससे मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक दृढ़ता अक्षुण्ण बनी रह कर अनेक महान उद्‌देश्यों की पूर्ति हो सकती हैं।

—❀—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाद-साधना

संत समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग अनहद या अनाहत नाद की उपासना करता है। राधास्वामी, रैदास, कबीर और नानक आदि ने तो विशेष रूप से इसी योग का प्रचार किया था। इन सन्तों के अलग-२ सम्प्रदाय बने, जिन्हें इसी साधना का उपदेश दिया गया।

आत्मोत्थान के लिए हमारे वेद-शास्त्रों में जितने भी उपायों का प्रतिपादन किया गया है, उनमें नादयोग को उत्कृष्ट की संज्ञा दी गई क्योंकि वह मन की स्थिरता के लिए उपयोग साधक सिद्ध हुआ है। योग और तांत्रिक सभी प्रकार की साधनाओं में इसका उच्च स्थान है। तांत्रिक आर्यों का मत है कि जब (आर्णव शब्द) नाद श्रुति-गोचर होता है, वह एकाग्र अवस्था ज्ञान की अवस्था है और जब नाद-श्रवण स्थगित हो जाता है—वह चित्त की निरोध अवस्था है, वह मन की वृत्ति नहीं रहती। संस्कार मात्र रूप से मन विद्यमान रहता है, किन्तु यह संस्कार भी जब नहीं रहता, तब चिन्मात्र या शुद्ध आत्मा की स्वरूप स्थिति जाननी चाहिए।

हठयोग में भी नाद-साधना का प्रतिपादन किया गया है। यहाँ इसे श्रेष्ठ साधना माना जाता है। इस योग में चार नाद-भूमियों का आरम्भ घट, परिचय और निष्पत्ति का उल्लेख आता है। अन्तिम भूमि को सिद्धावस्था माना जाता है।

योगियों का विचार है कि जिस तरह गङ्गा का अवतरण विष्णु पद से शिव के मस्तक पर हुआ था, उसी तरह यह नाद गंगा के प्रवाह का अवतरण भी विश्व-कल्याण के लिए हुआ है। तांत्रिकाचार्य का कथन है कि यह नाद प्रवाह ऊपर से भूमध्य में गिरता है। इसी से सारे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिश्र को उत्पत्ति होती है और उत्पन्न होकर सारे जगत में यही प्राण और जीवनी शक्ति के रूप में विद्यमान रहती है। मानव शरीर में श्वाँस प्रश्वास का खेल प्राण करता है। तांत्रिक भाषा में इसे हंस कहते हैं। 'ह' शिव या पुरुप तत्व का और 'स' शक्ति या प्रकृति का तत्व का पर्याय है। जहाँ इन दोनों का मिलन होता है, वहीं नाद की अनुभूति होती है तभी शिव-संहिता में कहा गया है—

त नादसदृशो लय।

"मन को लय करने वाले साधनों में, नाद की तुलना करने वाला और कोई साधन नहीं है।'

भगवान् शङ्कराचार्य ने भी 'योग तारावली' में नाद तत्व की प्रशंसा की है—

सदा शिवोक्तानि सपादलक्षं—
लयावधानानि वसन्ति लोके।
नादानुसन्धानसमाधिमेक
मन्याम हे मान्यतमं लयानाम ।।
नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं
त्वांमन्महे तत्वपदं लयानाम।
भवत्प्रसादात् पवनेन साधं
विलीयते विष्णुपदे मनो मे।
सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।
नाद एवानुसन्धेय योगासाम्राज्यमिच्छता।

भगवान शिव ने मन के लय के लिये सवा लक्ष साधनों का निर्देश किया है, परन्तु उन सबमें नादानुसंधान ! सुलभ और श्रेष्ठ है। हे नादानुसंधान ! आपका नमस्कार करता हूँ। आप परमपद से स्थिति लाभ कराते हैं। आपकी कृपा से मेरे प्राण और मन दोनों विष्णु के परम पद में लीन हो जायेंगे। यदि योग-साम्राज्य में गति प्राप्त करने की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आँकाक्षा हो, तो समस्त चिन्ताओं से मुक्त होकर सावधानता से मन को एकाग्र करके अनहत नाद का श्रवण करो।'

परिभाषा—

ब्रह्मविन्दोपनिषद् में नाद-साधक को वेदज्ञ की संज्ञा दी गई है।

'शब्द को ब्रह्म कहा है क्योंकि ईश्वर और जीव को शृंखला में बांधने का काम शब्द द्वारा ही होता है। सृष्टि की उत्पत्ति का प्रारम्भ भी शब्द से हुआ है। पञ्च तत्वों में सबसे पहले आकाश बना, आकाश की तन्मात्रा शब्द है। अन्य समस्त पदार्थों की भाँति शब्द भी दो प्रकार का है सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म शब्द को विचार कहते हैं और शब्द को नाद।

ब्रह्म लोक से हमारे लिए ईश्वरीय शब्द प्रवाह सदैव प्रवाहित होता है, ईश्वर हमारे साथ वार्तालाप करना चाहता है, पर हममें से बहुत कम लोग ऐसे हैं जो उसे सुनना चाहते हैं या सुनने की इच्छा करते हैं। ईश्वर निरन्तर एक ऐसी विचारधारा प्रेरित करता है, जो हमारे लिए अतीत कल्याणकारी होती है। उसको यदि सुना और समझा जा सके तथा उसके अनुसार मार्ग निर्धारित किया जा सके तो निःसन्देह जीवनोद्देश्य की ओर द्रुत गति से अग्रसर हुआ जा सकता है। यह विचार धारा हमारी आत्मा से टकराती है।

हमारा अन्तकरण एक रेडियो है, जिसकी ओर यदि अभिमुख हुआ जाय, अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुख बनाकर आत्मा में प्रस्फुटित होने वाली दिव्य विचार-लहरियों को सुना जाय, तो ईश्वरीय वाणी हमें प्रत्यक्ष सुनाई पड़ सकती है। इसी को आकाशवाणी कहते हैं। हमें क्या करना चाहिए, क्या नहीं? क्या उचित है और क्या अनुचित? इसका प्रत्यक्ष सन्देश ईश्वर की ओर से प्राप्त होता है। अन्तःकरण की पुकार आत्मा का आवेश, ईश्वरीय सन्देश आकाशवाणी विज्ञान आदि नामों से इसी विचारधारा को पुकारते हैं। अपनी आत्मा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के यन्त्र को स्वच्छ करके जो इस दिव्य संकेत को सुनने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं, वे आत्मदर्शी एवं ईश्वर परायण कहलाते हैं ।

ईश्वर उनके लिए विल्कुल समीप होता है, वे ईश्वर की बातें सुनते हैं और अपनी उससे कहते हैं । इस दिव्य मिलन के लिए हाड़ मांस के स्थूल नेत्र या कानों का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । आत्मा की समीपता में बैठा हुआ अन्तःकरण अपनी दिव्य इन्द्रियों की सहायता से कई कार्यों को आसानी से पूरा कर लेता है यह अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म शब्द, विचार तब तक धुँधले रूप में दिखाई पड़ता है, जब तक कषाय-कल्मष आत्मा में बने रहते हैं । जितनी आंतरिक पवित्रता बढ़ती जाती है, उतने ही वह दिव्य सन्देश बिल्कुल स्पष्ट रूप में सामने आते हैं । आरम्भ में अपने लिए कर्तव्य का बोध होता है । पाप-पुण्य का संकेत होता है । बुरा कर्म करते समय अन्तर में भय, घृणा, लज्जा, संकोच आदि का होना तथा उत्तम कार्य करते समय—आत्मसन्तोष, प्रसन्नता उत्साह आदि का होना इसी स्थिति का बोधक है ।

यह दिव्य सन्देश आगे चलकर भूत, भविष्य, वर्तमान की सभी घटनाओं को प्रकट करता है, कि इसके लिए क्या मन्तव्य बन रहा है और भविष्य में किसके लिए क्या घटना घटित होने वाली हैं, यह सब कुछ उससे प्रकट हो जाता है । और भी ऊँची स्थिति पर पहुँचने पर उसके लिए सृष्टि के सब रहस्य खुल जाते हैं । कोई ऐसी बात नहीं होती जो उससे छिपी हो, परन्तु जैसे ही इतना बड़ा ज्ञान उसे मिलता है, वैसे ही वह उसका उपयोग करने में अत्यन्त असावधान हो जाता है । बालबुद्धि के लोगों के हाथों में, यह दिव्य ज्ञान पड़ जाय, तो उसे बाजीगरी के खिलवाड़ खड़े करने में ही नष्ट कर दे । पर अधिकारी पुरुष अपनी इस शक्ति का किसी को परिचय नहीं होने देते और उसे भौतिक बखेड़ों से पूर्णतया बचाकर अपनी तथा दूसरों की आत्मोन्नति में लगाते हैं ।

शब्द ब्रह्म का दूसरा रूप जो विचार-सन्देश की अपेक्षा कुछ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूक्ष्म है वह नाद है। प्रकृति के अन्तराल में एक ध्वनि प्रतिक्षण उठती रहती है, जिसकी प्रेरणा से आघातों के द्वारा परमाणुओं में गति उत्पन्न होती और सृष्टि का समस्त क्रिया-कलाप चलता है। यह प्रारम्भिक शब्द 'ॐ' है। यह ॐ ध्वनि जैसे-जैसे अन्य तत्वों के क्षेत्र में होकर गुजरती है, वैसे ही उसकी ध्वनि में अन्तर आता है। वंशों के छिद्रों में हवा फूँकते हैं, तो उसमें एक ध्वनि उत्पन्न होती हैं। पर आगे के छिद्रों में से जिन छिद्र में जितनी हवा निकल जाती है, उसी के अनुसार भिन्न भिन्न स्वरों की ध्वनियां उत्पन्न होती हैं, इसी प्रकार ॐ ध्वनि भी विभिन्न तत्वों के सम्पर्क में आकर विविध प्रकार की स्वर लहरियों में परिणित हो जाती है। इन स्वर लहरियों को सुनना ही नादयोग है।

डा० सम्पूर्णानन्द ने नाद तत्व की व्याख्या इस प्रकार की है—

इस जगत में पञ्चीकृत महाभूत काम कर रहे हैं। उनके एक-एक अणु में कम्पन है। उस कम्पन से यह जगत् शब्दायमान हो रहा है। जहाँ कम्पन है, वहाँ शब्द है। सूक्ष्मभूत अपञ्चीकृत हैं, पर उनके परमाणुओं में भी कम्पन हैं, और इस कम्पन से एक सूक्ष्म शब्द राशि उत्पन्न होती है। जो साधक को 'अनाहत शब्द' प्रतीत होता है कबीर ने कहा है—'तत्व झङ्कार ब्रह्माण्ड में ही' उस शब्द राशि का नाम अनाहत नाद है पीछे के महातमाओं के शब्दों में भी अनहत नाद है। जिस समय तक अभ्यासी इस अनाहत नाद को नहीं सुन पाता, तब तक उसका अभ्यास कच्चा है। पुनः कबीर के शब्दों में—'जोग जगा अनहद धुनि सुनिके। जब अनाहद सुनई पड़ने लगा, तब उसका अर्थ यह है कि योगी का धीरे-धीरे अन्तर्जगत में प्रवेश होने लगा। वह अपने भूले हुए स्वरूप को कुछ-कुछ पहचानने लगा। शक्ति, वैभव और ज्ञान के भण्डार की झलक पाने लगा। अर्थात् महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती के दर्शन पाने लगा, जो अभ्यासी वहीं उझलकर रह गया-और दुःख का विषय है कि सचमुच बहुत से अभ्यासी इसके आगे नहीं बढ़ते। पर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो तल्लीनता के साथ बढ़ता जाता है, वह क्रमशः ऊपर के लोकों में प्रवेश करता जाता है। अन्त में यह अवस्था हो जाती है, जहाँ वह आकाश की सीमा का उल्लंघन का अधिकारी हो जाता है। वही शब्द का अन्त है।

शिव और शक्ति का संयोग और पारस्परिक सम्बन्ध ही 'नाद' कहलाता है। इसे अव्यक्त ध्वनि और अचल अक्षर मात्रा भी कहा जाता है।

मध्यम वाणी को नाद की संज्ञा दी जाती है। नवनादों की समष्टि को भास्कर राय ने मध्यमा कहा है। यह परा-वाणी की तरह न तो अत्यन्त सूक्ष्म है और न बैखरी की तरह अत्यन्त स्थूल। इसलिए इसे मध्यमा कहते हैं। वरिवस्य रहस्य १ अंश पृ० १।

नाद को सदाशिव कहा जाता है। प्रपञ्चसार विवरण (प्रथम पटल) में कहा है—

बिन्दुरीश्वर नादस्तस्याश्चितमिश्रं रूपं पुरुषाख्यम्। बीज मचिदंशः।

अर्थात् 'बिन्दु ईश्वर का नाद है। उससे मिश्रित चित्त स्वयं पुरुष नाम वाला अचित् का अंश है।

एक तन्त्रशास्त्री के अनुसार यह 'शिव, बिन्दु, सम्पूर्ण प्राणियों में नादात्मक शब्द के रूप में विद्यमान रहता है। अपने से अभिन्न विश्व का परामृष्ट करने वाला पराग्रुप विमर्श ही शब्द है। सब भूतों में 'जीवकर्त्ता' के रूप में स्फुरित होने के कारण उसे नाद कहते हैं।'

अनहद नाद का शुद्ध रूप—अनाहत नाद। 'आहत' नाद वे होते हैं, जो किसी प्रेरणा या आघात से उत्पन्न होते हैं। वाणी के आकाश तत्व से टकराने अथवा किन्हीं दो वस्तुओं के टकराने वाले शब्द 'आहत' कहे जाते हैं। बिना किसी आघात के दिव्य प्रकृति के अन्तराल से जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती है, उन्हें 'अनाहत' या 'अनहद' कहते हैं। इस शब्द को सुनने की भावना को 'सुख' कहते हैं। अनहत नाद एक बिना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाद की दैवी सन्देश प्रणाली है। साधक इसे जानकर सब कुछ जान सकता है। इन शब्दों में 'ॐ' ध्वनि आत्म कल्याणकारक और विभिन्न प्रकार की सिद्धियों की जननी है।

तन्त्र का मत है कि प्राणात्मक उच्चार से जो एक अव्यक्त ध्वनि निकलती है, उसी को अनाहद नाद कहा जाता है। इसका कर्त्ता और बाधक कोई नहीं। यह नाद हर प्राणी के हृदय में अपने आप ध्वनित होता रहता है।

एको नादात्मको वर्णः सर्ववर्णाविभागवान्।
सोऽनस्तमितरूपत्वाद् अनाहत इवोदितः ।।

अर्थात् 'एक ही नाद के स्वरूप वाला वर्ण है' जो सब वर्णों के अविभाग वाला है। वह अनस्तमित रूप वाला होने से अनाहत की भाँति उदित होता है।

नाद-प्रवाह का प्रतिपादन करते हुए 'सेतुबन्ध' में कहा गया है—'नाद सबसे पहले परा-स्वरूप होकर मूलाधार से उठकर मणिपूर और अनाहत चक्रों में आता है। वहाँ प्राण और मन से मिलकर पश्यन्ती और मध्यमा का रूप ग्रहण करता हैं। फिर गले में आकर बैखरी रूप वर्णों में परणित हो जाता है। नाद को समस्त वर्णों का कारण रूप कहा गया है। जिस तरह बीज में फल और पुष्प रहते हैं, उसी तरह नाद में सूक्ष्म रूप से वर्ण रहते हैं।

प्रकार—

अनाहत या अनाहद शब्द प्रमुखतः दस माने जाते हैं, जिसकी ध्वनि अलग-अलग है—१. संहारक की पायजेब की झंकार जैसी, २. पालक की सागर की लहर सी, ३. सृजक की मृदङ्ग-सी, ४. सहस्र दल कमल की शंख सी, ५. चिदानन्दमण्डल की मुरली सी, ७. सच्चिदानन्दमण्डल की बीन सी, ८. अखण्ड अर्द्ध मात्रा की सिंह-गर्जन-सी, ९. अगम मण्डल की नफीरी सी, १०. अलखमण्डल की बुलबुल सी।

जैसे अनेक रेडियो-स्टेशनों से एक ही समय में अनेक प्रोग्राम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रौडकास्ट होते रहते हैं, वैसे ही अनेक प्रकार के अनाहत शब्द भी प्रस्फुटित होते रहते हैं, उनके कारण, उपयोग और रहस्य अनेक प्रकार के हैं। चौंसठ अनाहद अब तक गिने गये हैं; पर उन्हें सुनना हर किसी के लिए सम्भव नहीं। जिनकी आत्मिक शक्ति जितनी ऊँची होगी वे उतने ही सूक्ष्म शब्दों को सुनेंगे। पर उपर्युक्त दस शब्द सामान्य आत्मबल वाले भी आसानी से सुन सकते हैं।

विराट रूप—

नाद के विराट रूप का वर्णन करते हुए स्वामी नयनानन्द सरस्वती ने लिखा है—

विराट् में जितने मण्डल है—उनमें से दस मण्डलों ने शब्द भी जारी किये हैं। इन मण्डलों में प्रत्येक मण्डल अपना एक शब्द रखता है। विराट् में कुल छत्तीस मण्डल हैं और वे सब अपना-अपना एक-एक शब्द रखते हैं। परन्तु केवल दस का शब्द प्रकट स्वर में चालू है और शेष छब्बीस मण्डलों के शब्द स्वर रूप में गुप्त आवाज में चालू रहते हैं। उपर्युक्त ३६ मण्डल अलग-अलग अपना रङ्ग रूप, शब्द और अधिकार रखते हैं। उन सबकी अर्द्धमात्रायें अलग हैं, उनके बीज यानी शिव भी अलग-अलग हैं। प्रत्येक मण्डल से जो सूत्र यहाँ आता है, वह स्वर या शब्द के रूप में ही होता है। इस राज नामक बाजे में जो ३६ तार होते हैं, वे ३६ मंजिल के स्मारक हैं और ३६ प्रकार के अनाहत नाद के द्योतक हैं। दस प्रकार का अनाहद कान से सुना जाता है। बाकी ३६ प्रकार का अनाहद—जो स्वरूप है—केवल अनुभव के कान से सुनाई पड़ता है। वे लोक यथार्थ नहीं जानते, जो अनाहत को केवल दस ही प्रकार का जानते या मानते हैं। कारण यह कि जो दस मण्डल अखण्ड अर्द्धमात्रा के नीचे चन्द्राकार घेरे में आबाद है—वहीं से प्रकट शब्द हुआ करता है और अनाहद नाद के जितने प्रचारक संसार में आये वे सब उन मण्डलों के ही 'शिव' लोग' थे। अखण्ड अर्द्धमात्रा से लेकर पूर्ण मात्रा तक जितनी मंजिले हैं—या जितने मण्डल हैं उनके शिव या

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारण—शरीर इस मायूक भूमिका पर नहीं आये। इसलिए उनके मण्डलों का स्वर लोगों को सुनाई नहीं पड़ा। हाँ, परमरम्य भविष्य महाकाल में से वे सब इस भूमि पर अवतार लेंगे, उसी समय छत्तीस तार वाला इसराज बजेगा।'

लाभ—

पंच-तत्वों से प्रति ध्वनित हुई ॐकार की स्वर लहरियों को सुनने की नाद योग साधना कई दृष्टियों से बड़ी महत्वपूर्ण है। प्रथम तो इस दिव्य सङ्गीत को सुनने में इतना आनन्द आता है, जितना किसी मधुर से मधुर वाद्य या गायन सुनने में नहीं आता। दूसरे, इस नाद-श्रवण से मानसिक तन्तुओं का प्रस्फुटन होता है। साँप जब सङ्गीत सुनता है तो उसकी नाड़ियों में एक विद्युत लहर प्रवाहित हो उठती है, मृग का मस्तिष्क मधुर संगीत सुनकर इतना उत्साहित हो उठता है कि उसे तन बदन का होश नहीं रहता। योरोप में गायें दुहते समय मधुर बाजे बजाये जाते हैं जिससे उनका स्नायु-समूह उत्तेजित होकर अधिक मात्रा में दूध उत्पन्न करता है। नाद का दिव्य संगीत सुनकर मानव-मस्तिष्क में भी ऐसी स्फुरणता होती है, जिसके कारण अनेक गुप्त मानसिक शक्तियाँ विकसित होती हैं। इसी प्रकार भौतिक और आत्मिक दोनों ही दिशाओं में प्रगति होती है।

तीसरा लाभ एकाग्रता है। एक वस्तु पर—नाद पर ध्यान एकाग्र होने से मन की बिखरी हुई शक्तियाँ एकत्रित होती हैं और इस प्रकार मन को वश में करने तथा निश्चित कार्य पर उसे पूरी तरह लगा देने की साधना सफल हो जाती है। यह सफलता कितनी शानदार है, इसे प्रत्येक अध्यात्म-मार्ग का जिज्ञासु भली प्रकार जानता है। आतशी कांच द्वारा एक-दो इंच जगह सूर्य-किरणें एकत्रित कर देने से अग्नि उत्पन्न हो जाती है। मानव प्राणी अपने सुविस्तृत शरीर में बिखरी हुई अनन्त दिव्य शक्तियों का एकीकरण करके कैसी महान शक्ति उत्पन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करता है, जिसके द्वारा इस संसार को हिलाया जा सकता है और अपने लिए आकाश में मार्ग बनाया जा सकता है।

नाद-मण्डल यमलोक से बहुत ऊँचे बताये जाते हैं। इसलिए नाद साधक को यमदूत पकड़ने की सामर्थ्य नहीं रखते।

नाद-साधक की बुद्धि का विकास इतना होता रहता है, जिससे वह सत्य का अन्वेषण करता रह सके और विवेक की अनुभूति प्राप्त कर सके।

नाद मंडलों का विवरण ऊपर दिया गया है। उनमें से साधक जिस स्तर तक पहुँच जाता है और मृत्यु-समय जिस शब्द को पकड़ने की स्थिति में होता है, उसकी आत्मा उसी मण्डल में जा पहुँचती है।

नाद साधक का इतना आत्मिक उत्थान हो जाता है कि काम-क्रोध. लोभ, मोह, अहंकार आदि षट्रिपु उस पर कोई प्रभाव नहीं दिखा सकते। आक्रमण करना तो इनका स्वभाव ही, परन्तु नाद साधक पर यह विजय प्राप्त नहीं कर सकते। वह सदा इनसे अप्रभावित हो रहता है, इसलिए दिनों-दिन उसकी शक्तियों का विकास होता चलता है।

नाद-साधना से अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचना सम्भव है।

साधना १—

नाद की स्वर-लहरियों को पकड़ते-पकड़ते साधक 'ॐ' की रस्सी पकड़ता हुआ उस उद्गम ब्रह्म तक पहुंच जाता है, जो आत्मा का अभीष्ट स्थान है। ब्रह्मलोक की प्राप्ति, दूसरे शब्दों में मुक्ति, निर्वाण, परमपद आदि नामों से पुकारी जाती है। नाद के आधार पर मनोलय करता हुआ साधक योग की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचता है और अभीर लक्ष्ल को प्राप्त कर लेता है। नाद का अभ्यास किस प्रकार करना चाहिए अब इस पर कुछ प्रकाश डालते हैं—

अभ्यास के लिए ऐसा स्थान प्राप्त कीजिए जो एकान्त हो और जहाँ बाहर की आवाज न आती हो। तीक्ष्ण प्रकाश इस अभ्यास

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में बाधक है। इसलिये कोई अंधेरी कोठरी ढूँढ़नी चाहिए। एक पहर रात हो जाने के बाद से लेकर सूर्योदय से पूर्व तक का समय इसके लिये बहुत अच्छा है। यदि इस समय की व्यवस्था न हो तो प्रातः ९ बजे तक और शाम को दिन छिपे बाद का कोई समय नियत किया जा सकता है। नित्यनियमिय समय पर अभ्यास करना चाहिए। अपने नियत कमरे में एक आसन या कुर्सी बिछाकर बैठो। आसन पर बैठो तो पीठ पीछे कोई आसन या कपड़े की गठरी आदि रख लो। यह भी न हो अपना आसन एक कोने में लगाओ। जिस प्रकार शरीर को आराम मिले, उस तरह बैठ जाओ और शरीर को ढीला छोड़ने का प्रयत्न करो।

भावना करो कि मेरा शरीर रुई का ढेर मात्र है और मैं इस समय इसे पूरी तरह स्वतन्त्र छोड़ रहा हूँ। थोड़ी देर में शरीर बिल्कुल ढीला हो जायगा। आराम कुर्सी मसनद या दीवार का सहारा लेने से शरीर ठीक प्रकार अपने स्थान पर बना रहेगा। साफ रुई की मुलायम सी दो डाटें बनाकर उन्हें कानों से लगाओ कि बाहर की कोई आवाज भीतर प्रवेश न कर सके। अंगुलियों से कान के छेद बन्द करके भी काम चल सकता है। अब बाहर की कोई आवाज तुम्हें सुनाई न पड़ेगी। अब उस ओर से ध्यान हटाकर अपने मूर्धा स्थान पर ले जाओ और वहां जो शब्द हो रहे हैं, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनने का प्रयत्न करो।

आरम्भ में शायद कुछ भी सुनाई न पड़े, पर दो चार दिन प्रयत्न करने के बाद जैसे-जैसे सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय निर्मल होती जायगी, वैसे ही शब्दों की स्पष्टता बढ़ती जायेगी। पहले पहल कई शब्द सुनाई देते हैं। शरीर में जो रक्त प्रवाह हो रहा है, उसकी आवाज रेल की तरह धक् धक् सुनाई पड़ती है। वायु के आने जाने की आवाज, बादल गरजने जैसी होता है, रसों के पकने और उनके आगे की ओर गति करने की आवाज चटकने की सी होती है। यह तीन प्रकार के शब्द शरीर की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार दो तरह के शब्द मानसिक क्रियाओं के हैं। मन में चंचलता की लहरें उठती हैं, वे मन पर विशिष्ट प्रक्रिया करती है। वे मानस तन्तुओं पर टकरा कर ऐसे शब्द करती हैं मानों टीन के ऊपर मेह बरस रहा हो और जब मस्तिष्क वाह्य ज्ञान को ग्रहण करके अपने में धारण करता है, तो ऐसा मालूम होता है मानो कोई प्राणी साँस ले रहा हो। यह पांचों शब्द शरीर और मन के हैं। कुछ ही दिन से अभ्यास के साधारणतः दो तीन सप्ताह के प्रयत्न से यह शब्द स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ते हैं। इन शब्दों के सुनने से सूक्ष्म इन्द्रियाँ निर्मल होती जाती है और गुप्त शक्तियों को ग्रहण करने की उनकी योग्यता बढ़ती जाती है।

जब नाद श्रवण करने की योग्यता बढ़ जाती है, तो वंशी या सीटी से मिलती झुलती अनेक प्रकार की शब्दावलियाँ सुनाई पड़ती है, यह सूक्ष्म लोक में होने वाली क्रियाओं का परिचायक हैं। बहुत दिनों से बिछड़े हुए बच्चे को यदि उसकी माता की गोद में पहुँचाया जाता है, तो वह आनन्द से विभोर हो जाता है ऐसा ही आनन्द सुनने वाले को आता है।

जिन सूक्ष्म शब्द ध्वनियों को आज वह सुन रहा है, वास्तव में यह उसी तत्व के निकट से आ रही है, जहाँ से आत्मा और परमात्मा का विलगाव हुआ है और जहाँ पहुँचकर दोनों फिर एक हो सकते हैं। धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगते हैं और अभ्यासी को उनके सुनने में अद्भुत आनन्द आने लगता है। कभी-कभी तो वह शब्दों में मस्त होकर आनन्द से विह्वल हो जाता है और अपने तन मन की सुध-भूल जाता है। अन्तिम शब्द ॐ है, यह बहुत ही सूक्ष्म हैं। इसकी ध्वनि घण्टा ध्वनि के समान होती हैं। घड़ियाल में हथौड़ी मार देने पर जैसे वह कुछ देर तक झनझनाती रहती हैं, उसी प्रकार 'ॐ' का घण्टा शब्द सुनाई पड़ता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐकार ध्वनि जब सुनाई पड़ने लगती है, तो निद्रा, तन्द्रा या वेहोसी जैसी दशा उत्पन्न होने लगती है। उसी स्थिति के ऊपर वढ़ने वाली आत्मा परमात्मा में प्रवेश कर जाती है। और पूर्णतया परमात्मा वस्था प्राप्त कर लेती है।

—❀—

विन्दु साधना

महिमा—

शास्त्रों में विन्दु-साधना का महत्व इस प्रकार वर्णित है—

सिद्धें बिन्दौ महादेवि कि न सिध्यति भूतले।

हे पार्वती! विन्दु के सिद्ध हो जाने पर ऐसी कौन-सी सिद्धि है, जो साध को प्राप्त न हो सके।"

ऊर्ध्वरेत भवेद्यावावत तावत कालभयं कृतः।

—हठयोग प्रदीपिका

"जब साधक विन्दु को ऊर्ध्वगामी रखता है, तब तक उसको मृत्यु का भय नहीं होता।"

मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणाद्।

—शिव संहिता

"विन्दु का पतन ही मृत्यु और बिन्दु का धारण (स्थिरता) ही जीवन है।"

परिभाषा और व्याख्या—

विन्दु साधना का एक अर्थ ब्रह्मचर्य है। इस विन्दु का अर्थ 'वीर्य' भी है। आनन्द मय कोश की साधना में बिन्दु का अर्थ होगा—परमाणु सूक्ष्म से सूक्ष्म जो अणु है, वहाँ तक अपनी गति हो जाने पर भी ब्रह्म की समीपता तक पहुँचा जा सकता है और सामीप्य सुख का अनुभव किया जा सकता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किसी वस्तु को कूटकर यदि चूर्ण बनालें और चूर्ण को खुर्दवीन से देखे तो छोटे-छोटे टुकड़ों का एक ढेर दिखाई पड़ेंगे। यह टुकड़ें कई और टुकड़ों से मिलकर बने हैं। इन्हें भी वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से काटा जाये तो अन्त में जो न टूटने वाले, न कुटने वाले टुकड़े रह जायेंगे इन्हें परमाणु कहेंगे। इन परमाणुओं की लगभग सौ जातियाँ अब तक पहचानी जा चुकी है, जिन्हें अणुत्व कहा जाता है।

अणुओं के दो भाग हैं—एक सजीव दूसरा निर्जीव। दोनों ही एक पिंड या ग्रह के रूप में मालूम पड़ते हैं। पर वस्तुतः उनके भीतर और भी टुकड़े हैं। प्रत्येक अणु अपनी धुरी पर बड़े वेग से परिभ्रमण करता है। पृथ्वी भी सूर्य की परिक्रमा के लिए प्रति सैकण्ड १८॥ मील की चाल से चलती है, पर १०० परमाणुओं की गति चार हजार मील प्रति सैकिण्ड मानी जाती है।

यह परमाणु भी अनेक विद्युत कणों से मिलकर बने हैं, जिनकी दो जातियाँ हैं—ऋण कण और २० धन कण। धन कणों के चारों ओर ऋण-कण प्रति सेकेण्ड एक लाख अस्सी हजार मील की गति से परिभ्रमण करते हैं। उधन धन कण ऋण की परिक्रमा के केन्द्र होते हुए भी शांत नहीं बैठते। जैसे पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा लगाती है और सूर्य अपने सौर-मण्डल को लेकर कृत्तिका नक्षत्र की परिक्रमा करता है वैसे ही धन कण भी परमाणु की 'अन्तर्गति' का कारण होते हैं। ऋण-कण, जो कि द्रुतिगति से निरन्तर परिभ्रमण में संलग्न हैं, अपनी शक्ति सूर्य से अथवा विश्व-व्यापी अग्नि तत्व से प्राप्त करते हैं।

वैज्ञानिकों का कथन है कि यदि एक परमाणु के अन्दर का शक्तिपुञ्ज छूट पड़े तो क्षण भर में लन्दन जैसे तीन नगरों को भस्म कर सकता है, इस परमाणु के विस्फोट की विद्या मालूम करके ही एटम बम का आविष्कार हुआ। एक परमाणु के फाड़ देने से जो भयंकर विस्फोट होता है, उसका परिचय गत महायुद्ध में मिल चुका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है, इसकी और भी भयङ्करता का पूर्ण प्रकाश होना अभी बाकी है, जिसके लिए वैज्ञानिक लगे हुए हैं।

यह तो परमाणु शक्ति की बात रही, अभी उनके अङ्ग—ऋण-कण और धन-कणों के भी सूक्ष्म भागों का पता चला है। वे भी अपने से अनेक गुने सूक्ष्म परमाणुओं से बने हुए हैं जो ऋण-कणों के भीतर एक लाख छियासी हजार तीन सौ तीस मील प्रति सैकेण्ड की गति से परिभ्रमण करते हैं। अभी उनके भी अन्तर्गत कणाणुओं की खोज हो रही और विश्वास किया जाता है कि उन कर्पाणुओं की अपेक्षा ऋण-कण तथा धन-कणों की गति तथा शक्ति अनेकों गुनी है। उसी अनुपात से इन सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम अणुओं की गति तथा शक्ति होगी।

जब परमाणुओं के विस्फोट की शक्ति लन्दन जैसे तीन शहरों को जला देने की है, तो सर्गाणु की शक्ति एवं गति को कल्पना करना भी हमारे लिए कठिन होगा। उसके अन्तिम सूक्ष्म-केन्द्र को अप्रतिम,अप्रमेय, अचिन्त्य ही कह सकते हैं।

देखने में पृथ्वी चपटी मालूम पड़ती है पर वस्तुतः वह लट्टू की तरह अपनी धुरी पर घूमती रहती है। चौबीस घण्टे में उसका एक चक्कर पूरा हो जाता है। पृथ्वी की दूसरी चाल भी है, वह सूर्य की परिक्रमा करती है। इस चक्कर में उसे एक वर्ष लग जाता है। तीसरी चाल पृथ्वी की यह है कि सूर्य अपने ग्रह-उपग्रहों को साथ लेकर बड़े वेग से अभिजित नक्षण की ओर जा रहा है। अनुमान है कि वह कृतिका नक्षत्र की परिक्रमा करता है, इसमें पृथ्वी भी उसके साथ है लट्टू जब अपनी कील पर घूमता है, तो वह इधर-उधर झुकता-उठना भी रहता है, इसे मँडराने की चाले कहते हैं। जिसका एक चक्कर करीब २६ हजार वर्ष में पूरा होता है। कृत्तिका नक्षत्र भी सौर मण्डल आदि में अपने उपग्रहों को लेकर ध्रुव की परिक्रमा कपता है, उस दशा में पृथ्वी की गति पाँचवी हो जाती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूक्ष्म परमाणु के सूक्ष्मतम भाग तक मानव-बुद्धि की पहुँच हुई है और बड़े से बड़े महापरमाणुओं के रूप में पाँच गति तो पृथ्वी को विदित हुई। आकाश से असंख्य ग्रह नक्षत्रों का पारस्परिक सम्बन्ध न जाने कितने बड़े महा-अणु के रूप में पूरा होता होगा, उस महानता की कल्पना भी मस्तिष्क को थका देती है। इसे भी अप्रतिम अप्रमेय और अचिन्त्य ही कहा जायेगा।

सूक्ष्म से सूक्ष्म और महत् से महत् केन्द्रों पर जाकर बुद्धि थक जाती है और उससे छोटे या बड़े की कल्पना नहीं हो सकती, उस केन्द्र को बिन्दु कहते हैं।

अणु को योग की भाषा में 'अण्ड' कहते हैं। वीर्य का एक कण 'अण्ड' है। वह इतना छोटा होता है कि खुर्दबीन से भी मुश्किल से ही दिखाई देता है, पर जब वह विकसित होकर स्थूल रूप में आता है, तो वही बडा अण्डा हो जाता है। उस अण्डे के भीतर जो पक्षी रहता है, उसके अनेक अङ्ग-प्रत्यङ्ग होते हैं उन विभागों में असंख्य सूक्ष्म विभाग और उनमें भी अगणित कोषांड रहते हैं। इस प्रकार शरीर भी एक अणु है इसी को अन्ड या पिंड कहते हैं। अखिल विश्व ब्रह्माँड में अगणित सौर-मण्डल, आकाश गङ्गा और ध्रुव-चक्र हैं।

इन ग्रहों की दूरी और विस्तार का कुछ ठिकाना नहीं। पृथ्वी बहुत बड़ा पिंड है, पर सूर्य तो पृथ्वी से भी तेरह लाख गुना बड़ा है। सूर्य से भी करोड़ों गुने ग्रह आकाश में मौजूद हैं। इनकी दूरी का अनुमान इससे लगाया जाता है कि प्रकाश की गति प्रति सैकिंड पौने दो लाख मील है और उन ग्रहों का प्रकाश पृथ्वी तक आने में तीस लाख वर्ष लगाते हैं। यदि कोई ग्रह आज नष्ट हो जाय, तो उसका अस्तित्व न रहने पर भी उसकी प्रकाश-किरण आगामी तीस लाख वर्ष तक यहाँ आती रहेंगी। जिन नक्षत्रों का प्रकाश पृथ्वी पर आता है, उनके अतिरिक्त ऐसे ग्रह बहुत अधिक हैं, जो अत्यधिक दूरी के कारण पृथ्वी पर दूरबीनों से भी दिखाई नहीं देते। इतने बड़े और दूरस्थ यह जब अपनी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिक्रमा करते होंगे, अपने ग्रह-मंडल को साथ लेकर परिभ्रमण को निकलते होंगे, तो वे इतने अधिक विस्तृत शून्य में घूम जाते होंगे कि उस शून्य के विस्तार की कल्पना कर लेना मानव-मस्तिष्क के लिए बहुत कठिन है।

इतना बड़ा ब्रह्मांड भी एक अणु या अण्ड है। इसलिए उसे ब्रह्म + अण्ड = ब्रह्मांड कहते हैं। पुराणों में वर्णन है कि जो ब्रह्मांड हमारी जानकारी में है, उसके अतिरिक्त भी ऐसे ही और अगणित ब्रह्मांड हैं और उन सबका समूह एक महान् अंड है। उस महान् अंड की तुलना में पृथ्वी उससे छोटी बैठती है जितना कि परमाणु की तुलना में सर्गाणु छोटा होता है।

इस लघु से लघु और महान् से महान् अण्ड में जो शक्ति व्याप्त है, हम सबको गतिशील, विकसित, परिवर्तित और चैतन्य रखती है, उस सत्ता को 'बिन्दु' कहा गया है। यह बिन्दु ही परमात्मा है, उसी को छोटे से छोटे और बड़े से बड़ा कहा जाता है। "अणोरणीयान् महतो-महीयान्" कहकर उपनिषदों ने उस परब्रह्म का परिचय दिया है।

जर्मन दार्शनिक इमेन्युएल कांट ने इन दोनों शक्तियों के सम्बन्ध में अपनी एक पुस्तक के उपसंहार में लिखा है—

"संसार में मुझे केवल दो बातों से भय लगता है—पहिली बात यह है कि जब मैं रात को सितारों से भरे आकाश की ओर देखता हूं तो मेरे मन में विचार आता है कि यह सृष्टि कितनी विशाल है। जिस तरह से पृथ्वी को भी वैज्ञानिक एक सितारा मानते हैं, केवल इसी को विशालता का अनुमान लगायें, तो मस्तिष्क चकराने लगता है। इससे सूर्य पाँच लाख गुना बड़ा है। सूर्य से बड़ा एक ज्येष्ठा तारा है, वह उससे कई लाख गुना बड़ा है। पृथ्वी सूर्य के आस पास चक्कर काट रही है। इसका नियन्त्रण कैसे होता है और कौन करता है? इन लाखों करोड़ों तारों को देखकर तो मुझे भय लगता है। विचार आता है कि उनका संचालन कितना शक्तिशाली है, कितना महान् है? उसके सामने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेरी शक्ति कितनी सीमित है, नगण्य है। जब सृष्टि के संचालक की असीम शक्ति और अपनी सीमित शक्ति में बहुत अन्तर पाता हूँ तो मुझे भय लगता है मेरा मन काँप उठता है।

दूसरे प्रकार के भय का कारण यह है कि जब कोई बुरा काम करने लगता हूँ, तो मेरे अन्तर से एक शक्तिशाली आवाज आती है कि यह अनुचित कार्य है, इसे मत करो। उस ध्वनि में एक प्रकार का अनुशासन होता है, आज्ञा होती है। ऐसा लगता है कि वह मुझसे बड़ा है, जो अधिकार पूर्वक आदेश देता है। तब मैं सोचता हूँ कि जिस प्रकार का आदेश मेरे अन्तर से आता है, उस प्रकार का जीवन में, मैं नहीं बन पाता। जब उस आदेश और अपने जीवन की यथार्थता की बात मेरे मन में आती है, मुझे भय लगता है, क्योंकि उन दोनों में बहुत अन्तर है।"

आगे कांट साहब लिखते हैं—"आकाशस्थ तारों का संचालन करने वाली महान् शक्ति और मेरे अन्दर छिपी शक्ति मुझे एक ही जान पड़ती है।"

तांत्रिक शास्त्रियों ने विभिन्न प्रकार से बिन्दु की परिभाषा की है। कहा है कि "यह बिन्दु शक्तिकी वह अवस्था विशेष है, जहाँ से उसकी सृष्टि-क्रिया प्रारम्भ होती है। बिन्दु तत्वों को ईश्वर तत्व के नाम से भी पुकारते हैं। इस अवस्था में शक्ति चिद्‌रूपिणी होकर अव्यक्त इदं को तादात्म्य-भाव में लाकर उसके साथ चिद्बिन्दु का रूप धारण करती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस अवस्था में (अहम्) अपनी चेतना में अखिल (इदम्) को देखता है।"

पाँचरात्र और भागवत सम्प्रदाय में वैष्णव आगम के अन्तर्गत जो 'विशुद्ध तत्व' कहा जाता है, उसी को बिन्दु कहते हैं।

शिव की समवायिनी शक्ति दो तरह की है—एक ज्ञान-शक्ति और दूरी क्रिया-शक्ति। क्रिया-शक्ति को ही 'बिन्दु' नाम से अभिहित किया गया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज ने अपनी पुस्तक भारतीय संस्कृति और साधना' में लिखा है—

"तन्वातीत अवस्था में शिव और शक्ति का सामंजस्य रहता है। उस समय शिव-शक्ति के गर्भ में अन्तः सहृत भाव से अर्थात् शक्ति के साथ अभिन्न रूप से, विद्यमान रहता है। परन्तु, जब पराशक्ति स्वेच्छा से अपने स्फुरण को स्वयं देखती है, तभी विश्व की सृष्टि होती है, वस्तुतः इस स्फुरण का दर्शन ही विश्व-दर्शन है और विश्व-दर्शन ही सृष्टि है। इस अवस्था में दृष्टि ही सृष्टि है। अनुत्तर दशा में स्वरूप में अभिन्नता रहने पर भी विश्व देखा नहीं जाता। इसी से वह अवस्था सृष्टि-व्यापार नहीं है। इस दृष्टि या सृष्टि व्यापार में शिव तटस्थ रहते हैं। उनकी स्वरूपता स्वातन्त्र्य शक्ति ही सब कुछ करती है। शिव अग्नि स्वरूप है संवर्त्तानिल अथवा प्रलयानल स्वरूप हैं। शक्ति सोमस्वरूपा है। दोनों का साम्य ही तांत्रिक भाषा में बिन्दु नाम से कहा जाता है।"

श्री वीरमणिप्रसाद उपाध्याय (एम० ए०, डी० लिट०) के अनुसार—

"पराशिव-स्वरूप प्रकाश जब प्रपञ्च के अनुसंधान अथवा उन्मीलन की इच्छा से अपने में ही विश्रांत, परा, प्रकृति, माया, अविद्या, आदि पदों से व्यवह्रियमाण, जगदबीजभूत विमर्श को परमार्थतः अपने में ही कायम रखते हुए भी बाह्य या विसर्जन करता है, तब विमर्श विसृज्यते इति विसर्गः इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'विसर्ग' कहलाता है। पुनः वही शिवरूप प्रकाश जब प्रपञ्च के संहार अर्थात् निगिरण की इच्छा से विकृति को अपने में निमीलित करने लगता है, तब प्रकाश 'बिन्द्यतेऽविच्छद्यत' व्युत्पत्ति के अनुसार बिन्दु कहलाता है।

डा० शिवशङ्कर अवस्थी ने 'मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य' पुस्तक में इसका विभिन्न प्रकार से स्पष्टीकरण किया है।

"समस्त सृष्टि-चक्र का मूल बिन्दु के नाम से अभिहित किया गया

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। यह व्याख्या वस्तुतः आकारहीन ब्रह्म के सृष्टिरूप मात्र की रचना के अनुरूप ही है। अपार संसार के विविध भावी स्थल आकर-प्रकारों को अपने में सूक्ष्म रूप से समेटे हुए अवाङ्मनसागोचर पर-तत्व सर्व-प्रथम विन्दु के रूप में आकलित होता है। शब्दातीत परतत्व की ही संज्ञा महाबिन्दु है, जिसे अनिर्देश्य, अग्राह्य, अशन आदि निषेधों द्वारा कहा जाता है।

जगत् रूप अंकुर का केन्द्र होने के कारण उसे ही कारण-विन्दु कहते हैं। प्रपञ्चसार तन्त्र में कहा गया है—

विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिम्न्येति बिन्दुताम्।

—(प्र० सा० प्रथम पटल)

अर्थात्—"विशेष रूप से करने की इच्छा वाला पुरुष का वह घनी-भूत का ज्ञान बिंदु के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।"

कर्माभिन्न रूप ही विन्दु है। प्रकृति का ही, प्रलयावस्था से जो परिपक्व दशा के अनन्तर सृष्टियुन्मुख कर्मों से अभिन्न, स्व-आकार से निरूपित रूप है, वही विन्दु है।

कार्य, विन्दु, नाद और वीज का—पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के रूप में वर्णन किया गया है। चित्प्रधान काल लक्षण ईश्वर ही कार्य-विन्दु है। आचार्य पद्मपाद ने लिखा है—"यह विन्दु परम पुरुष रूप है।"

आह्लाद, तीक्ष्णता और दाहकता से अविच्छिन्न, प्रमाण प्रमेय और परिमित प्रभात रूप सोम, सूर्य और अग्नि की आश्रयभूत क्रिया-शक्ति के भिन्न-भिन्न रूपों में प्रस्फुटित होने पर भी उपाधिशून्य, पूर्ण, पर-प्रकाश, चिदिक्रिया में स्वतन्त्र, पर-प्रभातृ रूप परमेश्वर शिव ही विन्दु के नाम से कहे जाते हैं।

'तत्व रक्षा-विधान' नामक ग्रन्थ में स्वयं परमेश्वर ने हृदय, भ्रूमध्य द्वादशान्त—स्थानों में विश्रांति भेद से नर, शक्ति, शिवात्मक, इच्छा-दात्मक तथा शिवतत्व, विद्यातत्व और आत्मतत्व के रूप में वेदयिता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर प्रकाश रूप विन्दु ही विश्व के अवभासन की इच्छा से प्रस्फुटित होता है, ऐसा कहा—

विन्दु का स्थान आज्ञाचक्र में वतलाया जाता है। योग की भाषा में इसे तृतीय नेत्र और ज्ञानचक्षु भी कहते हैं।

"ध्यानविन्दुपनिषद्" (३७) में विन्दु-साधक को वेदज्ञ माना गया है—

तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् ।
अवाच्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित् ।

अर्थात्—'तेल की धारा के समान अविच्छिन्न और दीर्घ घण्टा-निनाद के सदृश्य विन्दु नाद, कला से अतीत जो जानता है, वह वेदज्ञ है"

एक तन्त्राचार्य ने ईश्वर-साक्षात्कार के लिए विन्दु-साधना को आवश्यक वताया है—"विन्दु की वात पहले ही कही गई है। इस भूमि में ज्योतिर्मय ज्ञानरूप से ईश्वरवोध की सूचना होती है। यहाँ प्रवेश हुए बिना जागतिक ज्ञान विलुप्त नहीं हो सकता। समाधिजनित प्रज्ञा से यह ऊपरी अवस्था है, समाधिजनित ज्ञान उत्कृष्ट होने पर भी जागतिक ज्ञान ही है। किन्तु अर्द्धमात्रा का ज्ञान चिन्मय अनुभव है, इसलिये यह श्रेष्ठ है। लौकिक ज्ञान त्रिपुटी का लोप नहीं होता, विराट् अभेद ज्ञान का उदय से भी भेद ज्ञान की निवृत्ति क्रमशः होती हैं। वह भेद ज्ञान क्रमशः स्तर-भेद करते-करते कटता है। तव पहले के देश-काल का ज्ञान कहता है सही, पर वह तनिक दूसरे प्रकार का होता है। योगियों को जिन पञ्च-शून्यों का परिचय मिलता है, उसमें विन्दु ही प्रथम शून्य है। विन्दु के स्तर में बीज नहीं रहता अर्थात् प्रकृति का स्फुरण नहीं रहता, इसलिये उनको पुरुष का अभिन्न स्वरूप भी कहा जा सकता है।"

वैज्ञानिक स्पष्टीकरणः—

विन्दु का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण करते हुए श्री सत्यव्रत शर्मा ने लिखा है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"शक्ति-मन्त्र के अनुसार विश्व-प्रपञ्च का पर्यवसान एक 'बिन्दु' में होता है। इस विन्दु को हम 'आयामरहित गणितीय बिन्दु' कह सकते हैं। इस बिन्दु को एक गणितीय रेखा लपेटे हुए हैं, जो इसके प्रत्येक पृष्ठभाग को स्पर्श भी करती हैं अर्थात् यह दोनों मिलकर एक 'बिन्दुमय' हो जाते हैं।" ब्रह्माण्ड सङ्कोच की इस प्रक्रिया पर विचार प्रकट करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त खगोश शास्त्री अर्नेस्ट जे० विपिक ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है—

"सम्पूर्ण ब्रह्मांड (सारा गैलेक्सी समुदाय अपने जीवित या मृत सूर्यों और ग्रहों के साथ) अपने को एक सूक्ष्म आकाश या बिन्दु में लय कर देगा।"

रेखा शक्ति ही तृतीय प्रकृति है, इसलिए वस्तुओं में गोलाई और वक्रता है। (Curvature) 'सापेक्षतावाद' के अनुसार, चूँकि सरल रेखा में गति सम्भव ही नहीं है, इसलिए प्रत्येक ग्रह-उपग्रह वक्र पथों पर गतिशील है और इस प्रकार विविध ब्रह्मांडों (Spherhids) का निर्माणं करते हैं।

शक्ति अपने दो रूपों—स्थैतिक अर्थात् कुंडलिनी और गयात्मक अर्थात् प्राण में प्रकट होती है। यह एक सामान्य बात है कि प्रत्येक सञ्चार की एक स्थैतिक पृष्ठभूमि होती है। शरीर में यह स्थिति केन्द्र मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति है। यह शक्ति ही सम्पूर्ण शरीर और इसमें प्रवाहित सभी प्राण शक्तियों का आधार है। यह शक्ति-केन्द्र चित् का स्थूल रूप है।

'इलेक्ट्रॉनिकथ्योरी' के अनुसार अणु' सौर-मण्डल से मिलता जुलता एक सूक्ष्म ब्रह्मांड है। अणु-केन्द्र में धनात्मक आवेश वाले 'प्रोट्रीन' का निवास है। इसके चारों ओर ऋणात्मक आवेश के तमाम इलेक्ट्रोन विभिन्न कक्षाओं में गतिशील है। दोनों आवेश मिलकर अणु को सन्तुलित रखते हैं, जिससे यह साधारक्त रूप में मग्न न हो जाय—'पिण्डे पिण्डे ब्रह्मांडे ब्रह्मांडे' के अनुसार अणु में घटने वाली यही घटना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समग्र विश्व में हो रही है। विश्व में सारे ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं और सूर्य सहित सारा गृह-मंडल भी किसी अन्य सापेक्ष केन्द्र के चारों ओर घूमता है और इस प्रकार हम 'ब्रह्म-विन्दु' तक पहुंच जाते है, जिस निरपेक्ष स्थित ब्रिन्दु के चारों ओर सारे मण्डल घूमते हैं और यही बिन्दु सर्वनियन्ता है।

साधक—

इस विन्दु का चिन्तन करने से आनन्दमय कोष स्थित जीव को उस परब्रह्म के रूप की कुछ झांकी होती है और उसे प्रतीत होता है कि परब्रह्म की—महा-अंड की तुलना में मेरा अस्तित्व मेरा पिण्ठ कितना तुच्छ है। इस तुच्छता का भान होने से अहङ्कार विचलित हो जाते हैं। दूसरी ओर अब अपने पिण्ड की—शरीर की तुलना करते हैं, तो प्रतीत होता है कि अटूट शक्ति के अक्षय भंडार सर्गाणु की इतनी अटूट संख्या और शक्ति जब हमारे भीतर है, तो हमें अपने को अशक्त समझने का कोई कारण नहीं है। उस शक्ति का उपयोग जान लिया जाय, तो संसार में होने वाली कोई भी बात हमारे लिये असंभव नहीं रह सकती।

जैसे महा-अण्ड की तुलना में हमारा शरीर अत्यन्त क्षुद्र है और हमारी तुलना में उसका विस्तार अनुप्रमेय है। इसी प्रकार सर्गाणुओं की दृष्टि में हमारा पिण्ड (शरीर) एक महाब्रह्मांड जैसा विशाल होगा। इसमें जो स्थिति समझ में आती है, वह प्रकृति अंड से भिन्न एक दिव्य शक्ति के रूप में विदित होती है। लगता है कि मैं मध्य बिन्दु हूँ, केन्द्र हूँ' सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल में मेरी व्यापकता है।

लघुता-महत्ता का एकान्त चिन्तन ही बिन्दु-साधन कहलाता है। इस साधना के साधक को सांसारिक जीवन की अवास्तविकता और तुच्छता का भली प्रकार बोध हो जाता है कि मैं अनन्त शक्ति का उद्गम होने के कारण इस सृष्टि का महत्वपूर्ण केन्द्र हूं। जैसे जापान पर फटा हुआ परमाणु बम ही 'ऐतिहासिक एटम बम' के रूप में चिरस्मरणीय रहेगा, वैसे ही जब अपने शक्ति-पुञ्ज का सदुपयोग किया

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आता है, तो उसके द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से संसार का भारी परिवर्तन करना सम्भव हो जाता है।

विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र के पिण्ड को एटम बम बनाकर 'असत्य' के साम्राज्य पर उस प्रकार विस्फोट किया कि लाखों वर्ष बीत जाने पर भी उसकी एक्टिव किरणें अभी समाप्त नहीं हुई हैं और अपने प्रभाव से अनेकों को बराबर प्रभावित करती चली आ रही हैं। महात्मा गाँधी ने बचपन में राजा हरिश्चन्द्र का चरित्र पढ़ा था, उनके अपने आत्म चरित्र में लिखा है कि मैं उसे पढ़कर इतना प्रभावित हुआ कि स्वयं भी हरिश्चन्द्र बनने की ठान ली। अपने संकल्प-बल द्वारा वे सचमुच हरिश्चन्द्र बन भी गये। राजा हरिश्चन्द्र आज नहीं हैं पर उनकी आत्मा आज भी उसी प्रकार अपना महान कार्य कर रही है, न जाने कितने अप्रकट गाँधी उसके द्वारा निर्मित होते रहते होंगे। गीताकार आज नहीं है, पर आज उनकी गीता कितनों को अमृत पिला रही है। यह पिण्ड का सूक्ष्म प्रभाव ही है, जो प्रकट या अप्रकट रूप से स्वपर कल्याण का महान आयोजन प्रस्तुत करता है।

कार्लमार्क्स के सूक्ष्म सक्ति-केन्द्र से प्रस्फुटित हुई चेतना आज आधी दुनियाँ को कम्युनिस्ट बना चुकी है। पूर्वकाल में श्रीकृष्ण, महात्मा ईसा, मुहम्मद, बुद्ध आदि ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं जिन्होंने संसार पर बड़े महत्वपूर्ण प्रभाव डाले हैं। इन प्रकट महापुरुषों के अतिरिक्त ऐसी अनेक अप्रकट आत्मायें भी हैं, जिन्होंने संसार की सेवा में जीवों के कल्याण में गुप्त रूप से बड़ा भारी काम किया है। हमारे देश में योगी अरविन्द, महर्षि रमण, रामकृष्ण परमहंस, समर्थ गुरु रामदास आदि द्वारा जो कार्य हुआ तथा आज भी अनेक महापुरुष जो कार्य कर रहे हैं, उनको स्थूल दृष्टि से नहीं समझा जा सकता है। युग परिवर्तन निकट है, उसके लिये रचनात्मक और ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों का सूक्ष्म जगत् में जो महान् आयोजन हो रहा है, उस महाकार्य को हमारे चर्म-चक्षु देख पावें तो जानें कि कैसा अनुपम एवं अभूतपूर्व परिवर्तन-चक्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रस्तुत हो रहा है और वह चिर निकट भविष्य में ही कैसे २ विलक्षण परिवर्तन करके मानव-जाति को एक नये प्रकाश की ओर ले जा रहा है।

विपयांतर चर्चा करना हमारा प्रयोजन नहीं हैं। यहाँ तो हमें यह बताना है कि लघुता और महत्ता के चिन्तन को विन्दु-साधना से आत्मा का भौतिक अभियान और लोभ विचलित होता है। साथ ही उस आंतरिक शक्ति का विस्तार होता है, जो स्वपर कल्याण के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

बिन्दु-साधक की आत्म-स्थिति उज्ज्वल होती है, उसके विकार मिट जाते हैं। फलस्वरूप उसे उस अनिवर्चनीय आनन्द की प्राप्ति होती है, जिसे प्राप्त करना जीवन-धारण का प्रमुख उद्देश्य है।

एक तन्त्र-शास्त्री ने विन्दु साधना का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है–"इसी विन्दु" में ज्ञान-भूमि की सूचना मिलती है। चित्त को एकाग्र करके उपसहृत किये विना अर्थात् विक्षिप्त अवस्था में, बिन्दु में स्थित नहीं हो सकती। विन्दु-अवस्था में स्थित होने पर भी यथार्थ लक्ष्य की प्राप्ति में अनेको व्यवधान रह जाते है। यद्यपि विन्दु भूमि में साधक अहंभाव में प्रतिष्ठित होकर आपेक्षिक दृष्टा बनकर निम्नवर्ती समस्त प्रपञ्च को निरपेक्ष भाव से देखने में समर्थ होता है तथापि जब तक वह बिन्दु पूर्णतः तिरोहित नहीं हो जाता अर्थात् पूर्णतः अहंभाव का विसर्जन अथवा आत्म-समर्पण नहीं होता तब तक महाविन्दु अथवा शिवभाव की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। इसीलिए विन्दु-भाव को प्राप्त होकर साधक को क्रमशः कलाक्षय करते-करते पूर्णतया विगतकल अवस्था में उपनीत होना पड़ता है।

विन्दु साधक के लिए अहङ्कार का नाश आवश्यक है। बड़े-बड़े तपस्वी साधक भी इस महारोग में फँसे देखे गये हैं। ऋषि-मुनि भी इससे नहीं बच सके हैं, परन्तु बिन्दु-साधक का तो लक्ष्य ही यही है। इससे इस साधना की महत्ता की कल्पना सहज में ही की जा सकती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमारे शास्त्रों ने भी आत्म-विकास के जिज्ञासु को इससे बचने का आग्रह किया है।

गीता १८।१६ "जो संस्कृत बुद्धि न होने के कारण यह न समझे कि मैं ही अकेला कर्त्ता हूँ, समझना चाहिए कि वह दुर्मति कुछ नहीं जानता।' १८।५८ 'मुझमें चित्त रखने पर तू मेरे अनुग्रह से सङ्कटों को अर्थात् कर्म के शुभाशुभ फलों को पार कर जावेगा। परन्तु यदि अहङ्कार के वश हो मेरी न सुनेगा, तो नाश पावेगा।' ईशा—वास्योपनिषद् (२) जो मनुष्य अविद्या की उपासना करते हैं, वे अज्ञान के घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो मनुष्य विद्या में रत है अर्थात् मिथ्याभिमान में रत हैं, वे उससे भी मानो अधिकतर अन्धकार में प्रवेश करते हैं।' महोपनिषद् में 'अहङ्कार के कारण विपत्ति आती है, अहङ्कार के कारण दुष्ट मनो-व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। अहङ्कार के कारण कामनायें उत्पन्न होती है। अहङ्कार से बढ़कर मनुष्य का कोई दूसरा शत्रु नहीं है।'

अहङ्कार हमारे आत्मिक शक्तियों पर जोंक का सा काम करता है, यह ठीक है। इससे बचना आवश्यक है, परन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं कि हम अपने आत्मगौरव को सर्वथा भूल जायें और अपने को पतित, पापी, नीच, दुष्ट, दुर्गामी, निर्बल, निस्सहाय और असमर्थ समझने लगें। हमें शरीर-भाव से ऊपर उठकर आत्म-भाव में स्थित होना होगा। वेदों की अन्तरात्मा को प्रकट करने वाली उपनिषदों की उस ललकार को सुनना होगा, जिसमें उन्होंने 'सोऽहन् तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, सोहमस्मि' का सिंहनाद किया है और कहा है कि मनुष्य तुच्छ क्रीडा नहीं, वरन् सच्चिदानन्द परमात्मा का पवित्र अंश है। उसे अपने निज स्वरूप की वास्तविकता का बोध होना चाहिए। 'ब्रह्मबिन्दूपनिषद्' में कहा है—"जो व्यक्ति यह भावना करता है कि 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ' वह उस भावना के द्वारा ब्रह्म ही हो जाता है।"

हमें यह जानना होगा कि मनुष्य वस्तुतः तुच्छ क्षुद्र, नाचीज,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नश्वर, हाड-माँस का पुतला, वासनाओं का गुलाम नहीं है; वह निखिल, ब्रह्मांडव्यापी, सृष्टिकर्ता, सच्चिदानन्द, अमृतत्व की तेजस्वी बूँद है। सम्राटों के सम्राट परमतमा का वह सच्चा उत्तराधिकारी राजकुमार है' इतनी बड़ी सृष्टि का मुकुटमणि बनाकर शासन करने योग्य शारीरिक और मानसिक विलक्षण शक्तियों की सेना देकर, अनेकानेक साधन और सुविधायें देकर, सुसज्जित युवराज की तरह प्रजा का पालन करने के लिए संसार में ईश्वर ने उसे भेजा है। वह अपने क्षेत्र का उत्तरदायी अफसर, गवर्नर जनरल है—क्या यह कम गौरव की बात है? क्या चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने वाले कोटानुकट जीव जिस पद को प्राप्त करने में असमर्थ हैं, उस सृष्टि के सर्वोच्च अफसर का पद प्राप्त करना कोई मामूली बात है? जिन सुखों, सौभाग्यों, सुविधाओं, साधनों, शक्तियों योग्यताओं का स्वप्न भी असंख्य प्राणी न कर पाते होंगे, उनसे सब प्रकार सुसम्पन्न होना क्या कोई कम बात है? निस्सन्देह आत्मा, परमात्मा के ही समान महान् है। उनमें अपने पिता की सम्पूर्ण शक्तियाँ और सम्भावनायें छिपी हुई हैं। करोड़ों, कुबेरों के खजाने, ऋद्धि-सिद्धियों के अगणित भंडार उसके रोम-रोम में छिपे पड़े हैं। मनुष्य पारस पत्थर है, मनुष्य कल्पवृक्ष है, मनुष्य देवताओं का देवता है। विश्व की महानतम श्रेष्ठ वस्तु मनुष्य है। उससे ऊँची और कोई वस्तु इस लोक में नहीं है। सृष्टि का जर्रा-जर्रा उसकी समता के सामने मस्तक झुकाये खड़ा है प्रकृति उसकी आरती उतार रही है, वरुण उसका चँवर डुला रहा है, इन्द्र उसके चरण धो रहा है, सूर्य और चन्द्र उसकी देहरी पर दीपक की तरह टिमटिमा रहे हैं। करोड़ों कण्ठ से हमें कहने दीजिये कि मनुष्य का गौरव महान् है।

इस गौरव की वास्तविकता की जो अनुभूति कर लेता है, वही सच्चा बिन्दु-साधक है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कला-साधना

कला का अर्थ है-किरण। प्रकाश यों तो अत्यन्त सूक्ष्म है, पर उस सूक्ष्मता का ऐसा समूह, जो हमें एक निश्चित प्रकार का अनुभव करावे, 'कला' कहलाता है सूर्य से निकलकर अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाश-तरंगें भू-तल पर आती हैं, उनका एक समूह ही इस योग्य वन पाता है कि नेत्रों से उसका अनुभव किया जा सके। सूर्य-किरणों के सात रंग प्रसिद्ध हैं। परमाणुओं के अन्तर्गत जो 'प्रमाण' होते हैं, उनकी विद्युत-तरंगें जब हमारे नेत्रों से टकराती हैं, तभी किसी रंग-रूप का ज्ञान हमें होता है। रूप को प्रकाशवान बनाकर प्रकट करने का काम कला द्वारा ही होता है।

कलायें दो प्रकार की होती हैं—१. आप्ति और २. व्याप्ति। आप्ति वे हैं जो प्रकृति के अणुओं से प्रस्फुटित होती हैं। व्याप्ति वे जो पुरुषों के अन्तराल से आविर्भूत होती है, इन्हें 'तेजस' भी कहते हैं वस्तुऐं पञ्च तत्वों से बनी हुई होती हैं, इसलिए परमाणुओं से निकलने वाली किरणें अपने प्रधान तत्व की विशेषता भी साथ लिए होती है। यह विशेषता रंग द्वारा पहचानी जाती है। किसी वस्तु का प्राकृतिक रंग देखकर बनाया जा सकता है कि इसमें कौन-सा तत्व किस मात्रा में विद्यमान है।

व्याप्ति कला, किसी मनुष्य के तेजस में परिलक्षित होती है। यह तेजस मुख के आस-पास प्रकाश-मण्डल की तरह विशेष रूप से फैला होता है, यों तो सारे शरीर के आस-पास प्रकाश रहता है। इसे अंग्रेजी में 'ओरा' और संस्कृत में 'तेजोवलय' कहते हैं। देवताओं के चित्रों में उनके मुख के आस-पास एक प्रकाश का गोला-सा चित्रित होता है—वह

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनकी कला का ही चिन्ह है। अवतारों के सम्बन्ध में उनकी शक्ति का माप इनकी कथित कलाओं से किया जाता है। परशुरामजी में तीन, रामचन्द्रजी में बारह, कृष्ण में सोलह कलायें बताई गई हैं। इनका तात्पर्य यह है कि उनमें साधारण मात्रा से इतनी गुनी आत्मिक-शक्ति थी।

सूक्ष्मदर्शी लाभ किसी व्यक्ति या वस्तु की आंतरिक स्थिति का पता उसके तेजोवलय और रूप-रंग चमक तथा चैतन्यता को देखकर मालूम कर लेते हैं।

'कला' विद्या की जिसे जानकारी है, वह भूमि के अन्तर्गत छिये हुए पदार्थों को, वस्तुओं के अन्तर्गत छिपे हुए उनके गुण, प्रभाव एवं महत्वों को आसानी से जान लेता है। किसी मनुष्य में कितनी कलायें हैं, उसमें क्या-क्या शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विशेषतायें हैं तथा किन-किन गुण, दोष, योग्यताओं, सामर्थ्यों की उसमें कितनी न्यूनाधिकता है? यह सहज ही पता चल जाता है। इस जानकारी के होने से किसी व्यक्ति से समुचित सम्बन्ध रखना सरल हो जाता है।

कला-विज्ञान का ज्ञाता अपने शरीर की तात्विक न्यूनाधिकता का पता लगाकर इसे आत्म-बल से ही सुधार सकता है? और अपनी कलाओं से समुचित संशोधन, परिमार्जन एवं विकास कर सकता है। कला ही सामर्थ्य है। अपनी आत्मिक सामर्थ्य का आत्मिक उन्नति का माप कलाओं की परीक्षा करके प्रकट हो जाता है और साधक यह निश्चय कर सकता है कि उन्नति हो रही है अथवा नहीं? उसे सन्तोषजनक सफलता मिल रही है या नहीं?

सब ओर से चित्त हटाकर, नेत्र बन्द करके भृकुटी के मध्य भाग में ध्यान एकत्रित करने से मस्तिष्क में तथा उसके आस-पास रंग बिरंगी धज्जियाँ, चिन्दियाँ तथा तितलियाँ-सी उड़ती दिखाई पड़ती हैं। इनके रंगों का आधार तत्वों पर निर्भर करता है। पृथ्वी तत्व का रंग पीला, जल का श्वेत, अग्नि का लाल, वायु का हरा, आकाश का नीला होता है। जिस रंग की अधिकता होती है, उसी के आधार पर यह

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाना जा सकता है कि इस समय हममें किन तत्वों की अधिकता और किनकी न्यूनता है।

प्रत्येक रङ्ग में अपनी-अपनी विशेषता होती है। पीले रङ्ग में क्षमा, गम्भीरता, उत्पादन, स्थिरता, वैभव, मजबूती, संजीदगी, भारीपन। श्वेत रङ्ग में रसिकता, कोमलता, शीघ्र प्रभावित होना, तृप्ति, शीतलता, सुन्दरता, वृद्धि, प्रेम। लाल रंग में गर्मी, उष्णता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, अनिष्ट, शूरता, सामर्थ्य, उत्तेजना, कामुकता, तेज, प्रभावशीलता, चमक, स्फूर्ति। हरे रंग में—चँचलता, कल्पना, स्वप्नशीलता हल्कापन, जकड़ना, गर्व, अपहरण, धूर्तता, गतिशीलता, विनोद प्रगतिशीलता, प्राण-पोषण, परिवर्तन। नीले रंग में विचार शीलता, बुद्धि सूक्ष्मता, विस्तार, सात्विकता प्रेरणा, व्यापकता, संशोधन, सम्वर्द्धन, सिंचन, आकर्षण आदि गुण होते हैं।

जड़ चेतन या किसी भी पदार्थ के प्रकट रङ्ग एवं उससे निकलने वाली सूक्ष्म प्रकाश ज्योति से यह जाना जा सकता है कि इस वस्तु या प्राण का गुण, कर्म-स्वभाव एवं प्रभाव कैसा हो जाता है? साधारणत: यह पाँच तत्वों की कला है, जिनके द्वारा यह कार्य हो सकते हैं—(१) व्यक्तियों तथा पदार्थों की आंतरिक स्थिति को समझना, (२) अपने शारीरिक तथा मानसिक क्षेत्र में असन्तुलित किसी गुण-दोष को संतुलित करना, (३) दूसरों की शारीरिक तथा मानसिक विकृतियों का संशोधन करके सुव्यवस्था स्थापित करना, (४) तत्वों के मूल आधार पर पहुँचकर तत्वोंकी गतिविधि तथा क्रिया-पद्धतिको जानना (५) तत्वों पर अधिकार करके सांसारिक पदार्थों का निर्माण, पोषण तथा विनाश करना।

यह उपरोक्त पाँच लाभ ऐसे हैं, जिनकी व्याख्या की जाय, तो वे ऋद्धि सिद्धियों के समान आश्चर्यजनक प्रतीत होंगे। यह पाँच भौतिक कलायें हैं, जिनका उपयोग राजयोगी, हठयोगी, मंत्रयोगी तथा तान्त्रिक अपने-अपने ढंग से करते हैं और इस ताँत्रिक शक्ति का अपने-अपने ढंग

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से सदुपयोग दुरुपयोग करके भले-बुरे परिणाम उपस्थित करते हैं। कला द्वारा सांसारिक भोग वैभव भी मिल सकता है। आत्म-कल्याण भी हो सकता है और किसी को शोषित अभिचारित एवं दुःखी शोक-सन्तप्त भी बनाया जा सकता है। पंच तत्वों की कलायें ऐसी ही प्रभावपूर्ण होती हैं।

आत्मिक कलायें तीन होती हैं—सत, रज और तम। तमोगुणी कलाओं का मध्य केन्द्र शिव है। रावण, हिरणकशिपु भस्मासुर, कुम्भ-कर्ण, मेघनाद आदि असुर इन्हीं तामसी कलाओं के सिद्ध पुरुष थे। रजोगुणी कलाएँ विष्णु से आती हैं। इन्द्र, कुबेर, वरुण, वृहस्पति, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, कर्ण आदि में राजसिक कलाओं की विशेषता थी। सतोगुणी सिद्धियाँ ब्रह्मा से आविर्भूत होती हैं। व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, बुद्ध, महावीर, ईसा, गांधी आदि ने सात्विकता के केन्द्र से ही शक्ति प्राप्त की थी।

आत्मिक कलाओं की साधना योग के अन्तर्गत ग्रन्थि-भेद द्वारा होती है। रुद्र-ग्रन्थि और ब्रह्म-ग्रन्थि खुलने से इन तीनों ही कलाओं का साक्षात्कार साधक को होता है। पूर्वकालमें लोगोंके शरीर में आकाश-तत्व अधिक था, इसलिये उन्हें इन्हीं साधनाओंसे अत्यधिक आश्चर्यमयी सामर्थ्य प्राप्त हो जाती थी। पर आज के युगमें जन-समुदाय केशरीरों में पृथ्वी-तत्व प्रधान है। इसलिये अणिमा-महिमा आदि तो नहीं, पर सत, रज-तम की अधिकता से अब भी आश्चर्यजनक हित साधन हो सकता है।

प्रकार :—

कुलार्णव तन्त्र में विभिन्न प्रकार की कलाओं के नाम और गुण इस प्रकार दिये गये हैं—

अग्निसूर्येन्दुब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्रसदाशिवैः।
चतुर्विंशतिमन्त्रैः स्यान्मद्यञ्चैव परामृतम्॥
अमृता मानदापूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीःप्रीतिरङ्गदा ।।
पूर्णा पूर्णामृता चेति कथिताः कुलनायिके ।
सौम्याः कामप्रदायिन्यः षोडश स्वरजाः कलाः ।।
तपनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ।
सुषुम्ना भोगदा विश्वा रोधिनी धारिणी क्षमा ।
कमाद्या वसुदा सौराष्ट्रडान्ता द्वादशेरिताः ।।
धूम्रार्चिरुष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी ।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहे अपि ।।
आग्नेया यादिवर्णाद्या दश धर्मप्रदाः कलाः ।
सृष्टि मेधा स्मृतिर्ऋद्धि कान्तिर्लक्ष्मीर्द्युति स्थिता ।
स्थितिः सिद्धिरिति प्रोक्ताः कचवर्गकला दश ।
अकारप्रभवा ब्रह्मजाताः स्युः सृष्टये कला ।।
जरा च पालिनी शान्तिरीश्वरी रतिकामिके ।
वरदाह्लादिनीप्रीतिदीर्घाः स्युष्टतवर्गजाः ।।
उदारप्रभवा विष्णुजाताः स्युः स्थितये कलाः ।
तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तंद्रा क्षुत क्रोधिनी क्रिया ।।
उत्कारी मृत्युरित्युक्ता पयवर्गकला दश ।
मकार प्रभवा रुद्राजाताः संहृतये कलाः ।।

अर्थात्–"अग्नि, सूर्य, इन्दु, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, रुद्र और सदाशिव के चौबीस मन्त्रों से मद्य परामृत हो जाता है। हे कुलनायिके ! अमृता,मानदा, पूणा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कन्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और पूर्णामृता ये परम सौम्य और कामनाओं को प्रदान करने वाली स्वरजा सोलह कलायें कही गई हैं। तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रूचि, सुषुम्ना, भोगदा, बिश्वा, रोधिनी, धारिणी, क्षमा ये कमाद्या सौराष्ट्रडान्त वसु प्रदान करने वाली बारह कलायें बताई गई हैं। धूम्रा, अर्चि, उष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी, विस्फुलिंगनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला और हव्य-कव्य-वहा ये

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आग्नेया या वर्णाद्या दश धर्म को प्रदान करने वाली कलायें कही गई है। मृष्टि, मेधा, स्मृति, ऋद्धि, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति और सिद्धि ये कचवग की दस कलायें होती हैं। आकार से प्रभव वाली तथा ब्रह्म से जात ये सृष्टि के लिये कलायें होती हैं। जरा, पालिनी, शांति, ईश्वरी. रति, कामिका, वरदा, आह्लादिनी, प्रीती, दीर्घा ये टत-वर्ग से उत्पन्न होने वाली एवं गकार प्रभवा भगवान् विष्णु के द्वारा जात स्थिति के लिये दस कलायें होतो हैं। तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा तन्द्रा क्षुत्, क्रोधिनी, क्रिया, उत्कारी, मृत्यु ये पय वर्ग की दस कलायें मकार प्रभवा और जात, संहार के लिए होती हैं।

पाँच कलाओं द्वारा तात्विक साधना :—

पृथ्वी तत्व—इस तत्व का स्थान मूलाधार चक्र अर्थात् गुदा से दो अंगुल अण्डकोश की ओर हटकर सीवन में स्थित है। सुषुम्ना का आरम्भ इसी स्थान से होता है। प्रत्येक तत्व-चक्र का आकार कमल के पुष्प जैसा है। यह भूलोक का प्रतिनिधि है। पृथ्वी-तत्व का ध्यान इसी मूलाधार चक्र में किया जाता है।

पृथ्वी-तत्व की आकृति चतुष्कोण, रंग पीला, गुण गन्ध है। इसलिये इसको जानने की इन्द्रियाँ नासिका तथा कर्मेन्द्रिय गुदा है। शरीर में पीलिया, कमलवाय आदि रोग इसी तत्व की विकृत से पैदा होते हैं। भय आदि मानसिक विकारों में इसकी प्रधानता होती है। इस तत्व के विकार मूलाधार चक्रमें ध्यान स्थित करने से अपने आप शान्त हो जाते हैं।

साधन विधि :—सवेरे जब एक पहर अन्धेरा रहे, तब किसी शांत स्थान और पवित्र आसन पर दोनों पैरों को पीछे की ओर मोड़कर उन पर बैठे। दोनों हाथ उल्टे करके घुटनों पर इस प्रकार रखे, जिससे उंगलियों के छोर पेट की ओर रहें। फिर नासिका से अग्र भाग पर दृष्टि रखते हुए मूलाधार चक्र में 'ल' बीज वाली चौकोर पीले रंग की पृथ्वी का ध्यान करें। इस प्रकार करने से नासिका सुगन्ध से भर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जायेगी और शरीर उज्वल कांति वाला हो जायगा। ध्यान करते समय ऊपर कहे हुए पृथ्वी तत्वके समस्त गुणों को अच्छी तरह ध्यानमें लाने का प्रयत्न करना चाहिये और 'लं' इस वीज मन्त्र का मनही मन (शब्द रूप से नहीं, वरन् ध्यान रूप से) जप करते जाना चाहिये।

जल-तत्व :—पेडू के नीचे जननेन्द्रिय के ऊपर मूल भाग में स्वाधिष्ठान चक्र में जल-तत्व का स्थान है। यह चक्र भुवःलोक का प्रतिनिधि है। रङ्ग श्वेत; आकृति अर्द्ध चन्द्राकार और गुण रसों का स्वाद है। कटु, अम्ल, तिक्त आदि रसों का स्वाद इसी तत्व के कारण आता है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय जिह्वा और कर्मेन्द्रिय लिंग है। मोहादि विकार इस तत्व विकृति से होते हैं।

साधन विधि :—पृथ्वी-तत्व का ध्यान करने के लिये बताई हुई विधि से आसन पर बैठकर 'व' बीज वाले अर्द्ध चन्द्राकार चन्द्रमा की तरह कांति वाले जल-तत्व का स्वाधिष्ठान चक्र में ध्यान करना चाहिये। इससे भूख-प्यास मिटती है और सहन शक्ति उत्पन्न होती है।

अग्नि-तत्व :—नाभि स्थान में स्थित मणिपूरक चक्र में अग्नि-तत्व का निवास है। यह 'स्वः' लोक का प्रतिनिधि है। इस तत्व की आकृति त्रिकोण रंग लाल, गुण रूप है। ज्ञानेन्द्रिय नेत्र और कर्मेन्द्रिय पाँव है। क्रोधादि मानसिक विकार तथा सृजन आदि शारीरिक विकार इस तत्व की गड़बड़ी से होते हैं। इसके सिद्ध हो जाने पर मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि पेट के विकार दूर हो जाते हैं और कुण्डलिनी-शक्ति के जाग्रत होने में सहायता मिलती है।

साधन-विधि :—नियत समय, पर बैठकर 'रं' बीज मन्त्र वाले त्रिकोण आकृति के और अग्नि के समान प्रभा वाले अग्नि-तत्व का मणिपूरक चक्र में ध्यान करे। इस तत्व के सिद्ध हो जाने पर सहन करने की शक्ति बढ़ जाती है।

वायु-तत्व :—यह तत्व हृदय-देश में स्थित अनाहत चक्र में है एवं महर्लोक का प्रतिनिधि है। रंग हरा, आकृति षट्कोण तथा गोल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोनों तरह की है। गुण स्पर्श, ज्ञानेन्द्रिय त्वचा और कर्मेन्द्रिय हाथ हैं वात व्याधि, दमा आदि रोग की इसी की विकृति से होते हैं।

साधन विधि :—नियत विधि से स्थिर होकर 'यं' बीज वाले गोलाकार, हरी आभा वाले, वायु-तत्व का अनाहत-चक्र में ध्यान करे। इसके शरीर और मन में हलकापन आता है।

आकाश तत्व :- शरीर में इसका निवास विशुद्ध चक्र में है। यह चक्र कण्ठ-स्थान में जनलोक का प्रतिनिधि है 'इसका रङ्ग नीला, आकृति अंडे की तरह लम्बी-गोल, गुण शब्द ज्ञानेन्द्रिय कान तथा कर्मेन्द्रिय वाणी है।

साधन विधि : पूर्वोक्त आसन पर 'हं' बीज मन्त्र का जप करते हुए चित्र-विचित्र रंग वाले आकाश-तत्व का विशुद्ध चक्र में ध्यान करना चाहिए। इससे तीनों कालों का ज्ञान ऐश्वर्य तथा अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

नित्य प्रति पाँच तत्वों का छः मास तक अभ्यास करते रहने से तत्व सिद्ध हो जाते हैं। फिर तत्व को पहचानना और घटाना-बढ़ाना सरल हो जाता है। तत्वों की सामर्थ्य तथा कलायें बढ़ने से साधक कलाधारी बन जाता है। उसकी कलायें अपना चमत्कार प्रकट करती रहती हैं।

बलिदान का तात्विक स्पष्टीकरण

लोक में जिन कारणों से तन्त्र के प्रति उपेक्षा-भाव व्याप्त हैं, उनमें से एक बलिदान भी है। साधकोंमें यह भाव प्रचलित है कि देवी-देवता बलि से प्रसन्न होते हैं और इच्छित वर प्रदान करते हैं। इष्ट-पूजाके षोडश उपचारों में बलिदान को प्रधान उपचार माना जाता है। परन्तु इसे गलत रूप में समझाया गया है। एक लेखक का कहना है कि यन्त्रों की भाषा सांकेतिक होने के कारण तत्प्रतिपाद्य पूजा प्रकार का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथार्थ निरूपण करना एक दुरूह व्यापार है।' सांकेतिक भाषा को न समझकर लोगों में प्रत्यक्ष रूप में पशुओं का वलिदान करना आरम्भ कर दिया और यह समझने लगे कि वह एक अत्यन्त उच्चकोटि का धार्मिक कृत्य कर रहे हैं। परन्तु वास्तव में उन्होंने एक ऐसी धारणा को जन्म दिया, जिससे लाखों करोड़ों की व्यर्थ में हत्या की गई, मांसाहार की कुप्रवृत्ति को बल मिला, हिंसा की वृद्धि हुई और साथ-साथ मानवता का ह्रास भी। अर्थ के अनर्थ से मानव-जाति की इतनी क्षति हुई और हो रही है। तन्त्र के इस अत्यन्त आवश्यक विधान को समझना चाहिए ताकि इसे सही अर्थों में प्रयुक्त किया जा सके।

वलिदान शब्द बहुत बहुत ही उत्तम अर्थों में प्रयोग किया जाता है। जो व्यक्ति किसी विशेष उद्देश्य के लिए वलिदान हुए हैं, जनता उनका अपार सम्मान करती आई है। देश और जाति पर वलिदान होने वालों की महानता की छाप मानव-हृदय पर पड़े विना रह नहीं सकती। वलिदानी की भावनायें, विचार और उद्देश्य इतने श्रेष्ठ और उच्च होते हैं कि उसके सामने वह अपने समस्त सांसारिक स्वार्थों को भूल जाता है। आत्मिक भूमिका में प्रवाहित होने वाला व्यक्ति ही इसका अधिकारी होता है, क्योंकि जिसे अपने शरीर, परिवार और धन-सम्पत्ति से मोह है, वह वलिदान की चाहरदीवारों से कोसों दूर रहता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति इन नाशवान् वस्तुओं से ऊपर उठ जाता है, वही अपने आपको समर्पण करने का साहस कर सकता है। यही कारण है कि ऐसे ही व्यक्ति जनता के मनों में अपनी छाप छोड़ जाते हैं, उन्हीं की जय-जयकार होती है, स्मारक बनते हैं, वार्षिकोत्सव होते हैं, लोग उनकी जीवन घटनाओं का अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं।

वलिदान वह वस्तु है, भावनाओं की यह उच्च स्थिति है जहाँ जाकर साधक अपनेपन को भूल जाता है। यह एक ऐसी स्वस्थ परम्परा है जिसका जीवित रहना आवश्यम्भावी है। इसी के ऊपर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राष्ट्रों और जातियों का भविष्य टिका हुआ है। जिस देश के नागरिक केवल अपने स्वार्थ का ही ध्यान रखते हैं और परमार्थ, त्याग तथा बलिदान की ओर नहीं झुकते, वह देश और जाति उन्नति का मार्ग नहीं ढूढ़ सकती।

मुगल बादशाह शाहजहाँ की लड़की का इलाजकरके एक अँग्रेज डाक्टर ने अपने स्वार्थों का बलिदान करके अपने देश के लिये एक सुविधा प्राप्त कर ली थी। उसी के कारण अँग्रेज भारत में आये और व्यापारी की हैसियत से आकर शासक बन गये तथा भारत को जोंक की तरह चूसकर चले गये। यदि सर टामस-रो अपने लिय कुछ धन-सम्पत्ति की अकांक्षा करते, तो आज भारत का इतिहास ही कुछ और होता।

जिन देशवासियों की ऐसी उच्च भायनायें रहती हैं, वही देश आकाश में सितारों की तरह चमकते हैं। देश की स्वतन्त्रता पर मर मिटने वाले भगतसिंह आदि को क्या भूल जायेगा? सुभाप बोस जैसे महारथियों को, जिन्हें परतन्त्रता की जंजीरों को तोड़ने के लिए हजारों सङ्कटों का सामना करना पड़ा—देशवासी अपने मानस-पटल से कैसे दूर कर सकेंगे? जिन्होंने अपना जीवन, समस्त धन-सम्पत्ति किसी विशेप उद्देश्य के लिये खपा दी है, वह जनता के हृदय-सम्राट कैसे न बनेंगे और इतिहासकार उन्हें कैसे अपनी लेखनी से दूर रख सकेंगे?

इस बलिदान की परम्परा का हमारे देश में असाधारण मान रहा है। यहाँ एकऐसा वर्ग विशेष था, जो अपने स्वार्थों की परवाह न करते हुए निरन्तर राष्ट्रोत्थान में प्रयत्नशील रहता था। उन्होंने अपनी कामनाओं,इच्छाओं और अभिलाषाओं का बलिदन कर दिया। था। जो किसी ने दे दिया उसे पाकर ही सन्तुष्ट रहते थे और निरन्तर पठन-पाठन, मनन,चिन्तन, साधना, तप में मग्न रहते थे देश में श्रेष्ठ विचारों के प्रसार का उत्तरदायित्व उन्हीं पर था। इसलिय निर्धन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्राह्मणों का सांसारिक दृष्टि से धनवान राजा-महाराजाओं को भी विशेष सम्मान करना पड़ता था। वह उनके आदेश के विना कोई भी कार्य करने का साहस नहीं कर सकते थे। जब से ब्राह्मणों ने अपनी इस त्याग-वृत्ति का बलिदान कर दिया और अपनी स्वार्थपरता तथा लोभ में लिप्त हो गये, तभी से उनका पतन आरम्भ हुआ।

इस त्याग बलिदान की परम्परा को बनाये रखने और जीवित रखने लिए ही हमारे धर्म-शास्त्रों में आचार्यों ने नाना प्रकार के विधान वनाये हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के अनुरूप है। जिस तरह से अलग-अलग स्तर के लोगों के लिए अलग-अलग तरह की शिक्षा, साधना, उपासना, आदि के विधान बनाये गये हैं उसी तरह बलिदान के भी कई स्तर हैं। उनके द्वारा धीरे-धीरे साधक ऊपर की ओर जाता है।

पशुता से बचते रहने और मनुष्यता के विकास के लिये आस्तिकता की अत्यन्त आवश्यकता है। उसके विना मनुष्य स्वेच्छाचारी हो जाता है। इसके लिए हमारे यहाँ नाना प्रकार के विधान हैं। अपने इष्टदेव प्रसन्न करने के लिए अपने को प्रिय लगने वाली वस्तुओं का त्याग, बलिदान करना होता है। यह त्याग वस्तु के मूल्य और सौंदर्य पर निर्भर नहीं करता, वरन् साधक की भावना पर अवलम्बित है। भावना ही यहाँ प्रधान रहती है। भगवान तो श्रद्धा पूर्वक समर्पण किये हुए एक तुलसी पत्र से ही प्रसन्न हो जाते हैं और अश्रद्धापूर्वक राज्य-प्रसादों का भोग लगने पर भी वह टस-से-मस नहीं होते। हमारे इतिहास या पुराणों में ऐसी कथाएँ आती हैं, जिनसे अभिमानयुक्त हीरे-जवाहरात देने वाले राजा की अपेक्षा प्रभु एक निर्धन ब्राह्मण की भक्ति-भावना से केवल पुष्पों से ही रीझ गये। बलिदान की इस भूमिका में पदार्पण करने वाले सच्चे साधक ही आगे बढ़ते हैं।

भावना से ऊँचा उठकर साधक बिचार की सीमा में आता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनुष्य की महानता या क्षुद्रता विचारों पर ही निर्भर है। इन्हें सात्विक आहार पर भी ध्यान देना पड़ता है। माँस, मदिरा, बीड़ी, सिगरेट का सेवन करने वालों के विचारोंमें गँदलापन आ जाता है। वह धुँधलापन उन्हें पथ भ्रष्ट कर देता है, सन्मार्ग च्युत कर देता है। यह ऐसी वस्तुएँ हैं, जो उसके शारीरिक, मानसिक, आत्मिक सभी प्रकार के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होती हैं। उन्हें ग्रहण करने वाला दिन-व-दिन पतन की ओर ही जाता है। अतः जीवन लक्ष्य की ओर बढ़ने वाले को इनका बलिदान करना चाहिए। तभी विचार रूप देव को प्रसन्नता प्राप्त होती है।

राजसिक वस्तुओं के सेवन से भी सात्विकता ढकी रहती है। वृत्तियों का निर्माण अन्य तथ्यों के अतिरिक्त आहार पर भी निर्भर है। राजसिक वस्तुओं के सेवन से कामुकता की वृद्धि होती है। काम का घटना या बढ़ना जिह्वा की लोलुपता पर भी आधारित हैं। जिह्वा को नियन्त्रण में रखने वाला साधक कर्मेन्द्रिय को आसानी से काबू में कर सकता है। इससे सभी इन्द्रियों का संशम हो जाता है। जिह्वा पर नियन्त्रण रखने के लिए अपनी प्रिय वस्तुओं का बलिदान करना पड़ता है। तीर्थों में जाने वाले यात्री वहाँ पर अपनी प्रिय वस्तुओं का त्याग कर आते हैं। इसका अभिप्राय इस त्याग वृत्ति के बढ़ाने से ही है। इसमें लोग मिठाई, प्याज, लहसुन, मादक वस्तुओं का बलिदान कर देते हैं।

आहार-विहार का ध्यान रखता हुआ साधक दुर्गुणों को त्यागने और सद्गुणों को ग्रहण करने का प्रयास करता है। इसके लिए वह काम रूपी बकरे, मोह रूपी भेड़, क्रोध रूपी महिष आदि का बलिदान करता है। इन पशुओं का बलिदान करके 'पशु-मनुष्य' से मनुष्य बन जाता है। फिर 'मनुष्य-मनुष्य अपने मनुष्योचित गुणों का विकास करता हुआ देवत्व की ओर बढ़ता है। उसका जीवन एक आदर्श बन जाता है। सत्य, प्रेम, त्याग, दया, परोपकार, ईमानदारी, सदाचार, सन्तोष

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आदि गुण स्वत: उनकी ओर आने लगते हैं। उसका विवेक जाग्रत हो जाता है। वह सभी प्राणियों को अपना समझता है। उनमें अपनापन देखता है, प्रभु का साक्षात्कार करता है, कण-कण में उसे वही दिखाई देता है। तब वह किससे छल कपट धोखा करे और किससे झूँठ बोले? अपना ही सुख-दुःख लगने लगता हैं। ऐसा अनुभव करने पर वह अपने आपको भूल जाता है और उनका दर्द दूर करने के लिये अपनी कही जाने वाली समस्त धन सम्पत्ति को न्यौछावर कर देता है, शरीर का मोह त्यागकर उसकी आहुति उस जन-कल्याण यज्ञ मे दे देता है, वह अपनेपन का बलिदान कर देता है, अपने को सबमें और सबको अपने में देखता है। अपनी जीवात्मा को काटकर परमात्मा पर आहुति चढ़ा देता है। इस बलिदान के द्वारा परमात्मा से अज्ञानवश जीवात्मा की जो प्रथकता दीखती है,वह एकबारगी ही नष्ट हो जाती है और साधक उसके स्वरूप में स्थित होकर अद्वितीय ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। सबसे उत्तम कोटि का बलिदान यही आत्म-बलिदान है, जिससे साधक धन्य हो जाता है। सब प्रकार के सुख दुःखों से निवृत्त होकर आनन्द के समुद्र में डुबकियाँ लगाता है।

बलि में आत्माभिमान की बलि सर्वश्रेष्ट मानी जाती है। देवी का सच्चा सेवक वही माना जाता है,वह यन्त्र की तरह उनकी आज्ञाओं का पालन करता है, जिनमें कर्तृव्य की भावना नहीं रहती जो सासांरिक ममता और अभिमान की बलि देकर माता की इच्छानुसार कार्य करते रहते हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे—'तुम यन्त्री आमि यन्त्र, तुमि गृही आमि घर, तोमार कर्म तुमि करो मां लोके बोले करि आमि' अर्थात् 'मैं बाजा हूं, आप बजाने वाली हैं। मैं घर हूँ तो आप घर निवास करने वाली मालकिन हैं। आप ही सब कुछ कर रही हैं। अज्ञानता से लोग अपने को कर्ता मानते हैं।' कर्तव्याभिमान न रखना ही सच्चा आत्मबलिदान है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'एतरेय ब्राह्मण' की दूसरी पञ्चिका के छटे अध्याय के तीसरे खण्ड में कहा है—

सर्वोभ्यो वा एष देवताभ्य: आत्मानमालभते।

अर्थात् "यजमान सब देवताओं की तुष्टि के लिए अपने आत्मा को बलि करता है।"

"परमार्थ सार" का कथन है कि—

माया परिग्रहवशाद् बोधो मलिनः पुमान पशुर्भवनि।

अर्थात् "माया के कारण मलिन बुद्धि होने से मनुष्य पशु-भाव को प्राप्त होता है।"

बुद्धि मानव के जीवन पथ की उत्तम निर्देशिका है। उसके विकास से ही मानव प्रगति सम्भव है। उसकी सात्विक, राजसिक और तामसिक प्रवृत्तियाँ व्यक्ति को उसी रंग में रंग देती हैं। आत्मकल्याण के साधक को सात्विक बुद्धि की ही अपेक्षा रहती है। तामसिक बुद्धि वाला तो पशु जीवन ही व्यतीत करता हैं। इस पशु-जीवन से ऊपर उठकर मानवता की सीमाओं में प्रवेश करना ही वास्तविक जीवन है। जीवात्मा के अच्छे और बुरे कार्य इन्द्रियों के माध्यम से होते हैं। इन्द्रियाँ नरक और मोक्ष दोनों का कारण बनती है। यदि उनका आकर्षण विषयों की ओर रहता है, तो निश्चय ही नरक की प्राप्ति होगी। मोक्ष-मार्ग पर बढ़ने के लिये आवश्यक है कि उन्हें नियन्त्रण में रखा जाय, अपनी इच्छानुसार चलाया जाय, उनका नौकर न होकर स्वामी बना जाय, उनमें जो पशुता के भाव व्याप्त हैं, उन्हें दूर करके सात्विकता का विकास किया जाये। तन्त्र की भाषा में इन्द्रियों की जो तामसिकतारूपी पशुता है, उसे अपने इष्टदेव की प्रसन्नता के लिए काट-काटकर देवी को अर्पित करना चाहिये—यही यथार्थ बलिदान है। शास्त्रों जहाँ-तहाँ पशु-बलि के आदेश आये हैं, वह अलङ्कारित भाषा में है। उनके विभिन्न अर्थ हैं, जो निम्न प्रकार हैं।

उपनिषद का कथन है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काम क्रोध लोभादय: पशव: ।

अर्थात् "काम, क्रोध, लोभ, मोह यह पशु हैं, इन्हीं को मारकर यज्ञ में हवन करना चाहिए।"

कामः क्रोधः सुलोभः मोहः कांक्षित्वां विवेकासिना ।
मांसं निर्विषय परात्म सुखदं भुञ्जति तेषां बुधाः ।।

—भैरवयामल

अर्थात् 'विवेकी पुरुष काम,क्रोध, लोभ और मोह रूपी पशुओं को विवेकरूपी तलवार से काटकर दूसरे प्राणियोंको सुख देने वाले निर्विषमयरूपी माँस का भक्षण करते हैं।"

गीता में लिखा है कि मन और बुद्धि को अर्पण करना चाहिये (१२।१) किंतु विषयासक्त मन-बुद्धि की संज्ञा पशु है और अर्पण ही बलि है।

एक विद्वान का कहना है कि पशु-जगत् में इन्द्रियाँ ही सर्वोपरि हैं और उन्हीं का साधन वहां प्रधान साधन है। किन्तु मनुष्य में जीवात्मा सर्वोपरि है और जीवात्मा तथा इन्द्रियों के मध्य में अन्तःकरण है। इनके पशु स्वभाव को कामात्मक स्वार्थ के लिये व्यवहृत न कर ईश्वर के अनेक होने के सङ्कल्प (एकोऽहं बहुस्याम्) अर्थात् इच्छा-शक्ति को, जिसकी संज्ञा महाविद्या है, पूर्ति रूपी यज्ञ में व्यवहृत होने के लिये महाविद्या को समर्पित करना अर्थात् ईश्वर के दिव्य गुण, शक्ति, सामर्थ्य आदि के प्रकाशित योग्य बनना ही यथार्थ पशु-बलि है। जीवात्मा रूपी होता को सद्बुद्धि रूपी स्रुवा में इस पशु-स्वभाव के साथ संयोजित कर ब्रह्माग्नि में अर्पण करना अर्थात् ब्रह्म के सृष्टि-हित-कार्य में प्रवृत्त करना यज्ञ में इनकी बलि करना है।

तन्त्र के एक प्रसिद्ध लेखक ने अपने एक ग्रन्थ में बकरे को काम, भैंसे को क्रोध, बिलाव को लोभ, भेड़ को मोह और ऊँट को मात्सर्य कहा है और इन्हीं विकारों के त्याग को पशु-बलि कहा है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यजुर्वेद में ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिससे यह अभिप्राय निकलता है कि अग्नि, वायु और सूर्य ही पशु हैं यथा—

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त ।

अर्थात् अग्नि पशु या, उस द्वारा यज्ञ किया ।

वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त ।

अर्थात् वायु पशु था, उसके द्वारा यज्ञ किया ।

सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त ।

अर्थात् सूर्य पशु था, उस द्वारा यज्ञ किया ।

ऐतरेय ब्राह्मण १।२।१० में 'पशवी व इवा हुवा' इस पृथ्वी को ही पशु कहा है । क्या हम सबको काट-काटकर होमा जायगा ? अन्न से बनी हुई वस्तु (रोटी-पूरी आदि) तथा खाद्य-पदार्थों को भी पशु माना गया है ।

चरक संहिता में 'अज' औषधि का वर्णन है—

अजानामौषधि रजः शृङ्गति विजायते ।

—चरक संहिता प्र० १

क्या उपरोक्त वाक्य में वर्णित 'अजा' बूटी के स्थान पर बकरी को औषधि बनाया जायगा ।

महाभारत में भी अजा का अर्थ औषधि और बीज ही किया गया है—

बीजैर्यज्ञपु यष्टव्यं मिति वा वैदिकी श्रुतिः ।

अज संज्ञानि बीजानि, छागतो हन्तु मर्हसि ।।

नैप धर्मः सता देवाः यत्र यध्येत वै पशुः ।

--महाभारत शान्ति० ३३७

अर्थात्--बीजों का यज्ञ में हवन करना चाहिए, ऐसी ही वेद की श्रुति । अज संज्ञक बीज होते हैं । इसलिये बकरे का हनन करना उचित नहीं, जिस कर्म में पशु की हत्या होती है, वह सज्जनों का धर्म नहीं ।'

वैदिक ग्रन्थों में अनेक पशुवाचक शब्द आते हैं । यथा—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अश्व—अश्वगन्धा। ऋषम—ऋषभक कन्द। श्वान—कुकुरमुत्ता। वराह—वराहीकन्द। काक—काकमाची। अज—अजमोद। मत्स्य—मत्सयाक्षी। लोम—जटामासी। महिष—महिषाक्ष गुग्गुल। मेष—चकवड़, मेषपर्णी। मातुर—धतूरा। मृग—सहदेवी बूटी। पशु—मोथरा। कुमारी—धिवकुमारी। रुधिक—केशर। पेश-जटामाँसी। हृद—दारचीनी।

पशुवाचक शब्दों के अन्य प्रकार के भी अर्थ होते थे—

१. अज या छाग—तीन या सात वर्ष के पुराने धान, राशिचक्र में की मेष राशि।

२. धेनु—धाना (अथर्व० १२४।३२), पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्योलोक, दिशायें आदि (अथर्व० ४।३९)।

३. गौ—तण्डुले, शमीवृक्ष (अथर्व० १०।३।१०) रश्मि, चन्द्रमा, दूध, चर्म, धनुष की डोरी आदि (निरुक्त अ० २, पा० २ खण्ड १—३)।

४. अश्व—तण्डुल के कण (अथर्व० काँ० ११, सू० ३, पर्याय १, मं० ५) सूर्य, अश्वपर्णी या असगन्ध औषधि (यजु० ११।१८), एक नक्षत्र आदि।

५. अक्षा—सौंफ औषधि आदि (यजु० १०।२८।११)।

६. वृषभ—ओदन (अथर्व० ११।१।३५), वादन, ऋषभ औषधि आदि।

पुरुष सूक्त में लिखा है कि 'अवध्वन् पुरुष पशून्'—अर्थात् ईश्वर को ही पशु मान यज्ञ में समर्पण किया। ईश्वर के अपने को यज्ञ अथवा बलि करने से ही वृद्धि हुई और ऋषि देवता आदि ने भी उन्हीं की शक्ति की बलि अथवा प्रयोग कर सृष्टि-यज्ञ किया, यही आदि पशु-बलि हुई।

ऊपर अनेक प्रकार के पशुवाचक शब्द बतलाये गये है, जो हमारे साहित्य में उपलब्ध हैं। माँस लोलुपों ने केवल उसके स्थूल अर्थ को

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेकर बलि करना आरम्भ कर दिया, यह अर्थ का अनर्थ है, अशास्त्रोक्त है।

कुछ विद्वान तन्त्रों के उदाहरण देकर पशु-बलि का समर्थन करते हैं, परन्तु वास्तव में प्रत्यक्ष पशुओं की बलि की कहीं भी पुष्टि नहीं की गई। महाकाल संहिता में कहा है—

सात्विकी जीवहत्यां वै कदाचिदपि नाचरेत्।
इक्षुदण्डश्च कूष्माडं तथा वन्यफलादिकम्॥
क्षीरपिन्डैः शालिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद्वलिम।

अर्थात्—'सात्विक विचारों के साधक कभी भी पशुओं की बलि देकर जीव-हत्या नहीं करते। वे ईख, कोहड़ा या वन्य-फलों की बलि देते हैं या खोवा, आटा, या चावल के पिंड का पशु बनाकर बलि देते हैं।'

महानिर्वाण तन्त्र में कहा है—

कामः क्रोधो द्वौ पशु इमामेव मनसा वलिमर्पयेत्।
कामः क्रोधो विघ्नकृतो वलिं दत्वा जपं चरेत्॥

इसमें काम और क्रोध को विघ्नकारी पशु स्वीकार किया गया है। उनका बलिदान ही सच्ची उपासना मानी गई है।

'इन्द्रियाणि पशून् हत्वा'।

अर्थात्—'इन्द्रियरूपी पशु का वध करें।

तन्त्र ने इस प्रकार की बलि की स्वीकृति प्रदान की है और यही वास्तविक बलिदान है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यन्त्रों का प्रेरणात्मक अध्ययन

यन्त्र किसी देवी या देवता का प्रतीक होते हैं। इनका रूप ज्यामितिक होता है। यह खानों, वक्र रेखाओं, त्रिभुजों, वर्गों और वृत्तों से मिलाकर बनाये जाते हैं। ये अलग-अलग ढङ्ग से बनाये गये हैं। कई का तो बनाना भी कठिन होता है। इनका रूप बिना उद्देश्य के नहीं होता। इन रेखाओं त्रिभुजों, वर्गों, वृत्तों यहाँ तक कि कोण अंश का भी विशेष अर्थ होता है। जिस तरह से देवताओं की मूर्तियों के रङ्ग रूप विशेष गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसी तरह यन्त्रों में गम्भीर लक्ष्य निहित होते हैं। उन्हें केवल एक निम्न वर्ग की अंधविश्वास युक्त उपासना और परम्परा मानना भूल होगी।

इनका निर्माण पत्थर धातु-या अन्य वस्तुओं के बल पर होता है। रेखाओं और त्रिभुजों आदि के माध्यम से बने चित्रों कों मण्डल कहा जाता है। यह किसी भी देवता के प्रतीक हो सकते हैं, परन्तु यन्त्र किसी विशिष्ट देवता के प्रतीक होते हैं।

अर्थ–

यन्त्र का अर्थ ग्रह होता है। यह 'यम्' धातु से बनता है, जिससे ग्रह का ही बोध होता है, क्योंकि यही नियन्त्रण की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है।

हम यांत्रिक-युग में रह रहे हैं। यन्त्र का भौतिक अर्थ मशीन होता है, जो मानव से अधिक श्रमसाध्य और चमत्कारी कार्य कर सकती है और हर कार्य में सहायक सिद्ध होती है। मानव एक व्यक्ति को भी उठाकर थोड़ी दूरी तक नहीं जा सकता परन्तु रेल, मोटर सैकड़ों व्यक्तियों को सैकड़ों मील, तक तीव्र गति से ले जाती हैं। हमारे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नेत्र एक सीमित दूरी तक ही देख सकते हैं, परन्तु यन्त्र की सहायता से मीलों दूर की वस्तु देखी जा सकती है। इसी तरह विराट ब्रह्म को देखना हो, तो यन्त्र की अपेक्षा रहती है, उसकी भावना करनी पड़ती है। तांत्रिक यन्त्र को निर्गुण ब्रह्म के शक्ति-विकास का प्रतीक माना जाता है।

एक लेखक ने यन्त्र के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए लिखा है—'जिससे पूजा की जाये, वह यन्त्र है। तन्त्र-परम्परा में इसे देवता के द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा प्राप्त यन्त्र शरीर के रूप में देखा जाता है। यन्त्र उस देवता के रूप का प्रतीक है, जिसकी उपस्थिति को वह मूर्तिमान करता है और जिसका कि मन्त्र ध्वनि प्रतीक होता है।

यन्त्र को देवता का शरीर कहते हैं और मन्त्र को देवता की आत्मा।

पूजा में यन्त्र वह वस्तु मानी जाती है, जिस पर मन केन्द्रित किया जाता है।

सर जान वुडरफ ने 'प्रिंसिपल आफ तन्त्र' पुस्तक में लिखा है कि इसका यन्त्र नाम इसलिए पड़ा कि यह काम, क्रोध व दूसरे मनोविकार व उनके दुष्परिणामों को नियन्त्रित करता है।

कुलार्णव तन्त्र के अनुसार यन्त्र के नामकरण की व्याख्या इस प्रकार है।

यमभूतादि सर्वेभ्यौ भयेभ्योऽपि कुलेश्वरि।
त्रायते सततञ्चैव तस्माद् यन्त्रमितीरितम्॥

"यम और समस्त प्राणियों से तथा सब प्रकार के भयों से त्राण करता है। हे कुलेश्वरि! सर्वदा त्राण करने के कारण से ही यन्त्र, यह नाम कहा जाता है"

काम क्रोधादिदोषोत्थः सर्वदुःखनियन्त्रणात्।
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् देव प्राणाति पूजितः।

काम क्रोधादि दोषों के समस्त दुःखों का नियन्त्रित करने से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यन्त्र—यह नाम कहा जाता है। इस पर पूजित देव तुरन्त ही प्रसन्न हो जाते हैं।'

महिमा–

तन्त्रों में लिखा है कि श्री चक्र के एक वार के दर्शन का फल विधि पूर्वक सौ यज्ञों के सम्पादन के तुल्य है। १६ प्रकार के महादानों से जो पुण्य फल मिलता है, वह श्रीचक्र के एक वार के दर्शन से उपलब्ध हो जाता है। साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान करने का फल एक बार के श्रीचक्र के दर्शन के बरावर है। यह महात्म्य सभी चक्रों का है।

श्रीचक्र पादोदक का महात्म्य का वर्णन करते हुए तन्त्रों में कहा गया है कि गङ्गा, यमुना, गौदावरी, नर्मदा, पुष्कर, गौमती, वाराणसी, हरिद्वार, गया, प्रयाग, वद्रिकाश्रम, सिंधु, रेवा, सेतुबन्ध, सरस्वती आदि जितने भी तीर्थ इस विश्व में हैं, उनमें स्नान करने से जो पुण्य होता है, श्रीचक्र पादोदक के सेवन से उनसे भी सहस्त्र-कोटि गुना अधिक फल प्राप्त होता है।

यन्त्रों में विन्दु, रेखा त्रिकोण, वृत्त आदि ज्यामिति-विज्ञान का प्रयोग होता है। इसकी महत्ता प्रदर्शित करते हुए यूनानी तत्वज्ञ प्लेटों ने अपनी पाठशाला के वाह्य कक्ष पर यह घोषणा लिखवा दी थी कि जो विद्यार्थी ज्यामिति से अपरचित हों, वह इस पाठशाला में प्रवेश के लिए प्रयत्न न करे।

योगिनी यन्त्र में लिखा है कि देवी की पूजा मूर्ति, मण्डल अथवा यन्त्र के द्वारा होनी चाहिए आध्यात्मिक उन्नति के विशेष स्तर तक पहुँचने पर ही साधक इसकी पूजा का अधिकारी होता है। सिद्ध योगी अन्तर पूजा में प्रवेश करते हुए यन्त्र की पूजा से आरम्भ करता है, तो ब्रह्म-विज्ञान का संकेत है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उद्देश्य—

यन्त्र केवल रेखाओं व त्रिकोण आदि के वने ज्यामिति-विज्ञान के प्रदर्शक चित्र ही नहीं है, इनकी रचना विशेष आध्यात्मिक दृष्टिकोण से की जाती है। जिस प्रकार से विभिन्न प्रकार के देवी देवताओं के रङ्ग-रूप के रहस्य होते हैं, उसी तरह सभी यन्त्र विशेष उद्देश्य से वनाये गये हैं ताकि उसका ध्यान कर सके। वास्तव में यन्त्रों में पिंड ब्रह्मांड का दर्शन पिरोया हुआ है। भारतीय दर्शन का यह मत है कि जो कुछ ब्रह्मांड में है जैसे—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि, वह देव-शक्तियाँ हमारे सूक्ष्म शरीर में विद्यमान रहती है, परन्तु हम उनका अनुभव नहीं कर पाते। मानव का गौरव महान है, परन्तु खेद है कि वह इससे अपरचित है। जब साधक मूर्ति-पूजा, पाठ स्तुति, जाप, यज्ञ आदि विविध विधि-विधानों द्वारा आत्मिक प्रगति के स्तर तक पहुँच जाता है, तो गुरु उसे यन्त्र-पूजा का अधिकार प्रदान करते हैं। इसका अर्थ यह है कि उसे अपने पिंड में विद्यमान आध्यात्मिक शक्तियों को अनुभव करने के मार्ग पर चलता है, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्रों की शक्तियाँ हमारे लिए प्रत्यक्ष चमत्कार दिखाई देती है। हमारा पिंड उस विश्व ब्रह्मांड का संक्षिप्त संस्करण है, अतः हमारे पिंड में व्याप्त वह शक्तियाँ भी उतनी चमत्कारी हो सकती हैं, यदि उन्हें विधिपूर्वक जमा सकें। यंत्र का ध्यान करते हुए साधक ब्रह्मांड का ध्यान करता है। अपने पिंड को वह ब्रह्मांड जितना ही विस्तृत अनुभव करने लगता है। एक समय आता है जब दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता और वह अपने शरीर—अपनी ही पूजा करता है। उसके ध्यान में पिंड और ब्रह्मांड का ऐक्य हो जाता है। वह भगवती को अपना ही रूप समझता है। फिर उसे सारा जगत ही अपना रूप लगने लगता है, वह अपने को सबमें समाया हुआ पाता है, अपने अतिरिक्त उसे और कुछ दृष्टिगोचर ही नहीं होता। वह अद्वैत-सिद्धि के मार्ग पर प्रशस्त होता है और ऐसी अवस्था में आ जाता है कि ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय एक ही रूप लगते हैं। साधक को शरीर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब अनन्त विश्व और अखण्ड ब्रह्म का रूप धारण कर लेता है। यन्त्र की पूजा करते हुए जिन शब्दों का उच्चारण किया जाता है, उससे भी यही भाव निकलता है। वे शब्द यह है आहुति ब्रह्म है, होमी जाने वाली सामग्री भी ब्रह्म है, ब्रह्मरूपी अग्नि में ब्रह्मरूपी होता आहुति देता है जो ब्रह्म को आहुति देने में एकाग्र हो जाता है, उसे ही ब्रह्म की एकता सिद्ध प्राप्त होती है।"

यन्त्र द्वारा अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचने के लिए विभिन्न प्रकार की साधनायें करनी पड़ती हैं। इनका संकेत यन्त्र से विभिन्न अङ्गों से परिलक्षित होता है। उनका चिन्तन-मनन करना होता है। विचार साधना से ही उत्कर्ष होता है। यन्त्र के बीच में बिन्दु होता है, वह गतिशीलता का द्योतक है। शरीर और ब्रह्मांड का प्रत्येक परमाणु अपनी धुरी पर तीव्रतम गति से हर क्षण चक्कर काट रहा है। यह सर्वव्यापक हैं। अतः हमें भी उन्नति के मार्ग पर सन्तुष्ट नहीं रहना है, हर क्षण आगे बढ़ने के लिए तत्पर और गतिशील रहना है। तभी मन, बुद्धि और आत्मा क्रियाशील हो सकते हैं। बिन्दु आकाश तत्व का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि इसमें अनुप्रवेश-भाव रहता है, जो आकाश का गुण है।

चतुरस्र (Square) में बहुमुखता का भाव है, जिससे विस्तार का संकेत मिलता है, जो पृथ्वी का गुण है। अतः चार व अधिक भुजाओं वाले आकार पृथ्वी के द्योतक माने जाते हैं।

चित्र में जब ऊपर की ओर नोंक निकली हो, बाण द्वारा संकेत हुआ हो या अग्नि-शिखा बनी हो, तो वह उन्नति का भाव प्रदर्शित करता है क्योंकि अग्नि का स्वभाव ऊपर को उठने का ही है। उसे कितना ही रोका जाय, वह ऊँची ही उठना चाहेगी। त्रिभुज का शीर्ष कोण (Vertical Angle) जब ऊपर की ओर बना होता है, तो यह अग्नि-शिखा का ही प्रतीक माना जाता है। जब यह शीर्षकोण नीचे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की ओर होता है, तो जल तत्व का द्योतक माना जाता है क्यों कि नीचे की ओर प्रवाहित होना ही जल का स्वभाव है।

वृत्त (Circle) वायु का द्योतक माना जाता है क्योंकि वृत्त में चक्राकार गति के लक्षण पाये जाते हैं। जब एक बिन्दु दूसरे के चारों ओर चक्कर लगाता है, तो वृत्त बनता है। वायु भी घूमती हैं और जिसके साथ सम्पर्क में आती है, उसे घुमाने लगती है। अग्नि और जल दोनों के साथ यही रहती है। अर्द्ध वृत्त या वृत्त के किसी भाग को वायु को का चिन्ह नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसमें चक्राकार घूमने की प्रवृत्ति नहीं होती। उसे तो कुंचित (Curved) की संज्ञा दी जा सकती है। त्रिभुज में जब दो किनारे मिलते हैं, तो वह अन्तर शून्य पर आ जाता है। इसलिए अर्द्धव्रत या वृत्त के किसी अंश को जल का द्योतक माना जाता है।

यन्त्र में सबसे बाहर जो चतुष्कोण बना होता है, उसे 'भूपुर' कहते हैं। यह 'भूपुर' विश्व नगर का प्रतीक माना जाता है। किसी भी दशा में इसमें प्रवेश करके आगे बढ़ने का अर्थ साधना में प्रगति का चिह्न है। बिन्दु यन्त्र के बीच में रहता है। वह अन्तिम लक्ष्य माना जाता है। वहीं ईश्वर के दर्शन होते हैं।

अब हम कुछ विशिष्ट यन्त्रों का अध्ययन करेगें।

श्री यन्त्र—

यह यन्त्र भगवती त्रिपुर सुन्दरी का है। इसे सर्वश्रेष्ठ यन्त्र कहते हैं। यह सबसे प्रसिद्ध है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'योगिनी हृदय' में कहा है कि 'जब परम्परा शक्ति अपने संकल्प बल से ही विश्व-ब्रह्मांड का रूप ग्रहण करती है और अपने स्वरूप को निहारती है, तभी श्रीचक्र का आविर्भाव होता है। इसी से भैरवयामल में कहा गया है—

चक्रं त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि।

अर्थात्—ईश्वर! त्रिपुरसुन्दरी का आकार ब्रह्माण्डाकार है।' भावनोपनिषद् में भी कहा है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

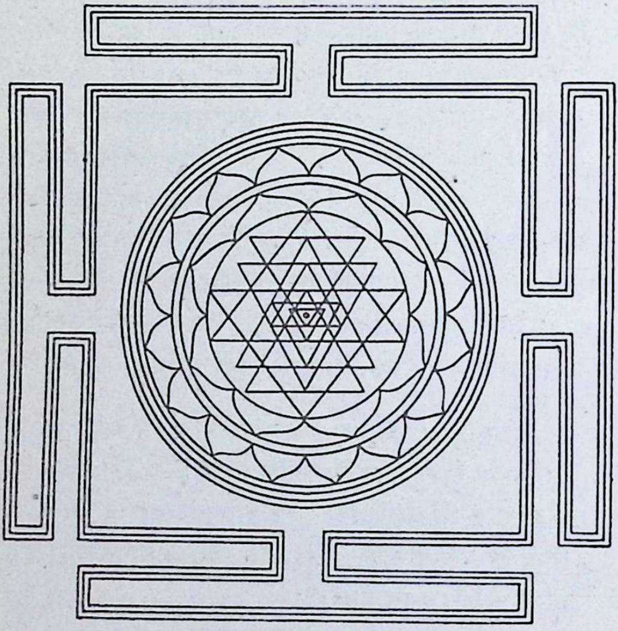

नव चक्र मयी देह–

इस यन्त्र में ब्रह्मांड की उत्पत्ति और विकास का प्रदर्शन किया गया है।

श्रीयन्त्र में श्री शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है–'श्रयते या ता श्रीः' अर्थात् जो श्रवण की जाय, वह श्री है। जो नित्य परब्रह्म का आश्रयण करती हैं, वह श्री है। जिस प्रकार प्रकाश या गर्मी की अग्नि से अभिन्नता रहती है, उसी तरह ब्रह्म और शक्ति भी दोनों अभिन्न रहते हैं। आगम का भी यही सिद्धान्त है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न शिवेन विना देवो न देव्या च विना शिवः ।
नानयोरन्तरं किञ्चिद्रचन्द्रिकयोरिव ।।

अर्थात् 'शिव के विना देवी नहीं है और विना देवी के शिव नहीं हैं। इन दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं होता है, जिस तरह से कि चन्द्र और उसकी चन्द्रिका में कोई अन्तर नहीं रहा करता है।"

ब्रह्म की उत्पत्ति, स्थिति और पालन की सामर्थ्य प्राप्त करने का श्रेय 'श्री' के कारण ही है। श्री शंकराचार्य के अनुसार—

शिवः शक्त्या युक्तो तदिभवयि शः प्रभवितुं ।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।।

अर्थात् "जो शिव शक्ति के सहित होता है, वही शक्तियुक्त, अर्थात् सामर्थ्य वाला होता है, यदि शक्ति से हीन होता है, तो वह देव सम्पन्न करने के योग्य नहीं होता है।"

ब्रह्म स्वयं निरंजन, निष्कल और निर्गुण है। आगम में कहा गया है—

अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा
प्रतिव्यक्त्यक्त्यधिष्ठानसतैकमूर्तिः ।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ।।

अर्थात् 'चिन्तन करने के अयोग्य, अमित आकार और शक्ति स्वरूप वाली, प्रति व्यक्ति में अधिष्ठान सत्ता रखने वाली, एक मूर्ति, गुणों से परे और निर्द्वन्द्व बोध ही केवल जानने के योग्य आप एक परम ब्रह्म रूप से सिद्ध हैं।

इस प्रकार महिमा वाली त्रिपुरसुन्दरी के यन्त्र का अध्ययन आवश्यक है। श्री यन्त्र के उपरोक्त प्रथम चित्र से हम देखगें कि इसमें कई वृत्त हैं। सबसे अन्दर वाले वृत्त के केन्द्र में बिन्दु स्थित है। इस बिन्दु के चारों ओर नौ त्रिकोण बनाये गये हैं। इनमें से पाँच की नोंक ऊपर की ओर है और चार की नीचे की ओर। जिनकी नोंक ऊपर की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओर हैं, उन्हें भगवती का प्रतिनिधि माना जाता है और शिवयुवती की संज्ञा दी जाती है। नीचे की ओर नोंक वाले शिव का प्रतिनिधित्व करते हैं इन्हें श्रीकण्ठ कहते हैं। ऊर्ध्वगामी पाँच त्रिकोण, पाँच प्राण पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा और पाँच महाभूतों की प्रतीक हैं। शरीर में यह अस्थि, मेदा, माँस असृक् और त्वक् के रूप में विद्यमान हैं। अधोमुखी चार त्रिकोण शरीर में जीव, प्राण, शुक्र और मज्जा की द्योतक है और ब्रह्मांड में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के प्रतीक हैं। पाँच ऊर्ध्वमुखी और चार अधोमुखी त्रिकोण नौ मूल प्रकृतियों का प्रतिनिधित्व करती है। इस यन्त्र में एक आठ दल वाला और दूसरा सोलह दल वाला कमल है। पहला अन्दर वाले वृत्त के बारह है और दूसरा दूसरे वृत्त के बाहर है। 'आनन्द लहरी' में भगवान् शङ्कराचार्य ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

चतुर्भि: श्रीकण्ठं शिवयुवतिभि: पंचभिरपि।
अभिन्नाभि: शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभि:।
त्रयश्चत्वारिंशद्‌वसुदलकलाव्जत्रिवलय—
त्रिरेखाभि: सार्धं तव भवन कोण: परिणता:॥

अर्थात् "चार श्रीकण्ठों के, पाँच शिव की युवतियों के शम्भू की नौ अभिन्न मूल प्रकृतियों के, तेंतालीस वसु दल कलाब्ज की त्रिविलय तीन रेखाओं के साथ आपके भवन-कोण में परिणित होते हैं।"

इस यन्त्र में ऊर्ध्वगामी त्रिकोण अग्नि-तत्व के वृत वायु के, बिन्दु आकाश का और भूपुर पृथ्वी तत्व का प्रतीक माना जाता है। यह यन्त्र सृष्टिक्रम का है। इसकी उपासना समय मत वाले करते हैं। भगवान शंकराचार्य इसी मत के उपासक थे। उनके हर मठ में यह यन्त्र रहता है।

कौल मत का श्रीयन्त्र अलग तरह का होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि उसमें पांच शक्ति त्रिकोण, जो समय मत वाले श्रीयन्त्र से ऊर्ध्वमुखी होती है, वह इसमें अधोमुखी हो जाती है और चार शिव

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिकोण जो अधोमुखी रहती हैं, वह इसमें ऊर्ध्वमुखी हो जाती है। इस तरह से यह संहार-क्रम का यन्त्र बन जाता है।

यन्त्रराज यन्त्र–

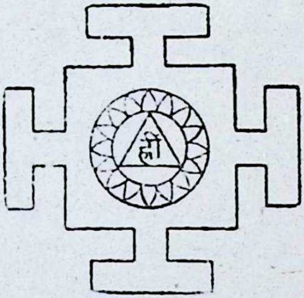

इस यन्त्र का उल्लेख महानिर्वाण तन्त्र (५।७१।१७३) में है। इसका लक्ष्य दिव्य-भाव की सिद्धि है। इस यन्त्र की सहायता से मानव हर सम्भव विकास कर सकता है। इस यन्त्र से जो अर्थ निकलते हैं, उन पर यदि ध्यान केन्द्रित किया जाय तो सिद्धि अवश्य होती है।

यन्त्र के भीतर कक्ष में एव ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण है, जो एक वृत्त से घिरा हुआ है, उसके बाहर एक और वृत्त है, जो भूपुर से घिरा हुआ है। इस प्रतीक चित्र में सृष्टिक्रम का अध्ययन किया गया है। ऊपर की ओर मुख वाला त्रिकोण अग्नि शिखा को प्रदर्शित करता है, जो वृत्त अर्थात् वायु तत्व से आवृत है। जब दोनों क्रियाशील होते हैं, तो विश्व का विस्तार है, जो भुपुर के रूप में दिखाया गया है। इस विस्तार भाव में प्रगति और रचना का भाव भी निहित है। हर क्षण रचना हो रही है। विश्व गतिशील है। हमारा पिंड स्थित विश्व भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐसा ही होना चाहिए। हम निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहे हैं– इस भावना के साथ यन्त्र की पूजा करनी चाहिए।

मुक्ति यन्त्र–

इसका वर्णन 'कुमारी कल्प' में है। इसमें पाँच त्रिकोण हैं— जो एक षट्कोण में स्थित हैं। ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण अग्नि-तत्व का और अधोमुखी जल-तत्व का प्रतीक है। अग्नि सदैव ऊपर को जाती है और जल नीचे की ओर। परन्तु दोनों की इन प्रवृत्तियों की भी एक मर्यादा है। उस सीमा तक पहुँचने पर अग्नि जल-रूप हो जाता है और नीचे की ओर जब जल अग्नि में गिरता है, तो वह अग्नि रूप में वदल जाता है। अथर्ववेद के वृहज्जाबालोपनिषद् में इस विषय का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि इस जगत के आत्मा अग्नि और सोम है (सोम जल का पर्यायवाची है)। दोनों अग्नि-रूप ही हैं। अग्नि से सोम उत्पन्न होता है और सोम से अग्नि की उत्पत्ति होती है। अतः अग्नि और सोम के सम्मिलित यज्ञ से ही सृष्टि की रचना होती है। अग्नि ऊपर की ओर जाकर सोम नीचे की ओर आकर अग्नि बन जाता है। इन दोनों के सम्पुट से निरन्तर यह विश्व स्थिर रहता है। अग्नि जब तक अग्नि न बन जाय, वह नीचे की ओर प्रवृत्त रहता है। इसका अर्थ यह है कि शिव शक्तिमय है और शक्ति शिवमय है। शिव और शक्ति जहाँ न हों, ऐसा कोई स्थान नहीं है।

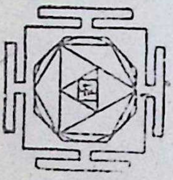

इस भावना के साथ ही इस यन्त्र की पूजा की जाती है।

जगत विकारमय है, इसमें विकारों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर षट्विकार प्रसिद्ध हैं। इन पर विजय प्राप्त करके ही साधक मुक्ति पथ पर अग्रसर हो सकता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षट्कोण से यही अभिप्राय है कि षट्कोणों से अपने विकार रूपी शत्रुओं को घेरकर नियन्त्रण में रखना चाहिए और अपने अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति करनी चाहिए। इस भौतिक जगत की सीमित इच्छाओं और कामनाओं पर विजय प्राप्त करके अपने को असीम में मिला देना चाहिए। जगत की हर एक वस्तु को अपना रूप मानना चाहिए और अपने को पंचभौतिक शरीर न मानकर आत्मिक भाव में स्थिर समझना चाहिए और अपने में सारे विश्व को समाविष्ट मानना चाहिए। यह भाव क्रिया-रूप में आने लगे, यही इस यन्त्र की पूजा का वास्तविक उद्देश्य है।

सर्वतोभद्र यन्त्र–

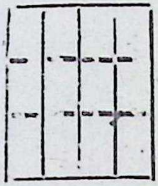

इसका उल्लेख गौतमीय तन्त्र (३१। ०२—१०) में किया गया है। इसे महायन्त्र कहते हैं। इसकी महान महिमा का वर्णन करते हुए तन्त्र में कहा गया है कि यह गोचर और अगोचर सभी प्रकार के फलों के दाता है, भले ही वर्तमान के हों या भविष्य के। सर्वतोभद्र का अभिप्राय है–सब ओर से एक जैसा बराबर। विष्णु भगवान के रथ का भी यही नाम शास्त्रों में आता है। यह यन्त्र आदर्श जीवन व्यतीत करने का शिक्षण है। आदर्श जीवन एक कांटे की तरह हैं, जिसके दोनों पलड़े बराबर हों। आय-व्यय, श्रम-विश्राम और संग्रह त्याग दोनों बराबर हों। यदि एक ही ओर अधिक झुकाव होगा तो सांसारिक जीवन में व्यवधान उपस्थित हो जायेंगे। दोनों की नाप-तोल बराबर होनी चाहिए। गृहस्थ और समाज में सभी से एक जैसा व्यवहार हो। भेद की उत्पत्ति कलह क्लेश और झगड़ों की जड़ है तो है ही, साथ ही उस व्यक्ति की आध्यात्मिक गिरावट का भी चिन्ह है। भौतिक जीवन से मान, अपमान, सुखों, दुःखों, ऐश्वर्यों और अभावों में एक जैसा रहना ही इस यन्त्र की प्रेरणा है। पद, मान और धन पाकर अहंकारमेंफूले नहीं और अपमान, दुःख और अभाव के जीवन से निराश न हो। दोनों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थितियों में समान भाव वाला हो, जैसे जनक ने कहा था कि मेरा एक हाथ रमणी के कन्धे पर रख दो और दूसरा हवन कुण्ड में रख दो। दोनों स्थितियों में मेरे मन में कोई अन्तर नहीं आयेगा। जीवन को इस स्तर तक लाना ही सर्वतोभद्र यन्त्र का उद्देश्य है।

स्मरहर यन्त्र–

इसका उल्लेख श्यामास्तव (श्लोक १८) में है। इसका प्रयोग काम पर विजय के लिए किया जाता है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर, भय, शोक, निराशा आदि मनोविकार असुर रूपी शत्रुओं के रूप में हर व्यक्ति के जीवन में आते हैं। जब तक इनसे कड़ा संघर्ष करके इन्हें परास्त नहीं कर लिया जाता, तब तक जीवन का उत्थान असम्भव है। भगवान बुद्ध के सामने भी यही परिस्थितियाँ आई थीं। उन्हें भी मनोविकारों ने घेरा था, उन्हें भी उनसे लोहा लेना पड़ा था। इन पर विजय प्राप्त किये बिना आत्मिक प्रगति हो नहीं सकती। इनके प्रति

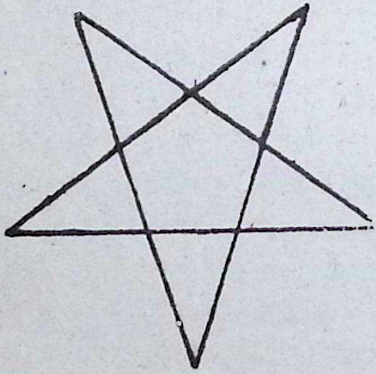

सजग रहना ही इस यन्त्र की प्रेरणा है। इसके सहयोग से उन्हें वश में किया जा सकता है। इसलिए इसको स्मरहर यन्त्र कहते हैं।

इसी तरह से यन्त्रों का अध्ययन किया जा सकता है। यह यन्त्र केवल रेखाचित्र मात्र ही नहीं, वरन् उद्देश्यपूर्ण प्रेरणायें हैं। ❀

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्णों की रेखा कृतियां शक्ति के स्रोत हैं

शक्ति का रूप—

वर्ण को यन्त्र की संज्ञा दी गई है, प्रत्येक वर्ण एक शक्ति विशेषहै। तन्त्र में वर्ण के पर्यायवाची शब्द है—माता, शक्तियां, देवियां, रश्मि और कला। शिव सूत्र (प्र० प्रकाश) में कहा है—

अकारादिक्षपर्यन्ताः कलारताः शब्दकारणात् ।
[illegible]: शक्तयो देव्यो रश्मयश्च कलाः स्मृताः ।।

'अकरादि से क्षकार पर्यन्त ये कलायें हैं,जो शब्द के निर्माण का कारण है। मात्रका देवियां, शक्तियां हैं और उनकी रश्मियां कला बतलाई गई हैं।'

वे निर्मलता के प्रतीक हैं। मृ?-संहिता यज्ञ वै० ख० ४७ अ० में कहा है—

आकाराविक्षरान्तवर्णैरयन्तनिर्मलैः ।
अशेषशब्दर्या भाँति तानानन्दप्रदां नमः ।।

अर्थात् "आकार आदि से लेकर क्ष के अन्त तक अत्यन्त निर्मल वर्णों से और अशेष से जो शोभित होती है, उस आनन्द के प्रदान करने वाली को हम नमस्कार करते हैं।'

योग की भाषा में वर्णों का आविर्भाव इस प्रकार हुआ—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आधारादिषट्कमलदलेषु पातिता द्वादशान्तस्थित चन्द्रमंडलात्सृता अमृतबिन्दवोऽकरादिक्षकारान्तवर्णात्मना परिणता, उक्ता ह्याचार्य—

मूलाधारात्स्फुरिततड़िदामा प्रभा सूक्ष्म रूपो–
द्गच्छन्त्यामस्तकमणुतरा तेजसां भूता ।
सौषु·णाध्वाचरणासा सवित्रानुविद्धा-
ध्याता सद्योऽमृतमथ रवः स्त्रावयेत् साधसोमात् ।
शिरसि निपतित या विन्दुधारा सुधाया ।
भवति लिपिमयी सा पाभिरङ्गं मुखाद्यम् ॥

—तात्पर्यदीपिका

अर्थात्, 'आधारादि षट्कमल के दलों में पतित द्वाद्वशान्त स्थित चन्द्र-मण्डल से निसृत अमृत की विन्दुएँ अकार से क्षकार के अन्त तक वर्णों के स्वरूप से परिणित होने वाली हैं। आचार्यो ने कहा है–

मूलाधार से स्फुरित विद्युत की आभा के समान प्रभाव वाला जो सूक्ष्मरूप हैं उससे निकलती हुई मस्तक से लेकर अणुत्तर तेज की मूल भूता, सुषुम्ना के मार्ग से संचरण करने में निपुण, सविता से अनुबद्ध, उसका ध्यान जप किया जाता है, तो वह तुरन्त ही सार्ध, सोम, रवि से अमृत का स्रवण किया करती है। वह सुधा की विन्दुधारा सिर पर गिरी हुई लिपिमयी हो जाती है, उनसे मुखादि अङ्ग भी पूरित होतेहैं।

कुछ विशेष वर्णों की विशिष्ट शक्तियों का उल्लेख अलग-अलग तंत्रों में आता है। प्रत्यभिज्ञाशास्त्र में कहा है–

सावर्णोआण्डत्रयं व्याप्तम् ।

'स' वर्ण के द्वारा संसार स्फुट रूप से प्रकाशित होता है।

'परात्रिशका' में 'सकार' को तृतीय ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। यथा–

तृतीयं ब्रह्मसुश्रोणि ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्योंकि गीता-में त्रिविध ब्रह्म का उल्लेख आया ही है—

ॐ तत् सदिति निर्देशो ब्रह्माणस्त्रिविधिः स्मृतः ।

'सकार की महिमा अन्यत्र भी उपलब्ध होती है—

सोम चामृतनाय च सुधा सारं सुधानिधिम् ।
सकारं षड्रसाधारं नामाभिः परिकीर्तितम् ।

—विवेक पृ० १६४

अर्थात् 'सोम, अमृथनाथ, सुधासार, सुधानिधि, सकार षटरसों का आधार है, जो इन नामों से कीर्तित किया गया है ।"

कामधेनु-तन्त्र में वर्णों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए उन्हें विश्व-ब्रह्मांड में व्याप्त पचास युवतियां कहा गया है, तो ब्रह्मरूप है और कोई भी यन्त्र तथा विद्या इनसे परे नहीं है ।

अन्य वर्णों की शक्तियों को भी विश्लेषण किया गया है । जैसे कि 'अ' चित-शक्ति, 'अ' आनन्द-शक्ति, 'इ' इच्छा-शक्ति, 'उ'. ज्ञान-शक्ति के नाम है । 'ए', 'ऐ', 'ओ', 'औ', यह चारो वर्ण क्रिया-शक्ति के प्रतीक स्वीकार किये गये हैं ।

डा० शिवशंकर अवस्थी ने वर्णों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है 'वर्ण केवल सांकेतिक ध्वनियाँ ही नहीं हैं, उनके मूल में विश्व संस्था और शरीर-संस्था के सम्पूर्ण संघटक, संस्थापक और संहारक तत्व विद्यमान हैं । एक ओर जहां उनके द्वारा काम, क्रोध, लोभादि (उद्भावित होकर मनुष्य की आत्मा को अत्यन्त स्वार्थी और संकुचित बना डालते हैं, वहां वर्ण समुदाय ही व्यक्ति को आत्मिक दृष्टि से अत्यन्त उदार एवं मुक्त करने की क्षमता भी रखती है । सत्य तो यह है कि ज्ञान-विज्ञान की कुंजी है । सम्पूर्ण वाच्यात्मक विश्व वाचक वर्णों के ही अधीन हैं ।

सृष्टि के आदिम क्षण से ही शब्द और अर्थ अन्तर्भूत है । सूक्ष्म को आत्मसात् कर लेने पर समस्त स्थूल भी गृहीत हो जाता है, इसमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोई आश्चर्य की बात नहीं, मातृका-वर्ण मन्त्रों अथवा विद्याओं के जनक है।'

ध्वनि की विशेषता--

'सेतुबन्ध' में लिखा है कि वर्ण में ध्वनि विद्यमान रहती है, जिससे नाद शब्द की उत्पत्ति होती है। नाद-तत्व का अनुसंधान करने वाले आचार्यों का कहना है कि सबसे पहला उसका आरम्भ मूलाधार चक्र से होता है। फिर वह मणिपूर और अनाहत चक्रों में आता है, जहाँ प्राण और मन से उसका मिलन होता है और वह पश्यन्ती तथा मध्यमा का रूप धारण कर लेता है। वही नाद तत्व गले में आता है और वैखरी रूप में ले लेता है। जैसे बीज में वृक्ष, फल और फूल सूक्ष्म रूप से निवास करते हैं, उसी तरह से नाद-तत्व में वर्ण-राशि रहती है।

आज के विज्ञान-युग का मानव ध्वनि के चमत्कारों से अपरिचित नहीं है। मनोरंजन से लेकर रोग-निवृत्ति तक के सभी क्षेत्रों में इसके आश्चर्यजनक शक्ति प्रदर्शन किया है। आध्यात्मिक क्षेत्र में तो इसका प्रयोग लाखों वर्षों से होता आ रहा है।

रेखाकृतियों का विज्ञान--

वर्णों की रेखाकृतियों का विज्ञान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि इनका निर्धारण, अनुमान या उच्चारण की सुविधा से कुछ विशेषज्ञों अथवा विद्वानों द्वारा नहीं किया गया है। अन्य लिपियों का कारण वाह्य भौतिक कारण है। जैसे चीन की लिपि वृक्ष आदि प्राकृतिक वस्तुओं को देखकर बनाई गई है। हमारी वर्णमाला अलौकिक है। यह ऋषियों की समाधि अवस्था की अनुभूतियों का परिणाम है। अनुभवगम्य ध्वनियों से ही आकृति का निश्चय किया गया था। इसका परीक्षण एक जर्मन वैज्ञानिक ने किया था। उसने सभी वर्णों की आकृतियों जैसी धातु की नलियाँ बनवाई। उनमें विशेष विधिसे वायु को फूँका। परिणामस्वरूप उसी तरह का उच्चारण होने लगा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस तरह हम बोलते हैं। इससे स्पष्ट है कि इन वर्णों का ध्वनि, से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अत: वर्णों के जो हम स्थूल रूप देखते हैं,इनके सूक्ष्म रूप हैं, जिन्हें हमारे अतीन्द्र महर्षियों ने ज्ञान चक्षुओं से देखा था।

स्वरूप—

'कामधेनु तन्त्र' में वर्णों के स्वरूप की चर्चा की गई है—

शृणु तत्वमकारस्य नतिगोप्यं वरानने।
शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पंचकोणमयं सदा।
पंचदेवमयं वर्ण शक्तित्रयसमन्वितम्।
निर्गुणं त्रिगुणोपेतं स्वयं कैवल्यमूर्तिमान्।
बिन्दुतत्वमयं वर्ण स्वयं प्रकृतिरूपिणी।
आकारं परमाश्चर्यं शंखज्योतिर्मयं प्रिये।
ब्रह्माविष्णुमयं वर्ण तथारुद्रमयं प्रिये।
पंचप्राणमयं वर्ण स्वयं परमकुण्डली।
इकारंपरमानन्दं सुगन्धं कुसुमच्छविम्।
हरिब्रह्ममयं वर्ण सदा रुद्रयुतं प्रिये।
सदाशिवमयं वर्ण पर ब्रह्मसमन्वितम्।
हरिब्रह्मात्मकं वर्ण गुणत्रय समन्वितम्।
उकारं परमेशानि स्वयं परमकुण्डली।
ब्रह्मविष्णुमयं वर्ण तथा रुद्रमयं सदा।
पंचदेवमयं वर्ण पीतविद्युल्लताकृतिम्।
चतुर्ज्ञानमयं वर्ण पंचप्राणमयं सदा।

—कामधेनु तन्त्र (हस्तलिखित)

हे वरानने! 'म' अक्षर का तत्व अति गोपनीय है। यह शरत कालीन चन्द्रमा के तुल्य है और सदा पाँच कोणों से पूर्ण है। पाँच देवों से युक्त है तथा वर्ण और शक्तित्रय से युक्त है। निर्गुण है और तीन गुणों से युक्त है। वह स्वयं कैवल्य की मूर्त्ति वाला है। बिन्दु-तत्व

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से पूर्ण है और स्वयं ही प्रकृतिरूपी है। हे प्रिये, आकार परम आश्चर्य है, जो शङ्ख को ज्योति संयुक्त है। हे प्रिये ! वर्ण ब्रह्मा और विष्णु से परिपूर्ण है तथा रुद्रमय हैं। पाँच प्राणमय वर्ण है और स्वयं परम कुण्डली हैं। इकार परम आनन्द, सुन्दर गन्ध वाले कुसुम की शोभा से युक्त है। हे देवि ! वह सदा विष्णु-ब्रह्मा और रुद्र से युक्त है। हे देवि ! यह सदा तीन शक्ति और गुरु-ब्रह्म से युक्त है। सदा शिवमय वर्ण है तथा परब्रह्म से समन्वित है। हरि ब्रह्म-स्वरूप वाला वर्ण है और तीन गुणों से संयुक्त है। हे परमेशानि ! यह स्वयं मूर्तिवान् कुण्डली है।

उकार हे परमेशानि ! स्वयं परम कुण्डली है। ब्रह्म विष्णुमय वर्ण तथा सदा रुद्रमय है। पाँच देवमयवर्ण है और विद्युल्लता के आकार वाला पीत है चतुर्ज्ञानमय वर्ण है तथा सदा पाँच प्राणमय होता है।"

उकारं परमेशानि अधः कुंडलिनी स्वयम् ।
पीतचम्पकसङ्काश पञ्चदेवमयं सदा ।।
पञ्चप्राणमयं देवि चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
शङ्खकुन्दसंशाकारं ऊकारं परमकुंडली ।।
पञ्चप्राणमयं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा ।
धर्मार्थकाममोक्षं च सदासुखप्रदायकम् ।।
ऋकारं परमेशानि कुंडली मूर्तिमान स्वयम् ।
अत्र ब्रह्मा व विष्णुश्च रुद्रश्चैव वरानने ।
सदाशिवयुतं वर्णं सदा ईश्वरसंयुतम् ।।
पञ्चप्राणमयं वर्णं चतुर्ज्ञानमय तथा ।
रक्तविद्युल्लताकारं ऋकारं प्रणमाम्यहम् ।।
ॠकारं परमेशानि स्वयं परमकुण्डलम् ।
पीतविद्युल्लताकारं पंचदेवमयं सदा ।
चतुर्ज्ञानमयं वर्णं पंचप्राणयुतं सदा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं प्रणमामि सदा प्रिये ।। (कामधेनु तन्त्र)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् "हे परमेशानि ! उकार स्वयं अधः कुण्डलिनी है। पीत चम्पा के समान है और सदा पंचदेवमय है। हे देवि ! पाँच प्राणमय और चारों वर्गों का प्रदायक हैं। शङ्ख और कुन्द के आकार वाला ऊकार परम कुण्डली है। पाँच प्राणमय वर्ण और सदा पंच देवमय है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सुख का देने वाला है। हे परमेशानि ! ऋकार स्वयं मूर्तिमान कुंडली है। हे वरानने! यहाँ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र है। सदाशिवयुक्त वर्ण और सदा ईश्वर से संयुत है। पाँच प्राणमय वर्ण तथा चतुर्ज्ञानमय है। रक्त विद्युल्लता के आकार के तुल्य हैं और स्वयं परम कुण्डली है।

ॠपीत विद्युल्लता के आकार के समान सदा पाँच देवों से परिपूर्ण है। चतुर्यानमय वर्ण है और सदा पाँच प्राणों से युक्त हैं। त्रिशक्ति से युक्त वर्ण हैं। हे प्रिये ! मैं सदा इसे प्रणाम करता हूँ।"

ॠकारं चंचलापागि कुंडलीपरदेवता।
अत्र ब्रह्मादयः सर्वे तिष्ठन्ति सततं प्रिये।
पंचदेवमयां वर्णं चतुर्ज्ञानमयं सदा।
पञ्चप्राणयुतं वर्णं तथा गुणत्रयात्मकं।
बिन्दुत्रयात्मकं वर्णं पीताविद्युल्लता तथा॥
एकारं परमेशानि ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
रजनीकुसुमप्रख्यां पंचदेवमयां सदा।
पञ्चप्राणात्मक वर्णं तथा बिन्दुत्रयात्मक।
चतुर्वर्गप्रदं देवि स्वयं परमकुंडली॥
ऐकारं परमं दिव्य महाकुंडली स्वयम्।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशं पंचप्राणमयं सदा॥
ब्रह्माविष्णुमयं वर्णं बिन्दुत्रयसमन्वितम्।
ओंकारं चंचलापाङ्गि पंचदेवमयं सदा।
रक्तविद्युल्लताकारं त्रिगुणात्मानमीश्वरम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पंचप्राणमभयं वर्ण नमामि देवमातरम् ।
एतद्वर्णं महेशानि स्वयं परमकुण्डली ।

अर्थात् "हे चञ्चल अङ्गों वाली ! ऋकार कुण्डली और पर-देवता है । यहां पर हे प्रिये ! ब्रह्मादिक सब निरन्तर स्थित रहा करते हैं । पंच देवमय वर्ण है और सदा चतुर्ज्ञानमय है । पांच प्राणयुत् वर्ण है तथा तीन गुणों के स्वरूप वाला है । तीन बिन्दुओं के रूप वाला वर्ण तथा पीत विद्युल्लतामय है । हे परमेशानि! एकार ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक है । रजनी के कुसुम के समान है और सदा देवमय है । पंच प्राणात्मक वर्ण है तथा बिन्दुत्रय के स्वरूप वाला है । हे देवि ! चारों वर्गों के देने वाला और स्वयं परमकुण्डलिनी है ।

ऐकार परम् दिव्य है और स्वयं महाकुण्डलिनी है । करोड़ चन्द्र के तुल्य चमकता है । और सदा पञ्च प्राणमय है । ब्रह्मा-विष्णुमय वर्ण है और तीन बिन्दुओं से युक्त है । हे चञ्चलापांगि! ओंकार सदा पञ्च देवों से पूर्ण है और रक्त बिद्युल्लता के आकार वाला है । त्रिगुणात्मा और ईश्वर है । पञ्च प्राणमय वर्ण है । ऐसी वेदमाता को नमस्कार करता हूँ हे महेशानि ! यह वर्ण है और वह स्वयं कुण्डली है ।

रक्तविद्युल्लताकारं ओंकारं कुण्डली स्वयम् ।
अत्र ब्रह्मादयः सर्वे तिष्ठन्ति सततं प्रिये ।
पंचप्राणमयं वर्ण सदा शिवमयं सदा ।
सदा ईश्वरसं युक्तं चतुर्वर्गप्रदायकम् ॥
अहंकारं बिन्दुसंयुक्तं प्रीतविद्युत्समप्रभम् ।
पंचप्राणात्मकं वर्णं ब्रह्मादिदेवतामयम् ।
सर्वज्ञानमयं वर्णं बिन्दुमयसमन्वितम् ।
अकारं परमेशानि विसर्गसहितं सदा ।
. . . . रक्तविद्युत्प्रभामयम् ।

अर्थात् 'रक्त विद्युल्लता के आकार के युक्त ओंकार स्वयं कुण्डली है । हे प्रिये ! यहाँ पर ब्रह्मादि सब स्थित रहते हैं । पञ्च प्राणमय वर्ण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है और सदाशिवमय है। सदा ईश्वर से युक्त और चारों वर्ग का देने वाला है। आङ्कार बिन्दु से संयुक्त है और पीत विद्युत की प्रभा के समान आभा वाला है। पञ्च प्राणात्मक वर्ण है तथा ब्रह्मा आदि देवताओं से पूर्ण है। सर्वज्ञानमय वर्ण है जो बिन्दुमय से युक्त है। आकार हे परमेशानि ! सदा विसर्ग से सहित है तथा रक्त विद्युत की प्रभा से परिपूर्ण है।

ककारं परमेशानि कुण्डलीत्रयसंयुतम् ।
खकारं परमाश्चर्यं शंखकुन्दसमप्रभम् ।
कोणत्रयुतं रम्यं विन्दुत्रयसमान्वितम् ।
गुणत्रययुतं देवि पंचदेवमायं सदा ।
त्रिशक्तिसंयुतं वर्णं सर्वशक्त्यात्मकं प्रिये ।
गकारं परमेशानि पंचदेवात्मक सदा ।
निर्गुणं त्रिगुणोपेत निरीहं निर्मलं सदा ।
पंचप्राणमायं वर्णं गकारं प्रणमाम्यहम् ।
अरुणादित्यसंकाशं कुण्डली प्रणमाम्यहम् ॥
घकारं चंचलापांगि चतुष्कोणात्माकं सदा ।
पंचदेवमायं वर्णं तरुणादित्यं सन्निभम् ।
निर्गुणं त्रिगुणोपेतं सदा त्रिगुणसंयुतम् ।
सर्वगं सर्वदं शान्तं घकारं प्रणमाम्यहम् ।

—चतुर्थ पटल

अर्थात् "हे परमेशानि ! ककार कुण्डलीत्रय से संयुक्त है । खकार परम आश्चर्ययुक्त है तथा शङ्ख और कुन्द के समान प्रभा वाला है । तीन कोण के सहित है—रम्य और तीन बिन्दुओं से समन्वित है । हे देवि ! गुणत्रय से युक्त और सदा पञ्च देवमय है। तीन शक्तियों से संयुक्त वर्ण है और हे प्रिये । सर्वशक्तियों के स्वरूप वाला है। हे परमेशानि ! गकार सदा पञ्चदेवात्मक है । निर्गुण और तीन गुणों से ओत-प्रोत, निरीह एवं सदा निर्मल हैं । पञ्चप्राणमय वर्ण है । गकार को मैं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रणाम करता हूँ। अरुण आदित्य के सदृश कुण्डली को मैं प्रणाम करता हूँ। हे चंचल उपांङ्गों वाली ! धकार सदा चार कोणों के स्वरूप वाला है। पंच देवमय वर्ण हैं और तरुण सूर्य के तुल्य है। निर्गुण तथा त्रिगुणों पेत है, सदा ही त्रिगुण से संयुत् है। सबमें गमन करने वाला, सब देने वाला, शांत धकार को मैं प्रणाम करता हूँ।"

ङकारं परमेशानि स्वयं परमकुण्डली।
सर्वदेवमायं वर्णं त्रिगुणं लोललोचने ॥
पंचप्राणमयं ङकारं प्रणमाम्यहम्।
चवर्णं शृणु सुश्रोणि चतुर्वर्ग प्रदायकम् ॥
कुंडलीसहितं देवि स्वयं परमकुंडली।
रक्तविद्युल्लताकारं सदा त्रिगुणसंयुतम् ॥
पंचदेवमायं वर्णं पंचप्राणमयं सदा।
त्रिशक्तिसहित वर्णं त्रिबिन्दुसहित सदा ॥
छकारं परमाश्चर्यं स्वयं परमकुंडली।
सततं कुंडलीयुक्तं पंचदेवमायं सदा।

अर्थात् "ङकार हे परमेशानि ! स्वयं परम कुंडली है, सर्व देवों स पूर्ण वर्ण है तथा हे लोल लोचनों वाली त्रिगुण है। पंच प्राणमय वर्ण वाले ङकार को मैं प्रणाम करता हूं। हे सुश्रोणि ! अब च वर्ग का श्रवण करो, जो चारों वर्गों का प्रदान करने वाला है। हे देवि! कुंडली के आकार वाला और सदा त्रिगुण से समन्वित है। पंच देव है और सदा तीन बिन्दुओं से संयुत् है। छकार परम आश्चर्य पूर्ण है तथा स्वयम् परम कुंडली है। यह सतत कुण्डली से युक्त तथा सदा पंच देवमय है।"

पंचप्राणमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं सदा ईश्वरसंयुतम् ॥
पीतविद्युल्लताकारं छकारं प्रणमाम्यहम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जकार परमेशानि या स्वयं मध्यकुण्डली ॥
शरच्चन्द्रप्रतीकाश सदा त्रिगुणसंयुतम् ।
पंचदेवमाय वर्ण पंचप्राणात्माकं सदा ॥
त्रिशक्तिसहितं वर्ण त्रिबिन्दुसहितं प्रिये ।

अर्थात् "पंच प्राणमय वर्ण है तथा सदा तीन शक्तियों के सहित है। तीन बिन्दुओं के सहित वर्ण है और सदा ईश्वर से संयुक्त है। पीत विद्यु ल्लता के आकार वाला जो छकार है, उसको मैं प्रणाम करता हूँ। हे परमेशानि ! जकार स्वयं मध्य कुंडली है, । शरत् काल के चन्द्रमा के तुल्य है तथा सदा त्रिगुण से संयुत है। पंच देवपूर्ण वर्ण है तथा सदा पंच प्राणात्मक है। तीन शक्तियों के सहित वर्ण है और हे प्रिये । वह तीन बिन्दुओं के सहित है ।"

झकार परमेशानि कुण्डलीमोक्षरूपिणी ।
रक्तविद्यु ल्लताकार सदा त्रिगुणसंयुतम् ।
पंचदेवमाय वर्ण पंचप्राणात्माकं सदा ।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा ।
सदा ईश्वर संयुक्त ञाकारं शृणु पार्वति ।
रक्तविद्यु ल्लताकारं स्वयं परमकुंडली ।
पंचदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणात्माकं सदा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।
टकारं चञ्चलापांगि स्वयं परमकुंडली ।
पञ्चदेवमयं वर्णं पंचप्राणमयं सदा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।
ठकार चंचलापांगि कुंडली मोक्षरूपिणी ।
पीतविद्यु ल्लताकारं सदा त्रिगुणसंयुतम् ।
पंचदेवात्माकं वर्ण पंचप्राणमायं सदा ।
त्रिबिन्दुसहितं वणत्रिशक्तिसहितं सदा ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् "हे परमेशानि ! झङ्कार कुंडली का मोक्षरूपी है । रक्त विद्युल्लता के आकार वाला त्रिगुण से संयुक्त है। पञ्चदेवमय वर्ण है और सदा पञ्च प्राणात्मक होता है। त्रिबिन्दुओं के सहित वर्ण है तथा सदा तीन शक्तियों से संयुत होता है। हे पार्वती ! अकार सदा ईश्वर से संयुत होता है—सुन लो। रक्त विद्युल्लता के आकार वाला तथा सदा पञ्च प्राणात्मक होता है। तीन शक्तियों से युक्त वर्ण और सदा त्रिबिन्दु सहित है। टकार स्वयं परम कुण्डली है। पञ्च देवमय वर्ण और सदा पञ्च प्राणमय होता है। तीन शक्तियों वाला वर्ण तथा सदा त्रिबिन्दुओं से युक्त है। टकार मोक्ष रूपिणी कुण्डली है। पीत विद्युल्लता के आकार से संयुक्त है। पञ्च देवात्मक वर्ण है । तथा सदा पञ्च प्राणमय होता है। तीन बिन्दुओं के सहित वर्ण होताहै और सदा शक्तियों से युक्त हुआ करता है।"

डकारं चंचलापांगि सदा त्रिगुणसंयुतम् ।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं तथा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।
चतुर्यानिमयं वर्णं आत्मादितत्वसंयुतम् ।
पीतविद्युल्लताकारं डकारं प्रणमाम्यहम् ।
डकारं परमाराध्यं या स्वयं कुण्डलीपरा ।
पञ्चदेवात्मकं वर्णं पंचप्राणमयं सदा ।
सदा त्रिगुणसंयुक्तं आत्मादितत्वसंयुतम् ।
रक्तविद्युल्लताकारं डकारं प्रणमाम्यहम् ।
णकारं परमेशानि या स्वयं परमकुण्डली ।
पीतविद्युल्लताकार पंचदेवमयं सदा ।
पंचप्राणमयं देवि सदा त्रिगुणसंयुतम् ।
आत्मादितत्ववसंयुक्तं महासौख्यप्रदायकम् ।
तकारं चंचलापांगि स्वयं परमकुण्डली ।
पंचुदेवात्मकं वर्णं पंचप्राणमयं तथा ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिशक्तिसहितं वर्णं मात्मादितत्वसंयुतम् ।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं पीतविद्युत्समप्रभम् ।

अर्थात् 'हे चञ्चलापाङ्गि ! अकार सदा त्रिगुण से युक्त है । पञ्च-देवमय वर्ण है तथा पञ्च प्राणमय होता है । त्रिशक्ति सहित वर्ण और सदा त्रिबिन्दु सहित है । चतुर्ज्ञानमय वर्ण और आतमादि तत्वों से संयुक्त होता है । पीत विद्युल्लताकार ढकारको मैं नमस्कार करता हूँ । डकार परमाराध्य है,जो स्वयं परमकुण्डली हैं । पञ्च देवात्मक वर्ण और सदा पञ्च प्राणमय होता है । सदा त्रिगुण से समन्वित है तथा आत्मा आदि तत्वों से पूर्ण है । रक्त विद्युल्लता के आकार वाले डकार को मैं प्रणाम करता हूँ । हे परमेशानि ! णकार स्वयं परमकुंडली है । पीत विद्यु-ल्लता के आकार वाला सदा पञ्च देवमय है । हे देवि ! सदा पञ्च प्राणमय और त्रिगुण से संयुक्त है । तकार स्वयं परम कुण्डली है । पञ्च देवात्मक वर्ण हैं तथा पञ्च प्राणमय है । त्रिशक्तिके सहित वर्ण है और आत्मा आदि तत्वों से युक्त है त्रिबिन्दु सहित वर्ण है और पीत वर्ण वाली विद्युल्लता के तुल्य प्रभा वाला है ।"

थकारं चंचलापांगि कुण्डली मोक्षरूपिणी ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।
पञ्चदेवमयं वर्णं पंचप्राणात्मकं प्रिये ।
तरुणादित्यसंकाशं थकारंप्रणमाम्यहम् ॥
दकारं शृणु चार्वाङ्गि चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
पञ्चदेवमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा ।
सदा ईश्वरसंयुक्तं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।
आत्मादितत्वसंयुक्तं स्वयं परमकुंडली ।
रक्तविद्युल्लताकारं दकारं हृदि भावय ।
धकारं परमेशानि कुण्डली मोक्षरूपिणी ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मादितत्त्वसंयुक्तं पंचदेवमयं सदा ।
पंचप्राणमयं देवि त्रिशक्तिसहितं सदा ।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं धकारं हृदि भावय ।
पीतविद्युल्लताकारं चतुर्वर्गप्रदायकम् ।

अर्थात् "हे चंचलापाङ्गि ! थकार मोक्ष रूपिणी कुण्डली है । त्रिशक्ति के सहित वर्ण है और सदा त्रिबिन्दु के सहित है पंच देवमय वर्ण है और हे प्रिये ! पंचप्राणात्मक है । तरुण सूर्य के सदृश है, ऐसे थकार को मैं नमस्कार करता हूँ हे चार्वाङ्गि ! अब दकार के विषय में श्रवण करो, जो चारों वर्गों का प्रदान करने वाला है । यह दकार वर्ण पाँचों देवों से परिपूर्ण है तथा सदा तीन शक्तियों से युक्त और तीन बिन्दुओं के सहित रहता है । आत्मा आदि शक्तियों से भी समन्वित रहता है । एवं यह स्वयम् परम कुण्डली है । इसप्रकार रक्त विद्युल्लता के आकार के समान आकार वाले दकार वर्ण की हृदयमें भावना करो । अब धकार वर्ण के विषय में बतलाते हैं—हे परमेशानि ! यह धकार वर्ण मोक्षरूपिणी कुण्डली है । यह भी आत्मादि तत्वों से संयुक्त और सदा पाँचों देवों से परिपूर्ण होता है । यह त्रिबिन्दुओं से संयुक्त है—इसी प्रकार के धकार हृदय में भावना करनी चाहिए । यह पीत वर्ण की विद्युल्लता के आकार वाला है तथा चारों वर्गों के प्रदान करने वाला है ।"

नकारं शृणु चार्वाङ्गि रक्तविद्युल्लताकृतिम् ।
पञ्चदेवमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली ।
पंचप्राणमयं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं मात्मादितत्त्वसंयुतम् ।
चतुर्वर्गप्रदं वर्णं हृदि भावय पार्वति ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि पकारं मोक्षमव्ययम ।
चतुर्वर्गं वर्णं शरच्चन्द्रसमप्रभम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पंचदेवमयं वर्ण स्वयं परमकुण्डली ।
पंचप्राणात्मकं वर्ण त्रिबिन्दुसहितं सदा ।

अर्थात्, "हे चारु (सुन्दर) अङ्गों वाली ! अब नकार का श्रवण करो जो रक्त विद्युल्लता की आकृति वाला है । यह पंच देवमय वर्ण वाला है और स्वयम् परम कुण्डली है । पंच प्राणात्मक और सदा तीन बिन्दुओं से सहित है । तीन शक्तियों से युक्त और आत्मादि तत्व से समन्वित वर्ण वाला है । हे पार्वति ! ऐसे चार वर्गों के प्रदान करने वाले वर्ण को हृदय में भावित करो । इसके पश्चात् मोक्षस्वरूप और अव्यय पकार को बतलाते हैं । चारों वर्गों के प्रदान करने वाला वर्ण है तथा शरत्काल के चन्द्रमा के समान प्रभा वाला है । पाँच देवों से परिपूर्ण वर्ण है और स्वयम् पर कुंडली है । पाँच प्राणमय वर्ण है तथा सदा तीन शक्तियों से समन्वित है ।

त्रिबिन्दुसहितं वर्णमात्मादितत्वसंयुतम् ।
महामोक्षप्रदं वर्ण हृदि भावय पार्वति ।
फकारं शृणु चार्वाङ्गि रक्तविद्युल्लतोपमम् ।
चतुर्वर्गमयं वर्ण पंचदेवमयं सदा ।
पंचप्राणमयं वर्ण सदा त्रिगुणसंयुतम् ।
आत्मादितत्वसंयुक्तं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।

अर्थात् 'तीन बिन्दुओं के सहित वर्ण वाला आत्मादि तत्व से समन्वित है । यह महा महामोक्ष के प्रदान करने वाला वर्ण है । इसकी भावना हे पार्वति ! आप हृदय में करो । हे चार्वाङ्गि ! अब फकार का श्रवण करो, जो रक्त विद्युल्लता के समान है । चारों वर्गों से पूर्ण वर्ण है तथा सदा पंच देवमय है । पाँच प्राणों से पूर्ण वर्ण है और सदा त्रिगुणमे संयुत रहता है । आत्मा आदि तत्वों से समन्वित तीन बिन्दुओं के सहित है ।"

बकारं शृणु चार्वाङ्गि चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पञ्चदेवमयं सदा ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चप्राणात्मकं वर्ण त्रिविन्दुसहितं सदा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्ण निविडाऽमृतनिर्मलम् ।
स्वयं कुण्डलिनी साक्षात् सततं प्रणमाम्यहम् ।
भकारं चञ्चलापांगि स्वयं परमकुण्डली ।
महोमोक्षप्रदं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं प्रिये ।
मकारं शृणु चार्वाङ्गि स्वयं परमकुण्डली ।
महामोक्षप्रदं वर्गं पंचदेवमयं सदा ।
तरुणादित्यसंकाशं चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ।
आत्मादितत्वसंयुक्तं हृदिस्थं प्रणमाम्यहम् ।
यकारं शृणु चार्वाङ्गि चतुष्किोणयं सदा ।
पलालधूमसंकाशं स्वयं परमकुण्डली ।
पंचदेवमयं वर्णं पंचप्राणात्मकं सदा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं तथा ।
प्रणमामि सदा वर्णं मूर्ति मान मोक्षमव्ययम् ।

अर्थात् 'हे चारु अङ्गों वाली ! बकार का श्रवण करो, जो चारों वर्गों के प्रदान करने वाला और शरत्कालीन चन्द्रमाके तुल्य एवं पञ्चदेवों से परिपूर्ण सदा रहता है । यह भी पञ्चप्राणात्मक वर्ण वाला तथा सदा त्रिविन्दुओं के सहित होता है । तीन शक्तियों के सहित वर्ण और निविड़ अमृत के समान निर्मल है । यह स्वयं साक्षात् कुंडलिनी है । मैं इसको निरन्तर प्रणाम करता हूँ । हे चञ्चल अपाङ्गों वाली ! भकार स्वयं परम कुंडली है । महान मोक्ष के प्रदान करने वाला वर्ण है तथा सदा पंचदेवों से पूर्ण है । हे प्रिये । तीन शक्तियोंके सहित वर्ण और तीन विन्दुओं के सहित है । हे उर्वांगि ! मकार को सुनो । यह स्वयं परम कुंडली, महामोक्ष का प्रदाता वर्ण और सदा पंच देवमय है । तरुण सूर्य के समान है और धर्मार्थ काम मोक्ष इन चारों वर्गों को प्रदान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने वाला है। तीन शक्तियों के सहित वर्ण है और सदा तीन बिन्दुओं के सहित है। आत्मादि तत्वों से समन्वित है। मैं हृदय में स्थित इसको प्रणाम करता हूँ। हे चार्वाङ्गि। यकार के विषय में श्रवण करो। यह सदा चतुष्कोणमय होता है। पलाल की धुँआ के समान इसका वर्ण है और स्वयं परम कुण्डली है। पंच देवमय वर्ण तथा पंच प्राणात्मक होता है। तीन शक्तियों के सहित वर्ण तथा त्रिबिन्दुओं के सहित है। मैं इस मूर्तिधारी अव्यय मोक्ष वर्ण को सदा प्रणाम करता हूँ।"

लकारं चंचलापांगि कुण्डली तत्वसंयुतम् ।
पीतविद्युल्लताकारं सर्वरत्नप्रदायकम् ।
पञ्चदेवमयं वर्णं पंचप्राणमयं सदा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।
आत्मादितत्वसंयुक्तं हृदि भावय पार्वति ।
षकारं शृणु चार्वाङ्गि अष्टकोणमयं सदा ।
रक्तचन्द्रप्रतीकाशं स्वयं परमकुण्डली ।
चतुर्वर्गप्रदं वर्णं सुधानिर्मितविग्रहम् ।
पञ्चदेवमयं वर्णं पंचप्राणमयं सदा ।
रजः सत्वतमोयुक्तं त्रिशक्तिनिहितं सदा ।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णमात्मादितत्वसंयुतम् ।
सर्वदेवमयं वर्णं हृदि भावय पार्वति ।
सकारं शृणु चार्वाङ्गि शक्तिबीज परात्परम् ।
कोटिविद्युल्लताकार कुंडलीत्रयसंयुतम् ।

अर्थात् "हे चंचलापाङ्गि ! लकार कुंडली तत्व से संयुत है। पीत वर्ण वर्ण वाली विद्युल्लता के आकार वाला है तथा सब प्रकार के रत्नों के प्रदान करने वाला है। पंच देवों से पूर्ण वर्ण वाला है और सदा पंच प्राणमय है। त्रिशक्ति के सहित वर्ण तथा सदा तीन बिन्दुओं से युक्त होता है। हे पार्वति ! आत्मादि तत्वों से समन्वित इसको हृदय में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावना करो। हे चार्वाङ्गि ! अब पकार विषय में श्रवण करो । यह सदा आठ कोणों से परिपूर्ण हैं। रक्त वर्ण वाले चन्द्रमा के समान है तथा स्वयं परम कुंडली है। चारों वर्गों के प्रदान करने वाला वर्ण है और सुधा से निर्मित विग्रह वाला है। पंच देव युक्त वर्ण है और सदा पंच प्राण से पूर्ण है। रजोगुण, सत्वगुण और तमो गुण—इन तीन गुणों से युक्त है सदा तीन शक्तियों से समन्वित है। त्रिबिन्दुओं के सहित वर्ण है तथा आत्मादि तत्वों से युक्त है। हे पार्वति ! सब देवों से परिपूर्ण वर्णों वाला है। इसको आप हृदय में भावित करिये। अब हे चार्वाङ्गि! क्षकार के विषय में सुनिये। यह शक्ति का बीज है और परात्पर पर है। करोड़ों विद्युल्लताओं के आकार वाला है तथा तीन कुंडलियों से समन्वित है।'

पञ्चदेवमयं वर्णं पंचप्राणमयं सदा ।
रजः सत्वतमोयुक्तं त्रिबिन्दुसहितं सदा ।
प्रणम्य सततं देवि हृदि भावय पार्वति ।
क्षकारं शृणु चार्वाङ्गि चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
कुण्डलीत्रयसंयुक्तं रक्तविद्युल्लतोपम् ।
रजः सत्वतमोवायु पञ्चदेवमयं सदा ।
पञ्चप्राथमयं वर्णं हृदि भावय पार्वति ।
क्षकारं शृणु चार्वाङ्गि कुण्डलीत्रयसंयुतम् ।
चतुर्वर्गमयं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा ।
पञ्चप्राणात्मकं वर्णं त्रिशक्ति सहितं सदा ।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णमात्मादितत्वसंयुतम् ।
रक्तचन्द्रप्रतीकाशं हृदि भावयं पार्वति ।

—षष्ठ पटल

अर्थात् "पाँच देवों से परिपूर्ण वर्ण है और सदा पाँच प्राणमय है। रज, सत्व और तमोगुण से संयुत तथा सदा तीन बिन्दुओं से युक्त हैं। हे देवि पार्वति ! इसको प्रणाम करके इसकी भावना आप अपने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हृदय में करो। अब हकार के विषय में सुनिये। यह चतुर्वर्ग के प्रदान करने वाला, तीन कुंडलियों से युक्त है और लाल वर्ण वाली विद्युत की लता के सदृश है, रज, सत्व, तम, वायु पांच देवों से पूर्ण है और सदा ही रहता है। पांच प्राणमय वर्ण है। हे पार्वति! इसकी भावना हृदय में करो। अब क्षकार के विषय में सुनिये। हे चारु अङ्गों वाली! यह तीन कुण्डलियों से समन्वित है। चतुर्वर्गमय इसका वर्ण है और सदा पंच देवमय रहता है। पंच प्राणात्मक वर्ण है तथा तीन शक्तियों से युक्त सदा रहता है। तीन बिन्दुओं सहित वर्ण है और आत्मादि तत्वों से युक्त सदा रहता है। तीन बिन्दुओं सहित वर्ण है और आत्मादि तत्वों से युक्त है। हे पार्वति! इसकी भावना आप हृदय में करो।

रंग—

वर्णों के रङ्गों की खोज भी भारतीय ऋषियों ने की थी। विभिन्न तन्त्रों में इनका उल्लेख आता है। 'मातृका-विवेक' में कहा है—

अकारं सर्वदेवत्वं रक्तं सर्ववशंकरम्।
इत्यादिना प्रत्यक्षरं वर्ण विशेष उक्तः।

अर्थात् "अकार सर्व देवों वाला है, रक्त वर्ण से युक्त तथा सबको वश में करने वाला है—इत्यादि उक्तियों में प्रत्येक अक्षर का वर्ण विशेष कह दिया गया है।

तन्त्रान्तर के अनुसार—

स्फटिकाभाः स्वराः प्रोक्ताः स्पर्शाः विद्रुमसन्निभाः।
यादयो नव पीताः स्युः क्षकारस्त्वरुणा मत.।
सर्वे वर्णा शुक्ला इत्यपि क्वचित्।

"सभी स्वर स्फटिक मणि की आभा वाले बतलाये गये हैं। स्पर्श संज्ञा वाले (क से म तक) सब अक्षर विद्रुम के समान वर्ण वाले हैं। यकार से लेकर क्षकार पर्यन्त नौ वर्ण पीत वर्ण वाले हैं। किन्तु उनमें क्षकार ही एक अरुण वर्ण का माना गया है कुछ लोगों का कहीं पर ऐसा भी मत है कि सभी वर्ण शुक्ल वर्ण वाले होते हैं।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"सुभगोदय" की व्याख्या "चन्द्रकला" में लक्ष्मीधर ने सनत्कुमार संहिता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है, जो इस प्रकार है—

अकाराद्याः स्वराधूम्रा सिन्दूराभास्तु कादय ।
डाफिफान्ता गौरवर्ण अरुणाः पञ्च वादयः ।

अर्थात् "अकारादि स्वरों का रङ्ग धूम्र, 'क' से 'ट' तक सिन्दूराभ 'ड' से 'फ' तक और पाँच 'ब' आदि अरुण, लकारादि पाँच वर्ण और 'र', 'व', 'अ' तड़ित वर्ण है ।'

ऋषि और छन्द—

प्रत्येक वर्ण का एक मन्त्र माना गया है । इसलिए उसका अलग-अलग ऋषि, छन्द देवता, शक्ति आदि होना चाहिए । स्वरूप की चर्चा हो चुकी है । सभी वर्णों के ऋषि और छन्दों का उल्लेख 'शारदा तिलक तन्त्र', पदार्थादर्श टीका' षष्ठ पटल पृ० ३८१) में इस प्रकार आता है ।

लकाराद्याः कांचनाभाः हकारान्त्यौ तडिन्निभो इति ।
अर्जुन्यायनमध्ये द्वौ भार्गवस्तौ प्रतिष्ठिका ।
अग्निवेश्यः सुप्रतिष्ठा त्रिषु चाब्धिषु गौतमः ।
गायत्री च भरद्वाजं उष्णिगेकारके परे ।
लोहित्यायनकोऽनुष्टुप वशिष्ठो बृहती द्वयो ।
माण्डव्यो दण्डकश्चापि स्वराणां मुनिच्छन्दसोः ।
मौद्गायनश्च पङ्क्ति चेऽजस्त्रिष्टुप द्वितय घङोः ।।
योग्यायनश्चजगती गोपाल्यायनको मुनिः ।
छन्दोऽति जगती चे छेन्नपकः शक्वरी ह्यजः ।
शक्वरी काश्यपश्चातिशक्वरी झयोष्टठोः ।
ढणोमण्डिव्याधिधृति साङ्कृत्यायनकः कृतिः ।
त्रिषु कात्यायनस्तु स्यात् प्रकृतिर्नपफेषु वे ।
दाक्षायणाकृति व्याघ्रायणे मे विकृतिर्मता ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शाण्डिल्यसङ्कृतिलेऽथ काण्डाल्यातिकृतीयरोः ।।
दाण्डयायनोत्कृतो लेऽथ वेजात्यायनदण्डको ।
लाट्यायनो दण्डकः शेपसहे जयदण्डको ।
माण्डव्यदण्डकौ लक्षे कादीनामृषिछन्दसी ।।

अर्थात् "अर्जुन्यायन मध्य में वे दो भार्गव प्रतिष्ठिक हैं । अग्निवेश्य सुप्रतिष्ठा है और तीन अब्धियों में गौतम है । गायत्री, भारद्वाज और एकारक में उष्णिक है । लोहित्या यनक अनुष्टुप् हैं । दोनों का वशिष्ठ और वृहती है । मांडव्य और दण्डक भी स्वरों के मुनि तथा छन्द हैं । पक्ति में मौद्गायन है घङ का द्विलय के अज और त्रिष्टुप् है । योग्यायन जगती है और गोपाल्यायनक मुनि हैं । अतिजगती छन्द है । चेछेन्नष्टक शक्वरी और अज है । और झ य और ट ठ को शक्वरी काश्यप और अति शक्वरी है । शुनक, अष्टि, सौमनस्य और अत्यष्टि में घृति कारण है । ढ ण का मांडव्य, अतिधृति, संकृत्यायनक कृति है । तीनों में न प फ में कात्यायन है । ण में प्रकृति मानी गई है । दाक्षायणा कृति व्याघ्रायण है और भ से विकृति मानी गई है । म में शाण्डिल्य और संक्रांति है । य और र की कांडल्यातिकृति है । ल में दायड्यायनोत्कृति हैं तथा ब में जात्यायण और दण्डक हैं । श स लाट्यायन दण्डक है तथा प स ह में जय और दण्डक हैं, ल और क्ष में मांडव्य तथा दण्डक है । इस प्रकार से आदि वर्णों के ऋषि एवं छन्द होते हैं ।"

देवता और शक्तियाँ--

प्रपञ्चसार तन्त्र में वर्णों के देवता और शक्तियों का वर्णन है । 'मन्त्र और मातृकाओ' से उद्धृत कर यहाँ दे रहे हैं—

वर्ण	रुद्र	शक्ति	विष्णु	शक्ति
अ	श्रीकण्ठ	पूर्णोदरी	केशव	कीर्ति
आ	अनन्त	विरजा	नारायण	कांति
इ	सूक्ष्म	शाल्मली	माधव	तुष्टि
ई	त्रिमूर्ति	लीलाक्षी	गोबिन्द	पुष्टि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्ण	रुद्र	शक्ति	विष्णु	शक्ति
उ	अमरेश्वर	वर्तुलाक्षी	विष्णु	धृति
ऊ	अर्धीश	दीर्घघोणा	मधुसूदन	क्षन्ति (शांति शा० त०)
ऋ	भारभूतीश (भावभूति शा० ति०)	सुदीर्घमुखी	त्रिविक्रम	क्रिया
ॠ	(तिथीश) तिथि	गोमुखी	वामन	दया
लृ	स्थाणु	दीर्घजिह्वा	श्रीधर	मेधा
लॄ	हर	कुण्डोदरी	हृषीकेश	हर्षा
ए	(झिंडीश) झिंटीश	उर्ध्वकेशी	पद्मनाभ	श्रद्धा
ऐ	भौतिक	विकृतमुखी	दामोदर	लज्जा
ओ	सद्योजात	ज्वालामुखी	वासुदेव	लक्ष्मी
औ	अनुग्रहेश्वर	उल्कामुखी	संकर्षण	सरस्वती
अं	अक्रूर	श्रीमुख	प्रद्युम्न	प्रीति
अः	महासेन	विद्यामुखी	अनिरुद्ध	रति
क	क्रोधीश	महाकाली	चक्री	जया
ख	चण्डेश	सरस्वती	गदी	दुर्गा
ग	पञ्चान्तक	गौरी	शार्ङ्गी	सत्या
घ	शिवोत्तम	त्रिलोक्यविद्या	खड्गी	प्रभा
ङ	एकरुद्र	मन्त्रशक्ति	शङ्खी	चण्डा
च	कूर्म	आत्मशक्ति	हली	वाणी
छ	एकनेत्र	भूतमाता	भूषली	विलासिनी
ज	चतुरानन	लम्बोदरी	शूली	विरजा
झ	अजेश	द्राविणी	पाशी	विजया
ञ	शर्व	नागरी	अंकुशी	विश्वा
ट	सोमेश्वर	वैखरी	मुकुन्द	वित्तदा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्ण	रुद्र	शक्ति	विष्णु	शक्ति
		(खेचरी शा० ति०)		
ठ	लाङ्गलि	मञ्जरी	नन्दज	सुतद्रा
				(सुनवा शा० ति०)
ड	दारुक	रूपिणी	नन्दी	स्मृति
ढ	अर्द्धनारीश्वर	वीरिणी	नर	ऋद्धि
ण	उमाकान्त	कोटरी	नष्टकजित	समृद्धि
	(काकोडरी शा० ति०)			
त	आषाढ़ी	पूतना	हरि	शुद्धि
थ	दण्डी	भद्रकाली	कृष्ण	भुक्ति
द	अद्रि	योगिनी	सत्य	मुक्ति
ध	मीन	शङ्खनी	शाश्वत	मति.
न	मेघ	राजिनी	शौर	क्षमा
प	लोहित	कालरात्रि	शूर	रमा
फ	शिखी	कुब्जिनी	जनार्दन	उमा
ब	छागलण्ड	कपर्दिनी	भूधर	क्लेदिनी
भ	द्विरण्ड	महावज्रा	विश्वमूर्ति	क्लिन्ना
म	महाकाल	जया	वैकुण्ठ	बसुदा
य	कपाली	सुमुखेश्वरी	पुरुषोत्तम	बसुधा
र	भुजङ्गेश	रेवती	बली	परा
ल	पिनाकी	माधवी	बलानुज	परायणनु
ब	खड्गीश	वारुणी	बाल	सूक्ष्मा
श	वक	वायवी	वृषघ्न	सन्ध्या
प	श्वेत	रक्षोविदारिणी	वृप	प्रज्ञा
स	भृगु	सहजा	सिंह	प्रभा
ह	नकुली	लक्ष्मी	वराह	निशा
ल	शिवं	व्यापिनी	विमल	अमोधा
क्ष	संवर्तक	माया	नृसिंह	विद्युता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यान और मूर्ति—

प्रत्येक वर्ण शक्ति है। उनके आह्वाहन के लिए ध्यान की साधना का विधान मिलता है। शारदा तिलक तन्त्र की पदार्थादर्श टीका में तन्त्रान्तर से उद्धृत वर्णों में ध्यानके लिए मूर्ति का निर्धारण इस प्रकार किया उपलब्ध होता है—

चामीकरनिभः शूलंगदाराजद्भुजाष्टकः।
चतुरास्योऽतिकायः स्यादकारः कूर्मवाहनः।
पाशांकुशकरा श्वेता पद्मसंस्थे भवाहना।
षट्युर्ध्वयोजनमिता स्यादा मौक्तक भूषणा।
पीतां कराब्जकुलिशंपरशु वैरिनाशनम्।
द्वयेकयोजनमानं स्यादिकारं कच्छपस्थितम्।
दशयोजनदीर्घार्द्धं नाहासौ हंसवाहन।
ईस्यात्पुष्टिप्रदा श्वेता मौक्तिकाढ्या सितानना।
गदांकुशकरं काकवाहनं कृष्णभूषणम्।
योजनद्विसहस्राणां मानमुद्वयमक्षरम्।

अर्थात् 'सुवर्ण के तुल्य, शूल और गदा आठ भुजाएँ शोभित करने वाला, चार मुखों से युक्त अति विशाल काया वाला और कूर्म के वाहन से युक्त आकार होता है। पाश और अंकुश को करों में धारण करने वाला, पद्म पर स्थित हाथी के वाहन वाला, साठ से ऊर्ध्व योजन परिमित तथा मोतियों के भूषणों से विभूषित आकार है। पीत, हाथों में कमल, कुलिश और परशु धारण करने वाला है। बैरियों का नाशक दो-एक योजन के मान वाला कच्छप र स्थित इकार है। दस योजन दीर्घ और आधा योजन विस्तार वाला, हंस के वाहन से युक्त ईकार है। पुष्टिप्रद, श्वेत मोतियों से संयुक्त, सित मुख वाला, गदा-अंकुश करने वाला, काक वाहन तथा कृष्ण भूषणों वाला, दो सहस्र योजनों के मान युक्त दोनों उकार हैं।"

पाशशक्तिभुजं रक्तं वह्निविम्वस्थितोष्टगम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उक्तं प्रमाणं कालघ्नमृकृवर्णद्वयंभवेत् ।
चतुरस्राब्जहं संस्थं पुष्परागसमप्रभम् ।
पाशवज्रकरं रौद्रं लृयुग्मं स्यान्निरोधनम् ।
गदाफलारिपद्माढ्यंहारं हर्रविभूपणम् ।
चक्रवाकस्थितं श्याममेकारं तु महद्भवेत् ।
नवकुन्दनिभा शूलवज्रवाहा द्विपस्थिता ।
कोटियोजनमाना स्यादैमूर्तिः कविता करी ॥
चिन्मयं सर्वगं शान्तं द्विसहस्रकरोज्जवलम् ।
पीत गोवृषसंस्थं स्यादोरूपं श्रीकरात्मकम् ।

अर्थात् "पाश और शक्ति को भुजाओं में धारण करने वाला, वह्नि के बिम्ब के समान स्थित रक्त, काल का हनन करने वाला तथा उक्त प्रमाण से युक्त दोनों ऋकार है । चतुरस्राब्ज, हंस पर स्थित, पुष्पराग के समान प्रभा से युक्त पाश और वज्र करों में धारण करने वाला और रौद्र निरोधन करने वाला दोनों लृ का युग्म है । गदा, फलारि, पद्म से आढ्य करों वाला, हार के भूषण से युक्त चक्रवाक पर स्थित, श्याम वर्ण वाला एकार महान् होता है । नवीन कुन्द के समान शूल, वज्र को वहन करने वाला, हाथी पर स्थित, करोड़ योजन के मान वाला, कविता करने की मूर्ति से युक्त एकार चिन्मय सर्वदा शांत, दो सहस्र करों से समुज्वल, पीत वर्ण वाला, गोवृष पर स्थित ओंकार का स्वरूप है, जो श्री के कन्धे का स्वरूप वाला होता है ।"

तप्तहेमनिभा पाशंचक्रयाहुर्विभूतिदा ।
योजनानां सहस्राण स्यादौवर्णाभितोजसा ॥
नवकुङ्कुमसच्छाय पद्मास्थो रक्तभूषणः ।
चतुर्भुजः स्यादंवर्ण श्रीकरो रिपुनाशकः ।
वज्रशूलकरं क्षुद्रं (युद्ध) फलदंखरवाहनम् ।
सहस्रयोजनमितं स्वरान्तं द्विभुजं स्मरेत् ।
भूविम्बगजसंस्थः स्यान्नवकुंकुमसन्निभः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शूलवज्रकर: कवर्ण: सहस्रद्वययोजन: ।
पाशतोमरहस्त: खो मेषसंस्थो निरोधन: ।
योजनानां सहस्रेण मित: कृष्णो विभीषण: ।
पाशांकुशकरं पद्मे फणिसंस्थोऽरुणप्रभ: ।
गकार: सर्पभूष: स्यात् शतयोजनसंस्थित: ।

—पृ० ३५६

अर्थात् 'तपे हुए सुवर्ण की कांति के समान कांति वाला, पाश और चक्र बाहुओं में धारण करने वाला, विभूति का प्रदाता, एक सहस्र योजन के मात से युक्त और अमित ओज से पूर्ण ओकार है । नवीन कुंकुम के समान कांति वाला, पद्म पर समास्थि, रक्त-भूषणों से विभूषित तथा चार भुजाओं वाला अंकार वर्ण है, जो श्री के करने वाला क्षुद्र (युद्ध), फल देने वाला, खर के बाहन से युक्त, एक सहस्र योजन के मान वाला ऐसा (अ:) स्वरान्त दो भुजाओं वाला है, ऐसा स्मरण करना चाहिए । भू-बिम्ब गज पर स्थित, नूतन कुंकुम के समान आभा वाला, शुक्ल और वज्र करों में धारण करने वाला, दो सहस्र योजन के मान वाला, क वर्ण है । पास और तोमर हाथों में धारण करने वाला, मेष पर स्थित ख वर्ण हैं । निरोध करने वाला, कृष्ण वर्ण से युक्त तथा विशेष भीषण, पाश और अंकुश करों में धारण करने वाला पद्म पर तथा फणी पर संस्थित और अरुण प्रभा से युक्त गकार होता है । सर्पों की भूषा वाला, सौ योजन संस्थित है ।

उष्ट्रोलूखलसंस्थ: स्याद् गदावज्रकरोमित: ।
योजनानां सहस्रेणं द्विमुखो घ: सितेतर: ।
कोटियोजनदीर्घाङ्गं नाहं कृष्णां ज्वलत्प्रभम् ।
द्विभुजं काकवाहं स्यात् वर्णं क्षुद्रफलप्रदम ।।
युगायपद्मसंस्थ: स्यात् चतुर्बाहु: सितप्रभ: ।
य: कपर्दी सुगन्धाढ्य: कोटियोजनसंस्थित: ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सितस्तावस्थित: पद्मे चतुर्बाहुश्छवर्णक: ।।
जझौ च कोटिमानौस्त: चतुर्बाहुसित प्रभो: ।
योजनानां सहस्रै: स्यात् सम्मितं काकवाहनम् ।
विद्वेषकरणं ञार्थं कृष्णवर्ण भुजद्वयम् ।
क्रौञ्चस्थो द्विभुजश्स्यान्नागनद्धो महाध्वनि: ।
धरापद्मगजेन्द्रस्थष्टवर्ण द्विकरोज्ज्वल: ।
लक्षयोजनमान: स्याद् गरनाशकरो विभु: ।

—पृ० ३६०

अर्थात् "उष्ट्र और उलूखल पर स्थिति, गदा और वज्र करों में धारण करने वाला घकार है। करोड़ योजन दीर्घाद्धं मान वाला कृष्ण जलती हुई प्रभा से युक्त, दो भुजाओं वाला, काक के बाहन से युक्त और क्षुद्र फल देने वाला अकार वर्ण होता है। युगाग्र पद्म पर स्थित चार बाहुओं से समन्वित, सित प्रभा से युक्त चकार होता है। कपर्दी, सुगन्ध से आढ्य, कोटि योजन मान संस्थित, सित पद्म पर स्थित, चार बाहुओं वाला छ वर्ण होता है। जकार और झकार एक-एक करोड़ मान वाले होते हैं, दोनों के चार-चार बाहुएँ हैं और सित प्रभा वाले हैं। सहस्र सम्मित मान वाला, काक के वाहनसे युक्त तथा विद्वेष करने वाला ञ वर्ण होता है। कृष्ण वर्ण वाला, दो भुजाओं से युक्त क्रौंच पर स्थित, द्विभुअ टवर्ण होता है। दो करों से उज्ज्वल, एक लक्ष के योजन के मान वाला, गर का नाशक और विभु ड वर्णन होता है।"

डवर्णोत्यष्टबाहु: स्याच्चतुवक्त्र स्वलङ्कृत: ।
योजनानां सहस्रेण मित: कुवलेय: स्थित: ।।
अग्निबिम्बम्बाजगो ढवर्णो दशबाह्ज्वलत्प्रभ: ।
सहस्रमानं व्याघ्रस्थं योजनानां हिवं हुत् ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षष्टिहायनसंस्थः स्याच्चतुर्बाहुः स्वलंकृतः ।
सहस्रमानं गन्धाढ्यं कुङ्कुमश्चताक्षरः ।
कोटियोजनमानः स्यादुष्टबाहुश्चतुर्मुखः ।
पीतवर्णो वृषारूढः श्रवणेऽपि भयंकरः ।
द्विमुखं षड्भुजं कोटिमानदं महिषस्थितम् ।
सिंहबाहश्चतुर्बाहुधश्चतुर्लक्षसम्मितः ।
द्विभुजं काकवाहं न तत्सहस्रसितं भवेत् ।
विंशभुजो दशास्यः प कोटिमानो बकस्थितः ।

अर्थात् 'बहु वर्ण आठ भुजाओं वाला है तथा उसके चार मुख हैं और अविभूषित है । एक सहस्र योजना का उसका मान है तथा कुवलम पर संस्थित हैं । ढ अक्षर अग्नि-बिम्ब के समान हैं । दस उसके बाहुएँ हैं और जाज्वल्यमान प्रभा वाला है । एवं सहस्र का मान है । यवघ्र पर उसकी संस्थिति है । योजनों से दिष्ट होता है । यह षष्टिहायन पर संस्थित है । चार भुजाओं वाला एवं भली भाँति अलंकृतहै । एक सहस्र का मान है तथा गन्ध से समन्वित है । तअक्षर कुंकुम की शोभा के समान प्रभा वाला है । एक करोड़ योजन के मान वाला है । आठ इसमें भुजाएँ हैं और चार मुख हैं । पीत वर्ण वाला, वृप पर समारूढ़ थ वर्ण भी अत्यन्त भयानक है । दो मुख वाला, छै भुजाओं से युक्त एक करोड़ के मान वाला, चार बाहुओं से युक्त तथा चार लाख योजनों के मान वाला और महिप पर स्थित द वर्ण है । सिंह पर सवारी करने वाला चार बाहुओं से युक्त तथा चार लाख योजनों के मान वाला ध वर्ण है । दो भुजाओं वाला, काक पर समारूढ़ और तत्सहस्र मानवाला न वर्ण है । बीस भुजाओं वाला, दस मुखों से युक्त और एक करोड़ मानवाला वक पर स्थित प वर्ण हैं ।''

दशकोटिमितः फार्क्षो योजनानां भुजद्वयः ।
कण्ठारवसिताम्भोजे निपण्णश्चञ्चलः षितः ।
षडास्यो द्विभुजो व स्याद्दशकोटिमितोऽरुणः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नीलोत्पल सद्धं संवाहन पुष्टिदायकः ।
त्रिहस्तं त्रिमुखं व्याघ्रवाहनं भीषणाकृतिम् ।।
दशलक्षमितं भवर्णं धूम्राभं स्यान्महाबलम् ।
चतुर्मुखो मकारः स्यात् संविषोरगसन्निभः ।
मंडितो मुण्डमालाभिः शशिखण्डविराजितः ।
व्याप्तंचतुर्मुखो (भुजो) धूम्रो यवर्णस्यान्मृगसंस्थितः ।।
त्रिकोणाम्बुजमेषस्थो रवर्णो बाहुचतुष्टयः ।
चतुर स्त्राप्जतीन्द्र पृष्ठे नो परि राजिता ।
चतुर्भुजा लकारस्य मूर्तिः स्यात् घृसृणप्रभा ।
अब्धिस्थपद्मनक्रस्थो द्विभुजो वः सितः स्मृतः ।
करद्वयाब्जगा हेमवर्णा शवर्णाकृतिस्तथा ।।

–पृष्ठ ३६१

अर्थात् 'फ' अक्षर दस करोड़ योजनों के मान वाला तथा दो भुजाओं से युक्त कण्ठीरव पर अवस्थित, अम्भोज पर निषण्ण, चञ्चल और सित है। ब वर्ण छैः मुखों वाला है तथा दो भुजा और रक्त वर्ण है। नीलोत्पल के समान शोभायमान है। हंस का वाहन रखता है। परम पुष्टि को देने वाला है। भ वर्ण तीन हाथों वाला, तीन मुखों वाला, व्याघ्र के वाहन वाला भीषण आकृति से समन्वित, दस लाख योजन के मान वाला, धूम्र के समान आभा से युक्त और महान् बल वाला होता है। मकार चार भुजाओं से युक्त, सर्प के समान, मुण्डों की माला से मंडित, चन्द्र के खंड भाग से सुशोभित होता है। य वर्ण प्राप्त चार मुखों वाला, धूम्र और मृग पर विराजमान होता है। र वर्ण त्रिकोण अम्बुस मेष पर संस्थित और चार बाहुओं से युक्त होता है। चतुरस्त्र अब्ज और जतीन्द्र पीठ पर संस्थित चार भुजाओं से युक्त लकार होता है, जो घुसृण की प्रभा के समान होता है। व वर्ण समुद्र में स्थित पद्म और चक्र पर विराजमान, दो भुजाओं वाला तथा सित वर्ण से युक्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है। श अक्षर की आकृति दोनों हाथों में अब्ज धारण करके हेम समान वर्ण से समन्वित होती है।"

महस्रमानः कृष्णाभो द्विभुज कार्मणेऽथ षः।
कोटिमानः सितः सः स्यात् हंसगो (ह्यांगी) द्वि भुजान्वितः।
हवर्णः श्वेतस्त्रिबाहुः स्यात् व्याप्तशीतांशुशेखरः।
पाशाभयकरा लवर्णमूर्तिः श्वेता गजस्थिता।
भूविम्वशैलसंस्थक्षोदशबाहुमंवणप्रभः।
मूर्तिभेदाः यथार्णानां मयात्रप्रतिपादिताः ॥

—पृ० ३६१

अर्थात् 'षकार' एक सहस्र योजन मान वाला, दो भुजाओं से युक्त कार्मण पर स्थित होता है। करोड़ मान वाला, सित वर्ण से युक्त सकार होता है। हकार श्वेत वर्ण से युक्त, तीन बाहुओं वाला, व्याप्त तथा शीतांशु को मस्तक पर धारण करने वाला होता है। पाश और अभय को करों में धारण करने वाली ल वर्ण की मूर्ति होती है, जो श्वेत है और गज पर स्थित रहती है। क्ष वर्ण भूबिम्ब शैल पर स्थित दस भुजाओं वाला तथा मणि की प्रभा वाला होता है जो वर्णों की मूर्तियों के भेद होते हैं, वे सब मेरे द्वारा यहाँ पर प्रतिपादित कर दिए गये हैं।

तन्त्रों में वर्णों का महत्व वैज्ञानिक आधार पर स्थित है। इनकी रेखाकृतियों का निर्धारण ऋषियों की समाधि-अवस्था में किया गया है। इनकी रेखाकृतियों की जो ध्वनि निश्चित की गई, उसके वैज्ञानिक परीक्षण भी किये जा चुके हैं। सूक्ष्म निरीक्षण से उनके रङ्ग और स्वरूप का भी अनुसंधान किया गया है। इनसे निकलने वाली ध्वनियों की अनुभूतियों की गहन खोज की गई हैं। इन्हीं खोजों के परिणाम-स्वरूप सिद्धांत निर्धारित किये गए हैं। जनसाधारण को इनकी ओर आकर्षित करने के लिए इनका महात्म्य शास्त्रों में वर्णित किये हैं। वर्ण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तिमय है। ध्वनि से उसका विस्तार होता है। इस व्यावहारिक रूप में प्रयेत्क करने के लिए दीर्घकालीन अभ्यास और तपश्चर्या की अपेक्षा है, परन्तु परिणाम सुनिश्चित हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

मातृकाओं की बौद्धिक व्याख्या

महिमा—

मातृका की महिमा का वर्णन करते हुए तन्त्र-ग्रन्थों में कहा गया है—

यदक्षरैकमापिचसंसिद्धे स्पर्द्धते नरः।
रवितार्क्ष्येन्दुकन्दर्पशंकरानलविष्णुभिः।
यदक्षरंशशिज्योत्स्नामण्डितं भुवनत्रयम्।
बन्दे सर्वेश्वरी देवी महाश्रीसिद्धमातृकाम् ॥
यदक्षरमाहसूत्रप्रोतमेतज्जगत्त्रयम्।
ब्रह्मांडादिकटाहन्तं जगदद्यापि दृश्यते।
अकचादिटनोन्नद्धपयसाक्षारवर्गिणीम्।
ज्येष्ठाङ्गबाहुहृत्पृष्टकटिपाद निवासनीम्।
तामिकाराक्षरोद्धारसारधारां परापराम्।
प्रणमामि महादेवी परमानन्दरूपिणीम्।

—वामकेश्वरीमतम्, प्रथग पटल

अर्थात् "जिसके केवल एक ही अक्षर के भली भाँति सिद्ध हो जाने पर मनुष्य, रवि, तार्क्ष्य, चन्द्र, कामदेव, शम्भु, वायु और विष्णु के साथ स्पर्धा किया करता है, जिसके अक्षर चन्द्र की चाँदनी से यह तीनों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भुवनमण्डित हैं, उस महाश्री सिद्धि मातृका सर्वेश्वरी देवी की मैं वन्दना करता हूँ। जिसके अक्षररूपी महासूत्र से यह त्रिलोकी ओत-प्रोत है और ब्रह्मांड के आदि सें लेकर कटाह पर्यन्त यह जगत आज भी दिखलाई दिया करता है। अकवादितट से उन्नद्ध अर्थात् अकरादि सब स्वर कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग से युक्त पवर्ग आदि अन्तस्थ और सकारादि ऊष्मा संज्ञक वर्णों के वर्गों वाली, ज्येष्ठ अङ्ग, बाहु, हृदय, पीठ, कटि और चरणों में निवास करने वाली उस इकाराक्षर के उद्धार की सारधारा, पर-के-पर परमानन्द रूप वाली महादेवी को मैं प्रणाम करता हूँ।"

स्वच्छन्द तन्त्र में कहा हैं—

"न विद्या मातृका परां"

'मातृतका से परे और विद्या नहीं है।

'परात्रिंशिका' में मातृका शक्तिके प्राप्त होने पर मुक्ति और उसके अभाव में बन्धन की चर्चा करते हुए कहा गया है—

असमादेव तु मायीयाद् वर्णपुञ्जान्निरूपिताः।
मायामालम्ब्य भिन्नैव श्रीपूर्वे सृष्टिराक्षरा।
पञ्चाशद्भेदसंभिन्नप्रत्ययं प्रसवात्मिका।
बन्धरूपा स्वभावेन स्वरूपावर्णात्मिका।
अत्रैवांतर्गतास्ताः खेचर्यो विषयांत्मिकाः।
तन्वते संस्तृति चित्रां कर्ममायाणुतामयीम्॥
अस्याः साम्यं स्वभावेन शुद्धं भैरवतामयन्।

—परात्रिंशिका, पृष्ठ २१४

अर्थात् "असमता से ही मायामय तथा वर्णों के समूह से निरूपित है। माया अवलम्बन करके ही भिन्ना, श्रीपूर्वा अक्षरमयी सृष्टि है। पंचास भेदों से सम्भिन्न और प्रयत्नों के प्रसव वाले स्वरूप से युक्त है। बन्ध के रूप वाली स्वभाव से ही है और रसात्मिक है। इसमें ही वे विषयात्मिका खेचरियाँ सब अन्तर्गत रहती हैं। कर्ममायाणुतामयी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस विचित्र संसार का विस्तार करती है। स्वभाव से इसका शुद्ध भैरव तापूर्ण साम्य होता है।'

इसके महत्व का मूल्यांकन इसी तथ्य से किया जा सकता है कि इसको प्रणव से उत्पन्न हुआ बताया गया है। इसलिए इसका एक नाम 'मातृका सू' कहा गया है–

अक्षरं मातृकासूश्चानादिरद्वैतमोक्षदौ''

अर्थात् 'अक्षर मातृकासू और अनादि अद्वैत मोक्ष के देने वाले हैं।'

प्रणव में तो निःसन्देह बन्धनों को काटने की विशेषता है। अतः इसका भी एक गुण बताया गया है–

सर्वे वर्णात्मका मन्त्राः ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।
या सा तु मातृकादेवी परतेजः समन्विता।
तया व्याप्तमिदं विश्वं सब्रह्मं भुवनान्तक ॥

–श्री तन्त्रसद्भाव, सूत्रविमर्शिनी पृष्ठ ५१

अर्थात् 'हे प्रिये वे सर्ववर्णात्मक अर्थात् वर्णों के स्वरूप वाले मन्त्र जो हैं, वे शक्त्यात्मक हैं। उनमें मातृका ही शक्ति है व उसे शिवात्मिका ही समझना चाहिए। जो यह मातृका देवी है वह परम तेज से युक्त है, उसके द्वारा वह ब्रह्म के सहित भुवनात्मक यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है'

अतिशयोक्ति शैली में वर्णन करते हुए शिव को मातृका शक्ति का उपासक बताया गया है–

कथयामि वरारोहे यन्मया जप्यते सदा।
आकारादिक्षकारान्ता मातृका वर्णरूपिणी।
चतुर्दशस्वरोपेता बिन्दुत्रयविभूषिता।
कलामण्डलमास्थाय शक्तिरूपांमहेश्वरि।
ककारादिक्षकारान्ता वर्णस्तु शक्तिरूपिणः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यञ्जनत्वात् सदानन्दोच्चारणं सहते ततः ।
उच्चारे स्वरसम्भिन्नास्ततो देवि न संशयः ।
पञ्चाशद्वर्ण भेदेन शब्दाख्यं वस्तु सुव्रते ।
अकार प्रथमं देवि क्षकारोन्त्यस्ततः परम् ।
अक्षमालेति विख्याता मातृका वर्णरूपिणी ।

—परात्रिंशिका दि० पृ० ११४

अर्थात् "हे वरारोहे ! जो मेरे द्वारा सदा जाप किया जाता है, उसे कहता हूँ। आकार आदि से लेकर क्ष कार पर्यन्त वर्णों के रूप वाली मातृका है। यह चोदह स्वरों से समन्वित और तीन बिन्दुओं से विभूषित है। हे महेश्वरी ! शक्तिस्वरूप कला-मण्डल में समास्थित हो कर रहती है। ककार से आरम्भ कर क्षकार पर्यन्त वर्ण शक्ति रूप वाले हैं। व्यंजन होने से सर्वदा आनन्दपूर्वक उच्चारण किये जाते हैं। हे देवि ! स्वरों से सम्भिन्न भी इनका उच्चारण होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे सुव्रते ! पचास वर्णो के भेद से यह शब्द नाम वाली वस्तु है। हे देवि ! इनमें अकार प्रथम वर्ण हैं, इसके पश्चात् क्षकार सबसे अन्त में होने वाला है। यह वर्णरूपिणी मातृका अक्षमाला इस नाम से विख्यात है।"

सभी तन्त्र-शास्त्रों में इसे तन्त्रमात्रा के सम्माननीय पद से विभूपित किया गया है—

मन्त्राणं मातृभूता च मातृका परमेश्वरी ।
बुद्धिस्था मध्यमा भूत्वा विभक्ता बहुधा भवेत् ।
सा पुनः क्रमभेदेन महामन्त्रात्मना तथा ।
मन्त्रात्मना च वेदादिशब्दाकारेण च स्वतः ।
सत्येतरेण शब्देनाप्याविर्भूता सुव्रताः ।
मातृका परमा देवी स्वपदाकार भेदिता ।
वैखरीरूपतामेति करणंविशदा स्वयं ।

—यज्ञवैभव अ० ४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् "मातृका मन्त्रों की माता के समान परमेश्वरी है। बुद्धि में स्थित होकर मध्यमा होती है और बहुत से रूपों में विभक्त हुआ करती है। वही क्रम भेद से महामन्त्रों के स्वरूप में रहती है। वेदादि शब्दों के आकार वाले मन्त्र स्वरूप से यह सर्वदा सत्य है और सुव्रता इतर शब्द से भी आविर्भूत होती है। मातृका परम देवी है, जो स्वपदों के आकार से भेदित है। करणों के द्वारा स्वयं विशदा यह वैखरीरूपता को प्राप्त हो जाती है।"

केवल मन्त्र को ही नहीं, वर्ण, कला तत्व और षड्ध्वनि की भी इसे माता कहा गया है–

या साशक्तिर्जगद्धातुः कथिता समवायिनी (मा० वि० ३५) इत्यादिना उक्तं, इहापि त्रिपुरा परमाशक्तिराद्या जातादितः प्रिये। स्थूल-सूक्ष्मविभागेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृकाम्, वामकेश्वरीमतम् ।४।४। परदशायामिच्छां-ज्ञानक्रियात्मना, सूक्ष्मदःशायां वामाज्येष्ठारौद्रीलक्षणेन, स्थूलदशायां ब्रह्मोविष्णवीश-रूपेण विभागेन त्रयाण पुराणमुक्तगत्या सृष्टिस्थिति संहारापूरकाणा स्थानां भावादमुगतार्थतया त्रैलोक्यस्य अतिभवा भवात्मकस्य उत्पत्तितत्व भासेन मातृका जननी अथ च अम्बिकाशब्दव्यपदेश्या जाता।

--वामकेश्वरीमत विवरण पृ० १००

अर्थात् "जो शक्ति जगत् के धाता की कही गई है, वह समवायिनी है, इत्यादि के द्वारा कहा है, स्थूल सूक्ष्म के विभाग से त्रैलोक्य की उत्पत्ति मातृता है। यह वामकेश्वरी मत है। पर-दशा में इच्छा ज्ञान–क्रिया-रूप से, सूक्ष्म दशा में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री लक्षण से–स्थूल दशा में ब्रह्मा, विष्णु और ईश रूप के विभाग से–पुराण युक्त गति से तीन सृष्टि स्थिति संहारपूरक स्थानों के भाव से अनुगतार्थता होने से अति-भवात्मक त्रैलोक्य के उत्पत्ति तत्व के अवभास से मातृका जननी है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और यह अम्बिका–इस शब्द से व्यवहार करने के योग्य हो गई है ।'

नेत्र तन्त्र मे इसे विश्व-निर्मात्री क्रिया शक्ति के नाम से अविहित किया गया है–

यदा स्वतन्त्रालुप्ता सा क्रियाकरणरूपिणी ।
वर्णरूपाष्टभेदेन स्फोटादिव्यध्वनिरूपिणी ।
मातृका सा विनिर्दिष्टा क्रियायुक्तिमहेश्वरी ।
क्रियाख्या परमा साद्सर्ववाङ्मयरूपिणी ।

–नेत्र तन्त्र, २१ अधिकार

अर्थात् जब यह स्वतन्त्र होती है, तो वह क्रिया करण रूप वाली लुप्ता है । वर्ण रूप आठ भेद सें स्फोट आदि ध्वनि रूप वाली है । वह क्रिया शक्ति महेश्वरी मातृका निर्दिष्ट की गई है । क्रिया नाम वाली वह सर्व वांगमयरूपिणी परमा होती हैं ।'

वामकेश्वर तन्त्र के अनुसार–

गणेशं ग्रह नक्षत्रंयोगिनीराशिरूपिणीम् ।
देवी मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणम् ।

–प्रथम पटल

अर्थात् गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी और राशि रूप वाली पीठ स्वरूप से युक्त मन्त्रमयी देवी को प्रणाम करता हूँ ।"

शक्ति-स्तोत्र में कहा गया है–

पंचाशन्तिजदेहजाक्षरमयैर्नाना विधैर्धातुभि ।
र्वहर्थैः पद्वाक्यमानजनकैरथं विनाभावितैः ।
सामि प्रायवदर्थकर्मफलदैः ख्यातैरनन्तैरिदं ।
विश्वं व्याप्य चिदात्मनाहमहमित्युज्जृम्भरो य मातृकाः ॥

अर्थात् पचास अक्षरों के देह से पूर्ण, नाना विधि, धातु, जो बहुत अर्थों वाले पद एवं वाक्यमान के उत्पन्न करने वाले हैं, जो कि अविना-भावि अर्थों से युक्त है । अभिप्राय सम्पूर्ण अर्थ, कर्म और फल के देने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देने वाले ख्यात एवं अनन्त हैं, उनसे हे मातृके ! आप विश्व को व्याप्त करके चिदात्मा के द्वारा ग्रहमहमिका से उज्जृम्भित होती है।"

'आनन्द लहरी नामक स्तोत्र में भगवान् शंकराचार्य ने स्तुति करते हुए कहा है----

सावित्राभिर्वोचा शशिमणिशिला भङ्गरुचिभि—
र्वशिन्याद्याभिस्त्वा स जननि सञ्चितन्तयतिय: ।
स कर्ता काव्यातां भवति महता भङ्गिसुभगै--
र्वचोभिर्वाग्देवी वदनकमला मोदमधुर: ।

–सौंदर्य लहरी

अर्थात्–"वाणियों को सावित्रियों के द्वारा जो कि शशिमणि शिला के भङ्ग की रुचि वाली हैं हे जननि ! जो आद्य वशिणी के साथ आपका चिन्तन करता है, वह वाक्यों का कर्त्ता होता हैं अर्थात् भावभङ्गि के परम सुन्दर, वाग्देवी के मुख-कमल के आमोद से, मधुर वचनों से समन्वित महान् काव्यों की रचना करने वाला बनता है।"

परिभाषा--

वर्णमाला के समुदित रूप को मातृका कहते हैं। तन्त्र शास्त्रों ने मातृका का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है।

तन्त्र-दार्शनिक भास्करराय ने 'वरिवस्या रहस्य' में कहा है–

स्फुरणन्वीयज्ञानमेव प्रकाशमिधंब्रह्म । तच्च सर्वज्ञत्वसर्वेश्वरत्वसर्वे--कर्तृत्वपूर्णत्वव्यापकत्वादिशक्ति—सवलितम् । तस्य चानन्दरूपांश एव स्फुरणं परहन्ता, विमर्श, परालिलता-भट्टारिका त्रिपुरसुन्दरीत्यादिपदै: व्यवह्रियेत । –पृ० ४

बटबीजान्तगतवटवृक्षीयसूक्ष्मरूपतुल्यशब्दसृष्टिसूक्ष्मरूपशालिनी पूर्वोक्तरूपा त्रिपुर सुन्दर्येव तातृशं सूक्ष्मरूप वत्यप्रवृतिनिमित्तक परापदवाच्या । सैव च भाति, तरतेति: कार्येति व्युपत्या मातृकेत्युच्यते ।

अर्थात् "स्फुरण के अन्वय वाला ज्ञान ही प्रकाश नाम वाला ब्रह्म

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। वह सब सत्व, सर्वेश्वर तत्व, सबका करने वाला, पूर्ण और व्यापक आदि शक्तियों से सचालित होता है। उसका आनन्दरूप जो अंश है वही स्फुरण होता है, जो परात्मा है। विमर्श परालालिता भट्टारिका त्रिपुरसुन्दरी आदि पदों के द्वारा व्यवहार की जाती है। वह बीज के अन्दर रहने वाला वट वृक्षांश सूक्ष्म रूप जैसे होता है, उसी के समान शब्द सृष्टि सूक्ष्म रूप वाली पूर्व कथित रूप से युक्त त्रिपुरसुन्दरी ही उसके से सूक्ष्म रूप वाली प्रवृत्ति निमित्तक पर यह वाच्य है। वही मति अर्थात् भान रखने वाली, तरणि, तरण करने वाली और कार्य करने वाली है। मातृका—इन तीनों अक्षरों की व्युत्पत्ति से यह 'मातृका'—इस नाम से कही जाती है।"

"काम-कला विलास" में पुण्यानन्दाचार्य के अनुसार—

स्वान्तर्गतानन्ताक्षरराशिमहामन्त्र वार्य पूर्णचिन्तारूपिणी प्रकाशानन्दसारा विन्दुत्रयसमष्टिरूपीलिप्यक्षररूपिणीकामकला नाम महात्रिपुरसुन्दरी मातृका परमयोगिभि: महामाहेश्वरैरनिशमनुस्मर्तव्या इति। पृ० ११

अर्थात् "अपने अन्दर रहने वाले अनन्त अक्षरों के समूह वाली, महामन्त्र के वीर्य से परिपूर्ण चिन्तन रूप वाली, प्रकाश और आनन्द के सार से युक्त, विन्दुत्रय (तीन बिंदु) की समष्टिरूप वाली, लिपि के अक्षरों के स्वरूप से समन्वित कामकला नाम वाली त्रिपुरसुन्दरी मातृका परम योगी महामहेश्वरों के द्वारा निरन्तर स्मरण करने योग्य है।"

मातृकाशब्दराशिसंघट्टात्शक्ति भैदक्यात्मलक्षणात् लवणवारिवालवतपरस्परमेलनात्, "भिन्ना बीजं भेदिता योनो व्यञ्जनानि यस्या: ज्ञातथाविद्या सतीं।"

—वि० पृ० १६२ तृ० आ०

अर्थात् "मातृका शब्द समूह के संघट्ट से, शक्ति वाले एक्य स्वरूप लक्षण से, लवण वारि के समान परस्पर में मेल न होने से, भिन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बीजों के भेद वाली योनियाँ व्यञ्जन जिसके हैं, वह उस प्रकार की सती होती है ।"

तन्त्र में शब्दराशि को ही 'मातृका' कहा गया है–

सात्र कुण्डलिनी बीजजीवभूता चिदात्मिका ।
तज्जं ध्रुवेच्छोन्मेषाख्यं त्रिकं वर्णास्ततः पुनः ॥
आ इत्यवर्णादित्यादि यावद्वैसर्गिकी कला ।
विसर्गशक्तिर्विश्वस्य कारणं च निरूपिता ॥
रतरैयाख्यवेदान्ते परमेशेन विस्तरात् ।
शब्दराशिः स एवोक्तो मातृका साच कीर्तिता ।

अर्थात् "यहाँ पर बीज जीवभूता चिदात्मका कुण्डलिनी है। उससे समुत्पन्न ध्रुव इच्छा, उन्मेष नाम वाला त्रिक है। फिर इसके पश्चात् वर्ण हैं, आ, इस अवर्ण से आदि लेकर जितनी भी वैसर्गिकी कला है, वह इस विश्व की विसर्ग शक्ति का कारण बतलाई गई है । ऐतराख्य वेदान्त में परमेश ने विस्तार से शब्दराशि बतलाई है, वही मातृका कीर्तित की गई है।"

शिव सू० वा० द्वितीय प्रकाश में कहा गया है–

स्वभासा मातृका ज्ञेयाशक्ति प्रभोः परा ।
तस्याः कलासमूहो यस्तच्चक्रमिति कीर्तितम् ॥

अर्थात् 'अपनी दीप्ति से वह मातृका जाननी चाहिए और प्रभु की पर क्रिया-शक्ति है। उसकी कला का समह जो है, उसे चक्र–ऐसा कहा गया है।'

सूत-संहिता (शिव माहात्म्य खण्ड ५।६) में मातृका को स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर कहा गया है–

मातृका च त्रिधा स्थूला सूक्ष्मा सूक्ष्मतरापि च ।

अर्थात् "मातृका तीन प्रकार की हैं–स्थूल, सूक्ष्म और उससे भी अधिक सूक्ष्म ।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थूल मातृका का स्पष्टीकरण सूत संहिता तात्पर्यदीपिका व्याख्या में इस प्रकार किया गया है–

तत्र वैखरी स्थूलामातृका सा प्रथमाधिकारिणः पूजोपकरणम् ।

अर्थात् "उससे जो वैखरी है, वह स्थूल मातृका है, जो प्रथमाधिकारी के पूजा का उपकरण है।"

मध्यमा सूक्ष्मा मातृका मध्यमाधिकारिणं पूजोपकरणम् । कारणं कार्यविद्वात्मिका परापश्यन्ती सूक्ष्मतरा मातृकोत्तमाधिकारिणः ।

–व्या० आनन्दाश्रम संस्करण पृ० ४५

अर्थात्–"मध्यमा सूक्ष्म मातृका है, जो मध्यम अर्थात् निचले दर्जे के अधिकारी का पूजोपकपण होता है। कारण,कार्य, बिन्दु स्वरूप वाली परा पश्यन्ती रूप वाली सूक्ष्मतरा है जो उत्तम अधिकारी के पूजा का उपकरण होती है।

संख्या—

मातृकाओ की संख्या प्रातः ५० ही मानी जाती है, परन्तु भास्कर-राय ने सौभाग्य-भास्कर व्याख्या में ५१ की संख्या मानी है। उनके अनुसार शक्ति में भी शक्तिपीठ होंते हैं। उनका मातृका न्यास भी इसके अनुसार होना चाहिए।

तन्त्र में विशिष्ट पूजा सप्त मातृकाओं की ही होती है। वर्णमाला के सप्तवर्ग माने गये है—अ क, च, ट, त, प, य।

अकचटतपयाद्यैः सप्तमिर्वर्गैर्विरचितमुखवाहापादमध्याख्या, हत्का,सकलजगधीशा शास्वताविश्वयोनिर्वितरतुपरिशुद्धिचेतसः शारदा वः ॥

–श्री प्रपञ्चसार तन्त्र, प्रथम पटल १

"अ क च ट प य आदि सात वर्गों से विरचित मुख वाहु वाली

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाद मध्याख्याहृत्मका, सम्पूर्ण जगत को अधीश्वरी, शाश्वत विश्व के उत्पन्न करने वाली शारदा आपके चित्त की शुद्धि को करें।"

अवर्ग से भैरव की पूजा होती है और क्ष वर्ग से भैरवी की पूजा होती है, भैरवी उमा का ही रूप है। तन्त्र में 'अ' से लेकर 'श' तक जो ८ वर्ग माने जाते हैं, उनमें उमा को आठवीं देवी माना जाता है। तन्त्र की मान्यता है कि चूँकि वह शिवका अर्द्ध शरीर मानी जाती है। अतः वे स्वयं ही अपने सा रूप कर देती हैं, जो सप्त मातृकाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं।

स्वरूप—

स्वच्छन्द तन्त्र (१० पटल) में सप्त मातृकाओं के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है—

मातरः सप्तरूपिण्यो नानालङ्कार भूषिताः।
परिवार्य महात्मानं समन्तात पर्य वस्थिता ॥
ब्राह्मी कमल पत्राभा दिव्याभरणभूषिता।
आग्नेय्यां दिशिदेवेशि स्थिता वै श्रीरिवापरा ॥
शंखगोक्षीरसङ्काशं त्वैशान्यां तु वरानने।
माहेश्वरी महातेजास्तिष्ठते सुरपूजिता ॥
कौमारी पद्मगर्भाभा हारकेयूरभूषिता।
दिश्युत्तरस्यां देवेशि कामिनांपर्युपासिता ॥
स्निग्धनीलोत्पलनिभा हारकुंडलमण्डिता।
दक्षिणस्यो दिशि तु सा उपास्ते परमेश्वरम्।
वैष्णवीति च विख्याता शिवेन परमात्मना ॥
नीलजीमूतसङ्काशा सर्वाभरण भूषिता।
वारुण्यो दिशि देवेशि वाराही पर्युपस्थिता।
शंख कुन्देन्दुधवलाहारकुण्डलमण्डितां।
ऐन्द्रयां दिशि च सा देवी इन्द्राणी पर्युपस्थिता ॥
करालवदना दीप्ता सर्वाभरण भूषिता।
नैऋत्यां दिशि चामुण्डां उपास्ते परमेश्वरम् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् "सात रूपों वाली मातायें जो कि अनेक अलंकारों से भूषित है। महान् आत्मा को परिवारित कर जो सभी ओर पर्यवस्थित हैं। कमलपत्र की आभा के समान आभा वाली, दिव्य, आभरणों से शोभित ब्राह्मी, हे देवेशि ! दूसरी श्री के समान आग्नेयी दिशा में स्थित है। शङ्ख, गोक्षीर के सदृश महातेज से युक्त माहेश्वरी हे वरानने ! सुरों द्वारा पूजित ऐशानी दिशा में स्थित रहता है। पद्म के गर्भ की आभा वाली, हार केयूरों से भूषित कौमारी देवेशि ! कामिनियों के द्वारा उपासित उत्तर दिशा में स्थित है। स्निग्ध नीलकमल के समान आभा वाली हार और कुन्डलों से भूषित वह दक्षिण दिशा में परमेश्वर की उपासना किया करती है। परमात्मा शिव के द्वारा वह वैष्णवी विख्यात की गई है। नील मेघ के समान कान्ति वाली समस्त आभरणोंसे भूषित वाराही, हे देवेशि ! वारुणि दिशा में उपस्थित रहती है। शङ्ख कुन्द और इन्दु के समान धवल हार और कुन्डलों से भूषित वह इन्द्राणी पर्युपस्थिता देवी ऐन्द्री दिशा में स्थित है। कराल मुख वाली, दीप्त और समस्त अलंकारों से मन्डित चामुन्डा नैऋत्य दिशा में परमेश्वर की उपासना किया करती है।"

महालक्ष्मी को जब अलग माना जाता है, तो सात के वजाय आठ मातृकाएं स्वीकार की गई हैं—

ब्रह्माणी माहेशी कौमारी, वैष्णवी च वाराही।
इन्द्राणी चामुण्डा समहालक्ष्मीश्च मातरः प्रोक्त ॥

—प्रपञ्चसारतन्त्र, सप्त पटल

अर्थात्—ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुन्डा—ये महालक्ष्मी सहित मातृकाएं कही गई हैं।'

इन अष्ट मातृकाओं को शिव-सूत्र में पशु-माता का नाम दिया गया है—

कवर्गादिषु माहेश्वर्याद्याः पशु मातरः ।

अर्थात्—"कवर्गादि में माहेश्वरी आदि पशु-मातायें है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसके अलग अलग अधिष्ठातृ देवता इस प्रकार स्वीकार किये गए हैं–

अवर्गे तु महालक्ष्मी: कवर्गे कमलोद्भवा ।
चवर्गे तु महेशानी टवर्गे तु कुमारिका ।
नारायणी तवर्गे तु वाराही तु पवर्णिका ।
ऐन्द्री चैव यवर्गस्था चामुण्डा तु शवर्णिका ।
एता: सप्तमहामातृ: सप्तलोकव्यवस्थिता: ।

–स्वच्छन्द प्र० पटल

अर्थात् 'अवर्ग में महालक्ष्मी है । कवर्ग में कमलोद्भवा है । चवर्ग में महेशानि है क वर्ग में कौमारी, त वर्ग में नरायणी, प वर्ग में वाराही और य वर्ग में ऐन्द्री है । शवर्ग में चामुन्डा है–ये सात महामातृकायें हैं, जो सात लोकों में व्यवस्थित हैं ।'

'योगिनी हृदय' (२ पटल) में अष्ट मातृकाओं का स्वरूप इसप्रकार वर्णित किया गया है–

ब्रह्माणी पीतवर्णा च, चतुर्भि: शोभिता मुखै: ।
वरदाभयहस्ता च कुण्डिकाक्षलसत्करा ॥
माहेश्वरी श्वेतवर्णा त्रिनेत्रा शूलधारिणी ।
कपालमेणं परशुं दधानां पाणिभि: प्रिये ।
कौमारी पीतवर्णा च शक्तितोमर धारिणी ॥
वरदाभयहस्ता च ध्यातव्या परमेश्वरी ।
वैष्णवी श्यामवर्णा ञ्च शंख चक्र वराभयान् ।
हस्तंपद्मैस्तु बिभ्राणा भूषिता दिव्यभूषणै: ।
वाराही श्यामलच्छाया पोत्रचक्रसमुज्ज्वला ॥
हलं च मुसलं खड्गं खेटकं दधतीं भुजै: ।
ऐन्द्री श्यामलवर्णा च व्रोत्पललसत्करा ।
चामुण्डा कृष्णवर्णा शूलं डमरुकं तथा ।
खड्गं वेतालकं चैव दधाना दक्षिणै: करै:
नागखेटकघंटाख्यान नधानान्यै: कपालकम्,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महालक्ष्मीस्तु पीताभा पद्मदर्पणमेव च
मातुलुङ्गफलं चैवदधाना परमेश्वरी ।

अर्थात् "ब्रह्माणी पीत वर्ण वाली, चार मुखों से शोभित हैं । वरदा, अभय हस्त वाली, कुंडिका अक्ष से शोभित करों वाली है । माहेश्वरी ! श्वेत वर्ण वाली, तीन नेत्रोंसे युक्त त्रिशूल को धारण करने वाली । हे प्रिये ! कपाल, ऐण, परशु को हाथों में धारण करने वाली । वज्र और उत्पल से भूषित करों वाली है । कौमारी पीत वर्ण वाली है, शक्ति और तोमर को धारण करने वाली है । वरदा और अभय हस्त वाली परमेश्वरी का सदा ध्यान करना चाहिए । वैष्णवी श्याम वर्ण वाली है । शङ्ख, चक्र, वर और अभय धारण करने वाली है । हाथों में पद्म धारण किये हुए है तथा दिव्य भूषणों से भूषित है । वाराही श्यामल क्रांति वाली है । पौत्र और चक्र से समुज्ज्वल है । हाथों में हल, मुसल, खड्ग, खेटक धारण किये हुए हैं । ऐन्द्री श्याम वर्ण वाली है । वज्रउत्पल से भूषित करो वाली है । चामुन्डा कृष्ण वर्ण वाली है, शूल और डमरू धारण किये हुए है । दक्षिण हाथों में खड्ग, वेतालक रखे हुए है । अन्य हाथों में नाग खेटक, घंटा कौर कपाल धारण किए हुए हैं । महालक्ष्मी पीत वर्ण वाली है । पद्म, दर्पण, मातुलुङ्ग फल को परमेश्वरी धारण करने वाली है ।"

अष्ट वर्गों के मातृका क्रम-इस प्रकार हैं–

(१) अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ।

(२) क, ख, ग, घ, ङ ।

(३) च, छ, ज, झ, ञ ।

(४) ट, ठ, ड, ढ, ण ।

(५) त, थ, द, ध, न ।

(६) प, फ, ब, भ, म ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(७) य, र, ल, व।

(८) श, ष, स, ह, (ल) क्ष।

इन मातृका वर्णों को विशेषताओं का वर्णन करते हुए शिवसूत्र (प्रथम प्रकाश) में कहा गया है–

अकारादिक्षपर्यन्ताः कलास्ताः शब्दकारणम्।
मातरः शक्तयोदेव्यो रश्मयश्च कलाः स्मृतः॥

अथात् 'अकारादि से क्षकार पर्यन्त वे कलायें हैं, जो शब्द का कारण हैं, मातायें देवी शक्ति हैं और रश्मियाँ कही गई है।'

अ से क्ष तक सारे वर्ण मातृकास्वरूप को व्यक्त करते हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

१. अ–मौलि २. आ–मुख ३. इ–दायीं आँख ४. ई–बायीं आँख ५. उ–दाँयाकान ६ ऊ–बाँया कान ७. ऋ–दायीं नासिका ८. ॠ–बायीं नासिका ९. लृ–दाँया कपोल १०. ॡ–बाँया कपोल ११. ए–ऊपर वाला ओष्ठ १२. ऐ–नीचे वाला ओष्ठ १३. ओ–ऊपर वाला दन्त-पंक्ति १४. औ–नीचे वाली दन्त-पंक्ति १५. अं–तालु १६. अः–जिह्वा १७. क–दाँया बाहुमूल १८. ख–बाँया बाहु कर्पूर १९. ग–दाँया बाहु-मणि-बन्ध २०. घ–बायाँ बाह्वंगुलि मूल २१. ङ–दायाँ बाह्वंगुल्यग्र २२. च–बायाँ बाहुमूल २३. छ–बायाँ बाहु कर्पूर २४. ज–बायाँ बाहु मणि-बन्ध २५. झ–बायाँ बाह्वंगुलि मूल २६. ञ–दायाँ बाहवंगुल्यग्र २७. ट–दायीं जंघा २८. ठ–दाँयी जानु। २९. ड–दायाँगुल्फ ३०. ढ–दायाँ-गुलिमूल ३१. ण–दायाँ पादागूल्यग्र ३२. त–बायीं जंघा ३३. थ–बायाँ जानू ३४. द–बायाँ गुल्फ ३५. ध–पादांगुलि मूल ३६. न–बायाँ पादा-गूल्यग्र ३७. प–दायीं कुक्षि ३८. फ–बायीं कुक्षि। ३९. ब–पृष्ठ ४० भ–नाभि ४१. म–जठर ४२. य–हृदय ४३. र–दायाँ कंधा ४४. ल–ककुद ४५. व–बायाँ कंधा ४६. [illegible] बायाँ-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर ४८. स–हृदयादि दायाँ पैर ४९. ह–हृदयादि बायाँ पैर ५०. ल–नाम्न्यादि हृदयान्त ५१. क्ष–हृदयादि भ्रूमध्य।

शास्त्रों में मातृकाओं का यही रूप वर्णित किया गया है।

मन्त्रों की वैज्ञानिक रूपरेखा

परिभाषा—

दस से बीस वर्णों के संग्रह को मन्त्र कहा जाता है। इष्टदेव का अनुग्रह विशेष ही मन्त्र कहलाता हैं। देवता के सूक्ष्म शरीर को भी मंत्र कहा जाता हैं। दैवी राज्य से सम्बन्धयुक्त शब्द को मन्त्र कहा जाता हैं। मन्त्र शक्ति से दैव-जगत् को प्रभावित करके तत्तत् देवता को वश में किया जाता है। आसुरी प्रवृत्तियों की शक्तियों--भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, प्रेत, दैत्य आदि को भी वश में करके अपनी इच्छा के अनुसार उनसे काम लिया जा सकता है।

'गारलैण्ड आफ लेटर्स' में सर जान वुडरफ के अनुसार शिव, शक्ति और आत्मा के ऐक्य रूप को मन्त्र कहा जाता है।

शिवसूत्र विमर्शिनी में 'चित्त मन्त्र' कहकर चित्त को ही मन्त्र कहा गया हैं। फिर चित्त की व्याख्या करते हुए कहा गया है–

चेत्यते विमृश्यते परं तत्वृमनेन इति चित्तम्। पूर्णस्फुरत्ता सत्वः प्रसाद प्रणवादिविमर्शरूप संवेदनम्, तदेव मन्त्रयते गुप्तम् अन्तर भेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपं अनेन इति कृत्वा मन्त्रः। अतएव च परस्फुरतात्मकमननधर्मात्मता भेदमयसंसार प्रशमना त्मकत्राणधर्मता च अस्य निरुयते। अथ च मन्त्रदेवता विमर्श-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रित्वेनप्राप्ततत्सामरस्यं आराधकचितमेव मन्त्रः न तु विचित्र वर्णसङ्घटनामात्रकम् ।

अर्थात् "चित्त अर्थात् विभूषित जिसके द्वारा पर-तत्व होता है । अतः उसको चित्त कहा जाता है । पूर्ण स्फुरता तत्वों के सहित प्रणव आदि का विमर्श रूप वाला संवेदन है वही गुप्त रूप से मन्त्रित किया जाता है अर्थात् अन्तरभेद के द्वारा विभूषित होता है और परमेश्वर का रूप जिसके द्वारा विचारा जाता है, वही मन्त्र है। इसलिए परस्फुरण स्वरूप मनन की धर्मात्मता और भेद से पूर्ण संसार के प्रशमन रूप त्राण के धर्म का होना कहा जाता है । इसके उपरान्त मन्त्र-देवता के विमर्श होने से प्राप्त हुए उसे सामर का आराधक चित्त ही मन्त्र है, न कि विचित्र वर्णों के सङ्गठन स्वरूप मन्त्र होता है ।"

मन्त्र का अर्थ आमन्त्रण भी किया है । आमन्त्रण का अभिप्राय धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसे लिया जाता है । सांसारिक जीवन की सफलता के लिए अर्थ और काम आवश्यकहै । उनके बिना भौतिक जीवन नीरस हो जाता है, परन्तु यह दोनों शक्तियाँ धर्म पर आधारित हों, तभी यह लाभदायक सिद्ध होते हैं । धर्म कहते है कर्त्तव्य को । कर्त्तव्य की भावना के अर्थ और काम को मोक्ष पथ की ओर अग्रसर करते हैं । जो शक्ति इस कार्य को सम्पन्न करने की सामर्थ्य रखती है, उसे मन्त्र कहते हैं ।

तन्त्र में शक्ति को ही मन्त्र कहा गया है । इसलिए यह पञ्चशक्ति-मय कहा जाता है–

मननात्सव भावाना त्राणात्संसार सागरात् ।
मन्त्ररूपा हि तच्छक्तिमननत्राण रूपिणी ॥

"अर्थात् "सारे भावों के मनन और सारे जगत् के त्राण करने के कारण उस मनन और त्राण रूपी शक्ति को मन्त्ररूपी कहा जाता है । वह मूल में तो एक हो परन्तु उपाधिवश विभिन्न प्रकार की हो जाती है ।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परात्रिशिका में भी कहा है–

मननत्राणधर्माणं सर्वेषामेव वाच्यवाचकादिरूपवर्ण भट्टा-रकात्मनां मन्त्राणम् ।

अर्थात्–'मनन-त्राण धर्मों का सबका वाच्य वाचक आदि रूप वर्ण भट्टारात्मक मन्त्रों का होता है।'

मन्त्र और त्राण को मन्त्र से दो धर्म कहा गया है । महार्थमंजरी में कहा गया है–

'मननत्राणधर्माणो मन्त्राः इति ह्याम्नाय मन्त्र मन्त्रानु-सन्धातुः स्वेच्छामात्रेणोपाधिना विभवः' सङ्कोच" इति उपाधि-द्वयमस्ति, तयोर्विभवो नामविश्वतदुत्तरोभयसामरस्ययुक्त्या अह म्भावभावनात्मा विकास-यत्पारमैश्वर्यमुच्यते । सङ्कोचश्च तद्वि पर्ययात् अपूर्णत्वाभिमननं तत्पाशवामित्याख्यायते । एव स्थिते तादृगात्मनि विकासे समुल्लसति तस्य चयन्मनन-उपर्युपरियथा पर मर्शानुस्युतिस्व भावश्चमत्कारः तत्प्रकृत यस्याः, तदुक्तरूपे सङ्कोचे प्रस्तुतेत्राणं––'सङ्कोचोऽपि विचार्यमाणश्चिदामैक्येन प्रथमानत्वात् चिन्मय एक अन्यथा तु न किञ्चित् इति श्रीपत्य भिक्षाहृदयंमर्यादया तस्यादि सङ्कोचस्य शैश्वात्म्यप्रथानुप्रविष्ट-तानुसन्धानोत्पादनद्वारा स्वस्वभाव भङ्गप्रसङ्गरूपचाकित्यव्यपो हनलक्षणं रक्षणं तन्मयो, हेतुद्वयेन वेद्यविक्षोभसर्वग्रासविशृंख-लोल्लासायानुभूतिः ।

स्वहृदयैकसंवेद्या निमर्श शक्तिः सैव मन्त्रः ।

अर्थात् 'आम्नाय यह कहता है कि यन्त्र मनन और त्राण धर्म वाले होते हैं । वहाँ पर मन्त्रों का अनुसन्धान करने वाले को स्वेच्छामात्र उपाधि से विभव और संकोच ये दो उपाधि हैं । इन दोनों में विश्व और उससे भी आगे उभय सामर की युक्ति से अहंकार की भावना के स्वरूप वाला विकास है, जिसको परमेश्वर्य कहा जाता है । ऐसी स्थिति होने पर उसप्रकार की आत्मा में विकासके समुल्मासित होने पर उसका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो मनन अर्थात् ऊपर-ऊपर यथापरामर्श की अनुस्यूति का स्वभाव चमत्कार है, जिसका यह प्रकृत है। उक्त रूप वाले उस सङ्कोच के प्रस्तुत होने पर त्राण है और सङ्कोच भी विचार्यमाण त्रित् की एकता से प्रथमान होने के कारण चिन्मय ही होता है अन्यथा तो कुछ भी नहीं है—वह श्रीपत्यभिक्षा हृदय की मर्यादा से उसके क्रोध का भी वैश्वात्म प्रथा में अनुप्रविष्टता के अनुसन्धान से उत्पादन के द्वारा अपने अपने भाव-भङ्ग-प्रसङ्ग रूप चकितता के व्यपोसन लक्षण वाला रक्षण है और तन्मयसेतु द्वय वेदन के योग्य के विक्षोभ सर्वग्रास, विशृङ्खल उल्लास के लिए अनुभूति है। अपने हृदय के द्वारा एक संवेद्या विमर्श शक्ति ही मन्त्र है।''

मनन और त्राण की तान्त्रिक परिभाषा करते हुए डा० शिव शङ्कर अवस्थी ने लिखा है—''परनाद अथवा परस्फुरण का परामर्श ही मनन है, मनन परशक्ति के महान् वैभव की अनुभूति है—उसके परामैश्वर्य का उपयोग है। अपूर्णता अथवा सङ्कोचमय भेदात्मक संसार के प्रशमन को रक्षा अथवा त्राण कहते हैं। इस प्रकार शक्ति के वैभव या विकास-दशा में मननयुक्त तथा सङ्कोच या सांसारिक अवस्था में त्राणमयी, विश्वरूप विकल्प को कवलित कर लेने वाली अनुभूति ही मन्त्र है।''

मन का त्राण करने वाले को तन्त्र-शास्त्रों में मन्त्र कहा गया है। मन की चञ्चल वृत्तियाँ स्वाभाविक हैं। चंचलता से उसकी शक्तियां बिखरी रहती हैं। जब उसकी वे वृत्तियाँ एकाग्र हो जाती है, तो उसकी सारी अपार सामर्थ्य एकत्रित हो जाती हैं और दैव जगत् की शक्ति की तरह वह कार्य करने लगता है। मन्त्र द्वारा यह कार्य सरलतापूर्वक हो जाता है। इससे छिन्न-भिन्न मानसिक वृत्तियाँ एक बिन्दु पर लाई जाती हैं। तब वह शक्ति का स्रोत बन जाती है। मन्त्र का अन्तःकरण से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार को अन्तःकरण कहा जाता है। मन की शक्ति अन्तःकरण में प्रस्फुरित होती है। अन्तः-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वरण के चारों विभाव उसके नियन्त्रण में चलते हैं। मन इन्द्रियों को चलाने वाला है। इसलिये मन्त्र द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। बुद्धि मन की गुरु है और उसे निरन्तर सदासद् विवेक का निर्देश देती रहती है। इसलिये मन में बुद्धि के अनुसार सात्विक वृद्धियों का आगमन होता है। अन्तःकरण के ये मुख्य भाग हैं। मन्त्रशक्ति से इनका सीधा सम्पर्क रहता है।

मन्त्रका अर्थ है—मनन, विज्ञान, विद्या और ज्ञान। मन्त्रशक्ति से मनन का स्वभाव मिलता है। मनन कहते हैं बार-बार विचारने को। जिस विचार को बार-बार मन में जमाने का प्रयत्न किया जाता है, वह मन का एक स्वभाव बन जाता है। अतः मन्त्र शक्ति से मन को अपने मनोनुकूल ढाला जा सकता है। मन्त्र वह विज्ञान और विद्या है, जिससे शक्ति का उद्भव होता है। यह वह ज्ञान और प्रकाश है जिससे अज्ञान और अधिकार को दूर किया जा सकता है, यह ऐसी मनोभूमि तैयार करता है जिस पर ईश्वरीय सत्ता केन्द्रीभूत होने के लिये अपना आसन लगाने की स्वीकृति प्रदान करती है। ईश्वर सत् चित् आनन्द है। मन्त्र शक्ति का सफल साधन ऐसी ही स्थिति का अनुभव करता है।

नियत ध्वनियों के समूह को मन्त्र कहते हैं। मन्त्र के अर्थ भी होते हैं। उनमें शिक्षायें और प्रेरणायें भी निहित होती हैं परन्तु विशेषता ध्वनियों की ही होती है। इसलिये मन्त्र में स्वर पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है, उसी से शक्तियों का विकास होता है।

जहाँ मन्त्र का विधिपूर्वक प्रयोग किया जाता है, वहीं शक्तियों का निवास बना रहता है और नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। योग दर्शन ४।१ में कहा है—"जल, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि से सिद्धियाँ होती हैं।" योगशास्त्र का कथन है—'मन्त्रयोगी मन्त्र-सिद्धि द्वारा, हठ-योगी तप-सिद्धि द्वारा और लययोगी संयम-सिद्धि द्वारा ऐसी विभूतियों को प्राप्त करते हैं। मन्त्र-साधना द्वारा देवी-देवता अपने आप

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वश में हो जाते हैं और मंत्र योग की सिद्धि प्राप्त योगी को संसार के समस्त वैभव सुलभ हो जाते हैं।

मन्त्रों द्वारा प्राण विजय :-

मंत्र से प्राणों पर विजय प्राप्त की जाती है। प्राण हमारी जीवनी शक्ति है। उसी के सहारे समस्त कार्यों का सञ्चालन होता है। सारी गतिविधियाँ उसके निर्देश पर चलती हैं। उसके कारण ही इन्द्रियाँ सशक्त और निरोग रहती हैं। प्राण के अभ्यास से ही नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं और कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है। इसलिए शास्त्रकारों ने इसे ब्रह्मा, प्रजापति और अमृत की संज्ञा दी। सातप्राणों को ही सप्त ऋषि कहा गया है। जिससे अपने सप्तप्राण को जाग्रत कर लिया, वह जगा हुआ कहा जाता है। सोता वही है, जिसका प्राण सोता है। जिसने अपने प्राणों में जाग्रति उत्पन्न कर ली है, उसके चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश रहता है, उसका ज्ञान की रश्मियों से निरन्तर अभिसिंचन होता रहता है। जीवन का नव-निर्माण करने वाली इस महाशक्ति पर मन्त्रशक्ति का राज्य स्थापित होता है। प्राणशक्ति पर विजय प्राप्त कर साधक शक्तियों का पुञ्ज बन जाता है, उसके लिये साधारण कार्य दूसरों को असाधारण और चमत्कार दृष्टिगोचर होते हैं। वास्तव में यह मन्त्रशक्ति द्वारा प्राणों पर अधिकार का ही परिणाम है।

विभिन्न शक्तियों का विकास :-

प्राचीनकाल में मन्त्रशक्ति के विशेषज्ञ होते थे। अनेकों प्रकार से इस शक्ति को प्रयुक्त किया जाता था। आसुरी शक्तियों का नाश, चरित्र विकास, मनोबल की वृद्धि, बुद्धि प्रखरता और आत्मिक उत्थान तो इसके सहज परिणाम थे ही। अनेक प्रकार के भौतिक लाभ भी इन से प्राप्त किये जाते थे। धन लाभ, आरोग्य प्राप्ति, विपत्ति-निवारण आयुवृद्धि, शत्रुओं से रक्षा और उत्तम वर्षा के लाभ भी मन्त्रों से उठाये जाते थे। युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों में भी यह एक प्रमुख शक्ति मानी जाती थी। मन्त्रों से अभिमन्त्रित [illegible] आदि होते

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

थे। मन्त्रशक्ति से शत्रु सेना में अग्नि की ज्वालायें भड़क उठती थीं और मन्त्र से इस अग्नि को बुझाने के लिये वर्षा भी कर ली जाती थी। मन्त्र से शत्रु-सेना को ज्वर आदि से पीड़ित किया जाता था और सर्प ही सर्प छोड़ दिये जाते थे। मन्त्रों से ऐसे भयङ्कर अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होता था, जिससे प्रलय तक आने की सम्भावना होती थी। इनकी तुलना आधुनिक एटम व हाइड्रोजन बमों से की जा सकती है।

इतिहास की साक्षी :

रामायण और महाभारत में इसकी पुष्टि में अनेकों उदाहरण मिलते हैं। जब रावण को अपनी पराजय स्पष्ट दिखाई देती है, तो वह अपने पुत्र मेघनाद को एक तन्त्र-यज्ञ करने का आदेश देते हैं। मेघनाद निकुम्भला नामक स्थान पर यह शाला बनाकर उसके चारों ओर अपने अस्त्रों को बिछाकर अभिमन्त्रित करने की विधि-व्यवस्था बनाता है, परन्तु उसकी इस योजना को असफल कर दिया जाता है। कहा जाता है कि यदि मेघनाद इसे कर लेता, तो वह अजय हो जाता और आज रामायण का इतिहास कुछ और ही होता।

राजा जन्मेजय के सर्प यज्ञ में मन्त्रशक्ति द्वारा सारी पृथ्वी से सर्प हवन-कुण्ड में आ-आकर भस्म होते जा रहे थे। राजा पथ ने १०१ अश्वमेध यज्ञों का सङ्कल्प किया था, जिसमें से १०० पूर्ण हो चुके थे। इन्द्र को अपना आसन छिन जाने का भय उत्पन्न हुआ। वह ब्राह्मण के वेष में आकर यज्ञ में से घोड़े को चुराकर ले गया। दो बार तो घोड़े को वापिस लाया गया, परन्तु जब बाद में इसकी पुनरावृत्ति होने लगी, तो राजा पृथु क्षुब्ध हो उठे और अपने धनुष को उठाया इन्द्र को मारने के लिए, इस पर ऋषियों ने उसे मना किया और कहा—"यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों द्वारा तुममें इतनी शक्ति उत्पन्न हो गई है कि इससे केवल इन्द्र ही नहीं, सारी इन्द्रपुरी भस्म हो जायगी और संसार में प्रलय आ जायगी।"

राजा बलि ने १०१ अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया था और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रशक्ति के प्रभाव से शक्ति के रूप में उसे दिव्य-अस्त्र शस्त्र प्राप्त हुए थे, जिनकी सहायता से उसने इन्द्र को पराजित करके इन्द्रासन पर अधिकार प्राप्त किया था। वास्तव में मन्त्र एक शक्ति है। उसका प्रयोग जिस क्षेत्र में भी किया जाय, उधर ही सफलता प्राप्त होती है।

एक विदुषी द्वारा मन्त्रशक्ति के चमत्कार का आँखों देखा वर्णन—

मन्त्रशक्ति का उद्भव और विकास भारत में ही हुआ और हिन्दू संस्कृति को ही इसका श्रेय प्राप्त है। इसके बाद अनेक सम्प्रदायों ने इसका अनुसरण किया और अपने ढंग और आस्था के मन्त्र बनाकर उनका प्रयोग करने लगे। ईसाई और मुसलिम जगत् में भी यह विद्या प्रचलित है, बौद्ध और जैन मत-मतान्तर वाले भी इसका लाभ उठाते हैं। विश्व के हर कोने में इस विद्या की छाप पड़ी परन्तु प्रमुखता इसके जन्मस्थान भारत की ही रही और रहेगी। तिब्बत में अनेकों भारतीय गये थे। उन्होंने वहाँ संस्कृत और भारतीत संस्कृति का विचार किया था। तिब्बत की भाषा भी संस्कृत पर आधारित है। मन्त्र विद्या वहाँ खूब फली फूली। वहाँ आज भी अनेकों मन्त्र सिद्ध-योगी मिलते हैं। लामाओं का मन्त्र शक्ति द्वारा ओलों को रोकना और वर्षा को बन्द कर देना प्रसिद्ध है। अनेकों विदेशी लेखकों ने आँखों देखे समाचार लिखे हैं अंग्रेजी पत्रिकाओं में इन्हें प्रकाशित भी किया गया है। २७ जनवरी १६४१ के अंग्रेजी ट्रिब्यून में छपे एक लेख के अनुसार 'अलाइस इलिजवेथ' ने लिखा है कि महाराजा ने उन्हें लाभा नृत्य देखने का निमन्त्रण दिया था। परन्तु निश्चित समय पर वर्षा हो रही थी और हम लोग वाटरप्रूफ और छाताओं सहित पहुँचे। हमें सन्देह था कि लामाओं के सुन्दर वस्त्र वर्षा में भीग जायेंगे और नृत्य की शोभा जाती रहेगी परन्तु हुआ इसके विपरीत ही महाराज से जब हमने अपना सन्देह प्रकट किया तो उनका सहज उत्तर था—मेरे लामा वर्षा को मन्त्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वारा बन्द करना जानते हैं, और हुआ भी वैसा ही। नृत्यस्थल पर पहुँचते-पहुँचते वर्षा बन्द हो चुकी थी।"

अलाइस इलिजवेथ के 'वाइज आप मिस्टिक इण्डिया' में लिखा है कि लामा लोग अपने हाथ में एक तुरही लेते हैं, जिसने स्वर्णान्द विभिन्न धातुओं के टुकड़े और पीली सरसों के दाने होते हैं। मन्त्र के उच्चारण से लामा ओलों के बड़े टुकड़ों को तोड़ देते है छार-छार कर देते हैं खेती की रक्षा करते हैं। जब बादल की गरज हो रही हो और वर्षा की सम्भावना हो, यो वह अपनी धर्म पुस्तक में से एक संस्कृत के मन्त्र का उच्चारण करता है। इसका अधिकार उसे लम्बी साधना के पश्चात् ही प्राप्त होता है। मन्त्र पढ़ने से वह बादल की गरज को बन्द कर देता है। जब ओले गिरने आरम्भ हो जाँय, तो उस दिशा में पीली सरसों के दाने छिड़क कर मन्त्र पढ़ता है और ओला-वृद्धि बन्द हो जाती है।

यह वर्णन किसी आस्थावान भारतीय का नहीं, वरन् तर्कशील विदेशी का है, जिनके मन में मन्त्र के प्रति अगाध श्रद्धा जाग उठी।

मन्त्र-शक्ति का वैज्ञानिक रहस्य—

यन्त्रों से होने वाले लाभ व सिद्धियाँ, शक्तियाँ किसी देवी-देवता की कृपा से अकस्मात् ही प्राप्त नहीं हो जाती, वरन् उनके द्वारा जो वैज्ञानिक प्रक्रिया अपने आप मन्त्रवत् होती है, उससे लाभ होता है। मन्त्रों का एक स्वतन्त्र विज्ञान है, जिनका आधार ठोस वैज्ञानिक तथ्य है। साधारण रूप से इसे यूँ समझा जा सकता है कि जड़ और चेतन दो प्रकार का संसार होता है। यह जगत् स्थूल और सूक्ष्म दो भागों में बँटा हुआ है। हमारे स्थूल नेत्रों से जो कुछ दिखाई देता है, वह स्थूल है। जो वस्तु स्थान चाहती है, जिसका बजन और नाप-तौल होती है, उसे विज्ञान की भाषा में स्थूल कहते हैं। जिसको हम स्थूल नेत्रों से देख नहीं सकते, जिसका नाप तौल और बजन नहीं होता और जिसे स्थान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की अपेक्षा नहीं रहती, वह सूक्ष्म कहलाता है। शरीर स्थूल है और मन सूक्ष्म है। मन में हजारों लाखों तरह के भिन्न-भिन्न विचार भरे रहते हैं और असंख्य और भरे जाने की गुंजायश रहती है, परन्तु स्थान का अभाव नहीं खटकता। स्थूल वस्तुओं की शक्तियाँ सीमित है सूक्ष्म की असीम। स्थूल की गति का कारण ही सूक्ष्म होता है अन्यथा वह तो जड़ है। शरीर में सूक्ष्म प्राण रहने के कारण उसमें नाना प्रकार की गतिविधियाँ होती रहती हैं। जब प्राण इससे अलग हो जाता है या शरीर उसे अपने साथ रखने के सर्वथा अयोग्य हो जाता है तो वह अपने सर्वव्यापी प्राण-तत्व में मिल जाता है और शरीर सड़ने लगता है। स्थूल से सूक्ष्म शक्तिशाली होता है। जितनी कोई वस्तु स्थूल से सूक्ष्म बनती है, उतनी ही वह शक्ति का विकास करती है। जल से अधिक जल की वाष्प में शक्ति होती है जिससे सैकड़ों मन के रेलगाड़ी के डिब्बे खींचे जाते हैं। अग्नि का सूक्ष्म रूप विद्युत् है, जिससे बड़े बड़े कारखाने मिलें चलाई जाती हैं और अंधकार को प्रकाश में परिवर्तित करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

हमारे स्थूल शरीर में कुछ भी शक्ति नहीं है। सूक्ष्म शक्ति की प्रक्रिया का इसमें प्रदर्शन मात्र होता है। हमारे सूक्ष्म शरीर में अनेकों प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हैं। उनको जगाकर ही हम असाधारण कार्यों के सम्पादन की क्षमता वाले हो पाते हैं। यह प्रत्यक्ष नियम है, सूक्ष्म जगत् तक सूक्ष्म की ही पहुँच सम्भव हो सकती है, स्थूल-वस्तुओं का वहां प्रवेश निषिद्ध है। मन्त्र में शब्द होते हैं, जो सूक्ष्म होते हैं। पाँचों तत्वों में आकाश-तत्व सबसे सूक्ष्म और शक्तिशाली है। अतः इससे सम्बन्धित शब्द का प्रभाव सूक्ष्म शरीर स्थित शक्ति-केन्द्रों पर पड़ता है, वह जाग्रत होते है और साधक को नाना प्रकार की शक्तियों से विभूषित करते हैं। यदि किसी स्थूल शक्ति को इनके जागरण का माध्यम बनाया जाय तो लक्ष्य में असफलता होगी।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र का आविर्भाव—

श्रीमाधव पुण्डलीक पण्डित ने मन्त्र के आविर्भाव पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

"इस भूमि के ऋषियों का यह प्राचीन अनुभव है कि जब ब्रह्म अभिव्यक्त होता है, तो सर्वप्रथम नादरूप, नादब्रह्म रूप ग्रहण करता है और नादशक्ति से ही वाद में सृष्टि उत्पन्न होती है—'वागेच विश्वा भुवनानि यत्र' ऊर्ध्वतम आकाश में स्थित यही वह सनातन शब्द है, जो वेद ऋचाओं में नित्यवाक कहकर प्रशंसित है और मानव-वाणी अपने से सर्वोच्च रूप उसका चतुर्थ स्वरूप है। जब किसी ऋषि ने तपस्या काल में आंतरिक दिव्य दर्शन में सत्य का अनुभूत किया, तो उन्होंने इसकी मूल ध्वनि को देखा, जिससे यह अपने को स्वयं के लोक प्रकट करता है और उन्होंने इसे ऐसी मानव-ध्वनि में बोलने का प्रयत्न किया, जो उस मूल ध्वनि के अत्यन्त समीप हो। ऐसे अनुभूत विचार या सत्य के ठीक अपरिहार्य शब्द—शरीरात्मक—रूप के लिए ही मन्त्र शब्द का प्रयोग किया जाता है, इसलिए मन्त्रद्दष्टा अथवा ऋषि के द्वारा साक्षात्कर सत्य का मूर्त प्रतीक या यथार्थ ध्वनि रूपी वाहन होता है। यह अपने द्वारा मूर्त सत्य की शक्ति और सक्रियता के द्वारा स्पन्दित होता है।"

शब्द-शक्ति के चमत्कार—

शब्द शक्ति की व्याख्या श्री कापालिक शास्त्री ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में की है—'शब्द ध्वनि में एक शक्ति छिपी हुई है और वह वर्ण ध्वनियों के अनुसार भिन्नता रखती है। इन शब्द ध्वनियों का ठीक-२ प्रयोग हमें उनके द्वारा सांकेतिक गति और लक्ष्यों के योग्य बनाती है। तांत्रिकों का यह सिद्धांत उनके इस प्रथम स्वयंसिद्ध सिद्धांत पर आधारित है कि शब्द या ध्वन्यात्मक सृष्टि पदार्थों की सृष्टि से पहले उत्पन्न होता है शब्द पहले है और अर्थ (वाच्यार्थ या पदार्थ) बाद में। 'अर्थः सृष्टेः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्वम शब्दसृष्टि—शब्द यहाँ वैदिक साहित्य के वाक् का स्थान ले लेता है। यह प्रथम शब्द नाद ही प्रथम सृष्टि आद्य स्पन्द है, जो विश्व के निर्माण को निष्पन्न करने को तथा पदार्थों को उत्पन्न करने के कार्य में अग्रसर होता है। यह प्राचीन वैदिक सृष्टि का सिद्धांन्त है कि वाक् गर्जना करने वाले वृषभ की वाणी, परम सत्य की देवाधि देव की वाणी को तन्त्र भाषा में परम और आद्य स्पन्दन, अनन्त ब्रह्म के सूक्ष्माति सूक्ष्म अंश को स्पन्दनशील गति का रूप दे दिया गया है, जो कि समस्त विश्वों, इस विश्व और इसके पदार्थों को आयोजित, निर्मित और अभिव्यक्त करता है। यह वही शब्द ध्वनि, लय नाद है जो कि लघुत्तम वस्तुओं से लेकर महत्तम तक के निर्माण में कार्यरत है तांत्रिकों ने व्यक्त वाक् से ध्वनि-प्रतीकों की खोज की और उतना प्रकाशन किया है जो केवल भौतिक वस्तुओं को ही नहीं, बल्कि सूक्ष्मतर लोकों से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों को रूप प्रदान करने वाले छन्दों का प्रतिनिधित्व करती हैं।'

शास्त्र भी इसका समर्थन करता है—

शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः
छन्दोभ्य एव प्रथममेतद्विश्वं व्यवर्तत ॥

—वा० प० प्र० का०

अर्थात् "आम्नाय के ज्ञाता यह शब्द का परिणाम है—ऐसा जानते हैं। यह विश्व प्रथम छन्दों ही से बर्तमान हुआ था।'

याहमित्युदितवाक् परा च सा
यः प्रकाशलुलितात्म विग्रहः
यौ मिथः समुदिताविहोन्मुखौ।
तौ ष्टडध्वपितरौ श्रेय शिवौ ॥

—चिद्गगन चन्द्रिका, प्रथम विमर्श

अर्थात् "जो अहम यह उदित वाणी है और वह परा है। जो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाश से लुलित आत्मविग्रह वाला है जो दोनों समुदित होते हुए यह उन्मुख हैं वे दोनों षडब्ज पितर और श्रेय शिव हैं।"

अध्याहितकलां यस्य कालशक्ति मुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकाराः षडभाव भेदस्य योनयः ॥

अर्थात् 'जिसकी अध्याहित कला को कालशक्ति उपाश्रित हैं। जन्मादि विकार भेद की योनि पड्भाव है।"

शास्त्रों ने शब्द को ब्रह्म की संज्ञा दी है और इसकी उपासना का निर्देश भी दिया है। शब्द अच्छा हो या बुरा, उसे ब्रह्म मानना ही इस उपासना का लक्ष्य है। उससे शब्द मात्र में समबुद्धि उत्पन्न हो जाती है और वह निन्दा स्तुति से अप्रभावित होता है। यह समवृत्ति उसके अन्तःकरण को शुद्ध करती हुई आनन्द और शान्ति के मार्ग पर ले जाती है।

मन्त्र का आधार शब्द इसलिए माना गया है कि यह अन्य तत्वों की अपेक्षा शक्तिशाली है। शास्त्रों ने इसकी शक्ति और सामर्थ्य को देखकर इसे ब्रह्म ही कर डाला। वास्तव में शब्द में अपार सामर्थ्य है। जब शब्दों का उच्चारण होता है, तो उनसे कम्पन्न उत्पन्न होते हैं, वह कम्पन विश्व यात्रा की तैयारी करते हैं और ईथर-तत्व के माध्यम से परिभ्रमण करके कुछ ही क्षणों में इस परिक्रमा को समाप्त कर लेते हैं। इस यात्रा में अनुकूल कम्पनों से मिलन होता है। अनुकूलता में एकता का सिद्धांत प्राकृतिक है। इन कम्पनों का एक पुञ्ज सा बन जाता है और अपने केन्द्र तक लौटते-लौटते वह अपनी शक्ति को काफी बढ़ा लेते हैं। यह कार्य इतनी तीव्रगति से हो जाता है कि साधक को इसका अनुभव भी नहीं हो पाता कि शब्दों के उच्चारण मात्र से यह चमत्कार कैसे उत्पन्न हो रहे हैं।

लोक में भी शब्द को अनेकों चमत्कार रूप में हम प्रत्यक्ष देखते हैं। बीन बजाने से सर्प को मोहित किया जाता है। शब्दों के प्रभाव से हाथी जैसे विशालकाय पशुओं को वश में किया जा सकता है, संगीत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से मृग तन्मय हो जाते हैं, गायों का दूध बढ़ाया जाता है। मेघ मल्हार से वर्षा की जाती है। दीपक राग से बुझे हुए दीप जलाए जाते हैं। थाली बजाकर सर्प, बिच्छू आदि के विष उतारे जाते हैं और भूतोन्माद व कण्ठमाला जैसे रोगों का शमन किया जाता है। सैनिकों को पुल पर से पग मिलाकर चलने का निषेध रहता है क्योंकि इससे पुल के गिरने की सम्भावना होती है। आधुनिक विज्ञान ने भी संगीत के प्रभाव की अनेक प्रकार से परीक्षा की है।

संगीत का केलों पर प्रभाव का परीक्षण अन्नामलाई विद्यालय के वनस्पति अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष टी० सी० एन० सिंह की देख-रेख में किया गया। तंजोर जिले के एक गांव में किये गये परीक्षण से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि संगीत का केले के वृक्ष पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। वह न केवल संगीत का रसास्वादन ही करता है, वरन् उससे खूब फलता फूलता भी है।

केलों के एक बगीचे में जहाँ ३।। महीने नादस्वरम् नामक प्रसिद्ध दक्षिण भारतीय वाद्य प्रतिदिन आधा घण्टे तक बजाया जाता था—केले के पेड़ बढ़े, साथ-साथ उनकी पैदावार भी बढ़ी। वहाँ से सौ मीटर दूर, उसी तरह की भूमि तथा वैसे ही हालात के अन्तर्गत उगे हुए केले वृक्षों की पैदावार के मुकाबले में दुगनी पैदावार हुई।

पशुओं पर भी इसके अनुभव किये गये हैं। शेले इंगलैण्ड का प्रसिद्ध संगीतज्ञ है। वह प्लाईमोथ के चिड़ियाँ घर में जाकर झील के किनारे अपना साज बजाना आरम्भ कर देता है। उसकी आकर्षक ध्वनि से अनेकों पशु किनारे पर आ जाते हैं और जब तक वह साज बजाता रहता है, वह तन्मय होकर सुनते रहते हैं। सील मछली की संगीत-प्रियता जगत् प्रसिद्ध है। इसकी उस वृत्ति से लाभ उठाकर शिकारी अपनी नाव या जहाज में बेला बजाते हैं, तो स्वर-लहरी की माधुरी से मुग्ध होकर सील अपना मुख पानी से निकालकर संगीत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुनने में इतनी तन्मय हो जाती है कि उसे प्राणों की सुध बुध तक नहीं रहती और शिकारी के जाल में फँस जाती है।

आश मनोविज्ञान के विशेषज्ञ डा० जार्ज फेर विन्सन की खोजों के परिणाम स्वरूप यह पता चला है कि पियानो के बजते ही कमरे के सब चूहे अपनी सङ्कोचशीलता तथा भय की भावना को दूर करके दिन में भी पियानो के पास आ जाते हैं और बड़े ध्यान से संगीत सुनते हैं। कुत्तों पर भी संगीत का प्रभाव देखा गया है। उल्लू और गरुड को संगीत विशेष रूप से आकर्षित करता है। चिड़ियों को भी संगीत बहुत प्रिय है। नार्वे के डा० हन्सन ने पता लगाया है कि शहद की मक्खी संगीत के स्वर का आनन्द उठाने में सबसे तेज होती है। मच्छर तो मनुष्य की आवाज से भी प्रभावित होते हैं। अतः सिद्ध है कि शब्द प्राणी मात्र को प्रभावित और आकर्षित करते हैं, क्योंकि उनमें एक अद्भूत शक्ति होती है।

ध्वनि तरंगों में परीक्षण—

मन्त्र में ध्वनियां होती हैं, ध्वनियों के समूह को मन्त्र कहते हैं। वैज्ञानिकों ने ध्वनि-तरंगों पर परीक्षण किये हैं। उन्होंने देखा कि चिकित्सा के क्षेत्र ऊँची फ्रीक्वेंसी बोली, ध्वनि का प्रयोग मांस-पेशियों की पीड़ा के उपचार में बहुत उपयोगी पाया गया है। एक ऐसे उपकरण की सहायता से, जिसमें प्रतिसैकिण्ड लगभग १० लाख चक्रों की रफ्तार से ध्वनि तरंगें निःसृत होती हैं डाक्टर मानव-शरीर के रूग्ण भाग में ध्वनि धारायें भेजते हैं ताकि उसमें उससे ताप उत्पन्न हो। यह ताप शक्तिप्रद और आरोग्यकारी होता है। किन्दु ध्वनि शब्द का सबसे क्रांतकारी प्रयोग मानसिक रोगियों की चिकित्सा में किया जाता है। 'यूटा कालेज आफ मेडीसन' के डा० पेन्टर लिडस्ट्राय ने गम्भीर रोग वाले १६२ मानसिक रोगियों के मस्तिष्कों में अस्तिस्वन ध्वनि धारायें पहुँचाई इन ६० विक्षिप्त और १३२ स्नायु रोगियों में से कोई भी काम नहीं कर पाता था और असाध्य रोगी समझा जाता था।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विजली मनोविज्ञान या औषधि की चिकित्सा पद्धतियों से उन्हें लाभ नहीं हुआ था। किन्तु अतिस्वन चिकित्सा से ३१ विक्षिप्त और १०६ स्नायु रोगियों की स्थिति में इतना सुधार हुआ कि वे फिर रोजगार करने लायक हो गये।

न्यूयार्क में येशीव विश्वविद्यालय में 'अलवर्ट आइन्स्टाइन कालेज आफ मेडीसन' में अभी हाल में ध्वनि तरङ्गों का उपयोग लम्बाई चौड़ाई और मोटाई वाले फोटो तैयार करने की अनूठी विधि में किया गया था। इसके द्वारा डाक्टर आँख की रसौली का पता लगाने में सफल हो गये, जबकि सामान्य उपायों से ऐसा नहीं हो सकता था। अमेरिका के डा० हचिसन ने विभिन्न प्रकार की संगीत ध्वनियों की सहायता से अनेकों असाध्य रोगों की सफल चिकित्सा की है।

पं० दीनानाथ शर्मा शास्त्री ने लिखा है—अभी वैज्ञानिकों ने परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया है कि तीव्र स्वरों के भौंपू जिनकी फ्रीक्वेंसी तीन हजार से लेकर चौंतीस हजार साईकिल प्रति सैकिण्ड हो, तो उसके द्वारा उत्पादित तरंगों के बीच काफी की एक बड़ी केतली रखने से वह काफी उबल जाती है और यदि उनकी गति और बढ़ा दी जाय तो छोटे सिक्के हवा में तैराये जा सकते हैं।

स्वर लहरों की अद्भुत प्रक्रिया—

इंगलैंड में 'स्टोन हेब्ज' नाम का एक स्थान है, जहाँ के पत्थर एक दूसरे के साथ इस तरह से मिले हुए हैं कि उनके पास मध्यम स्वर की ध्वनि से उनमें कम्पन उत्पन्न हो जाते हैं। यदि ध्वनि-तरंगे लगातार बजती रहे, तो उनके गिरने की भी सम्भावना रहती है। इसलिए उनके निकट संगीत व गाने का निषेध है।

शब्द-विज्ञान का अद्भुत प्रभाव एक जर्मन वैज्ञानिक ने सिद्ध किया है। उसने ओंकार के उच्चारण से निकलने वाली ध्वनि तरंगों से उत्पन्न शक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है कि यदि 'ॐ' का उच्चारण विधिपूर्वक किया जाय तो उससे एक दीवार फट सकती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'वायस फिगर्ज' पुस्तक की लेखिका मिस वैवट्स ह्यूज ने शब्द-विज्ञान के चमत्कार क्रियात्मक रूप से लन्दन के लार्ड लिटन शिल्प-सदन में दिखाये थे । वह अपने बनाये संगीत यन्त्र 'इडोफोन' को विधिपूर्वक बजाती थी, जिससे अनेकों प्रकार के रूप बन जाते थे । एक बार उसने 'डेजी' नामक सुन्दर पुष्प की आकृति बनाई और उसकी व्याख्या भी की कि संगीत यन्त्र को किस विधि से बजाने से ऐसा हुआ । इसके बाद उसने 'पैंनसी' नामक फूल अनेकों समुद्री जीव, वृक्ष, पत्थरों आदि की प्राकृतियाँ बनाई । इससे यह परिणाम निकला कि ध्वनियों से विविध आकृतियाँ बनती हैं । यह शब्द से सूक्ष्म कम्पनों का ही परिणाम है ।

फ्रांस की एक महिला वैज्ञानिक ने शब्द-विज्ञान पर परीक्षण किये थे । उसने सिद्ध किया था कि शब्द के साथ मन और हृदय का सम्बन्ध रहता है । मैडम 'फिनलांग' ने अपने लिए एक वीणा स्वयम् तैयार की और नीचे की ओर तारों के साथ एक चाक का टुकड़ा बांध दिया । चाक को एक बोर्ड पर लगा दिया गया । वीणा को बजाने से चौक हिलने लगा और बोर्ड पर कुछ अस्पष्ट रेखायें खिंच गई । उसने अनुभव किया कि जिस तरह की आकृतियाँ बोर्ड पर बनज ाती है । एकबार उसने रोमह कैथोलिक मत के एक अनुयायी को अपना कोई धार्मिक गीत गाने का निमन्त्रण दिया । उसके गाने से बोर्ड पर एक स्त्री की गोद में बालक का चित्र खिंच गया । स्त्री मरियम और बालक ईसा था । गीत में प्रभु ईसा की स्तुति की गई थी । उसे इस पर भी सन्तोष न हुआ । उसने वहाँ पर पढ़ रहे एक भारतीय विद्यार्थी को बुलाया और संस्कृत मन्त्रों के उच्चारण की प्रार्थना की । विद्यार्थी ने काल 'भैरवाष्टक' के स्तोत्र का गान किया । इससे एक भयंकर मूर्ति और कुत्ते की रेखायें अंकित हो गयीं । स्तोत्र में व्यक्त भावना के अनुकूल ही आकृति बन गई । इससे वह इस निर्णय पर पहुँची कि शब्दों का भावों से गहन सम्बन्ध होता है और उन पर शब्दों का विशेष प्रभाव पड़ता है । यही कारण है कि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रों द्वारा हृदय और मस्तिष्क विशेष रूप से प्रभावित होते हैं और उनके जप और पाठ से मानसिक और आत्मिक शक्तियों का उद्‌भव होता है।

योगिक ग्रन्थियों का जागरण—

मन्त्रों के निर्माण का भी एक स्वतन्त्र विज्ञान है। मन्त्र अर्थपूर्ण तो होते ही है और उत्तम शिक्षाओं के साथ ही वह मानवोपयोगी सिद्धांतों से ओत-प्रोत भी रहते हैं, परन्तु उनमें भी महत्वपूर्ण उनमें भरी शक्तियाँ हैं, क्योंकि वेदों के प्रत्येक मन्त्र का गठन कुछ ऐसे चमत्कारी ढंग से किया गया है कि उनका सीधा प्रभाव हमारी सूक्ष्म ग्रन्थियों षट्-चक्रों और शक्ति-केन्द्रों पर पड़ता है जिससे सूक्ष्म जगत के शक्ति-केन्द्र जाग्रत होते हैं। मन्त्रों के विधिपूर्वक गठन से यह शब्द उनसे सम्बन्धित योगिक ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं उनकी सोई हुई शक्तियों को जगाते हैं, उन्हीं ग्रन्थियों में स्फूर्ति आने से वह क्रियाशील हो जाती हैं। जिस प्रयोजन के लिये जो मन्त्र होते हैं, वह उसी प्रकार की ग्रन्थियों को जगाते हैं, उन्हीं ही वह शब्द आघात करते हैं। इन ग्रन्थियों की क्रिया-शीलता से ही साधक को विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जो दूसरों को चमत्कार दिखाई देती हैं। परन्तु वास्तव में वह शब्दों की वैज्ञानिक प्रक्रिया का परिणाम है। विदेशी विचारक 'आर्टी में ब्लैकवर्न' ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है कि 'संस्कृत भाषा के अक्षरों में भाव और अर्थ दोनों होते है। इन अक्षरों के युक्तिपूर्ण गठन से अनेक बार जादू का सा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।'

मन्त्र की सफलता उसके शुद्ध उच्चारण में है तभी उनमें गुथे शब्दों का प्रभाव विभिन्न शक्ति केन्द्रों पर पड़ना सम्भव होता है। मन्त्र की सफलता में भावना का भी महत्वपूर्ण स्थान है। श्रद्धा और विश्वास इसके मेरुदण्ड हैं।

विज्ञान के इस युग में शब्द विज्ञान पर अनेकों वैज्ञानिकों के सफल परीक्षणों के बाद भी यदि हम शब्द-विज्ञान पर आधारित मन्त्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गठन की वैज्ञानिक प्रक्रियाओं पर अविश्वास करें, तो हमें वैज्ञानिक तथ्यों से अनभिज्ञ ही समझा जायगा। सूक्ष्म जगत की सोई हुई सूक्ष्म शक्तियों को जगाकर भौतिक और आध्यात्मिक लाभ उठाने की विधियों को खोज निकालने का श्रेय हमारे त्रिकालदर्शी ऋषियों को ही है। इन विभिन्न प्रकार की विधियों में मन्त्र भी एक है जिससे अपने शक्तिकोषों को विकसित करके अणु से महान बनाया जा सकता है और मानव-जीवन की सभी उलझी गुत्थियों को सुलझाकर पृथ्वी पर ही अपना स्वर्ग बनाने की क्षमता प्राप्त की जा सकती है।

मन्त्र-सिद्ध में सफलता के साधन—

मन्त्र-जप की अपार महिमा शास्त्रों में वर्णित है, परन्तु हर साधक को सिद्धि प्राप्त नहीं होती। अतः वह मन्त्र के प्रभाव की ही आलोचना करने लगता है। मन्त्र-सिद्धि के उपायों और असफलता के कारणों पर विचार करना आवश्यक है।

तन्त्र का विज्ञान है कि मन्त्रदाता गुरु को मन्त्र का चुनाव करते समय यह देख लेना चाहिए कि देवता और साधक में अनुकूलता और मैत्रीभाव है या नहीं ? यदि दोनों में शत्रुता है, तो सफलता संदिग्ध रहेगी। सद्गुरु का कर्तव्य यह देखता है कि कौन देवता मन्त्र-दीक्षा चाहने वाले के कुल का है, कौन उसकी राशि में पड़ता है, कौन उसके गण का है, नक्षत्र का है, शत्रुभाव का है या मित्र भाव का, ऋणी है या धनी। इन तथ्यों पर विचार किये बिना यदि मन्त्र-साधना की जाती है तो लाभ के बजाए हानि की ही सम्भावना हो सकती है। तन्त्र-विज्ञान के आचार्यों का मत है कि भूतों में भी शत्रु-मित्र भाव होते हैं उसी तरह मन्त्र, वर्णों और उपासक के नामगत वर्णों में भी अनुकूलता और प्रतिकूलता होती है। अतः दीक्षा के पूर्व इसका निर्णय कर लेना आवश्यक होता है। शारदा तिलक (द्वितीय पटल) में इस विषय का विवेचन करते हुए कहा गया है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रसाधकयोराद्यो वर्ण: स्यात् पार्थिवो यदि।
तत्कुल: तस्य तत्प्रोक्तमेवमन्येषु लक्षयेत् ॥
पार्थिवे वारुणं मित्रमाग्नेये मारुतं तथा।
ऐन्द्र वारुणयो: शत्रु मारुत: परिकीर्तित: ॥
आग्नेयये वारुणं शत्रु वारुणे तैजसं तथा।
सर्वेषामेव तत्वानां सामान्यं व्योमसम्भवम् ।
परस्परं विरुद्धानां वर्णानां यत्र सङ्गति।
स मन्त्र: साधक किं वा नास्य प्रसीदति ॥

अथात् "मन्त्र और साधक दोनों का आद्य वर्ण यदि पार्थिव हो, उसका वह कुल कहा गया है। इसी भांति अन्यों में भी देख लेना चाहिए। पार्थिव में वरुण मित्र है। आग्नेय से मारुत है। ऐन्द्र और वारुण दोनों का मारुत शत्रु है आग्नेय में वारुण शत्रु है और वारुण तेजस है। सभी तत्व में व्योम सम्भव सामान्य है। परस्पर में विरुद्ध वर्णों को जहाँ पर संगति है, वह मन्त्र साधक का हनन करता है अथवा इस पर प्रसन्न नहीं होता है।"

मन्त्र को देवता से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। शास्त्र इसका अनुमोदन करते हैं—

देवस्य मन्त्र रूपस्य मन्त्र व्याप्तिम जानताम्।
कृतार्चनादिकं सर्वं व्यर्थं भवति शाम्भवि ॥

हे शाम्भवि ! देव मन्त्र-स्वरुप वाला ही होता है, अर्थात मन्त्र ही देवता का सच्चा स्वरूप है। मन्त्र की व्याप्ति का ज्ञान न रखने वाले मनुष्यों के द्वारा की हुई अर्चना आदि सभी निष्फल होती हैं।

दैवाधीनादिक: जगत्सर्वं मन्त्राधीनांश्च देवता।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तत्स्याद् विप्रोहि देवता ॥

—मत्स्यपुराण

"देवताओं के अधीन सब संसार है, वे देवता मन्त्रों के अधीन हैं। वे मन्त्र ब्राह्मण द्वारा प्रयुक्त होते हैं, इसलिए ब्राह्मण ही देवता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्ध वाचकाः ।
तथा मन्त्रो देवता च गुरुश्चैकार्ध वाचकाः ।।

— सुन्दरी तोषिनी

"जिस प्रकार घट, कलश, कुम्भ तीनों शब्द एक ही अर्थ को प्रकट करते हैं,उसी प्रकार मन्त्र, देवता और गुरु एक ही अर्थ के वाचक हैं ।'

तन्त्र का मत है कि हमारी कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्थ में रहती हैं। जब तक उसको जाग्रत न कर लिया जाय तब तक मन्त्र सिद्ध करना असम्भव है । पहले कुण्डिलिनी जाग्रत कर लेना आवश्यक है । कुण्डलिनी जागरण के अनेकों विधान तन्त्रों में लिखे हैं । गुरु द्वारा ही इसकी साधना करनी चाहिए ।

मंत्र सिद्धि के लिए मन्त्र की शुद्धि और मन्त्र संस्कार का विधान भी आवश्यक माना गया है । इसके बिना भी सफलता अवश्य मानी जाती है । गौतमीय तन्त्र १५।७०।७५ का विचार है कि मन्त्र तभी सिद्ध होते हैं,जब उनका मानसिक जप दिव्यभाव के साथ सुषुम्णा के मार्ग में किया जाता है । इसके विपरीत यदि उपासक का मन पशुभाव में अट-कता रह कर, बिना एकाग्रता ही वाह्य जप किया जाता है, तो इस स्थिति में जप का विचार-शृंखला के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता । परिणाम स्वरुप अभीष्ट सिद्धि नहीं होती और साधना व्यर्थ,होजाती है ।

तप ही सिद्धि का द्वार खोलता है। अनवरत परिश्रम ही हर क्षेत्र में सफलता की कुंजी है । मन्त्र सिद्धि में ताप एक विशिष्ट सूत्र है । इसी माध्यम से वह सफल होता है । परन्तु कुछ लोग तंत्र को जादू का खेल समझते हैं । वह जादूगर की तरह हथेली पर सरसों जमाना चाहते हैं । मन्त्र सिद्धि के लिए समय, तप, एकाग्रता और सारे विधि-विधान के पालन की अपेक्षा है । इसके साथ साथ गुरु कृपा और मन्त्र पर अटूट श्रद्धा-विश्वास का होना भी एक आवश्यक उपाय है । इसके बिना साधना लूली-लंगड़ी मानी जायेगी । मन्त्र-साधना में गुरु का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यक्तित्व विशेष महत्व का है, क्योंकि वे ही मन्त्र को पुनर्जीवित और जागरित करते हैं, जिससे साधना सरल हो जाती है।

शास्त्रकार मन्त्रके अर्थ, चिन्तन और विधि-विधान जो पूरी जानकारी रखने पर बल देते हैं। यथा—

एकः शब्दः सम्यग्ज्ञानं पुष्ठः प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च काम धुग् भवति ।
—श्रुति

"शब्द के अर्थ का सम्यक् ज्ञान होने और उसका उचित रीति से प्रयोग करने से स्वर्गलोक और समस्त मनोरथों की पूर्ति होती है।"

अर्थं ज्ञानं बिना कर्म न श्रेयं साधनं यतः ।
अर्थ ज्ञान साधनीयं द्विजै श्रेयोर्थिभिस्तत् ॥
मन्त्रार्थं सो जपन् द्रयनुस्तथैवाव्यापयनं द्विजः ।
अधीत्य दत्किचिदपि मंत्रार्थाधिगयेरतः ।
ब्रह्मलोकं मयाज्ञाप्ति धर्मानुष्ठान्ता द्विजः ।
ज्ञात्वा ज्ञात्वा च कर्माणि जनो यां यां नुतिष्ठति ।
विदूषं कर्म सिद्धिः स्यात्रपानां त्रिदुषो भवेत् ।
ज्ञान कर्म च कर्माणि भूत्यर्थं कथितं यथा ।
अधीत श्रुत संयुक्तं तत्र श्रेष्ट न केवलम् ॥

"मन्त्र का अर्थ और विधान जानकर ही उपासना करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। मन्त्र के अर्थ का अध्ययन भी करना चाहिए और उसके रहस्य को भी समझना चाहिए तभी पूर्ण मन्त्र होता है। जो कर्म करता है, उसे अधिकाधिक जानना चाहिए। पूरी जानकारी पर आधारित कर्म से ही सफलता मिलती है। ज्ञान और कर्म को मिला कर अध्ययन और श्रवण के आधार पर जो कर्म किया जाता है, वही श्रेष्ठ है। केवल क्रिया मात्र करते रहना निरर्थक है।"

मन्त्र साधना में योगाभ्यास आवश्यक अंग माना गया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभ्यास मन्त्र-सिद्धी के लिए आवश्यक माना गया है, क्योंकि यह दोनों साधनाएँ एक दूसरे की सहायक हैं।

मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पते ।
न योगेन बिना मन्त्रो न मन्त्रेण बिना हि सः ।।
द्वयोरभ्यास संयोगो ब्रह्म संसिद्धि कारणम् ।

"मन्त्राभ्यास और योग से ज्ञान द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है। न तो योग के बिना मन्त्र सफल हो सकता है और न मन्त्रके बिना योग का उपयोग माना जा सकता है। इन दोनों के एक साथ अभ्यास से ही ब्रह्म प्राप्ति होती है।"

सफलता का एक आवश्यक साधन है, मन्त्र के प्रति पूर्ण श्रद्धा, विश्वास और आस्था। अर्द्ध श्रद्धा का लाभ भी इसी अनुपात से होता है। पूर्ण सिद्धि के लिए तो मन्त्र के प्रति अपने को समर्पित कर देना चाहिए, उसे अपना सर्वस्व समझना चाहिए और शरणागत होकर निरंतर साधना में लीन रहना चाहिए। शस्त्र का भी संकेत है—

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छस्ति स्नपन्नपि ।
मन्त्रैकशरणो विद्वान मतसैव सदाभ्यसेत् ।
नदोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा ।।

"मन्त्र के रहस्य को जानने वाला जो साधक एक मात्र मन्त्र की ही शरण हो गया है वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र, सब समय चलते-फिरते, उठते- बैठते, सोते- जागते, मन्त्र का अभ्यास कर सकता है। मानस जप में किसी भी समय और स्थान को दोषयुक्त नहीं समझा जाना चाहिए।"

साधना में जब तक मन बहिर्मुखी रहता है, तब तक सफलता मिलनी अशक्य है। उसके अन्तर्मुखी होने पर ही शक्तियों का विकास होने लगता है।

बहिर्मुखस्य मन्त्रस्य वृत्तयो प्रकीर्तिताः ।
त्व एदन्तर्मुखस्तस्य शक्तियः परिकीर्तिताः ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"मन्त्र अर्थात् विचार के बहिर्मुख होने पर जो वृत्तियाँ कही जाती हैं वे ही उसके अन्तर्मुख होने पर शक्तियाँ कहलाती है।"

मंत्र साधक को साधना में सफलता प्राप्त हो रहीहै या नहीं इसका निर्णय करने के लिये कुछ लक्षण ऋषियों ने बताये हैं यदि वह साधक में परिलक्षित होने लगे तो समझना चाहिये कि साधना सफल हो रही है मन्त्र महोदधि में कहा है—

गीतस्य तालं शब्दस्य गन्धर्वाणां समीक्षणम् ।
स्वतेजः सूर्य्य साम्ये निद्रा क्षुद्रा क्षुधां जपः ॥
रम्यता रोग्य गांभीर्य्यभावं क्रोधलोभयोः ।
एवमादीनि चिह्नानियदापश्यति मंत्रवित् ॥

"गीत तथा ताल के शब्दों का कानों में आना, गंधर्वों का देखना अपना तेज सूर्य के तेज के समान भान होना, निद्रा, क्षुधा और जप, रम्यता, आरोग्य, गम्भीर्य का होना, क्रोध तथा लोभ का अभाव होना ये सब लक्षण हैं, जिनको मंत्रोपासक देखता है।"

कुछ तंत्रोक्त मंत्र नीचे दिये जाते हैं जिनकी साधना से विभिन्न प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होतीहैं परन्तु उसके पूरेविधि-विधान का पालन करना आवश्यक है—

१. 'ॐ' इसे ब्रह्मविद्या, तारा मन्त्र तारा तारिणी कहा जाता है। सांसारिक बन्धनों को काटने और ईश्वर-प्राप्ति के लिये इसकी साधना की जाती है। इसका अनुष्ठान ३ लाख जप है।

—तन्त्र तत्व प्रकाश

२. 'ॐ' त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।' इसे रुद्र मन्त्र कहते हैं। मृत्यु के पाश से बचने के लिये इसका जप किया जाता है।

—उड्डीश तन्त्र १४

३. 'ॐ' शान्ते प्रशान्ते सर्वक्रोधोपशमनि स्वाहा।' इसका नाम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनघ शांति है। २१ बार मन्त्रका उच्चारण करके जलको अभिमन्त्रित करना चाहिए। फिर इच्छित व्यक्ति इससे मुख धो ले।

४. 'आद्यायै विद्महे परमेश्वर्यै धीमहि तन्न: काली प्रचोदयात्।' –महा गायत्री मन्त्र है। इससे महापातकों का निवारण होता है।

—महानिर्वाण तन्त्र ५।६३

५. 'पशुपाशाय विद्महे विश्व कर्मणे धीमहि तन्नो जीव: प्रचोदयात्।' यह पशुपाश विमोचिनी गायत्री है। ६ से ८ बन्धनों का क्षय होता है। —महानिर्वाण तन्त्र ६।१०

६. ओऽम परमेश्वर विद्महे परमतत्वाय धीमहि। तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्।' –यह गायत्री मन्त्र है। अन्त:करण की पवित्रता के लिए इसकी साधना की जाती है। —महानिर्वाण तन्त्र ३।१०७

७ 'ओऽम सं सां सिं सीं सुं सूं, सें सैं सों सौं सं स: व वां वि वीं वुं वूं वें वैं वों वौ वं व: हं स: अमृतवर्चसे स्वाहा।' यह रोगहर मन्त्र है। शारीरिक रोगों को दूर करने और दुष्कर्मों के परिणामों से बचने के लिए यह प्रयोग में आता है। जल को १०४ बार मन्त्रोच्चारण से अभिमंत्रित करके प्रात:काल पीना चाहिए। –उड्डीश तन्त्र १६५

८. 'क्रों क्रों क्रों, हूं हूं, ह्रीं ह्रीं, दक्षिणे कालिके, ओऽम क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।' यह सरस्वती मन्त्र है और वाणी की सिद्धि के लिए प्रयुक्त होते हैं।

९. "ओऽम सच्चिदेकं ब्रह्म।" यह ब्रह्म मन्त्र है और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों की उपलब्धि में सहायक सिद्ध होता है।

—महानिर्वाण तन्त्र ३।१२-१४

१०. "ॐ हं हां हिं हीं हुं हूं हें हैं हों हौं हं ह: क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्ष: हूं स: हम्।" यह आपच्चन्ति मन्त्र है। विष-निवारण के लिए भूत प्रेत और पिशाच के प्रभाव को दूर करने के लिए इसकी साधना की जाती है। –उड्डीश तन्त्र ११६-१६८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११-श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः स्वाहा।' यह मन्त्र राज है और मोक्ष प्रदाता है।"

१२—'ऐं सच्चिदेकं ब्रह्म ह्रीं सच्चिदेकं श्री सँच्चदेकं ब्रह्म' धन, लक्ष्मी विद्या और ज्ञान की इससे प्राप्ति होती है।

—महानिर्वाण तन्त्र ३।३७

१३—"ओऽम नमः सर्वलोकवशङ्कराय कुरु कुरु स्वाहा।" यह लोकवशीकरण मन्त्र है। उड्डीश तन्त्र १७४ के अनुसार नक्षत्र में पुनर्नवा की जड़ को उखाड़ना चाहिए और ७ बार इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके भुजा में बांध लेने से अभीष्ट सिद्धि होती है।

१४—"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। द्वितीय चक्षुरात-तम्। ओऽम तद्विप्रासी विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत् परमं पदं।' यह मुद्राशोधन मन्त्र है। महानिर्वाण तन्त्र ५।२११ के अनुसार इससे आनन्द की प्राप्ति होती है।

१५-'इता पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माकान्तो जाग्रात्स्वप्न सुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पदभ्यां उदरेण शिश्ना यत् कृतं यत् स्मृतं यदुक्तम् तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु, मां मदीयं सकलमाद्या कान्दी पदाम्भोजेऽपर्यामि ओं तत्सत्।'

यह आत्म समर्पण मन्त्र है। इससे उपासक अपनी आत्मा को परा-शक्ति के समर्पण करता है।

—महानिर्वाण तन्त्र

बीजाक्षरों की महान् शक्तियाँ

जिस तरह बीज में वृक्ष, फल, फूल आदि सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहते हैं और समय पाकर वह व्यक्त रूप में दृष्टिगोचर होने लगते हैं, उसी तरह बीजाक्षर में भी सूक्ष्म रूप में शक्ति रहती है। उस शक्ति के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विस्फोट अथवा विकास के लिये साधना रूपी जल और खाद की आवश्यकता रहती है मन्त्र सिद्धि के मूल में बीज मन्त्र का विस्फोट ही विशेष महत्व का है। जब मन्त्रों की शक्ति को बहुगुणा करना होता हो या शीघ्र सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा हो, तो बीज-मन्त्रों का सहयोग अपेक्षित रहता है विशिष्ट साधनाओं में यह विशेषकर लाभदायक रहता है।

बाबा मोतीलाल के अनुसार "जिस आश्रय से व्यक्तिमें ऊर्ध्वगामिनी उन्नति-गति उत्पन्न होती है, इसका कारण अवश्य कोई शक्ति होगी। उस शक्ति का कोई व्यक्त रूप अवश्य होगा, यही बीज है।'

मालिनी विजयोत्तर तन्त्र (तृतीय अधि०) क बीज की परिभाषा इस प्रकार की गई है—

बीज्योन्यात्मकाद् भेदात्द्विधा बीजं स्वरा मताः ।।
कादिभिश्च स्मृता योनिनवधावर्ग भेदतः ।।
बीजमेव शिव शक्तिर्योनिरित्यभिधीयते ।।

अर्थात 'बीजों की योनिका स्वरूप होने से दो प्रकार के बीज होते हैं, जो कि स्वर माने गये हैं। क वर्ण आदि जो हैं, उसे योनि कहा गया है। ये वर्ग भेद से नौ प्रकार के होते हैं। यहाँ पर शिव बीज तथा शक्ति योनि है, ऐसा कहा जाता है।"

नित्य-तन्त्र में कहा है–

वर्णत्रयं समारभ्यः नववर्णावधि बीजकाः ।

तीन वर्णों से लेकर नौ वर्णों तक बीज मन्त्र कहलाता है।"

एक अधिकारी तांत्रिक विद्वान् ने बीजमन्त्र के विज्ञान पर प्रकाश डालते हुए सशक्त शब्दों में कहा है—

तन्त्रों ने नाड़ी-संस्थान के केन्द्रों या क्षेत्रों में विशेष उद्देश्य के लिए चुने हुए बीजाक्षरों की स्थापना करके और उनके अविराम प्रवाह की धाराओं को वहाँ केन्द्रित करके केन्द्रों के उपयोग को ढूँढ़ निकाला है। बीजाक्षरया उसके समान स्पन्दन सच्चे अर्थका उनकी कारणावस्था

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में साक्षत्कार कराते हैं, साथ ही विश्व-विधान की योजना में भी उसका साक्षात्कार कराते हैं, या जब इस पद्धति में कुछ योगिक प्रयत्न की अवश्यकता पड़ती है,जो कि गुह्यज्ञानके साधारण साधक की पहुँच के बाहर होता है, तब साधारणतया उसे अपेक्षाकृत सरल और समान रूपसे प्रभावशाली विधी को अपनानेकी सलाह दी जाती है। यह पद्धति है रुचि पूर्वक अनेक वर्णों का जप। वर्ण या अक्षरों का यह चेतना के स्तर पर सूक्ष्म स्पन्दन पैदा करने के लिए है और इसे मन से परे स्थित सत्यों के सत्य को पाने के हेतु प्रस्तुत होने के लिये किया जाता है। जप के द्वारा मन में धारण किये हुए वर्ण की ध्वनि छन्दपूर्ण लयों से जाग्रत होते हैं, जो कि उन सत्यों के स्वाभाविक छन्दों के सबसे निकट पहुँचता है।"

विभिन्न देवी-देवताओं के बीजाक्षर अलग-अलग होते हैं। जैसे ऐं सरस्वती का बीजाक्षर है, क्लीं काली का और ह्रीं माया बीज कहलाता है। इसे तान्त्रिक प्रणव भी कहते हैं। जिस तरह 'ओऽम' वेदान्तियों के लिए है, तांत्रिक 'ह्रीं' को वही स्थान देते हैं।

तत्वबीज इस प्रकार हैं : हं—आकाश बीज, यं—वायु बीज, रं—अग्नि बीज, वं—वरुण बीज, लं—भू बीज, पं—मनोबीज, षं—बुद्धि बीज, सं—शक्ति बीज, शं—श्वराश्च-जीव बीजादि।

सभी अक्षर मन्त्ररूप हैं। इनमें महान् शक्तियाँ छिपी रहती हैं। केवल इसके ठीक प्रयोग की विधि जानने की आवश्यकता रहती है।

योग दर्शन में महर्षि पतञ्चलि ने आदेश दिया कि मन्त्र-जप, अर्थ चिन्तन सहित होना चाहिये। अत: कुछ बीज मन्त्रों का अर्थ यहाँ दिया जा रहा है—

१. ऐं—ऐं—सरस्वती और बिन्दुनाश भगवती सरस्वती मेरे दुःखों को दूर करे। यही सरस्वती बीज है।

२. श्रीं—श—महालक्ष्मी, र—धन, ई—पुष्टि, नाद—विश्व-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माता, बिन्दु—दुःख—नाश—धन और तुष्टि-पुष्टि की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी मेरे दुःखों को दूर करे, यही लक्ष्मी श्रीबीज है।

३. ह्रीं—ह—शिव, र—प्रकृति, ई—महामाया, नाद-विश्व-माता बिन्दु—दुःख-नाश। इसका अर्थ है—शिव सहित विश्वमाता महामाया शक्ति मेरे दुःखों को दूर करे। यह शक्ति अथवा मायाबीज कहलाता है।

४. दुं—यह दुर्गा बीज है। द—दुर्गा, उ—रक्षा, बिन्दु—करो। अर्थ है—दुर्गा मेरी रक्षा करे।

५. क्रीं-क-काली, र—ब्रह्म ई—महामाया, नाद-विश्व माता, बिन्दु दुःखनाश—ब्रह्मशक्ति रूपिणी महामाया काली मेरे दुःखों को दूर करें। यह काली बीज है।

स्त्रीं—स्—दुर्गोत्तारण। त—तारण मुक्ति, ई—महामाया नाद—विश्व-माता बिन्दु-दुःखनाश—मुक्तिरूपा, विश्वमाता, तारिणी, दुर्गोत्तारिणी भगवती महामाया दुःखों से मेरी रक्षा करें।

७. गं—यह गणेश बीज है। ग—गणेश, बिन्दु—दुःखनाश—गणेश मेरे दुःखों को नष्ट करें।

८. ह्रूं—यह वर्ण अथवा कूर्चबीज हैं। ह—शिव, ऊ—भैरव, नाद—सर्वोत्कृष्ट, बिन्दु—दुःख-नाश—सर्वोत्कृष्ट असुर भयङ्कर शङ्कर दुःखों को दूर करें।

९. हौं—ह—शिव, ओ—सदाशिव, बिन्दु-दुःखनाश। अर्थ है—शिव और सदाशिव की कृपा से मेरे दुःख दूर हों, यह प्रसाद बीज है।

१०. क्लीं—यह कृष्ण बीज व काम बीज है। क—कृष्ण अथवा काम, ल—इन्द्र, ई-तुष्टि, बिन्दु—सुख-शांति प्रदान करने वाला—भगवान् कृष्ण मुझे सुख-शांति प्रदान करें।

क्षौं—यह नृसिंह बीज है। क्ष—नृसिंह, र—ब्रह्म, औ ऊर्ध्वं-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्त, बिन्दु—दुःखनाश । अर्थ हैं—ब्रह्मरूपी ऊर्ध्वदन्त भगवान् नृसिंह मेरे दुःखों को दूर करें ।

बीज मन्त्रों के अर्थ न हों, या प्रतीत न हों, तो भी उनमें विशेषता ध्वनि शक्ति की ही होती है । अथवा वह शक्तिरूपा होते हैं और साधक को शक्ति का ही प्रसाद देते हैं ।

जप-विज्ञान

महत्व :—

सभी धर्मों और सम्पप्रदायों की आध्यात्मिक साधनाओं में अपने २ इष्टदेव की मन्त्र-साधना को एक आवश्यक अङ्ग माना जाता है । हिन्दू धर्म के वैदिक, पौराणिक, स्मृति और तांत्रिक मतावलम्बियों में तो यह साधना प्रचलित है ही बौद्ध और जैन मत वालों ने भी इसे अपनाया है । उनके विधि विधान में भी जप पर बल दिया गया है यही नहीं, सूफी मत और ईसाई कैथोलिक मत वाले भी इसे प्राचीन काल से अपनाये हुये हैं । योगी लोग क्रिया-योग में स्वाध्याय का इसे अङ्ग मानते हैं । तपयोग, मन्त्रयोग, राजयोग और हठयोग में नादानुसन्धान का वर्णन आता है, वह वास्तव में जप की एक विशेष अवस्था है ।

जप साधना हिंदू धर्म के आध्यात्मिक कर्मकांड का मेरुदण्ड है । इससे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं इसलिए भगवान कृष्ण ने इसे सब यज्ञों से श्रेष्ठ कहा है और अपनी विभूति मानी है । 'यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि" यज्ञों में जप यज्ञ मैं हूं । भगवान् मनु (२।८७) ने अपने अनुभव से कहा है—"और कुछ करेंया नकरें, केवल जप सेही ब्राह्मण सिद्धि पाता है ।" महाभारत (अश्व० ४४।७) में कहा है 'यज्ञों में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आहुति देकर सिद्धि प्राप्त करने वाला यज्ञ उत्तम है और यही वैदिक कर्मकाण्ड वालों का मत है। परन्तु भक्तिमार्ग में हविर्यज्ञ की अपेक्षा नामयज्ञ का विशेष महत्व है।"

इसीलिये शास्त्रकारों को यह घोषणा करनी पड़ी कि दशपौर्णमास, ज्योतिष्टोम, राजसूय आदि यज्ञ, वैश्वदेव, बलिकर्म, नित्यश्राद्ध, अतिथि-भोज आदि सत्कर्म भगवन्नाम के अथवा गायत्रीरूपी यज्ञ के १६ वें भाग के भी तुल्य नहीं माने जाते।

गोस्वामी श्री तुलसीदास ने भी नाम की महिमा का मान किया है—

नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ,
जपहिं नामु जन आरत भारी।
मिटहि कुसंकट होहिं सुखारी॥

जप एक आध्यात्मिक व्यायाम है, एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसका हमारे मानसिक और बौद्धिक क्षेत्र पर सुनिश्चत प्रभाव पढ़ता है उससे अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। साधक का मनोबल दृढ़ होता जाता है, विचारों में बिवेकशीलता आती है। बुद्धि निर्मल व पवित्र बनती है, आत्मा में प्रकाश आता है। इसके अमिट प्रभाव को देखते हुए शास्त्रकारों ने इसकी अपार महिमा का गान किया है। लिङ्ग पुराण ८५।१२४, १२५ में लिखा है जप करने वाले को कभी अनिष्ट नहीं होता, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भीषण यह उसके पास कभी फटक नहीं सकते। इससे जन्म-जन्मान्तरों के पाप नष्ट हो जाते हैं, सुखों व सौभाग्यों की वृद्धि हो जाती हैं और मुक्ति की प्राप्ति होती हैं।' गीता में भगवान कृष्ण ने कहा–'त्रायते महतो भयात्' जप साधक का महान् भय से त्राण करता है।" मनुस्मृति ४।१४६ में कहा है—'जप करने वालों का कभी पतन नहीं होता।" भगवान् मनु ने एक और स्थान पर कहा है कि जप से अन्त;करण परब्रह्ममय हो जाता है।

जप की महिमा बताने वाले कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं–

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोस्मि स्थावरणां हिमालयः ॥

—गीता १०-२५

'मैं महर्षियों में भृगु और वाणियों में ओंकार, यज्ञों में जप यज्ञ, तथा स्थावरों में हिमालय हूँ।"

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञः समन्वितः ।
सर्वे त जप यज्ञस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ।

—मनु० २-८६

"होम बलिकर्म, नित्यश्राद्ध अतिथि-भोजन आदि पाक यज्ञ और विधि-यज्ञ दर्शपौर्णमासादि ये समस्त मिलकर भी जप-यज्ञ की सोलहवीं कला के समान नहीं हैं।"

समस्तसप्ततन्तुभ्यो जपयज्ञ परः स्मृतः ।
हिंसान्ये प्रवर्तन्ते जपयज्ञो न हिंसया ॥
यावन्तः कर्म यज्ञाश्च दानानि च तपांसि च ।
ते सर्वे यज्ञश्च नार्हतिषोडशीकलां ।
जपने देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥
प्रसन्ना विपुलान् भोगान् दधान्मुञ्च शाश्वतीम् ।
यक्ष राक्षस वैतालः भूतप्रेतपिशाचकः ।
जपाश्रयीं द्विजं दृष्टा, दूरन्ते यान्ति भीतितः ॥
तस्माज्जपः सदा श्रेष्ठः सर्वस्मत्पुरायसाधनात् ।
इत्येष सर्वथा ज्ञात्वा विप्रो जपपरी भवेत् ।

—भारद्वाज गायत्री व्याख्या

"समस्त यज्ञों से जप अधिक श्रेष्ठ है। अन्य यज्ञों में जो हिंसा होती है, जपयज्ञ हिंसा से नहीं होता है। जितने भी कर्म, यज्ञ, दान, तप हैं, वे समस्त जपयज्ञ की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते हैं। जप द्वारा स्तुति किये गये देवता प्रसन्न होकर बड़े-बड़े भागों को तथा अक्षय शक्ति को प्रदान करते हैं। जप करने वाले द्विज को

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूर से देखते ही यक्ष, राक्षस, बैताल, भूत प्रेत, पिशाच आदि भय से भयभीत हो भाग जाते हैं। इस कारण समस्त पुण्य-साधनोंमें जप सर्व-श्रेष्ठ है। इस प्रकार जानकर ब्राह्मण को सर्वथा जप-परायण होना चाहिए।

मासं शतत्रयं विप्रः स्वान्कर्मानवाप्नुयात् ।
एवं शतोत्तरं जप्त्वासहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥

"इस प्रकार एक मास तक ३०० मन्त्र प्रतिदिन जप करने पर सब कार्यों में सिद्धि प्राप्त करता है। इसी प्रकार ग्यारह सौ नित्य जपने से सब कार्य ही सम्पन्न हो जाते हैं।

रुद्धा प्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयम् ।
यदच्छेत्तदवाप्नोति सहस्रात्परमाप्नुयात् ॥

"प्राण अपान वायु रोककर एक मासतक प्रतिदिन एक सहस्र मंत्र जपने से इच्छित वस्तु की उपलब्धि होती है।"

एक पादो जपेदुर्ध्वं बाहूरुद्धानिलवशः ।
मासं शंतमवाप्नोति यदिच्छेदिति कौशिकः ॥

"आकाश की ओर भुजायें उठाये हुए एक पैर के ऊपर खड़ा होकर सांस को यथाशक्ति अवरोध कर मास तक १०० मन्त्र प्रदिदिन जप करने मे अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है।"

एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं स्वप्नुयात् ।
निमज्ज्याप्सु जन्मांस शतमिष्टमवाप्नुयात् ॥

"जल के भीतर डुबकी लगाकर एक मास तक १३०० मन्त्र प्रति दिन जप करने से अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

लाभः—

जप आरम्भ करते ही साधक के अन्तःकरण में एक हलचल मचती है और उसकी विलक्षण शक्ति से आंतरिक क्षेत्र में अनेकों सूक्ष्म परि-वर्तन होते हैं। बुरे विचार, भाव और स्वभाव घटने लगते हैं और सत्य प्रेम, न्याय, क्षमा, ईमानदारी, सन्तोष, शांति, पवित्रता, नम्रता,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संयम, सेवा और उदारता जैसे सगुण बढ़ने लगते हैं । मन प्रभावित होने से विवेक, दूरदर्शिता, तत्वज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि की प्राप्ति होती है, जिससे दुःखों का कटना और सुख शान्ति का प्राप्त होना अनिवार्य परिणाम है। जप से मलिनता का पर्दा हटकर सद्गुणों का विकास होता है और महानता के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। दुर्गुण और दोष कम होने लगते हैं और साधक धीरे धीरे निर्मल चरित्र की साक्षात् प्रतिमा बन जाता है। वह असत् से सत्, अन्धकार से प्रकाश मृत्यु से अमरत्व, निराशा से आशा, सीमित से असीम, शिथिलता से दृढ़ता, नरक से स्वर्ग, स्वच्छता से श्रेष्ठता और कुबुद्धि से सद्बुद्धि की ओर कदम बढ़ाता है।

मन्त्र से जप शक्ति उत्पन्न होती है। शक्ति ही सिद्धि का दूसरा नाम है। योगदर्शन ४।१ में स्पष्ट कहा है कि मन्त्र-जप से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अन्तःकरण की पवित्रता तो सर्वश्रेष्ठ सिद्धि है, जो जप का स्वाभाविक लाभ है। योगदर्शन १०२८ में तो यहाँ तक कह दिया गया कि जप साधक धीरे-धीरे इतना ऊँचा उठ जाता है कि वह इसी साधना से समाधि-अवस्था तक पहुँच जाता है। आगामी सूत्र २ में महर्षि ने निर्देश दिया है कि साधन-काल में आए बिघ्नोंका इससे नाश होता है और अन्तरात्मा के स्वरूप का ज्ञान होता है। ईश्वर के साक्षात्कार का मार्ग खुल जाता है और साधक नित्य आनन्द में मग्न रहता है, उसे कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता, उसे किसी वस्तुका अभाव नहीं लगता, वह सम्राटों का सम्राट बनकर सर्वोच्च आसन पर अवस्थित हो जाताहै। स्वामी रामतीर्थ इसी स्थिति पर पहुँचकर अपने को राम बादशाह कहा करते थे। हर साधक साधना-तपश्चर्या द्वारा इस साम्राज्य का सर्वोच्च अधिकारी बन सकता है, यदि वह शास्त्रों में वर्णित नियमों के अनुसार साधना करता रहे। पर यह अवस्था लम्बे समय के अभ्यास के बाद आती है, जैसा कि योग दर्शनकार ने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१।१४ में लिखा है —"यह अभ्यास बहुत काल तक लगातार विधि-व्यवस्था से ठीक-ठीक किया जाने पर दृढ़ अवस्था वाला होता है।"

"जप से आध्यात्मिक लाभ ही प्राप्त हो ऐसी बात नहीं है भौतिक उपलब्धियाँ भी उसकी विशेषता है। कठिनाइयाँ और आपत्तियाँ तो हर एक के जीवन में आती हैं, मनोबल की वृद्धि से जप-साधक उनको हँसते-हँसते झेलता है, पहाड़ जैसे कष्ट उसे फूल के सामान लगते हैं। आत्मिक शक्ति के बढ़ने से उसका साहस भी बढ़ता है। आर्थिक अभाव, विवाह, सन्तान, मुकदमे, शत्रुता संघर्ष आदि आपत्तियों का ऐसा सरल समाधान हो जाता है वह चमत्कार सा ही दिखाई देता है। तपस्वी साधक अपने लिए ही नहीं वरन् दूसरे को लाभ पहुँचाने की स्थिति में रहते हैं। यह किसी के अनुग्रह से अनायास प्राप्त नहीं हो जाते वरन् जप द्वारा प्राप्त शक्ति से ही चमत्कार होते हैं।

जप द्वारा आयु वृद्धि के लाभों की वैज्ञानिक व्याख्या भी विद्वानों ने की है। २४ घण्टे में प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति २१६०० बार श्वास लेता है अर्थात् १ मिनट में १५ बार श्वास लेना स्वाभाविक है। यदि किसी उपाय से इन श्वासों की संख्या कम हो जाये तो आयु-वृद्धि सुनिश्चित है। प्राणायाम ऐसी योगही सशक्त क्रिया है,जिससे श्वास-प्रश्वास क्रिया का नियमन किया जाता है जप से भी ऐसा होता है जप के समय श्वासों की संख्या स्वाभाविक रूप से कम हो जाती है। यह एक मिनट में १५ के स्थान पर ७-८ रह जाती है। यदि साधक एक घंटा प्रति-दिन जाप करता है, तो लगभग ५०१ श्वासों की आयु-वृद्धि हो गई। इस तरहसे यदि वह इस प्रक्रियाको निरन्तर जारी रखता है तो जीवन में कई वर्षों की वृद्धि हो सकती है। यह किसी देव दानव की कृपा से नहीं अपने पुरुषार्थ का फल है।

अर्थ :–

'जप' धातुका एक अर्थ है—'जप व्यक्तायां वाचि' स्पष्ट बोलना। और दूसरा "जप मानसे च" मन उसे कहना। मन्त्र के बार-बार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उच्चारण को जप कहते हैं। अग्नि-पुराण में इसकी व्याख्या इस प्रकार से की गई है—

जकारो जन्म विच्छेदः पकारः पाप नाशकः।
तस्याज्जप इति प्रोक्तो जन्मं पाप विनाशकः।

अर्थात् 'ज' का अभिप्राय जन्म का विच्छेद और 'प' का अर्थ पापों का नष्ट होना। हृदय में भगवान के नाम लेने को भी जप कहते हैं। एक है पापों का विनाश। जिससे जन्म मरण और पापों का विनाश हो—वह जप कहलाता है।"

एक विद्वान ने इसका अभिप्राय भगवान को प्रत्यक्ष करना बताया है और कहा है—'इसकी अत्यावश्यक परिभाषा है—निर्बाध अन्तःकरण प्रकाश।' यह सूक्ष्म करुणार्द्र अन्तःकरण की विशुद्धि दीप्ति है। इस निर्णयात्मक स्थिति में सारे बन्धन छिन्न हो जाते हैं।" श्री रामकृष्ण परमहंस ने जप का अर्थ किया है—"एकान्त में बैठकर मन ही मन भगवान का नाम लेना।'

प्रकार :—

जप विभिन्न प्रकार का होता है, उसका संक्षिप्त विवेचन यहाँ किया जाता है।

१. नित्य-जप :—जैसे स्थूल शरीर के लिए बाह्य पवित्रता, स्नान, व्यायाम, भोजन और नियमित मल-विसर्जन आवश्यक क्रियायें हैं, उसी तरह सूक्ष्म शरीर के लिये नियमित रूप से उनके अनुरूप पवित्रता के साधन, उसके पोषण और विकास के लिए आध्यात्मिक व्यायाम जप और मन पर चढ़े मल-विक्षेपों को दूर करने के लिये नित्य अभ्यास आवश्यक है, ताकि पुराने संस्कारों का शमन होता रहे और नये आसुरी आक्रमणों के मुकाबले की तैयारी होती रहे। अपने इष्टदेव का जो रुचिकर और गुरु प्रदत्त मन्त्र हो, उसका जाप नित्य ही करना चाहिए। रोग या यात्रा की अवस्था में इसकी नित्यता में बाधा न आनी चाहिये। संख्या और विधि-विधान में कुछ शिथिलता भले ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आ जाए परन्तु इसकी नियमितता में कोई अन्तर न आना चाहिए। यह नित्य-जप कहलाता है। नियमित रूप से करने के कारण इससे शीघ्र ही सूक्ष्म शक्ति का विकास होता है।

२. नैमित्तिक जपः—कृतज्ञता की भावना का विकास करना हमारी संस्कृति की महान विशेषता है। हम मानते हैं कि आत्मा अजर अमर है। इसका नाश नहीं होता, केवल शरीर में परिवर्तन हो जाता है। अतः पितृ-ऋण से उऋण होने के लिए हम पितृ-श्राद्ध आदि कर्म करते हैं, जिससे पितर जहाँ भी हों, उनके सूक्ष्म शरीर को बल मिलता है और प्रसन्नता हो जाती है और वे आशीर्वाद देते हैं। उन देव-पितरों के सम्बन्ध में जो जप किया जाता है उसे नैमित्तिक जप की संज्ञा दी जाती है। यह पितृ पक्ष में तो किया ही जाता है। इसके अतिरिक्त पर्वतिथियों में अथवा अमावस्या, पूर्णिमा, एकादशी, शिवरात्रि, राम-नवमी, नवरात्रि, गणेश चतुर्थी, कृष्णाष्टमी व ग्रहणादि पर्वों पर भी किया जाता है। इस जप से पितरों की सद्गति होती है।

३. काम्य जपः—जप साधना विभिन्न प्रकार के प्रयोजनों से भी की जाती है। साधक का मन सकाम और निष्काम—दोनों प्रकार का हो सकता है। मन के स्तर के अनुकूल ही साधना होती है। जिस तरह आरम्भिक साधक के लिए मूर्ति-पूजा और अन्य बाह्य उपकरणों की आवश्यकता रहती है क्योंकि उसके लिए ईश्वर के निराकार रूप की कल्पना करना सहज नहीं है, उसी तरह पशु-भाव के साधक को ईश्वराधन की ओर आकर्षित करने के लिये भौतिक सिद्धियों की उपलब्धि में सहयोग दिया जाता है जिससे उसके विश्वास में दृढ़ता हो और आत्म-कल्याण की साधना की अगली सीढ़ी पर चढ़ने के लिए तैयार हो। किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए जो सकाम साधना की जाती है, वह काम्य जप कहलाता है। इससे देव-शक्तियों को आकर्षित किया जाता है, जो अभीष्ट सिद्धि में सहायक होती है।

निषिद्ध जप—साधक किसी भी क्षेत्र में साधनारत हो, उसका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ भी उद्‌देश्य हो, उसके विधि-विधान का महत्व होता ही है। यदि उसकी उपेक्षा की जाती है, तो पूर्ण सफलता में सन्देह ही रहता है। आध्यात्मिक साधना में तो इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। पवित्रता संयम, ब्रह्मचर्य, मिताहार, यम-नियमों का पालन, मनोनिग्रह जप-साधना में आवश्यक बताये गये हैं। यदि किसी भी साधना के नियमों का पालन पूर्ण रीति से नहीं किया जाता है, तो देव-कृपा संदिग्ध रहती है। अनाधिकारी गुरु से दीक्षा लेकर अशुद्ध उच्चारण के साथ अपवित्र अवस्था में और निकृष्ट स्थान पर यदि अविधिपूर्वक जप किया जाए, तो यह निषिद्ध जप कहलाता है जिसमें देवता और मन्त्र में भी अनुकूलता न हो और श्रद्धा विश्वास का अभाव हो, ऐसी साधना से कोई लाभ नहीं होता केवल निराशा ही हाथ लगती है।

४. प्रायश्चित जप—मानव-शरीर धारण करने से पूर्व हमें ८४ लाख योनियों से होकर आना पड़ता है, जिसमें विभिन्न प्रकार की पशु-योनियाँ होती हैं। उनके संस्कार हमारे मानस-पटल पर अंकित रहते हैं। छोटा-सा उत्तेजक कारण मिल जाने पर हमसे बड़े से बड़े दोष, अपराध अथवा पाप हो जाते हैं, जिसके लिये बाद को मन में पश्चाताप भी होता है। दोष और त्रुटि मानस स्वभाव का एक अङ्ग है। पिछले संस्कार और सांसारिक परिस्थितियाँ इसका कारण बन जाती हैं। इन दोषों के परिष्कार के लिए आवश्यक उपाय अपनाना बुद्धिमानी है, क्योंकि हर कर्म की प्रतिक्रिया होती है, जो भोग और प्रारब्ध के रूप में हमारे सामने आती है। संचित प्रारब्ध कर्मों से ही हमारा जीवन दुःखमय प्रतीत होता रहे तो इन भौतिक दुःखों में भी कमी की जा सकती है। पिछले प्रारब्ध कर्मों को भोग अथवा अन्य साधनाओं द्वारा कम किया जाये और आगे सावधानी बरती जाये, यही ऋषियों का आदेश है। आचार्यों ने संचित व नित्य दोषों के प्रभाव को दूर करने के लिये अनेकों प्रकार के उपायों का दिग्दर्शन किया है, उनमें से एक प्रायश्चित-जप है। इसका स्पष्ट अर्थ है—अपने दोष और अपराध

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को स्वीकार करना। पाप की गांठ उसके स्वीकार करने से ही खुलती है। इसे स्वीकार न करने से वह और दृढ़ होती है। अतः जाने व अन-जाने पापों के परिमार्जन के लिये जो जाप किया जाता है। उसको प्रायश्चित जप कहा जाता है।

६. अचल-जप:—अभीष्ट सिद्धि के लिये कुछ विशिष्ट साधना भी आवश्यक होती हैं। नियम, संयम और सङ्कल्प भी इसके आवश्यक अङ्ग हैं। बिना सङ्कल्प के कोई भी काम निश्चित समय में पूर्ण नहीं हो पाता। कठिन कार्यों के लिये तो सङ्कल्प अनिवार्य होता है। जप-साधना में समय और संख्या की विशेषता रहती है। जप साधक यह निश्चय करता है कि नित्यप्रति वह इतना समय लगाकर इतना जप करके ही आसन से उठेगा—वह अचल जप कहलाता है। इससे साधक की मनो-भूमि में दृढ़ता आती है और किसी भी बड़ी से बड़ी साधना के लिये वह साहस बटोर सकता है।

७. चल-जप :—अन्य जप तो विधिपूर्वक आसन पर बैठकर किये जाते हैं, परन्तु चल जप किसी भी परिस्थिति में किया जा सकता है। चलते, फिरते यात्रा में या कहीं भी यह हो सकता है। इसलिये किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है। खाली मन को शैतान का घर कहा गया है, तो उसमें विभिन्न प्रकार के अनावश्यक विचार चक्कर लगाते रहते हैं। कमजोर मन पर आसुरी विचार अपना नियन्त्रण जमा लेते हैं, तो उसके कार्य भी उसी के अनुकूल होने लगते हैं। इनसे बचने के लिये आवश्यक है कि मन में बुरे विचारों का आगमन न हो। यह तभी हो सकता है, जब मन खाली न हो और सदैव उसे व्यस्त रखा जाये। अपने इष्ट देवता के स्मरण के अतिरिक्त और कौन सा श्रेष्ठ साधन हो सकता है ? मन्त्र जप का साधन हर सम्भव चलता रहे, तो आसुरी वृत्तियों के पोषण विकास का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि मन की पवित्रता को बनाये रखने के लिए निरन्तर साधन चलता रहता है। इस साधना में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रदर्शन घातक सिद्ध होता है। प्रदर्शन के बिना साधना चलता रहे, तो इसमें अपूर्व सफलता मिलती है।

८. वाचिक जप—भगवान मनु ने इस जप की महिमा वर्णन करते हुए कहा है कि यह विधि यज्ञ से दस गुना श्रेष्ठ है। जिस मन्त्र उच्चारण को अन्य व्यक्ति भी सुन सकें, उसे वाचिक-जप कहते हैं। आरम्भ में साधन के लिए यही ठीक रहता है, क्योंकि अन्य जप अभ्यास साध्य हैं। यह जप निम्न कोटि का जाना जाता है। फिर भी शब्द विज्ञान की महत्ता स्वीकार करते हुए इसकी उपयोगिता को स्वीकार करना ही होगा। योगियों का कहना है कि इससे वाक्-सिद्धि होती है और षट्चक्रों में विद्यमान वर्ण बीज शक्तियाँ जाग्रत होती हैं।

९. उपांशु जप—मनुस्मृति २।८५ के अनुसार उपांशु जप उसे कहते हैं कि मन्त्र का उच्चारण होता रहे होठ हिलते रहे परन्तु पास बैठा व्यक्ति भी उसे सुन न सके, जापक स्वयं ही उसे सुने। भगवान मनु ने इसे विधि यज्ञ की अपेक्षा सौ गुना-श्रेष्ठ बताया है। इस जप के प्रभाव से स्थूल से सूक्ष्म शरीर में प्रवेश होता है और बाह्य वृत्तियाँ अन्तर्मुख होने लगती हैं, एकाग्रता बढ़ने लगती है एक अद्भुत मस्ती प्रतीत होती है, जो अनुभव की ही बात है।

१. भ्रमर जप—भ्रमर के गुञ्जार की भाँति गुनगुनाना इस जप की विशेषता है। इसमें होठ और जिह्वा नहीं हिलानी पड़ती। जिस तरह वंशी बजाई जाती है, उसी तरह प्राणवायु के सहयोग से मंत्रावृत्ति की जाती है। योग-विदों का मत है कि जो साधक मनोलय के लिए नादानुसंधान की साधना करते हैं, यदि भ्रमर जप में वह सफलता प्राप्त कर लें, तो उनकी अनाहत नाद की साधना सरल हो जायगी। इस जप से यौगिक तन्द्रा की वृद्धि होती है और षट्चक्रों का धीरे-धीरे जागरण होने लगता है, प्रकाश की अनुभूति होती है, आन्तरिक तेज की वृद्धि होती है।

११. मानसिक जप—मानसिक जप में होंठ और जिह्वा कुछ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी नहीं हिलते । मन्त्र के पद और अक्षरों के अर्थ पर मन में विचार किया जाता है । इसकी महत्ता मनुस्मृति २।८६ विष्णु पुरा० ५६७, वृहद पाराशर ४।५७ में वर्णित की गई है । उनके अनुसार विधि-यज्ञ की अपेक्षा मानसिक जप सहस्र गुना श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है ।

मानसिक जप की उपयोगिता पर पं० दीनानाथ शास्त्री लिखते हैं "स्पष्ट बोलने से वाणी स्थूलता में रहती है । और उसका प्रभाव भी सीमित स्थल में रहता है । पर मन के द्वारा मन्त्र के उच्चारण से वह वाक् सूक्ष्म हो जाती है । परा, पश्यन्ती, मध्यमा — यह तीन वाक् भी सूक्ष्म होती है । उनके द्वारा नाभि प्रदेश आदि में प्रयत्न होता है, उससे विद्युत प्रकट होती है उसका प्रभाव अपेक्षित स्थल है । सूक्ष्म की शक्ति स्थूल की अपेक्षा अधिक होती है । पर स्थूल-वाक की अपेक्षा उसका प्रभाव भी अधिक पड़ता है । मन्त्र में 'मन्त्रि गुप्त भाषणे' धातु है, मन्त्र का मन्त्रत्व गुप्त इसी मानस भाषण से होता है । मानस जप का प्रभाव सारे आकाश में व्याप्त हो जाता है, अपेक्षित स्थल पर तो पड़ता ही है ।

१२. अखंड जप — इसका अभिप्राय इसके नाम से ही स्पष्ट है । शरीर को धारण करने के लिए जो आवश्यक कृत्य करने होते हैं, उतना समय इनमें तथा शेष साधना में लगाकर यह अनुभवजन्य है, कि हर समय जप करना सम्भव नहीं है । थकावट भी होती है और मन भी उचटता है । परिवर्तन से मन लगता है, इसलिए गुरुजनों ने यह आदेश दिया है कि जब जप से मन उचट जाए, तो ध्यान करना चाहिए । ध्यान की भी एक सीमा होती है । जब ध्यान से मन उचटने लगे, तो आत्म-चिंतन करना चाहिए, आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए । इस तरह से मन को हर समय लगाए ही रहना चाहिए, उसे एक क्षण के लिए भी स्वतन्त्र न छोड़ना अखण्डता की परिभाषा में आता है । शास्त्र का भी यही आदेश है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जपाच्छान्तः पुनर्ध्यायेद् ध्यानाच्छान्त पुनर्जपेत् ।
जपध्यानपरिश्रान्तः आत्मानं च विचारयेत् ।

"जप करते-करते जब थके तो ध्यान करना चाहिए, ध्यान से थकें, तो पुनः जप करें। इन दोनों से जब थकें तो आत्म तत्व का चिंतन करें।

बारह वर्ष तक इस अखण्ड साधना को जप की संज्ञा दी गई है। इससे महासिद्धि की उपलब्धि होती है।

१३ अजपा जप—यह जप माला के बिना ही होता है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया हमारे शरीर में बराबर स्वाभाविक रूप से होती रहती है, जो एक अहोरात्र में २१६०० की संख्या में होती है। जो श्वांस बाहर निकालता है, उसकी ध्वनि 'हम' की तरह होती है जो अन्दर आता है उसकी ध्वनि 'सः' की तरह होती है। इस तरह से 'हंस' मन्त्र का जप हमारे शरीर में अपने आप होता रहता है। इसे अजपा गायत्री भी कहते हैं। अतः श्वांसोच्छ्वास के साथ मन्त्रावृत्ति अजपा जप कहलाती है। योग की भाषा में कहा जाये, तो 'सः' ध्वनि का सम्बन्ध प्राण से और 'ह' ध्वनि का अपान से सम्बन्ध है। प्राण-अपान की क्रिया बराबर चलती रहती है। यही अजपा विद्या कहलाती है। इस जप की यही विशेपता है कि अपने इष्टा रूप में इसकी स्वाभाविक क्रिया को देखना होता है। इस जप को अजपा-गायत्री व हंस विद्या के अतिरिक्त आत्म-मन्त्र और प्राण-यज्ञ भी कहा जाता है। गीता के चौथे अध्याय में कहा गया है—"प्राणानि प्राणेषु जुहवति।' यही प्राणयज्ञ है। इस प्राणयज्ञ को श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में अजपा साधन बताया है। नाथ-सम्प्रदाय में तो यह विशेष रूप से प्रचलित है। नाथ-साहित्य में इसकी महिमा का वर्णन आता है। बौद्ध मत में जो साधना 'आना पानसति' के नाम से प्रसिद्ध थी वह आचार्यों की दृष्टि में अजपा साधना का ही एक भाग थी।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'हंसोपनिषद्' में हंस मन्त्र की स्वाभाविक क्रिया का वर्णन करते हुए कहा है—

सर्वेषु देवेषु व्याप्तं वर्तते यथा ह्ययग्नि काष्ठेषु तिलेषु तैलमितवात विदित्वा नमृत्युमेति ।

"समस्त देहों में यह जीव हंस-हंस जपता हुआ व्याप्त रहता है, उसी प्रकार जैसे काठ में अग्नि रहती है और तिलों में तैल रहता है। इसके जान लेने वाला मृत्यु को उल्लङ्घन कर जाता है।"

५. प्रदक्षिणा जप—इसकी प्रक्रिया नाम से ही स्पष्ट है। औदुम्बर व पीपुल के वृक्ष को पवित्र माना जाना है, इसलिये जप करते हुए परिक्रमा करनी पड़ती है। ज्योतिर्लिग-मन्दिर की प्रदक्षिणा का भी विधान है। साथ में ब्रह्म भावना का रहना आवश्यक होता है। इससे भी विशेष लाभ होता है।

जप की सहयोगी प्रक्रियायें :—

जप का लाभ तभी होता है जब वह एकाग्रतापूर्वक किया जाए, वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हों, यदि जप-साधन में माला घुमानें के साथ-साथ विचार अन्यत्र घूमते रहते हैं, तो शक्ति का विशेष विकास नहीं हो पाता। एकाग्रता के लिए ध्यान किया जाता है, जो शक्ति का विशेष साधन है। ध्यान की सफलता में जप की सफलता निश्चित है। जप के साथ अर्थ-चिंतन को भी आवश्यक बताया गया है। इष्टदेव के मन्त्र का जब उच्चारण किया जाता है, तो मन मस्तिष्क में इष्ठदेव के गुण रूप का एक सजीव चित्र बन जाता है, जो कालांतर में संस्कार का रूप ग्रहण कर लेता है और पूर्व संस्कार का शमन करता है। पूर्व संस्कारों में जो काम, क्रोध, मद, लोभ, द्वेष, ईर्ष्यादि की भावनाएँ भरी पड़ी हैं, उनको धीरे-धीरे समाप्त करना जप साधन की विशेषता है। विचारों में परिवर्तन होता है। मस्तिष्क कोष प्रभावित होते हैं, उन पर चिह्न बनते हैं, संस्कार जमते हैं और स्थायित्व आता है।

मन ऐसा ही भूत है जो जब भी निरर्थक बैठता है, तभी कुछ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न कुछ खुराफात करता है। इसलिये यह जब भी काम में छुट्टी पाए, तभी इसे जप पर लगा देना चाहिये। जप केवल समय काटने के लिये ही नहीं हैं, वरन् वह एक बड़ा ही उत्पादक एवं निर्माणात्मक मनोवैज्ञानिक श्रम है। निरन्तर पुनरावृत्ति करते रहने से मन में उस प्रकार का अभ्यास एवं संस्कार बन जाता है जिससे वह स्वभावतः उसी ओर चलने लगता है।

पत्थर पर बार बार रस्सी की रगड़ लग जाने से गढ्ढा पड़ जाता है। पिंजड़े में रहने वाला कबूतर बाहर निकाल देने पर भी उसी में वापिस आ जाता है। गाय को जङ्गल में छोड़ दिया जाए तो वही रात को स्वयमेव लौट आती है। निरन्तर अभ्यास से मन भी ऐसा अभ्यस्त हो जाता है कि अपने दीर्घकाल तक किए गए कार्यक्रम में अनायास ही प्रवृत्त हो जाता है।

अनेक निरर्थक कल्पना-प्रपञ्चों में उछलते-कूदते फिरने की अपेक्षा आध्यात्मिक भावना की एक सीमित परिधि में भ्रमण करने के लिये जप का अभ्यास करने से मन एक ही दिशा में प्रवृत्त रहने लगता है। आत्मिक क्षेत्र में मन का लगा रहना, उस दिशा में एक दिन पूर्ण सफलता प्राप्त होने का लक्षण है। तन रूपी भूत बड़ा बलवान है। यह सांसारिक कार्यों को बड़ी सफलता पूर्वक करता है और जब आत्मिक क्षेत्र में जुट जाता है, तो भगवान के सिंहासन को हिला देने में भी नहीं चूकते। मन की उत्पादन, रचनात्मक एवं प्रेरक शक्ति इतनी विलक्षण है कि उसके लिये संसार की कोई वस्तु असम्भव नहीं। भगवान् को प्राप्त करना भी उसके लिये बिलकुल सरल है। कठिनाई केवल एक नियत क्षेत्र में जमने की है, सो जप के व्यवस्थित विधान से वह भी दूर हो जाती है।

हमारा मन कैसा ही उच्छृङ्खल क्यों न हो, पर जब उसको बार-बार किसी भावना पर केन्द्रित किया जाता रहेगा, तो कोई कारण नहीं कि कालांतर में उसी प्रकार का न बनने लगे। लगातार प्रयत्नकरने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से सरकसमें खेल दिखाने वाले बन्दर, सिंह, बाध, रीछ जैसे उद्दंड जानवर भी मालिक की मरजी पर काम करने लगते हैं, उसके इशारे पर नाचते हैं तो कोई कारण नहीं कि चंचल और कुमार्गगामी मन को वश में करके इच्छावर्ती न बनाया जा सके। पहलवान लोग नित्यप्रति अपनी नियत मर्यादा में दण्ड बैठक आदि करते हैं, उनकी इस क्रिया पद्धति से उनका शरीर दिनों दिन हृष्ट पुष्ट होता जाता है और एक दिन वे अच्छे बलवान बन जाते हैं। नित्य का जप एक आध्यात्मिक व्यायाम है, जिससे आध्यात्मिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ और सूक्ष्म शरीर को वलवान बनाने में महत्व पूर्ण सहायता मिलती है।

एक एक बूँद जमा करने में घड़ा भर जाता है। चींटी एक एक दाना ले जाकर अपने बिलों में मनों अनाज जमा कर लेती है। एक-एक अक्षर पढ़ने से, थोड़े दिनों में विद्वान बना जा सकता है। एक कदम चलने से लम्बी मंजिलें पार हो जाती हैं। एक एक पैसा जोड़ने से खजाने जमा हो जाते हैं। एक एक तिनका मिलने से मजबूत रस्सी बन जाती है। जप में भी वही होता है। माला का एक एक दाना फेरने से बहुत जमा हो जाता है और इतना जमा हो जाता है कि उससे आत्मा का कल्याण हो जाता है इसलिए योग ग्रन्थों में जप को यज्ञ बताया गया है। उसकी ही महिमा गाई गई है और आम, मार्ग पर चलने की इच्छा करने वाले पथिकों के लिए जप करने का कर्त्तव्य आवश्यक रूप से निर्धारित किया गया है।

शब्द-साधना का महत्व–

जप साधना विज्ञान में शब्द का विशेष महत्व रहता है। सृष्टि का मूल और तत्व भी इसे ही माना गया है। शास्त्र का वचन है—

वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत्सर्वममृतं यस्च मर्त्यम्।

शब्दष्वेवापिता शक्तिविश्वास्यास्व निबन्धनो।

जब शब्द को सृष्टि का मूल माना गया है, तो इसके बाहर जाने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के लिए इसी को आधार बनाना पड़ेगा। यही कारण है कि जप-योग से शब्दातीत पर ब्रह्म पद पर स्थित होने की घोषणा की गई है। इस विज्ञान पर प्रकाश डालते हुये योगियों ने कहा है कि योगशास्त्र के अनुसार चार प्रकार की नाड़ियां होती हैं—वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा। स्थूल शब्द को वैखरी कहते हैं। इस साधक की वृत्ति बहिर्मुखी ही रहती है। वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने के लिए सूक्ष्म और सूक्ष्मतर वाणियों का सहारा लेना आवश्यक माना गया है। वैखरी से मध्यमा, पश्यन्ती और परा की ओर बढ़ना ही साधना की सफलता है। अन्तिम सीढ़ी पर चढ़ने के लिए तो इसके भी आगे जाना होता है। वैखरी से मध्यमा भूमि पर अवस्थित होने के लिए जप एक सरल मार्ग है। दो किताबों के बीच के स्थान को मध्य कहते हैं। वैखरी और पश्यन्ती के मध्य-स्थिति को ग्रहण करने वाली को मध्यमा कहा गया है। यही इसका कार्यक्षेत्र है। पशु-भाव में से दिव्य-भाव में जाने के लिए इस मध्यम का अवलम्बन अपेक्षित रहता है। योगियों का मत है कि सहस्र कमल के दल हृदय तक इसका विस्तार क्षेत्र है। वह माया के जाल काटने की क्षमता रखती है। अन्तिम अवस्था तक पहुँचाने के लिये इनका भी अतिक्रम करता हुआ आगे बढ़ता है, क्योंकि परब्रह्म को शब्दातीत कहा गया है। इसलिए शास्त्रकारों ने घोषणा की है कि शब्द में निष्णात होने पर ब्रह्म की उपलब्धि होती है।

शब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।

इन सभी उपलब्धियों के लिए जप साधन को श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है क्योंकि शब्द ही उसकी क्रिया का माध्यम हैं।

वैज्ञानिक प्रक्रियाः—

शास्त्रकारों ने जिन लाभों का वर्णन किया है उसका विशेष वैज्ञानिक कारण है। स्थूल शरीर की तरह ही सूक्ष्म शरीर में भी नाड़ी तन्तुओं का जाल बिछा रहता है और सभी एक दूसरे से सम्बन्धित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहते हैं और उनके सुसञ्चालन के लिए अनेकों केन्द्रों की व्यवस्था की गई है जहाँ से सम्बन्धित क्षेत्रों का नियन्त्रण होता है। जब तप आरम्भ होता है, तो सूक्ष्म शरीर में एक अद्‌भुत प्रक्रिया का श्रीगणेश होता है, जिस तरह की वीणा से एक प्रकार की स्वर लहर उत्पन्न होती हैं, उसी तरह से जप से भी सारे शरीर में एक झंकार उत्पन्न होती है, जिसका विशेष प्रभाव उन शक्ति-केन्द्रों पर पड़ता है जो सूक्ष्म शरीर की शक्तियों के प्रतिनिधि नियुक्त किये गये हैं। इस बार-बार के आघात प्रतिघात से वह जाग्रत होते हैं और साधक अपने में अपार शक्ति की अनुभूति करता है। वह समझता है कि यह शक्तियाँ उसे दैव कृपा से प्राप्त हुई हैं, परन्तु वास्तव में यह उस वैज्ञानिक प्रक्रिया का सुफल है जो जय के आरम्भ में ही शुरू हो जाती है। शब्द की शक्ति को आधुनिक विज्ञान ने भी स्वीकार किया है और उसने लाभ उठने की विभिन्न विधियाँ खोज निकाली है। भारतीय विज्ञान ने तो शब्द शक्ति का प्रयोग आध्यात्मिक उत्थान के लिये किया था कि यहाँ का हर नागरिक इसका श्रद्धा और विश्वासपूर्वक अभ्यास करता था और अपना नैतिक उत्थान करता हुआ देवता की श्रेणी में पहुँच जाता था तभी तो भारत में ३३ करोड़ देवताओं की कल्पना की गई। विधि पूर्वक-व्यवस्था और मन्त्र आज भी उपलब्ध हैं, उन पर चलकर हम भी पशुत्व से ऊँचे उठकर सच्चे अर्थों में मानव बन सकते हैं और देवता देवत्व की भूमिका में प्रवेश कर सकते हैं।

नियम–

जप के जितने लाभ ऊपर वर्णित किये गये हैं वह तभी प्राप्त होने सम्भव हैं, जब साधना नियमपूर्वक की जाय अतः शास्त्रों में जप के कुछ नियम बताए गए है, जिनका दृढ़तापूर्वक पालन करना आवश्यक है।

शरीर की शुद्धि करके धुले और स्वच्छ वस्त्रों को पहिन कर साधना पर बैठना चाहिए। पालथी मारकर सीधे ढंग से बैठना चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कष्टसाध्य आसनों से चित्त में अस्थिरता रहती है। प्रातः पूर्व की ओर मध्याह्न को उत्तर की ओर, शाम को पश्चिम की ओर मुख करके बैठना चाहिए। मल-मूत्र त्याग या किसी अनिवार्य कारण से बीच में उठना पड़े तो हाथ पैर धोकर पुनः बैठना चाहिए। शिखा खोलकर पगड़ी या कुर्त्ता पहन कर पैर फैलाकर, नङ्गे होकर, व्यग्र चित्तसे, क्रोध में और जूतादि पहनकर जप करना निषिद्ध है। साधक का आहार विहार सात्विक होना चाहिए। तन्त्र-सार के अनुसार मन की शुद्धि, पवित्रता, संयम शौच वैराग्य, मन्त्रार्थ चिंतन, अव्यग्रता-यह जप-सिद्धि की प्रधान सम्पत्तियाँ हैं। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार अपवित्रता, रागरोष, नग्नशिरता, बहिसलाप, अन्यमनस्कता प्रार्थना में बाधक माने गये हैं। साधक को पराया अन्न नहीं खाना चाहिए। वह जिसका अन्न खाता है उसी को फल मिलता है।

जप न धीरे-धीरे हो, और न ही अधिक तीव्र—स्वाभाविक गति से चलना चाहिए। सिद्धि के लिये मन, शिव शक्ति और वायु का संयम आवश्यक है। यह न होने पर शास्त्रों के अनुसार कल्प पर्यन्त जप करने पर भी सिद्धि प्राप्त करना सम्भव नहीं है। साधना-स्थल को पूर्ण रूप से सात्विक रखना चाहिये। वहाँ पर तामसिक व राजसिक वृत्ति वाले व्यक्तियों को न आने देना चाहिए। महापुरुषों और देवताओं के चित्र और प्रेरणाप्रद वाक्यों से वह स्थान सुसज्जित होना चाहिए। साधक को अपनी इन्द्रियों पर संयम रखना आवश्यक है। इससे शीघ्र लाभ होता है। उत्तम विधि को एक साधक ने इस प्रकार बताया है—

नाम ही जप शून्यमन धरै पाँचों इन्द्रिय वश में करै।
ब्रह्म अग्नि में होमै काया, ताके विष्णु पखारै पाँया।

जप के संयम मन्त्र के अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। मन्त्रार्थ से जिन गुणों का वर्णन किया गया हो वह गुण हममें ओत-प्रोत हो रहे हैं, यह दृढ़ भावना करनी चाहिये। मन्त्र-जप से जो एकाग्रता और शक्ति उत्पन्न होती है, उससे उन गुणों को अपने अन्तःकरण में स्थापित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने में सहायता मिलती है और धीरे-धीरे साधक उस मन्त्र के साक्षात् रूप होता जाता है, वही सिद्धि के लक्षण हैं। योग-दर्शन ।२८। में इस तथ्य का समर्थन करते हुए लिखा गया है कि मन्त्र का जप और अर्थ विचारने से समाधि लाभ होता है। पूर्ण मनोयोग के साथ साधना करने वाले साधक इस स्थिति तक पहुँच ही जाते हैं।

जप के लिए उपयुक्त स्थान का होना आवश्यक है। लिंगपुराण १।१०६ के अनुसार घर में किये जप का फल साधारण होता है। नदी तट पर किये जप का फल लाख गुना और भगवान के श्री विग्रह के सामने किये जप का फल अनन्त होता है। लिंग-पुराण ८५।१०७।१०८ के अनुसार पवित्र आश्रमों, देवालयों, पर्वत-शिखर पर, देव ह्रद पर, समुद्र तट पर यह लाभ करोड़ गुना हो जाता है। ध्रुवतारा, सूर्य के अभिमुख होकर और गौ, अग्नि, दीपक और जल के सामने जप करने का भी फल श्रेष्ठ माना गया है। सुविधा के लिए घर का स्वच्छ और सात्विक स्थान लेना अभीष्ट है।

जप में माला की भी विशेष उपयोगिता है। तन्त्र सार के अनुसार अंगुलियों पर मन्त्र-जप साधारण, पुत्र-जीव की माला से दस गुना, शंख से सौ गुना, मूंगे से हजार गुना, मणि और रत्नों की माला से दस हजार गुना, स्फटिक की माला से भी दस हजार गुना, मोती की माला से लाख गुना, सोने का माला से करोड़ गुना, कुश ग्रन्थि की माला से अरब गुना और रुद्राक्ष से जप करने से अनन्त गुना लाभ होता है। गणेश जी का जप हाथी-दांत की माला से श्रेष्ठ माना गया है। कालिका पुराण में मूंगे की माला को सब प्रकार की कामनाओं की पूर्ति करने वाली, पुत्र-जीव की माला को पुत्रदाता और समस्त पापों का विनाश करने वाली बताया गया है। वैष्णव मन्त्रों में तुलसी की माला ही श्रेष्ठ मानी गई है। सात्विक उपासना के लिए इसी प्रयोग को करना चाहिए।

जप-साधना में वस्त्र भी विशेष महत्व रखता है। हंस माहेश्वर तन्त्र में वस्त्र, पल्लव, तृण, पाषाण, वंशकुल, कम्बल, कृष्णजिन,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याघ्रचर्म आदि के आसनों की चर्चा की गई है। परन्तु सात्विक उपासना में कुश का आसन ही श्रेष्ठ माना गया है। यदि बिना आसन भूमि पर बैठकर जप किया जाय, तो जप साधना में उपार्जित शक्ति के पृथ्वी में प्रवेश करने की सम्भावना रहती है, इसलिए साधक को अभीष्ट लाभ की प्राप्ति नहीं होती व कुश के आसन पर बैठकर साधना करने से यह लाभ है कि वह शक्ति को पृथ्वी में प्रविष्ट करने से रोकने और उसे सुरक्षित रखने की सामर्थ्य रखता है। इसलिए प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता है।

जप से सिद्धि-प्राप्त का उसकी संख्या से भी सम्बन्ध बताया गया है। इसलिए विशेष प्रयोजनों के लिए २४०० व १,२५००० के अनुष्ठान किये जाते हैं। यह मान्यता है कि यदि मानसिक रूप से ॐ का ९६ हजार जप किया जाय तो प्रत्याहार की सिद्धि होती है। धारणा के लिए दो करोड़ सात लाख छत्तीस हजार जप करना पड़ता है। यह श्रद्धा-विश्वास युक्त उत्तम साधक की मर्यादा है।

अतः जप एक ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया अथवा अध्यात्मिक व्यायाम है, जिससे साधक में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मीय नवीन शक्तियों का सृजन होता है, जिससे वह हर क्षेत्र में उन्नति-पथ को प्रशस्त करता हुआ विकासोन्मुख होता है, क्योंकि वह चारों ओर से शक्तियों का आकर्षण करता है। शक्ति-केन्द्र बनने पर सभी प्रकार की निर्बल-तायें, असुरतायें, दोष, दुर्गुण, पाप, बुराइयाँ, अज्ञान, अन्धकार, निराशा आदि अपना उपयुक्त स्थान न देखकर यहाँ से चले जाते हैं और वहाँ सुख शान्ति और आनन्द का स्रोत ही बना रहता है। जप में मन्त्र शक्ति की विशेषता तो है ही। इसके साथ जो नियम-उपनियम बनाये गये हैं वह भी विशेष महत्व के हैं। उनकी सहायता से ही मन्त्र-शक्ति से इच्छित फल की प्राप्ति सम्भव हैं। यह साधना हमारे चहुँमुखी विकास के लिए ऋषियों की अपार देन है। इसकी अपेक्षा करने से हम अपने भविष्य के निर्माण में बाधा डालते हैं और एक अद्भुत वैज्ञानिक साधन से लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षट्कर्म साधना

योगिनी-तन्त्र में तान्त्रिक षट्कर्मों के काम इस प्रकार बताये गये हैं—

शान्तिर्वश्यस्तम्भानि विद्वेषोच्चाटने तथा ।
मारणं परमेशानि षट्कर्मेदं प्रकीर्तितम् ।।

'महेश ने कहा—हे महेशानि ! शान्ति वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण—यही छः षट्कर्म कहे गये हैं ।''

कोई भी शिष्ट व्यक्ति शान्ति के अतिरिक्त कर्मों का अनुमोदन नहीं कर सकता, क्योंकि यह कर्म तभी किये जा सकते हैं जब मानव में परले दर्जे की स्वार्थपरता प्रविष्ट हो चुकी हो । ऐसा विचार करने वाला व्यक्ति क्षुद्रता का परिचय देता है ।

यह भी स्मरण रहे कि तन्त्र एक ऐसी वैज्ञानिक साधना-प्रणाली है जिसके द्वारा शक्ति का उद्भव और विकास होता है । मानव की जैसी मानसिक पृष्ठभूमि है, उसके अनुसार प्रयुक्त प्रकार से अपने उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है । तन्त्र के उच्च श्रेणी के साधक आत्मिक उत्थान की उपासना करते हैं, तो तामसिक साधक इस प्रकार के प्रयासों में उलझे रहते हैं । फिर भी इनका अपना महत्व है । जब शत्रु किसी के विनाश का प्रयत्न करता है, तब उसे अपनी सुरक्षा के लिए यह पाप अपनाना पड़े, तो इन्हें बुरा नहीं कहा जायेगा । क्योंकि मरता क्या नहीं करता की कहावत के अनुसार सभी उपाय-जायज माने जायेंगे, परन्तु यदि वह स्वार्थवश इन्हें काम में लाता है तो आलोचना का विषय बन जाता है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन दोनों पहलुओं की समालोचना से दूर रहकर यदि हम इस पर विचार करें तो हमें तन्त्र-विज्ञान के प्रयोगों का चमत्कार दृष्टि-गोचर होगा, क्योंकि साधारण व्यक्ति को यह प्रयोग असम्भव ही जान पड़ते हैं, परन्तु वास्तव में इनकी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि है। इन प्रयोगों का सम्बन्ध अन्तर्मन से है, जो विश्व की एक आश्चर्यजनक प्रयोगशाला इसमें अनेकों तामसिक ग्रन्थियों का निवास है, जो जटिल क्रियाओं, विलक्षण चेष्टाओं और अद्भुत कार्यों का मूल कारण बनती हैं। विकसित मानव को अभी इसके बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त हो पाई है, फिर भी जो प्राप्त है, उससे वह बड़े-बड़े चमत्कार दिखा सकता है। मारण, उच्चाटन, झाड़ फूँक, तावीज, नजर, झड़ा, डोरा आदि की सूचना (Suggestion) का प्रभाव इसी अन्तर्मन पर पड़ता है। आधुनिक मनोविज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है कि सूचना-संकेतों द्वारा अपने या किसी के भी मन को प्रभावित किया जा सकता है, उसके मन में विचार इच्छानुसार उंडेले जा सकते हैं, उसके विचारों को जैसा चाहें बनाया जा सकता है। यह संकेत-विद्या कोई जादू नहीं है, वरन् मनोविज्ञान की एक विकसित अभ्यास प्रणाली है, जिसके माध्यम से अनेकों चमत्कार देखने को मिले हैं। यह प्रयोगकर्त्ता पर निर्भर रहता है कि वह संकेतों को किस उद्देश्य के लिए प्रयुक्त करता है।

आधुनिक मनोविज्ञान के शब्दों में पुष्ट एवम् दृढ़, विचार स्पर्श ध्वनि, शब्द, दृष्टि तथा विभिन्न आसनों एवं क्रियाओं द्वारा किसी के मन पर प्रभाव डालने तथा अपनी इच्छा द्वारा कार्य सम्पन्न कराने का नाम संकेत करना है। संकेत ऐसे वाक्यों से किया जाता है, जिनमें अपूर्व दृढ़ता, गहन श्रद्धा शब्द-शब्द में शक्ति भरी रहती है। किन्हीं विचारों को बार-बार सोचने से वह मन का एक भाग-सा ही बन जाते हैं और वैसी ही क्रियायें होने लगती हैं। मन एक शक्तिशाली यन्त्र है। उसकी शक्ति से दूसरों के विचारों को परिवर्तित किया जा सकता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिप्नोटिज्म आदि ऐसी वैज्ञानिक प्रणालियों का आविष्कार भी किया जा चुका है, जिससे यह सिद्ध हो चुका है कि दूसरों के मन को वशीभूत किया जा सकता है ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक तो केवल संकेत-विद्या द्वारा दूसरों के मन को प्रभावित करने की बात कहता है, तन्त्र इसके अतिरिक्त मन्त्रशक्ति के प्रयोग की भी विद्या सिखाता है। आज मन्त्रशक्ति की सच्चाई से कोई इन्कार नहीं कर सकता है, जबकि ध्वनि से विज्ञान ने अनेकों प्रकार से चमत्कारिक प्रयोग कर दिखाये हैं ।

अतः यह कहने में कुछ भी सङ्कोच नहीं कि मारण मोहन, उच्चाटन आदि कर्म सफलतापूर्वक किये जाते थे, परन्तु इन साधनों का दुरुपयोग न होने लगे, इसलिए इनको गुप्त रखा जाता था यह अनुभवी गुरु की देख-रेख में ही सिखाते थे । गुरु पात्र शिष्य को ही यह प्रयोग बताया था । आज यह लुप्त प्रायः फिर भी जो जानकारी प्राप्त है, उसके अनुसार सबसे भयानक प्रयोग मारण को संक्षिप्त विवेचना करते हैं ।

शत्रुनाश के लिये मारण प्रयोगों को काम में लाया जाता है। मारण कितने ही प्रकार का होता है । एक तो ऐसा, जिससे किसी मनुष्य की तुरन्त मृत्यु हो जाय । ऐसे प्रयोगों में 'घात' या 'कृत्या' है । यह एक शक्तिशाली तांत्रिक अग्नि अस्त्र है, जो प्रत्यक्षतः दिखाई नहीं पड़ता, तो भी बन्दूक की गोली की तरह निशाने पर पहुँचता है और शत्रु को गिरा देता है । दूसरे प्रकार के मारण, मन्द मारण कहे जाते हैं । इनके प्रयोग से किसी व्यक्ति को रोगी बनाया जा सकता है । ज्वर, दस्त, लकवा, दर्द, उन्माद, मतिभ्रम आदि रोगों का आक्रमण किसी व्यक्ति पर उसी प्रकार हो सकता हैं, जिस प्रकार कीटाणु बमों से प्लेग, हैजा आदि महामारियों को फैलाया जाता है ।

इस प्रकार के प्रयोग नैतिक दृष्टि से उचित है या अनुचित ? यह प्रश्न दूसरा है पर इतना निश्चित है कि यह असम्भव नहीं सम्भव है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस प्रकार विष खिलाकर या शस्त्र चलाकर किसी मनुष्य को मार डाला जा सकता है, वैसे ही ऐसे अदृश्य उपकरण भी हो सकते हैं जिनको प्रेरित करने से प्रकृति के घातक परमाणु एकत्रित होकर अभीष्ट लक्ष्य की ओर दौड़ पड़ते हैं और उस पर भयङ्कर आक्रमण करके उस पर चढ़ बैठते हैं और उसे परास्त करके प्राण सङ्कट में डाल देते हैं। इसी प्रकार प्रकृति के गर्भ में विचरण करते हुई किसी रोग विशेष के कीटाणुओं को किसी व्यक्ति विशेष की ओर विशेष रूप से प्रेरित किया जा सकता है।

'मृत्यु-किरण' आज का ऐसा ही वैज्ञानिक आविष्कार है। किसी प्राणी पर इन किरणों को डाला जाय तो उसकी मृत्यु हो जाती है। प्रत्यक्ष देखने में उस व्यक्ति को किसी प्रकार का घाव आदि नहीं होता पर अदृश्य मार्ग से उसके भीतरी अवयवों पर ऐसा सूक्ष्म आघात होता है कि उस प्रहार से उसका प्राणांत हो जाता है। यदि वह आघात हल्के दर्जे का हुआ, तो उससे मृत्यु भी नहीं होती, पर मृत्यु-तुल्य कष्ट देने वाले या घुला-घुलाकर मार डालने वाले रोग पैदा हो जाते हैं।

शाप देने की विद्या प्राचीनकाल में अनेक लोगों को मालूम थी। जिसे शाप दिया जाता था, उसका बड़ा अनिष्ट होता था। शाप देने वाला अपनी आत्मिक शक्तियों को एकत्रित करके एक विशेष विधि-व्यवस्था के साथ जिसके ऊपर उनका प्रहार करता था, उसका वैसे ही अनिष्ट हो जाता था, जैसा कि शाप देने वाला चाहता था। तान्त्रिक अभिचारों द्वारा भी इसी प्रकार से दूसरों का अनिष्ट हो सकता है। परन्तु ध्यान रखने योग्य बात यह है कि इस प्रकार के प्रयोगों में प्रयोग कर्त्ता की शक्ति भी कम नष्ट नहीं होती। बालक प्रसव करने के उपरांत माता बिल्कुल निर्बल, निःसत्व हो जाती है किसी को काटने के बाद साँप निस्तेज, हतवीर्य और शक्ति रहित हो जाता है। मारण उच्चाटन के अभिचार करने वाले लोगों की शक्तियां भारी परिमाण में व्यय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो जाती हैं और उसकी क्षति पूर्ति के लिए उन्हें असाधारण प्रयोग करने होते हैं।

जिस प्रकार तन्त्र द्वारा दूसरों का मारण, मोहन, उच्चाटन आदि हो सकता है, उसी प्रकार कोई कुशल तांत्रिक इस प्रकार के अभिचारों को रोक सकता है, उन प्रयोगों को निष्फल भी कर सकता है और यहाँ तक कि उस आक्रमण को इस प्रकार उलट सकता है कि वह प्रयोग कर्ता पर उलटा पड़े और उसी का अनिष्ट कर दे। घात, कृत्या, चोरी आदि का कोई भी भिन्न तांत्रिक उलट दे तो उसके प्रेरक प्रयोक्ता पर विपत्ति का पहाड़ टूटा ही समझिए।

उपरोक्त अनिष्टकर प्रयोग प्रायः होते हैं। तन्त्र विद्या द्वारा हो सकते हैं। पर नीति धर्म, मनुष्यता और ईश्वरीय विधान की सुस्थिरता की दृष्टि से ऐसे प्रयोगों का किया जाना नितान्त अनुचित और अवांछनीय है। यदि इस प्रकार की गुप्त हत्याओं का तांता चल पड़े तो उससे लोक-व्यवस्था में भारी गड़बड़ी उपस्थित हो जाये और परस्पर के सद्भाव एवं विश्वास का नाश हो जाए। हर व्यक्ति दूसरों को आशङ्का, सन्देह एवं अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे। इसलिए तन्त्र विद्या के भारतीय तांत्रिकों ने इन क्रियाओं को निषिद्ध घोषित करके उन विधियों को गोपनीय रखा है। आजकल परमाणु बम बनाने के रहस्यों को बड़ी सावधानी से गुप्त रखते हैं ताकि उसकी जानकारी सर्व-सुलभ हो जाने से कहीं उसका दुरुपयोग न होने लगे। उसी प्रकार इन अभिचारों को भी सर्वथा गोपनीय रखने का भी नियम बनाया गया है।

शारदा तिलक तन्त्र गायत्री पटल में इस प्रकार के अभिचारों का वर्णन है, इनमें संकेत रूप से उन विस्तृत क्रियाओं का थोड़ा-थोड़ा आभास कराया गया है। वह संकेत सर्वथा अपूर्ण एवं असम्बद्ध हैं, तो भी उस सूत्रके आधार पर यह जाना जा सकता है कि कार्य को पूरा करने के लिए किस प्रणाली का अवलम्बन करना होगा, किन वस्तुओं की प्रधान रूप से आवश्यकता होगी। इन संकेतों के द्वारा इस मार्ग पर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चलने वाले को किसी-न-किसी प्रकार उन गुप्त रहस्यों की जानकारी हो ही जाएगी।

'शारदातिलक' तन्त्र में कुछ ऐसे अभिचार सूत्र दिए गए हैं, जिनसे इस प्रकार की विधियों पर कुछ प्रकाश पड़ता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार गायत्री से सात्विक लाभ उठाये जाते हैं उसी प्रकार उससे तामसिक कार्य भी किये जा सकते हैं। परन्तु ऐसे उन विधानों को गुप्त ही रखा जा रहा है। नीचे कुछ अभिचार संकेतों के श्लोक दिए जा रहे हैं।

धत्तूरं विषवृक्षाक्षभूरुहोत्थान्समिद्वरान् ।
राजीतैलेन संक्षिप्ताम् प्रथक्सप्त सहस्रकम् ।।
जुहुयात् संयता भन्यो, रिपुयमपुरं व्रजेत् ।।

धतूरा, कुचला तथा सरसों के तेल युक्त श्रेष्ठ समिधाओं से, प्रथक् सात हजार आहुति जितेन्द्रिय होकर दे तो शत्रु यमपुर को जावें।"

सप्तरात्रं प्रजुहुयात सिद्धार्थस्नेहलोलितैः ।
आर्द्रवस्त्रो वृष्टिकाले, मरीचम्मनुनामुना ।।

"सात रात तक सरसों के तेल से युक्त मिरचों द्वारा हवन करे। गीला वस्त्र धारण कर वर्षाकाल में यह प्रयोग करे।"

निगृह्यते ज्वरेणारिः प्रलययाग्नि समेस सः ।
तालपत्रै समालिख्य शत्रुनमि यथाविधि ।।

"ऐसा करने पर शत्रु प्रलयाग्नि के सदृश ज्वर से युक्त हो जाता है। तालपत्र यह शत्रु के नाम को यथा विधिपूर्वक लिखकर।"

आग्नेयास्त्रेण संवेष्टय् कुण्डमध्ये निखन्यते ।
जहुयान्मरिचेक्रुद्धा, ज्वराक्रान्त स जायते ।।

"उस नाम को आग्नेयास्त्र से अभिमन्त्रित कर कुण्ड के मध्य में गाड़ देवे क्रोधित होकर मिरचों द्वारा हवन करे तो वैरी ज्वर से युक्त हो जाता है।

तदादाय क्षिपेत्तोये शीतले सर्वशो भवेत् ।
पिष्ट्वापामार्गबीजानि, मरीचं मधु संयुतम् ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"पुनः कुण्ड में से उखाड़कर उसको शीतल जल में डाल देवे और अपामार्ग (चिड़चिड़ा) के बीजों को पीस, शहद से युक्त मिरचों को–"

अत्युष्णं लवणे तोये, निक्षिप्य क्वाथयेत्तत् ।
ऋक्षवृक्षं प्रतिकृते हृदये वदनेनसि ।।

"नमक के जल में डाल अग्नि पर रखकर क्वाथ के सदृश पकावे। पुनः ऋक्ष वृक्ष से शोधित करे।"

किंचित्किंचत्क्षिपेत्तोये दर्व्या कास्करोत्थया ।
आग्नेयमच्चरन्मन्त्री, सोऽचिराज्वरितो भवेत् ।।

"और साथ में थोड़ा-थोड़ा जल डालता हुआ मन्त्र को उच्चारण कर दर्वी (करछली) से चलावे तो शीघ्र ही शत्रु ज्वरयुक्त हो जावे।"

क्वथितेऽम्भसि ताँ क्षिप्त्वा हन्याच्छत्रु नयत्नतः ।
तीक्ष्ण स्नेहेन संलिप्तां शत्रो प्रतिकृति निशि ।।

"क्वाथ बन जाने पर उसको जल में डालकर कूटे हुए कड़ुवे तेल से युक्त उस कूटे क्वाथ को रात्रि में—

तापयेदेधिते वह्नौ प्रतिलोममनुं लपन् ।
ज्वरेणवाध्यते सद्यो होमादस्य मृतिर्भवेत् ।।

"प्रतिलोमनापूर्वक मन्त्र जपता हुआ प्रज्वलित अग्नि से तपावे। जल्दी ही शत्रु ज्वर से आक्रान्त हो जाता है और होम से उसकी मृत्यु हो जाती है।

सामुद्रे सलिलेः हिङ्गु वीजजोरकलोलिते ।
क्वाथिते पत्तलिं साध्य नक्षत्रं तरुनिर्मिताम् ।।

नमक युक्त जल में हींग, जीरा मिलाकर क्वाथ बनाकर उसकी मूर्ति बनावे।"

अधोवक्त्रां विनिःक्षिप्य, यष्ट्या विषतरूत्थया ।
तच्छिरास्ताऽनं कुर्वन् जपेदस्त्र विलोमतः ।।

"और उसको अधोमुख पृथ्वी पर डालकर विष वृक्ष की लाठी से उसका सिर फोड़े और मन्त्र को पढ़ता जावे।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सप्ताहान्मरणं यादि शत्रुज्वंर विमोहितः ।
आदित्यं रथ नाहेन्द्र ग्रास्ताङ्घ्रुतिद्विषाहतम् ॥

इस प्रकार करने पर शत्रु ज्वर से युक्त हो जाता है और उसकी एक सप्ताह में मृत्यु हो जाती है। उसको सर्प पैर में काट लेता है।''

नग्न तेलेन लिप्ताङ्गं दग्धं भानुमरीचिभिः ।
अधोमुखं निज रिपून्ध्यात्वा क्वथित वारिणाः ॥
तपयेभ्यानुमालोय शत्रुमृत्युं प्रियी भवेत् ॥

''शत्रु की मूर्ति को तेल में चुपड़कर मिर्चो के साथ जलाकर उसका नीचे को मुखकर उष्ण जल से सर्पण करे, तो शत्रु की शीघ्र मृत्यु होवे।

अङ्गणे स्थण्डिलंकृत्वा, सुगन्धिकुसुमादिभिः ।
देवातभ्यर्चयेन्नित्यं प्रायुक्तेनैव वर्त्मनां ॥

''आँगन में वेदी बनाकर सुगन्धित पुष्प आदि से नित्य देवी की विधान पूर्वक अर्चना करे।''

आहरेद्रात्रिपुर्वलिं चरुणा सर्वसिद्धिदा ।
कृत्यारोगं भयं द्रोहं भूतादीन्नात्र संशय ॥

''और रात्रि में समस्त सिद्धिदायक चरु द्वारा वलिदान देवे। इस प्रकार करने पर रोग, भय, द्रोह तथा भूतादिकों का भय नहीं रहता।'

यथावदग्निमाराध्य, गन्धः पुष्पः मनोरमैः ।
स्थित्वा तस्याग्रतोमन्त्री जपेन्मत्रमनन्यधीः ।

''मनोहर सुगन्धित पुष्पों द्वारा अग्नि की पूजा कर अग्नि के समक्ष अनन्य बुद्धि द्वारा मन्त्र जाप करे।''

जपाऽयं सर्व सिद्धार्यै स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।
लवणंमधुरासिक्तः जुंहुयातपश्चिमौमुखः ॥

''यह जप समस्त सिद्धि प्रदायक है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए, तदन्तर पश्चिममुख हो नमकीन अन्न तथा मिष्ठान द्वारा हवन करे।''

मन्त्रार्थं संख्या मन्त्री, रिपुमात्मवशं नयेत् ।
शालीन्प्रक्षाल्य संशोध्य, शुद्धान्कुर्वीत् तण्डुलान् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चवालीस हजार मन्त्र जाप करने पर जपने वाला पशु को अपने वश में कर लेता है। साठी चावलों को धोकर शुद्ध करे।"

जपित्वा पंचगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने ।
संजपेच्चेञ्जपन्मंत्र मववाय पुनः सुधीः ।।

"शोधित चावलों को पञ्चगव्य में शुद्ध करके विद्वान पुनः मन्त्र का जप करे।"

अर्चयित्वा विशदधीदेवीमग्नौ यथापुरा ।
जुहुयाच्चारुणानेन, साज्येनाष्ठसहस्रकम् ।।

"पुनः पूर्ववत् देवी को पूजकर अग्नि में घृतयुक्त इस चरु के द्वारा आठ हजार आहुति दे।"

पात्रे सम्पतनं कुर्वन्साध्यंतत्प्राशयेत्सुधीः ।
शेषं तं निखने गारि सम्पातं प्राङ्गणान्तर्गते ।।

"पुनः कुछ चरु पत्र में रख स्वयं भक्षण करे शेष को आँगन में गाढ देवे अथवा द्वार पर फेंक देवे।"

कृत्यरोगा विनश्यान्त सह भूतं ग्रहामयैः ।
परैरुत्पादिता कृत्या, पुनस्तानेव भक्षयेत् ।।

"कृत्या से उत्पन्न रोग भूतग्रहों के साथ-साथ नष्ट हो जाते हैं। दूसरों द्वारा भेजी गई कृत्या (घात) उन्हीं को नष्ट करती है।

जुहुयात्सम्पदां भूमिः साधको भवति ध्रुवम् ।

ऐसा करने पर साधक सम्पत्ति युक्त निश्चय हो जाता है।"

व्रीहिभिर्हविषा क्षीरैः पयोवृक्षं समिद्वरैः ।
आज्यैर्मधुत्रयोपेतैरद्द्गशतं प्रथक ।।

"हवि, जो दूधयुक्त वृक्षों की समिधाओं, घृत से, शहद, से, इनसे एक हजार आहुति प्रथक् दे।

इसी प्रकार वशीकरक्त, स्तम्भन, विद्वेषण और उच्चाटन के भी संक्षिप्त विधान मिलते हैं, उनके सम्बन्ध में केवल इतना जानना ही पर्याप्त है कि विधि-विधान की पूरी जानकारी होने पर इन्हें सफलता-पूर्वक किया जा सकता है।

।। समाप्त ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रेष्ठतम धार्मिक साहित्य

वेद

ऋग्वेद ४खण्ड-सम्पूर्ण (भा.टी.)
अथर्ववेद २खण्ड-सम्पूर्ण (भा.टी.)
यजुर्वेद–सम्पूर्ण (भा.टी.)
सामवेद-सम्पूर्ण (भा.टी.)

उपनिषद्

१०८ उपनिषद् ३ खण्ड (भा.टी.)
बृहदारण्यकोपनिषद् (भा.टी.)
छान्दोग्योपनिषद् (भा.टी.)

गीता

ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता (भा.टी.)
अष्टावक्र गीता (भा.टी.)

दर्शन

वैशेषिक दर्शन (भा.टी.)
न्याय दर्शन (भा.टी.)
सांख्यदर्शन (भा.टी.)
योग दर्शन (भा.टी.)
वेदान्त दर्शन (भा.टी.)
मीमांसा दर्शन (भा.टी.)

रामायण एवं धर्मशास्त्र

आनन्द रामायण (भा.टी.)
पंचतन्त्र (भा.टी.)
योग वासिष्ठ २ खण्ड (भा.टी.)
विचार सागर (भा.टी.)
२० स्मृतियाँ २ खण्ड (भा.टी.)
मनुस्मृति (भा.टी.)

पुराण साहित्य

शिव पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
विष्णु पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
मार्कण्डेय पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
गरुड़ पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
देवी भागवत पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
हरिवंश पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
ब्रह्माण्ड पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
भविष्य पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
पद्म पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
वामन पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
कालिका पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
कूर्म पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
वाराह पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
मत्स्य पुराण २ खण्ड (भा. टी.)
गणेश पुराण (भाषा)
सूर्य पुराण (भा. टी.)
आत्म पुराण (भाषा)
कल्कि पुराण (भा. टी.)
देवी भागवत पुराण (भाषा)
गायत्री पुराण (भाषा)
विश्वकर्मा पुराण (भाषा)
श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा (भाषा)
महाभारत साइज १८" x२२" /८ भाषा
महाभारत साइज २०" x३०" /१६ भाषा
रामचरित मानस मूल गुटका
अद्भुत रामायण (भा. टी.)

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर) बरेली–२४३ ००३ (उ. प्र.)
फोन : (0581) 474242

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal